शाला संगठन एवं शिक्षा समस्याएँ

(School Organisation & Problems of Education)

(समस्त विश्वविद्यालयों की बी ए, बी एड कक्षाओं के लिए पाठ्य-पुस्तक)

लेखक

हेतसिंह बघेला

एम ए (हिन्दी व इतिहास), एम एड

भू पू प्राचार्य, रा शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर

तथा अपर निदेशक (शिक्षा), राजस्थान।

एवं

हरिश्चन्द्र व्यास

एम ए, एम एड

राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर

प्राक्कथन लेखक

डॉ पी एन माहेश्वरी

कन्वीनर, बोर्ड ऑफ स्टडीज (शिक्षा संकाय), राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर

अभिमत

श्री जगदीश नारायण पुरोहित

प्रधानाचार्य

राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर

डॉ सी एम शर्मा,

एसोसिएट प्रोफेसर, बी एड पत्राचार संस्थान, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

1985-86

गाडोदिया पुस्तक भंडार, बीकानेर

प्रकाशक :
किशनलाल गाडोदिर
गाडोदिया पुस्तक भ
फड बाजार बीकानेर
फोन न 4080, 5330

प्रथम सस्करण 1985-86

मूल्य :
छात्र सस्करण रु० 35 00
पुस्तकालय सस्करण रु० 55 00

मुद्रक :
राजस्थान प्रिंटर्स, रानी बाजार, बीकानेर

14 10 85

प्राक्कथन

... अधिक अपेक्षायें ... स्तर के बालक-बालिकायें प्रकाशित हो रहे हैं, से उनमे वांछित शैक्षिक चितन का विकास करना उचित नही है। फिर भी प्रशिक्षण के माध्यम अनुरूप जीवन-दर्शन एव उसका सामाजिक महत्व, राष्ट्र निर्माण मे उसका स्थान आवश्यक है। शिक्षक के विद्यालय का सगठन और उसके कार्य, शिक्षा जगत से सम्बन्धित अनेकानेक समस्यायें तथा उनका उपयुक्त निराकरण आदि की जानकारी देना महत्त्वपूर्ण है। उनमे प्रशिक्षण के माध्यम से वांछित व्यवसायिक निष्ठाओ तथा क्षमताओ का विकास करना भी महत्त्वपूर्ण है।

राष्ट्र-स्तर पर शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम को प्रभावी बनाने का प्रयास चल रहा है। राजस्थान विश्वविद्यालय के नये पाठ्यक्रम मे भी प्रश्न पत्रो की पुनरचना की गई है। नये पाठ्यक्रम मे 'विद्यालय सगठन तथा शिक्षा की समस्यायें' नामक तृतीय प्रश्न-पत्र सम्मिलित किया गया है। इस प्रश्न पत्र पर श्री हेतसिंह जी बघेला एव श्री हरिश्चन्द्र जी व्यास द्वारा लिखित पुस्तक की पाण्डुलिपि देखने का अवसर प्राप्त हुआ। अपने दीर्घ कालीन प्रशिक्षण महाविद्यालयो के शिक्षक एव आचार्यो के रूप मे एकत्रित अनुभव स्वाध्याय, चिन्तन एव मनन का जो निचोड उनकी अन्य कृतियो मे देखने का अवसर मिला, उसका समावेश इन्होने इस पुस्तक के लेखन मे भी किया है।

पाठ्यक्रम की आवश्यकतानुसार पाठ्य-सामग्री सरल एव सुगम भाषा-शैली एव व्यवस्थित तथा तार्किक प्रस्तुति के आधार पर विद्वान लेखको की अन्य पुस्तको के समान ही यह पुस्तक भी अत्यन्त लोकप्रिय होगी। राजस्थान विश्वविद्यालय व छात्राध्यापको के अतिरिक्त यह अन्य विश्वविद्यालयो के प्रशिक्षार्थियो के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रेम नारायण माहेश्वरी
आचार्य
सयोजक-बोर्ड आफ स्टेडीज (शिक्षा सकाय)
राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर

अभिमत

वर्तमान में स्थिति यह है कि अंग्रेजी में लिखी अच्छे स्तर की पुस्तकें पढ़ने की विद्यार्थियों मे योग्यता नही होती तथा हिन्दी मे अच्छे स्तर की मौलिक पुस्तकों का अभाव बना हुआ है। परिणाम स्वरूप विद्यार्थी सस्ती एवं बाजारू पुस्तकों का अध्ययन कर परीक्षा में येन-केन-प्रकारेण उत्तीर्ण होने का प्रयास करते हैं। शैक्षिक स्तर में गिरावट आने का यह भी एक प्रमुख कारण है।

उक्त परिपेक्ष्य में "शाला संगठन एवं शिक्षा समस्याएँ" नामक इस पुस्तक का महत्व सहज ही उजागर हो जाता है। पुस्तक में प्रधानाध्यापक की भूमिका, सह शैक्षिक प्रवृत्तियों का आयोजन, स्वास्थ्य शिक्षण, विद्यालय अनुशासन विद्यालय के भौतिक संसाधन, शाला पुस्तकालय, छात्रावास परीक्षण एवं प्रोन्नति समय विभाग-चक्र, छात्र असन्तोष,शिक्षा का भारतीयकरण, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा,विद्यालय समुन्नयन योजना, जनसंख्या शिक्षा आदि विषयों पर सारगर्भित सामग्री संजोने का प्रयास किया गया है। निश्चित ही पुस्तक बी एड के विद्यार्थियों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी। सेवारत अध्यापक भी इस पुस्तक का अध्ययन कर अपने विचारों में निखार ला सकेंगे, ऐसी आशा है।

लेखकों का प्रयास पुस्तक को जहाँ बी एड के प्रशिक्षणार्थियों के लिए अधिकतम उपयोगी बनाना रहा है, वहीं इसे विद्यालय प्रशासन की दृष्टि से सन्दर्भ पुस्तक भी बनाया गया है। पुस्तक मे अद्यतन विभागीय/राजकीय आदेशों/नियमों एवं निर्देशों का भी समावेश करने का अच्छा प्रयास किया गया है।

लेखकगण इस सामयिक एवं अच्छे प्रयास के लिए बधाई के पात्र हैं। मेरी शुभ-कामनाएँ उनके साथ हैं।

जगदीश नारायण पुरोहित
प्रधानाचार्य
राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय बीकानेर

अभिमत

श्री हेतसिह बघेला तथा श्री हरिश्चन्द्र व्यास द्वारा रचित "शाला सगठन एव शिक्षा समस्याएं" पुस्तक की पाण्डुलिपि मैने देखी है। निश्चय ही यह पुस्तक बी एड के छात्राध्यापको तथा शिक्षा जगत मे कार्यरत अध्यापको, प्रधानाध्यापकों व शोधकर्त्ताओ के लिए उपयोगी सिद्ध होगी ऐसी मेरी व्यक्तिगत धारणा है। पुस्तक नये पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है इसलि- परीक्षार्थियो के लिए उपयोगी हो सकेगी। पुस्तक मे प्रत्येक पाठ को धार प्रस्तुत किया गया है तथा अन्त मे परीक्षा सम्बन्धी प्रश्न भी दि पुस्तक लिखने में लेखक बन्धुओ ने परिश्रम किया है। दोनो ही लेखकगण के पात्र हैं।

डॉ सी०एम० शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
प्रभारी बी एड पत्राचार अध्ययन सस्थान
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

अभिमत

शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में गत वर्ष परिवर्तित परिस्थितियों एवं नवीन अनुसंधानों से अवगत कराने हेतु आमूल चूल परिवर्तन किया गया। इस परिवर्तित पाठ्यक्रम के अनुसार अब तक कोई पुस्तक छात्रों की दृष्टि से उपयुक्त प्रकाशित नहीं हुई थी। श्री बघेला जी एवं श्री व्यास जी द्वारा लिखित पुस्तक "शाला संगठन एवं शिक्षा समस्याएं" की पाण्डुलिपि देखने का अवसर मुझे मिला। यह पुस्तक छात्रों के लिए उपयोगी है। इसकी भाषा सरल एवं सारगर्भित है। मैं गत दस वर्षों से राजस्थान विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हूं तथा इसी विषय का अध्यापन कर रही हूं। श्री बघेला जी एवं श्री व्यास जी को इनके अथक प्रयासों के लिए बधाई एवं मेरी शुभकामनाएं प्रेषित करती हूं।

डॉ श्रीमती सुशीला शर्मा
एम ए, एम एड पी एच डी
सहायक प्रोफेसर (शिक्षा संकाय)
पत्राचार संस्थान राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

अभिमत

श्री हेतसिंह जी बघेला तथा श्री हरिश्चन्द्र जी व्यास द्वारा राजस्थान विश्वविद्यालय के बी एड के तृतीय प्रश्न-पत्र के पाठ्यक्रमानुसार लिखित पुस्तक "शाला सगठन एव शिक्षा समस्याएँ" की पाण्डुलिपि का मैंने ध्यान पूर्वक अवलोकन किया। मैंने बी एड मे इस प्रश्न-पत्र का गत नौ वर्षों से निरन्तर अध्यापन किया है। यह पुस्तक इस प्रश्न-पत्र से सबधित अब तक प्रकाशित अन्य पुस्तकों की अपेक्षा विद्यार्थियो के लिए निश्चित रूप से श्रेष्ठ तथा उपयोगी रहेगी, ऐसी मेरी मान्यता है। श्री बघेला जी व श्री व्यासजी ने अन्य पुस्तको का लेखन भी बी एड के विद्यार्थियो के लिए किया है। आशा ही नही पूर्ण विश्वास भी है कि अन्य पुस्तको की भाँति आपकी यह पुस्तक भी छात्राध्यापको तथा प्रवक्ताओ के लिए सहायक सिद्ध हो सकेगी।

मैं इस पुस्तक के लिए लेखकद्वय को हार्दिक बधाई देती हूँ तथा शुभकानाएँ प्रेषित करती हूँ।

श्रीमती प्रभा शर्मा
एम ए (हिन्दी, सस्कृत) एम एड, आर एस
प्रोफेसर, राजस्थान शिक्षा महाविद्यालय, जयपुर

दो शब्द

राजस्थान विश्वविद्यालय ने बी एड (नियमित), बी एड (पत्राचार) तथा शिक्षा शास्त्री के पाठ्यक्रम मे गत दो वर्षों से परिवर्तन कर तृतीय प्रश्न-पत्र को 'शाला सगठन एव शिक्षा समस्याएँ' नाम से पुनर्गठित कर दिया है। साथ ही मूल्यांकन विधि म भी सशोधन किया है। अभी तक इस प्रश्न-पत्र से सम्बद्ध कोई एसी पुस्तक उपलब्ध नही थी जिसम नवीन पाठ्यक्रम मे निर्धारित प्रकरणो को नवीन मूल्यांकन पद्धति से समायोजित कर प्रस्तुत किया गया हो एव उनमे अद्यतन सामग्री को समाविष्ट किया गया हो। प्रस्तुत पुस्तक का लेखकों ने अपने शिक्षण-अनुभव एवं शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के विद्वान प्राचार्यों व प्रवक्ताओं के बहुमूल्य सुझावों के आधार पर अधिकाधिक उपयोगी बनाने का प्रयास किया है।

लेखक-द्वय श्री पी एन माहेश्वरी, प्राचार्य,आदर्श विद्यामंदिर शिक्षा महाविद्यालय जयपुर व कन्वीनर, शिक्षा सकाय बोर्ड ऑफ स्टडीज (राजस्थान विश्वविद्यालय) के प्रति आभारी हैं जिन्होंने पुस्तक की पाण्डुलिपि देखकर प्राक्कथन लिखा है तथा डॉ सीएम शर्मा प्रभारी रीडर, बी एड पत्राचार अध्ययन सस्थान (राजस्थान विश्वविद्यालय) डॉ (श्रीमती) सुशीला शर्मा व श्रीमती प्रभा शर्मा के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने इस प्रश्न-पत्र के अपने शिक्षण अनुभव के आधार पर पुस्तक के विषय म अपने अभिमत दिये हैं। श्री जगदीश नारायण पुरोहित प्राचार्य राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय बीकानेर के हम हृदय से कृतज्ञ हैं जिन्होंने पुस्तक लेखन के समय हमारा मार्ग दर्शन किया व पाण्डुलिपि देखकर अभिमत भी लिखा है। अत मे हम अपने प्रकाशक श्री किशन लालजी गाडोदिया को बधाई देते हैं जिन्होंने इस पुस्तक को समय पर प्रकाशित कर लेखक द्वय को प्रोत्साहित किया है।

लेखकों की यह आकांक्षा है कि पुस्तक आगामी सस्करणो मे अधिकाधिक उपयोगी बनती रहे। इस हेतु पाठको के रचनात्मक सुझावो का सदव स्वागत है।

— लेखक-द्वय

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठ

प्रथम इकाई (UNIT I)

[विद्यालय वातावरण के निर्माण मे प्रधानाध्यापक व अध्यापक की भूमिका, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ, स्वास्थ्य व शारीरिक-शिक्षा तथा अनुशासन।]

द्वितीय इकाई (UNIT II)

[विद्यालय हेतु अत्यावश्यक सुविधाएँ व सेवाएँ तथा माध्यमिक विद्यालयो की प्रमुख समस्याएँ]

तृतीय इकाई (UNIT III)

[सवधानिक शैक्षिक प्रावधानो के राज्य मे क्रिया वयन मे अध्यापको की भूमिका तथा राष्ट्रीय शैक्षिक समस्याएँ]

चतुर्थ इकाई (UNIT IV)

[विद्यालय समुन्नयन योजना व्यक्तिगत एवं विद्यालय स्वास्थ्य कार्यक्रम, जनसंख्या-शिक्षा, यौन-शिक्षा निर्देशन सेवाएँ तथा शारीरिक शिक्षा में संगठन के सिद्धांत]

अध्याय - १ | प्रधानाध्यापक एवं अध्यापक की विद्यालय-वातावरण के निर्माण में भूमिका

(The role of Headmaster & Teacher in building the tone of the School)

[विषय प्रवेश—विद्यालय वातावरण के अंग भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक—उनके निर्माण के घटक (1) मानवीय व भौतिक प्रावैधिक संसाधनों में प्रधानाध्यापक व अध्यापक का महत्व— विद्यालय वातावरण के निर्माण में प्रधानाध्यापक की भूमिका— (क) प्रधानाध्यापक की स्थिति, (ख) विद्यालय में स्थान एवं महत्व, (ग) प्रशासक रूप में (घ) विद्यालय अकादमी व अन्य क्रियाकलापों के संगठनकर्ता के रूप में, (च) शिक्षक के रूप में; (छ) कर्मचारियों के प्रति स्वयं के तथा उनके परस्पर मानवीय सम्बन्धों के नियोजक के रूप में, (ज) छात्रों व अभिभावकों के प्रति, (क) उच्च अधिकारियों व अन्य लोगों के प्रति, (ख) कर्तव्य एवं दायित्व, (ग) समस्याएँ एवं उनका निराकरण।

विद्यालय वातावरण के निर्माण में अध्यापक की भूमिका
(क) शिक्षक के रूप में (ख) छात्रों व अभिभावकों के प्रति व्यवहार, (ग) विद्यालय प्रशासन में सहयोगी के रूप में, (घ) विद्यालय के भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक वातावरण के निर्माण में सहायक के रूप में (च) मूल्यांकन—उपसंहार]

प्रधानाध्यापक

प्रधानाध्यापक अपने विद्यालय का मुखौटा होता है। विद्यालय का सबसे अधिक प्रभावी तत्व यदि कोई है तो वह प्रधानाध्यापक ही है। विद्यालय में उसकी केन्द्रीय स्थिति होती है। शिक्षक, शिक्षार्थी, अभिभावक सभी उसके सहभागी होते हैं। प्रधानाध्यापक अपने व्यक्तित्व, कार्य निष्ठा एवं कुशलता से विद्यालय को समुन्नत की ओर ले जाता है और विद्यालयों में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अपने शैक्षिक नेतृत्व से गति प्रदान करता है। अपनी विविध भूमिकाओं में प्रधानाध्यापक कुशल नेतृत्व करता है जो विद्यालय विकास हेतु एक मधुर वातावरण का सृष्टा होता है। उपयुक्त वातावरण की सृजना विद्यालयी कार्यक्रमों की सम्यक् क्रियान्विति हेतु प्रथम आवश्यकता है।
विद्यालय को विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिष्ठा दिलाने के लिए प्रधानाध्यापक को सक्षम पहल

शैली है। कुशल प्रधानाध्यापक अपने शैक्षिक व्यवसायिक संगठनात्मक, प्रशासनिक एवं विभागीय दायित्वों के धरातल पर अपने कार्य कलापों में खरे उतरकर विद्यालयी प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हैं परन्तु अक्षम एवं अविवेकी प्रधानाध्यापक अपेक्षित ऊँचाईयों पर बौने रह जाते हैं और विद्यालय में आये दिन क्लेश, शिकवा शिकायत अकर्मण्यता और स्तरीयता का ह्रास का पनपाने वाले वातावरण के कारण विद्यालयी कार्य कलापों और समुन्नय की प्रतिस्पर्धा का सरल मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

विद्यालय समाज द्वारा स्थापित एक ऐसी संस्था है जहां देश के भावी नागरिक और कर्णधारों ... विकास करके आदर्श नागरिक बनाया जाता है। बालकों में सर्वांगीण विकास करके आदर्श नागरिक तैयार करने का कार्य शालाओं में अध्यापक करते हैं। शाला में विभिन्न विचार धाराओं, मूल्यों, आदतों व्यक्तित्व व प्रतिभा के अध्यापक कार्य रत होते हैं ... तथा संतुलित नीति का निर्धारण करते हुए उनके सर्वांगीण विकास हेतु नीति प्रधानाध्यापक द्वारा बनाई जाती है ताकि भिन्न-भिन्न अध्यापकों की स्वेच्छा अनुसार विकास न हो सके और अध्यापकों के लिए पूर्व में एक निश्चित मार्ग का अनुसरण करते हुए सामूहिक रूप से बालकों का सर्वांगीण विकास करने हेतु पर्यावरण प्रदान करने का सफल प्रयास किया जा सके। शाला में सामाजिक वातावरण बनाते हुए राष्ट्रीय उद्देश्यों के अनुरूप शाला का सभी क्षेत्रों में अनुशासनमय वातावरण बनाते हुए शैक्षिक नेता का कार्य सम्पन्न करता है, इसलिए उसे अध्यापकों का मुखिया या प्रधानाध्यापक कहते हैं। सेना के नेता अथवा राजनैतिक लोक नेता के पद से यह नेतृत्व भिन्न है। सेना के नेता का नेतृत्व हिंसा और दण्ड के आधार पर अवलम्बित है तो राजनीति के नेता का अपने अनुयायियों की संख्या के आधार पर, शाला के नेतृत्व के पास ये दोनों ही आधार अनुपस्थित हैं और यदि उपस्थित भी हों तो उनका प्रयोग खतरे से भरा हुआ है। साथ ही प्रधानाध्यापक के उत्तरदायित्व कम नहीं है। प्रधानाध्यापक को अपने सहयोगियों का नेतृत्व करना पड़ता है, एवं सहयोगी जिसमें अधिकांश तो शायद सिद्ध योग्यता में उसी के समकक्ष हों। इधर उसे उन शिक्षार्थियों का नेतृत्व करना होता है जिनके पास अभी कोई दृढ़ संस्कार नहीं परन्तु जिनके प्रसंग में यह डर बना रहता है कि कहीं उन पर अनुचित संस्कार न पड़ जाय।

अकेले प्रधानाध्यापक को अपने कर्तव्य निभाने में पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, पड़ेगा। सामूहिक रूप से यदि प्रत्येक सहयोगी शाला के प्रति अपने उत्तरदायित्व समझकर गौरव का अनुभव करते हैं तो अधिक हितकारी स्थिति बन जाती है। श्रेष्ठ नेतृत्व का यही लक्षण है।

जिस प्रकार के व्यक्तित्व का प्रधानाध्यापक होगा, उसी के अनुरूप शाला का वातावरण बनता है। शाला की उन्नति व अवनति उसी की शैक्षिक योग्यता, कार्य

क्षमता तथा अनुभव पर ही निर्भर करता है। प्रधानाध्यापक का व्यक्तित्व प्रभावशाली उत्प्रेरणादायक व अनुकरणीय होने पर ही शाला की उन्नति व शैक्षिक उन्नयन हो पायेगा अन्यथा शाला गर्त मे चली जायेगी। डा सी जीवनायकम ने ठीक ही कहा है "अच्छे अथवा बुरे प्रधानाध्यापक के अनुसार विद्यालय उन्नति अथवा अवनति प्राप्त करते है। महान् प्रधानाध्यापक महान् विद्यालय को जन्म देते हैं।" अत असफल प्रधानाध्यापक केवल शाला की ही अवनति नही करता बल्कि भावी पीढी जो कक्षाओ मे अध्ययनरत है उसे भी परोक्ष-अपरोक्ष रूप से हानि पहुचाता है, और उनका भविष्य उज्जवल होने की बजाय अधकारमय हो जाता है। यही शैक्षिक उन्नयन व प्रशासन की धुरी होता है। वह शाला का हृदय होता है। जिस प्रकार हृदय कार्य सुचारु रूप से नहीं करने पर असफल होने की स्थिति मे मानव शरीर माटी रह जाता है ठीक इसी प्रकार प्रधानाध्यापक शाला को गर्त मे ले जा सकता है। वह अच्छा सगठनकर्ता, सयोजक पर्यवेक्षक, निर्देशक, मित्र, दार्शनिक व परामर्शदाता है। प्रधानाध्यापक केवल रोब, डर, भय प्रदर्शित करने के आधार पर मुख्य नही बल्कि अध्यापन की दृष्टि से श्रेष्ठ होता है। देश विदेशो म होने वाले गवेषण, अनुसधान के बारे मे ज्ञान रखते हुए अध्यापको का शैक्षिक निर्देशन कार्य मे उन्नयन करने मे सहयोगी सिद्ध हो सके। प्रधानाध्यापक के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर विचार करना तर्कसगत प्रतीत होता है।

प्रधानाध्यापक का विद्यालय मे स्थान एव महत्व:–

(The Place of Significance of The Headmaster in the School)

प्रधानाध्यापक सम्पूर्ण विद्यालय की प्रगति का प्रेरणा का स्त्रोत है। विद्यालय मे एकता बनाये रखने, विद्यालय की विभिन्न गतिविधियो मे सतुलन बनाये रखने, विद्यालय परम्पराओं को जीवित बनाये रखने तथा विद्यालय को प्रगति के मार्ग पर ले जाने के लिए प्रधानाध्यापक एक प्रमुख शक्ति के रूप मे कार्य करता है। विद्यालय की समस्त क्रियाएँ उसके चारो ओर चक्कर काटती है। समाज को विद्यालय मे तथा विद्यालय को समाज में ले जाने का कार्य प्रधानाध्यापक द्वारा ही सम्पन्न करता है। पी सी रेन के शब्दो मे "घडी में जो मुख्य स्प्रिंग का काम है तथा मशीन म जो पहिये का स्थान है अथवा पानी के जहाज मे जो इजन का स्थान है विद्यालय मे वही स्थान प्रधानाध्यापक का है। "सस्था कोई अच्छी या बुरी नहीं होती, प्रधानाध्यापक बुरा है तो सस्था बुरी हो जाती है। महान् प्रधानाध्यापक से ही महान् सस्था होती है न कि विशाल भवन से।"

1 रेन पी सी पेज/3

2. डाबर एस के "सकेन्डरी स्कूल एडमिनिस्ट्रेशन" पेज 51

जिस प्रकार किसी कारखाने के अच्छे संचालन के लिए सुयोग्य व्यवस्थापक का महत्व है जो सभी भौतिक व मानवीय साधनों में सन्तुलन बनाये रखता है तथा सम्पूर्ण विद्यार्थियों के प्रगतिमय विकास को विश्वस्त बनाता है। स्कूल में समस्त कार्य की वह धुरी है। उसी के चारों ओर समस्त कार्य का चक्र घूमता है। इसीलिए तो प्रधानाध्यापक को स्कूल में वही स्थान दिया है जो मशीन में उसे चलाने वाले चक्र का है अथवा इंजिन का जहाज में है। विद्यालय का कुशल संचालन, प्रशासन की प्रबन्ध-पटुता पर निर्भर है। उसमें प्रशासन क्षमता के साथ समायोजन क्षमता का होना आवश्यक है अन्यथा अधिकांश शिक्षा योजनाएं एवं शैक्षिक प्रयास विफल होकर केवल कल्पना मात्र रह जायेगी। एस एन मुकर्जी ने उस प्राणी को संज्ञा दी है जिससे सम्पूर्ण विद्यालय में गति बनी रहती है। उसका पद उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि खेल के मैदान में किसी टीम के कप्तान का युद्ध के मैदान में सेना के सेनापति अथवा जहाज में ड्राईवर का स्थान है। यदि हम विद्यालय की उपमा एक हवाई जहाज से दें तो विद्यालय के विद्यार्थियों को जहाज के यात्री अध्यापकों को जहाज के इंजन से उपमा दी जा सकती है और प्रधानाध्यापक की उपमा उस जहाज के पाइलट से देना युक्ति युक्त है। जिस प्रकार जहाज के यात्रियों का विशिष्ट स्थान तक पहुंचाने के लिए इंजन जहाज को खींचता है और उसका पाइलट उस जहाज के इंजन की गतिविधियों पर नियन्त्रण रखता हुआ अत्यन्त कुशल उसके यात्रियों को गन्तव्य स्थान पर पहुंचाता है, उसी प्रकार एक सफल प्रधानाध्यापक भी अपने अध्यापकों के कार्यों पर अपनी योग्यता और कार्य क्षमता के बल पर नियन्त्रण रखता हुआ विद्यालय के छात्रों का सर्वांगीण विकास करने में सहायता करता है।

प्रधानाध्यापक पद के महत्व का वर्णन कुछ शिक्षाशास्त्रियों ने इस प्रकार किया है-

1) उसी पर विद्यालय का सुसंचालन निर्भर है। — माध्यमिक शिक्षा आयोग

2) शिक्षा क्रिया में स्कूल के मुख्याध्यापक अथवा प्रिंसिपल का विशेष महत्व है। स्कूल पद्धति की सफलता उसी की कलापूर्ण एवं सन्तुलनात्मक योग्यता पर निर्भर करता है।
— डा जसवन्तसिंह

3) स्कूल की कोई भी योजना तब तक उपादेयता ग्रहण नहीं कर सकती जब तक कि उसका निर्माण दूरदर्शिता तथा योग्यता के आधार पर न किया गया हो। प्रधानाध्यापक को ही दूरदर्शिता एवं योग्यता से कार्य करने का श्रेय दिया जा सकता है।
—केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति

4) प्रधानाध्यापक महान विद्यालयों का निर्माण करते हैं तथा विद्यालय प्रसिद्धि को प्राप्त होते हैं अथवा अन्धकार के गर्त में विलीन होते हैं जब महानतम अथवा निम्नतम प्रधानाध्यापक उनके अध्यक्ष होते हैं।

— पी सी रेन

5) प्रधानाध्यापक विद्यालय का प्राण है। प्रधानाध्यापक पाठशाला के विभिन्न अंगों को एक सूत्र में बांध कर संगठित करने वाला व्यक्ति है। प्रधानाध्यापक विद्यालय के बाह्य अथवा आंतरिक प्रशासन के मध्य एक कड़ी है।

—डा एस एन मुकर्जी

6) प्रधानाध्यापक किसी जहाज के कप्तान की भांति स्कूल में अपना मुख्य स्थान रखता है। —पी सी रेन

7) प्रधानाध्यापक का व्यक्तित्व ही स्कूल के चारों ओर प्रतिबिम्बित होता है। स्कूल लाख है और प्रधानाध्यापक उस पर लगाई जाने वाली मुहर है।

—पी सी रेन

8) प्रधानाध्यापक की विद्यालय में स्थिति वही है जो सेना में सेनापति अथवा नाव पर नाविक की होती है। प्रधानाध्यापक विद्यालय प्रशासन में गुम्बद की आधार रूपी पत्थर होता है। —डा. एस एन मुकर्जी

9) अच्छे अथवा बुरे प्रधानाध्यापक के अनुसार विद्यालय उन्नति अथवा अवनति प्राप्त करते हैं। महान् प्रधानाध्यापक महान् विद्यालय को जन्म देते हैं।

—डा सी जीवनायकम

10) वह एक किशोर न्यायालय का न्यायाधीश है जिसकी अदालत में केवल दोषी ही नहीं वरन निर्दोष भी आते हैं। वह एक प्रवर्तक है जिसे अपने विद्यालय के भविष्य की कल्पना करनी चाहिए तथा जनता को अपनी योजना के अनुरूप बदलना चाहिए वह प्रत्येक मां बाप के लिए सामाजिक चिकित्सक है जिनके स्वेच्छाचारी बच्चे की देख रेख की आवश्यकता है, वह प्रत्येक छात्र के लिए मित्र है और सभी दुखी घरों के लिए भी मित्र, उसकी शक्ति, उसके कार्य, यहां तक कि उसके पुरस्कारों को किसी भी भौतिक पैमाने से नापा नहीं जा सकता।

—बिल फ्रेंच

आधुनिक शिक्षा उद्देश्यों की पूर्ति इन्सान प्रधानाध्यापक के माध्यम से ही कर सकते है क्योंकि उसका कार्यक्षेत्र व जिम्मेदारी केवल कक्षा के कमरों में पाठ्यक्रम पूरा करवाना मात्र ही नहीं है बल्कि सम्पूर्ण समाज व राष्ट्र की आकांक्षाओं के अनुरूप छात्रों में चारित्रिक गुणों को प्राप्त कर देश की प्रजातांत्रिक व्यवस्था की सफलता हेतु नागरिक तैयार करने के साथ-साथ समाज के छोटे रूप में विद्यालय का विकास करना है। सारे समाज, राष्ट्र, अभिभावक, अध्यापक बालकों के प्रति अत्यधिक जिम्मेदारियां हैं, जिनको उसे निबाह करना है। यदि राजनीति शास्त्रवेत्ता की भाषा में यह कहा जाए

कि 'वह स्कूल रुपी आकाश मे सूर्य पिण्ड है जिसके चारो ओर ग्रह उपग्रह घूमते हैं तो अतिश्योक्ति नही होगी ।'[1] प्रधानाध्यापक स्कूल मे नेता ही नही है, बल्कि वह मशीन को चलाने वाली शक्ति है और मशीन के उसी भागो को उसी शक्ति से शक्ति प्राप्त होनी है ।

प्रधानाध्यापक का शाला मे महत्व विभिन्न विद्वानो के कथन से स्पष्ट है क्योकि स्कूल का प्रत्येक कार्य उसके आदर्शो के अनुरूप ही प्रतिष्ठा प्राप्त करता है । पाठ्यक्रम, शिक्षाक्रम, दैनिक कार्यक्रम, सामान्य वातावरण व स्कूल का सर्वसाधारण व्यवहार उसी के द्वारा निर्मित साचे मे ढलकर अपना स्वरुप धारण करता है । इग्लैण्ड मे कई ऐसे स्कूल है जिनको इसी आधार पर प्रधानाध्यापक के नाम पर नामकरण किया गया है, जैसे श्री हैरो (Harrow) का स्कूल तथा रगबी (Rugby) का स्कूल ।

अत हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि समाज, अभिभावक, शिक्षक, बालक व राष्ट्र शाला का मापदण्ड प्रधानाध्यापक पर ही करते हैं । योग्य अध्यापक सदैव बालको व समाज का प्रेरणा के स्त्रोत का कार्य करते हैं ।

विद्यालय सगठन एव प्रधानाध्यापक के गुण –अ) प्रशासनिक ब) व्यक्तिगत स) व्यवसायिक

विद्यालय सगठन का सम्बन्ध शैक्षणिक प्रक्रिया के सचालन मे आवश्यक साधनो तथा सामग्री के एकत्रित करने तथा शिक्षा के मानवीय तथा भौतिक तत्वो के मध्य समन्वय स्थापित करते हुए विभिन्न पहलुओ मे सगठन स्थापित करता है। सगठन एक ढाचा है जिसमे शिक्षा के विभिन्न पहलुओ, साधनो तथा बातो का समन्वय किया जाता है । उत्तम सगठन ही प्रशासन सफल बनाता है अत प्रधान का एक उत्तम सगठनकर्ता होने के साथ साथ कुशल प्रशासक भी होना चाहिए तभी विद्यालय की शिक्षा प्रक्रिया अपने लक्ष्यो को प्राप्त करने मे सफल हो सकेगी[3]

प्रशासक के रुप मे जिन गुणो की अपेक्षा हम करते है वे है –

(1) विद्यालय मे नेतृत्व प्रदान करना – शाला परिवार का नेतृत्व प्रधानाध्यापक के द्वारा ही प्रदान किया जाता है । डा एम एन मुखर्जी ने नेतृत्व प्रदान करने के लिए कहा है– अपनी सामान्य विद्वता के कारण अपने साथियो के समान का पात्र हो, अपने अध्यापक वर्ग का नेता तथा योग्य व्यवस्थापक हो ।" अर्थात

---

1 ब्रिटन के प्रधानमत्री के सम्बन्ध मे कहा गया है "He is the solar orb round which Pianats move"

2 What a loss to England and America as well if there has been no Arrnold the great headmaster of Rugby ' (Sir John Adams)

3 शिक्षा प्रशासन– कुदेशिया– पेज/11–12

उसकी वाय। शनाता तथा ज्ञान से अध्यापक व कर्मचारी प्रभावित हो। प्रधाना ध्यापक को चाहिए वह अपने सहयोगियो की योग्यता, क्षमता तथा अनुभव का स्वागत करे ताकि उसे प्रजातान्त्रिक समझकर नेतृत्व स्वीकार करते रहेगे।

शाला मे नेतत्व प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो के आधार पर होना चाहिए क्योकि प्राय उनके सहयोगी उनकी शैक्षणिक योग्यता एव अनुभवी होते हैं। अध्यापको की मनोवृत्तियो को समझने की क्षमता होनी चाहिए। प्रो ई पी कुबली ने प्र प्र केवल प्रशासक होने के कारण ही नेता नही है। उसके नेतृत्व प्रधान अग है– तकशक्ति, प्रगाढ ज्ञान तथा अदम्य उत्साह।" आधुनिक भारतीय परिस्थितियो मे मानवीय गुणो जैसे सहानुभूति, प्रेम, सहयोग, आत्म विश्वास, सामाजिकता, सगठन शक्ति आदि गुणो का होना आवश्यक है जिससे अपने सहयोगियो, अभिभावको एव समाज के अन्य लोगो को अपने कतव्यो के प्रति सजग करके शिक्षा के हित को अधिक लाभ पहुचा सकता है।

(2) चरित्रवान – विद्यालय की उपयुक्त सक्रियता प्रधानाध्यक के प्रभावशाली चरित्र होने पर ही सभी के द्वारा सम्मान प्राप्त कर सकेगा वह विचारक, दृढ शक्ति और निर्धारित सिद्धातो व आदर्शो को पूर्ण रुप से पालन करने वाला जिससे शाला परिवार के सभी सदस्यो पर अमिट छाप रहेगी अन्यथा वह विद्या- मे स्वच्छ वातावरण सृजन करने मे विफल रहेगा चरित्रवान प्रधान अध्यापक बहुत सी समस्याओ को अपने व्यक्तिगत प्रभाव से समाधान करते हुए पूव मे निधारित उद्देश्यो की पूर्ति करने म सफल सिद्ध हो जाता है

(3) सामजस्य स्थापित करने की योग्यता – सामान्यत देखा गया ह कि आजकल शालाओ, अध्यापको व बालको मे गुटबन्दी क्षेत्र, जाति, व अन्य कारणो स हो जाती ह जिससे शैक्षिक उद्देश्यो की पूर्ति नही हो पाती अत प्रधानाध्यापक शिक्षको तथा शिक्षार्थियो के साथ स्वय को, शिक्षकों को शिक्षार्थियो के साथ तथा शिक्षकों को पारस्परिक रुप मे समायोजित रुप मे रखने का सफल प्रयास करे। वह विद्यालय के छोटे स छोटे तथा बडे से बडे सभी कमचारियो से व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाते हुए उनकी समस्याओ मे सक्रिय सहयोग प्रदान करे। इस सम्बन्ध मे सुल्तान माहीउद्दीन ने लिखा है– "प्रधानाध्यापक नेता के रुप मे अपने सहयोगी अध्यापको को इस बात से परिचित कराने की क्षमता रखे कि शाला की कोई भी समस्या केवल उनकी समस्या नही है, अपितु उन सब की है।' आगे फिर प्रो0

1 Public School Adminteration- EPCubberly

मोहीउद्दीन कहते है कि "प्रधानाध्यापक की प्रतिष्ठा का निवास वास्तव में द्वारा छात्रों के प्रति सहानुभूति और कर्तव्यनिष्ठा में ही निहित है।" समायोजित विद्यालय ही निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर होते हैं। जब सहानुभूति से परिपूर्ण जैसा रूप विद्यालय में हो जाता है तो वह मुखिया की तरह विद्यालय के सदस्यों में एकता, विश्वास तथा निष्ठा जगाने में सफल रहता है।

(4) लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण वालों – प्रत्येक कार्य में सहयोगी अध्यापकों का मत भी ले लेना चाहिए और उनकी भावनाओं तथा विचारों का आदर करना चाहिए। स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व तथा न्यायप्रियता जैसे प्रजातान्त्रिक गुणों, सिद्धान्तों पर विद्यालय का संगठन व संचालन करें। उसे समाज की आवश्यकताओं, मूल्य, धारणाओं तथा परम्पराओं का ज्ञान हो ताकि समाज व शाला को सामान्तर रूप से प्रगति करवाने में सफल हो सके। आज बदलते हुए परिवेश में विद्यालय और समाज में तालमेल बैठाया जाय, यह प्रजातान्त्रिक ढंग से ही पूरा हो सकता है। उसके लिए उसे उत्तरदायित्व की सहभागिता, समानता, स्वतन्त्रता, सहकारिता न्यायप्रियता, व्यक्तिगत विशेषताओं को मान्यता एवं प्रोत्साहन, नतर्थ तथा अध्यापक, समाज एवं उच्च अधिकारियो से सहयोग भाव से कार्य करना चाहिये।

(5) कुशल प्रशासनिक क्षमताएँ – शाला में उपलब्ध भौतिक व मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग शाला के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु करना। विद्यालय की उन्नति उसकी कुशलता पर निर्भर करती है। उसे विभिन्न बातों में समन्वय स्थापित करते हुए वित्तीय व्यवस्था बनाये रखने में दक्ष होना चाहिए। अच्छे प्रशासक में एक से अच्छे बजट की तैयारी, अच्छा संगठनकर्ता तथा अध्यापक, अभिभावकों व छात्रों से अच्छे पारस्परिक सम्बन्धों का विकास करना चाहिये।

(6) दूसरो को प्रेरणा प्रदान करने की क्षमता – प्रधानाध्यापक में ऐसी क्षमता होनी चाहिए कि वह अपने साथ कार्यरत अध्यापकों व कर्मचारियों का मार्गदर्शन व परामर्श देकर पूर्व में निर्धारित शैक्षिक योजना का क्रियान्वयन रूप देने की प्रेरणा दे सके। वह नेतामात्र (अध्यापक) का नेता की स्थिति में होने के कारण अपने विषय का प्रकाण्ड विद्वान होने के साथ सामान्य ज्ञान सभी विषयों का होना ही चाहिए जिससे वे अध्यापकों के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हो सकें। शाला के भौतिक व मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग करवाने की प्रेरणा ही उसका प्रमुख उद्देश्य होता है ताकि शाला का शैक्षिक उन्नयन के साथ-साथ समाज की प्रगति के लिए सफल प्रयास कर सके। प्रो. ...लिखते हैं "यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि छात्र-छात्राऐं प्रधानाध्यापक को एक ऐसे आदर्श व्यक्ति के

रूप में देखते हैं जो अपने ज्ञान तथा बुद्धि कौशल में साधारण व्यक्तियों से बहुत आगे है।"

(7) **मानवीय सम्बन्ध करने की क्षमता** – प्रधानाध्यापक विद्यालय और समाज के मध्य, शिक्षक व विद्यार्थी के मध्य, शिक्षक एवं शिक्षक के मध्य, छात्र–छात्र के मध्य अभिभावकों व शाला प्रशासन के मध्य सन्तुलित व मधुर सम्बन्धों का विकास मानवीय आधार करने की सफल चेष्टा वांछित है अन्यथा शाला में सामाजिक व सौहार्दपूर्ण वातावरण नहीं बन पायगा। जब मानवीय गुणों का विकास नहीं हो पायगा तो स्वाभाविक है कि व्यक्तिगत, विद्यालयीय, सामाजिक, अथवा तथा भिन्न-भिन्न समस्याओं का स्थाई समाधान करने में असफल रहेगा। शिक्षा प्रशासन का मूल आधार 'मानवीय' को दृष्टि में रखकर ही नियमों व कानूनों की स्थापना करना ही हितकर है।

(8) **व्यवसायिक निपुणता एवं विद्वता** –प्रजातान्त्रिक ढंग से विद्यालय के उद्देश्यों व उनकी प्राप्ति के साधनों का निर्धारण करने के लिए आदर्शों का ज्ञान रखते हुए दूसरों के सम्मुख उदाहरण प्रस्तुत करे। शिक्षा जगत में नवीन परिवर्तन शिक्षण–विधियां,मूल्यांकन आदि में निरन्तर उन्नयन हो रहा है। वह अपने में व्यवसायिक निपुर्णता पैदा करने हेतु शिक्षा की सभी तरह की प्रक्रिया से अवगत होने पर ही अपने साथी अध्यापकों व छात्रों के उन्नयन में सहयोगी सिद्ध हो सकेगा। वह एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक होना चाहिए जिससे शिक्षा की परिस्थितियों के अनुकूल उचित शिक्षण विधियों का चयन करकर विषयवस्तु का बालकों तक पहुंचाने पाठ्यक्रम निर्धारण हेतु सिद्धान्तों को अपनाने उपयुक्त शिक्षण विधियों को क्रियान्वित रूप देने की दक्षता होनी आवश्यक है। वह अपने कर्तव्यों व उत्तरदायित्वों का व्यवसायिक दक्षता के अभाव में पूरी तरह निर्वाह नहीं कर पाता चाहे व्यक्तिगत हो, सामाजिक हो प्रशासनिक हो या छात्रों से सम्बन्धित हो।

आज बदलते हुए परिप्रेक्ष में प्रधानाध्यापक केवल विद्यालय तक ही उसका क्षेत्र सीमित नहीं होकर सारा समाज है। उसकी योग्यता का परोक्ष व अपरोक्षरूप से *समाज पर भी प्रभाव पड़ेगा। उसकी कथनी व करनी में भेद न होने, वास्तविक रूप* से प्रकाण्ड विद्वान होने पर ही समाज को अनुकरण करने हेतु उत्प्रेरित कर पायगा।

(9) **अध्यापकों में संगठित रखने की क्षमता** – अध्यापकगण परस्पर सौहार्दपूर्ण वातावरण न होने से सामाजिक स्थिति शाला में नहीं बन पायेगी जिससे विद्यालय में ? ? कार्यक्रमों का प्रभावशाली क्रियान्वित रूप से पालन नहीं होगा, अध्यापक कुशलतापूर्वक कर्तव्यों को एकजुट न होने पर निभा नहीं सकेंगे, शाला में सहगामी

प्रक्रिया के माध्यम से सर्वांगीण विकास के कार्यों में बाधा आ सकती है। अत प्रधानाध्यापक म ऐसी क्षमता होनी चाहिए कि शाला परिवार के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित करने मे सफल सिद्ध हो सके।

(10) अध्यापकों के मध्य कार्य वितरण करने की योग्यता – सामान्यत प्रधानाध्यापक म कार्य वितरण का लेकर शाला में द्वन्द्व पैदा होता है। कई अध्यापक कार्य स लद जाते तो कुछ कार्य–मुक्त होकर मौज करते हैं जिससे असन्तोष पैदा होता है। तो कहीं योग्यता, रुचियों, आदतों, अभिरुचियों व क्षमताओं आदि को ताक में रखकर कार्य आवटन कर दिया जाता है या व्यक्तिगत विभिन्नता के सिद्धान्त को दृष्टि म नहीं रखा जाने पर शाला अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकता। अत कार्य वितरण प्रजातान्त्रिक ढ ग से किया जाय जिससे वे उसे स्व–निर्मित समझ कर हृदय से सहयोगी सिद्ध हो सकें। कार्य क्षमता का दृष्टि में रखकर निर्वाह करने का उत्तरदायित्व उन्हीं पर छोड देना चाहिए। किसी कारणवश कार्य सम्पन्न होने में असुविधा होने पर उत्प्रेरित कर और सम्पूर्ण करवाने में मित्र के रूप में सक्रिय सहयोग प्रदान करे।

प्रधानाध्यापक का अध्यापकों के बीच आवटित कार्य का निरीक्षण व पर्यवेक्षण करते रहना चाहिए जो गलती देखने के दृष्टिकोण से न होकर रचनात्मक सुझावों के द्वारा उन्नयन ही ध्येय होना चाहिए।

प्रशासक के रूप मे प्रधानाध्यापक में निम्नांकित व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों का होना आवश्यक है' –

1 विद्यालय की प्रगति हेतु उचित एव स्वतन्त्र निर्णय लेने की क्षमता।

2 विद्यालय मे चारित्रिक भावना को सचारित करने की क्षमता।

3 विषय से सम्बन्धित मौलिकता तथा कठिन कार्यों का करने हेतु पहल कदमी।

4 निर्धारित कार्यक्रमों में निष्ठा तथा उसकी सफलता हेतु सक्रिय रूप स कार्य करने की क्षमता।

5 कर्तव्यपरायणता, आत्म–नियन्त्रण, आत्म–सयम, आत्म विश्वासी, आत्म आलोचक होने के गुण।

6 दृढ इच्छा वाला, वक्ता तथा सगठनकर्ता के गुण।

डा उमेश कुदेशिया शिक्षा प्रशासन पेज/136–137

7 विभिन्न वर्गा, व्यक्तियो तथा समूहो मे सामजस्य स्थापित करने की क्षमता ।

8 विद्यालय को समाज के निकट लाने की क्षमता ।

9 शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा सिद्धात तथा शैक्षिक विधियो का ज्ञाता ।

10 निरीक्षण एव पर्यवेक्षण करने सम्बन्धी बातो का ज्ञान होना ।

11 किसी प्रकरण को सुलझाने अथवा प्रस्तावो एव कार्यक्रमो को सचालित करने में बगैर किसी भय के ।

12 अनुशासन एव कार्यकारी (एक्जीक्यूटिव) क्षमता एव नेतृत्व शक्ति ।

13 आशावादी तथा दूसरो को प्रेरित कर सकने की क्षमता ।

14 दूरदर्शिता (फोरसाइट) तथा दूसरो में आत्म विश्वास उत्पन्न करने वाला व्यक्तित्व

15 अवलोकन शक्ति तथा परिस्थितियो के अनुकूल उचित निर्णय लेने की शक्ति ।

विद्यालय सगठन एव प्रधानाध्यापक तथा उसके गुण –

1 व्यवसायिक ज्ञान – यदि अन्धा का नेता अन्धा होने की स्थिति विकटमय बन जाती है उसी प्रकार प्रधानाध्यापक व्यवसायिक ज्ञान के अभाव मे सही नेतृत्व छात्र व अध्यापको को देने की स्थिति में नही हो सकता । अत उसे शिक्षा प्रणालियो, नई प्रविधियो, शिक्षा दर्शन, इतिहास एव मनोविज्ञान आदि प्रक्रियाओ से पूर्णतया अवगत रहना चाहिए । अपने व्यवसाय को प्रतिष्ठित बनाने हेतु ऐतिहासिक, सामाजिक राजनैतिक, सास्कृतिक एव आर्थिक तत्वो का ज्ञान वाछित है क्योकि ये तत्व वर्तमान शिक्षा सगठन व प्रशासन को प्रभावित करता है । इसके साथ ही साथ उसे शिक्षा–सहिता (Education code) विभागीय नियम, अधिनियम, आज्ञाओ, आदेशो बोर्ड ऑफ सेकेन्डरी एज्यूकेशन के नियमो की जानकारी होनी चाहिए ।

2 विद्वान – प्रधानाध्यापक सभी अध्यापको व छात्रो का नेता होता है अत शाला के सम्पूर्ण वर्ग उसकी विद्वता के कारण ही आत्मा से आदर करते हैं । अत अपने अनुभव व अनुकरणीय विद्वता के कारण ही अन्य अध्यापको के लिए उदाहरण प्रस्तुत करने वाला सिद्ध हो सकता है । सदैव अध्ययनशील व नवीन परिवर्तनो को अपनाने की क्षमता होगी तब ही अध्यापको व छात्रो के उन्नयन करने में सफल होगा ।

3 निष्ठावान – व्यवसाय म सफलता की पूजी निष्ठा ही है । अत अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठा तथा कर्तव्यो का सफलतापूर्वक निर्वाह करते रहना चाहिए सफल नेतृत्व निष्ठा के बिना सम्भव नही है । प्रो जसवन्तसिंह के विचार है 'कोई भी सर्वोच्च गरिमामय स्थिति में नही हो सकता जब तक अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठावान नही है । जब प्रधानाध्यापक लोक प्रशासन पद की आकाक्षा करता है तो स्पष्ट है उसमे

अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठा नही है[1]। जिससे नेतृत्व देन म असफल रहेगा जो उस के उज्जवल भविष्य को प्रभावित कर बगैर नही रहेगा जो सस्था तथा समाज का पूर्ति न होन वाली क्षति पहुचाना है । 1 अत उसे अपन कार्यालय व सस्था म प्यार करना चाहे अधिक श्रम भी क्या न देना पडे।"2

4 आधुनिक शिक्षा पद्धतियो का ज्ञान – प्रधान अध्यापक को सदैव सृजनात्मक चिन्तन व नियोजन हुतु समय देना चाहिए। एक भी रोज ऐसा न जाने पाये कि वह नये विचारो नयी विधाएँ व प्रविधियो के बारे मे चिन्तन न करे। प्रशन अधिकारो की सीमितता व लाल फीताशाही के कारण नये अच्छे कार्यो को बन्द नही करना चाहिए। शिक्षा अधिकारी कमी कमी को खोजने का आदि नही होना अत परिस्थितिया के अनुसार काय सम्पन्न करने म भय नहीं करना चाहिए। नय व उपयोगी शिक्षण पद्धति व प्रविधि को उपयोगिता के आधार पर अन्य सस्थाओ में अपनाय जाने की प्रतिक्षा किए बगैर प्रारम्भ कर देना चाहिए। परम्परागत पद्धतिया व अभ्यास प्रगति म बाधक हो सकती है 3

5 मनोविज्ञान व दर्शन का ज्ञाता – प्रधानाध्यापक अध्यापको व छात्रो के हृदय को जीतने की क्षमता मनोविज्ञान के गहरे ज्ञान से ही सम्भव है सभी अध्यापक व छात्र एक ही तरह की बुद्धि के नही होते। कभी ऐसे व्यक्तियो की प्रशंसा करनी पडती है चाहे पात्र होती नही तो कभी–कभी केवल सावधानी व सहानुभूति पूर्ण सुनने मात्र से उनका तूफान शान्त हो जाता है अत मनोविज्ञान का ज्ञाता हो।

डा जसवन्तसिंह ने कहा है– "आधुनिक शिक्षा सम्बन्धी विचारधाराओ एव अवधारणा के अध्ययन पर आधारित प्रधानाध्यापक की सन्तुलित दार्शनिकता निर्भर होनी चाहिए। 4

6 अध्ययनशील – प्रधानाध्यापक के अध्ययशील होने में अन्य अध्यापक व छात्र भी अध्ययनरत रहग। उसे अच्छे पुस्तकालय का सगठन करवाने की व्यवस्था में रुचि लेनी चाहिए। उसे अपनी जानकारी व्यवसाय के सम्बन्ध मे ताजा रखने के लिए ज्ञान को बढाते रहना चाहिए। 'उसे कठिन परिश्रम कर अपने ज्ञान का तरोताजा बनाने स व्यवसायिक क्षमता बढेगी और सदव शिक्षा पर विचार विमर्श करते रहना

1 जसवन्तसिंह– सफल प्रधानाध्यापक पेज/43–44
2 " " पेज/45
3 " " 45
4 " " 44
5 " " 45

चाहिए। "अध्यापक प्र.अ. पद पर नियुक्ति मात्र से उसे उच्च नहीं मानते बल्कि उच्च योग्यता, कार्यक्षमता एवं चरित्रवान होने पर आत्मा से अपना प्रधान मानते हैं।"

7 प्रबन्ध योग्यता –प्रधानाध्यापक मे सहायक अध्यापको, कर्लों, छात्रो तथा कर्मचारियो आदि की सेवाओ को पूर्ण उपयोगी करने की क्षमता होनी चाहिए। डर,भय प्रलोभन से सदैव काय नहीं लिया जा सकता। सभी को अपने उत्तरदायित्व निवाह करन को अपना धम समझने लगे ऐसी अभिरुचियो का विकास किया जाना चाहिए।

8 शिक्षा राजनीतिज्ञ के रुप मे – राजनीति का अर्थ कुशलता व कौशल से अन्यो के मुकाबले मे प्राप्त करन से है उन्हे अपने उद्देश्य के प्राप्त करने मे सहयोगियो के साथ उच्च स्तरीय राजनैतिज्ञ की तरह उद्देश्य प्राप्त करने मे लिए सहयोग देना चाहिए।

9 समाज की आवश्यकताओं के अनुरुप हो – कक्षा कक्ष मे देश के भावी नागरिक तैयार हो रहे है और कालान्तर मे वे समाज मे प्रविष्टि करेंगे तो शाला द्वारा प्रदत्त ज्ञान सामाजिक आकाक्षाओं के अनुरुप होने पर ही अच्छा समायोजन कर पायेंगे। इसीलिए शाला को सामाजिक सस्था कहा गया है। अत प्रधानाध्यापक को छात्रो की सामाजिक परिस्थितियो के गुणा और आवश्यकताओ का अध्ययन करते रहना चाहिए क्योकि हमारी शाला रुपी फैक्ट्री का उत्पादन समाज मे ही उपयोग हेतु जाना है।

10 अधिकार व कर्त्तव्यो का ज्ञान – प्रधानाध्यापक को पूर्ण रुप से यह ज्ञान होना चाहिए कि उसके अधिकार क्या क्या है ? ताकि समय समय पर वह उन्हें प्रयोग मे ला सके। साथ ही उसे अपने कतव्यो का भी ज्ञान होना चाहिए, तभी वह अपने कतव्य पूर्ण कर सकता है विशेष रुप से उसे दफ्तर के काय भी पूण रुप से प्यार से करे

11 प्रभावी वक्ता –अध्यापको,छात्रो, अभिभावको के समक्ष भिन्न भिन्न अवसरो पर अभिभाषण करना पडता है। प्रधानाध्यापक वाक्पटु होने से श्रोतागण उसकी बात से प्रभावित होंगे और अपने विचारो के अनुकूल बनाने मे सफल सिद्ध हो सकेगा।

12 शिक्षण कला मे निपुणता – मूल रूप से प्रधानाध्यापक एक प्रखर अध्यापक ही होता है। अत उसे शिक्षण कला मे विशिष्टि दक्षता को प्राप्त करने का प्रयास भी करते रहना चाहिए। जब अध्यापको के शिक्षण काय का प्रवेक्षण करता है तो उससे आशा की जा सकती है कि वह भिन्न भिन्न विषयो की शिक्षण पद्धतिया के बारे म जानता है, तब ही अन्य अध्यापको को सजनात्मक परामश देने मे सफल हो सकेगा।

13 प्रगति पर नजर रखना —"अपने काय का वितरण तथा अधिकारो का उपयोग करने हेतु अधीनस्थ कर्मचारियो को सौपने के उपरान्त उसे शाला मे हो रहे भिन्न-2

कार्यों की प्रगति की भी ओर नजर रखनी चाहिए । वह शाला की प्रत्येक गतिविधि को दृष्टि म रखता है ।"

14 **अनुशासन स्थापित करना** —शाला मे आत्म अनुशासन स्थापित करने हेतु नपन प्रयास करने चाहिए। अनुशासन जीवन का अभिन्न अग बे एक म बन जाय, ऐसी अभिरुचियो का विकास करना । प्रधानाध्यापक आत्म नियन्त्रण स ही शाला का अनुशासन बन पायगा ।

15 **सुधार लाने में शीघ्रता नहीं** — प्रधानाध्यापक को किसी सुधार को लाने मे शीघ्रता नहीं करनी चाहिए । किसी भी तरह क सुधार लाने म पूव उन सभी परिस्थितियो को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए और यथासंभव अध्यापका, छात्रा और अभिभावका से वास्तव म परामर्श अवश्य कर लेना चाहिए।

विद्यालय सगठन एव प्रधानाध्यापक तथा उसके गुण -

वैज्ञानिक दृष्टिकोण – प्रधानाध्यापक को प्रगतिशील एव वैज्ञानिक दृष्टिकाण रखना चाहिए । उसे उचित ढग से वस्तुस्थिति का अवलोकन करना चाहिए, चाहे व्यक्तिगत दृष्टिकाण कैसा भी क्यो न हा उस पूर्वाग्रह स प्रभावित नहीं होना चाहिए । तथ्या के आधार पर निर्णय लेते हुए मजबूत ढग से समानीकरण किया जाना चाहिए ।

2 **उत्तम स्वास्थ्य** प्रधानाध्यापक इतने बडे उत्तरदायित्व को तभी उचित रूप म सम्पन्न कर सकता है जबकि वह मानसिक तथा शारीरिक रूप म स्वस्थ्य हो। बगैर अच्छे स्वास्थ्य वह प्रेरणादायक व स्फूर्तिशाली नहीं हो सकता। डा जसवन्तसिंह का कथन है कि "उसे सन्तुलित खान पान, विटामिनो का प्रयोग, पर्याप्त जलपान बुराइया का परित्याग तथा व्यायाम एव निरोग जीवन का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।"2

3 **अच्छी आदतें एव व्यक्तिगत जीवन की शुद्धता** - प्रधानाध्यापकमे आदश आदत होनी चाहिए। व्यक्तिगत जीवन का द्वन्द जितना घातक पाठशाला मे होता है, उतना अन्यत्र नहीं । यदि व्यक्तिगत जीवन अच्छा नही है तो उसकी कुशलता एव सफलता पर बुरा प्रभाव पडता है । व्यक्तिगत जीवन भी पूर्णतया शुद्ध होना चाहिए अन्यथा शाला परिवार पर ही नहीं बल्कि पूरे समाज पर भी बुरा प्रभाव पडेगा । सादा जीवन उच्च विचार को जीवन में उतारते हुए सदैव उच्च आदर्शो को नीति का आधार बनावे जिससे विद्यालय परिवार उनका अनुकरण कर सके ।

4 **उच्च चरित्र** - शिक्षण सस्थाओ का प्रमुख उद्देश्य अच्छे चरित्र का निर्माण करना है । यदि प्रधानाध्यापक बच्चो के सम्मुख उच्च चरित्रवान होकर आदश प्रस्तुत नही करता है तो छात्रा म चरित्र निर्माण एक कल्पना मात्र रह जायगी। प्रधानाध्यापक

उच्च चरित्र की अमिट छाप छात्रो पर डाले बगैर नही रह सकता। सत्यवादी तथा ईमानदार ही दमन से हृदय का जीत सकेगा। उसके चरित्र रूपी दीपक से सम्पूर्ण विद्यालय प्रकाशित होता है।

5 कार्यशील – जो प्रधानाध्यापक स्वय काय न कर दूसरा से कार्य करवाने पर दबाव डालते है व सफल नेतृत्व नही कर पाते। अत उसे सदैव अपने छात्रो एव सहयोगियो के समक्ष मेहनती उदाहरण प्रस्तुत करने का सफल प्रयास करना चाहिए।

6 नेतृत्व की क्षमता – सगठित समाज रुपी शाला का मुख्य सगठन व सचालनकर्ता प्रधानाध्यापक होता है, उसमे योग्य नेतृत्व क्षमता होनी आवश्यक है। उसे प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण को हृदयगम करते हुए शाला प्रशासन के प्रत्येक कार्य को सम्पन्न करना चाहिए।

7 प्रभावशाली व्यक्तित्व – उसका निष्कलक जीवन, सहानुभूति पूर्ण व्यवहार और दृढ निश्चयता का होना चाहिए। अपने सहयोगियो के साथ निरकुश तानाशाही का व्यवहार न रखकर, वास्तविक सहयोग का व्यवहार करना उसके लिए अपेक्षित है। अपने सहयोगियो की जरुरतो, उनकी कमजोरियो, उनकी असफलताओ, उनकी बेबसियो को समझन तथा उनके चरित्र की तह मे बैठ सकने की योग्यता जब तक उसमे न होगी वह उन्हे अपना न सकेगा। प्रधानाध्यापक का व्यक्तित्व प्रभावशाली नही होगा तो नवीन योजना अथवा मौलिक विचारो की कद्र नहीं होगी वह रूढ़िवादी न होकर 'प्रगतिशील दृष्टिकोण रखना चाहिए।" (सुल्तान मोहीउद्दीन) उसी प्रकार आर. ए सेम्ब भी लिखते है— 'प्रधानाध्यापक वही सफल हो सकता है जिसमें आत्म सयम, सहनशीलता, प्रेम दया कुशलता, दूरदर्शिता तथा मौलिक गुणो का समावेश हो।"

8 आत्म नियत्रण — चिडचिडेपन से व अनुनाहो को आवेश मे अध्यापक व छात्रो को सजा प्रधानाध्यापक द्वारा मिल जायेगी। समझा बुझाकर सभाषण कर लेना, प्रधनाध्यापक के हाथो मे एक ऐसा अमोघ अस्त्र है जो दुश्मनो को भी जीत लेता है। यह गुण पाठशाला के उद्दण्ड छात्रो को भी सज्जन बना देगा और सवत्र स्नेह का वातावरण प्रस्तुत करेगा इससे यह अभिप्रेत नही कि 'मनसि अन्यत्" और 'वचसि अन्यत्' की मिशाल प्रधानाध्यापक प्रस्तुत करे। पाठशाला की प्रेरणा की प्रतिनिधि होने और उस प्रेरणा को पाठशाला के समस्त सदस्यो मे फूक सके, भर सके, प्रवाहित कर सके।

9 सहानुभूति की भावना – प्रधानाध्यापक को अपने अध्यापक तथा छात्रो के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का पालन करना चाहिए। उसे अध्यापको को अपना सहयोगी मानकर चलना चाहिए, न कि सेवक। यदि किसी अध्यापक से भूल हो जाती है तो सुधारने के लिए उचित सलाह देकर आत्मीयता का भाव दिखाना उचित है। अच्छे

कार्य के लिए उसे सदा प्रोत्साहित करते रहना चाहिए । समय समय पर उसे अध्यापकों की व्यक्तिगत कठिनाईयो को दूर करने में सुझाव देना भी अच्छा रहेगा।'[1] छात्रों के साथ कठोर व्यवहार के बजाय पुत्रवत् व्यवहार कहीं लाभदायक सिद्ध होगा।

10 मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता –मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता पर ही उसकी सफलता निर्भर है क्योंकि यदि वह शिक्षक शिक्षक के बीच छात्र)छात्र के बीच, शिक्षक छात्र के बीच, शिक्षक कर्मचारियो के बीच, शिक्षक व अभिभावकों के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने में सफल न होने की स्थिति में शाला संचालन ठीक नहीं होगा।

11 सहयोगी की भावना — प्रधानाध्यापक को अध्यापक की सहायता से काम करना पड़ता है, इसी कारण उसे सहयोगपूर्ण भावना को साथ लेकर चलना चाहिए। अध्यापक व छात्रो के सहयोग से ही समस्त प्रबन्ध स्वत अच्छा चलेगा। किसी भी योजना का प्रारम्भ करने से पूर्व वास्तविक सहयोग प्राप्त करने का सफल प्रयास करने से योजनाएं स्वत ही गति पकड़ लेगी।

12' नि स्वार्थ भाव — प्रधानाध्यापक को ऐसा कोई काय नही करना चाहिए जिसमें उनके व्यक्तिगत स्वार्थ निहित हो। एक आदर्श प्रधानाध्यापक को स्वार्थी तत्व उसे अपने कर्तव्य और न्याय के मार्ग से हटा सकते हैं ऐसा कोई भी अवसर नही देना चाहिए जिससे उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह किया जा सके। विद्यार्थी व समाज किसी अवसर की प्रशासनिक अक्षमता व व्यवसायिक कमी को सहन कर सकते हैं यदि उसमे व्यवसायिक, व्यक्तिगत तथा शैक्षणिक ईमानदारी विद्यमान है तो '

13 आशावादी दृष्टिकोण, उसे अपने मे असीमित विश्वास होना चाहिए। पलभर भी असफलता से निराश नही होना चाहिए।

14 त्यागमय जीवन — सदैव शाला के शैक्षणिक व सहशैक्षणिक कार्यक्रम के साथ विभिन्न कर्मशाला व पुस्तकालय सेवा के उन्नयन के लिए निरन्तर सोचता व काय करता रहता हैं। विद्यालय को समर्पित भाव से सेवाएं देते हुए भावात्मक लगाव पैदा करता है जिस प्रकार श्रद्धालुओं का मन्दिर के प्रति विशेष आध्यात्मिक उत्तरदायित्व है ठीक उसी प्रकार शाला के काय को पवित्र धार्मिक काय में लगा समझे।

15 विनोदी भाव प्रधानाध्याध्यापक द्वारा एक मुस्कान हंसी विनोदी वाक्य आदि तनावपूर्ण वातावरण को शान्त कर देता है। विरोधी दृष्टिकोण को भाईचारे की भावना में परिवर्तन करने के लिए उपयोगी इंजेक्शन का काम करता है। अत्यधिक तनाव

1 रायबन डब्ल्यू एम 'विद्यालय संगठन, पज/8

पूर्ण परिस्थिति में हंसी, शब्दो ग, प्रयोग नहीं करना चाहिए जो कभी भी भद्दे रूप में वातावरण बना सकता है ।'1 प्रत्येक प्रधानाध्यापक को इस गुण को अपनाने का सफल प्रयास करना चाहिए।

16 मित्रवत् व्यवहार –छात्रो एव अध्यापको के साथ मित्रवत् व्यवहार बनाये रखे लेकिन शाला के क्रियाकलाप मे कोई ढील इस सम्बन्ध के कारण नहीं आये। ऐसी ढील अराजकता को पैदा करती है। आवश्यकता पडने पर नाजायज लाभ उठाने वालो को चेतावनी भी दे सकता है। "छात्रो की सामूहिक कठिनाइयो को दूर करने के लिए उसे सदैव तत्पर रहना चाहिए। आवश्यकता पडने पर व्यक्तिगत कठिनाई को सुने और दूर करने का प्रयत्न करे।'2

17 समय का पाबन्द –प्रत्येक प्रधानाध्यापक को शाला के निर्धारित समय पर ही पहुचने के लिए विशेष ध्यान देना चाहिए जिससे अन्य कर्मचारी एव अध्यापक भी समय पर ही आयेंगे। यदि प्रधानाध्यापक विलम्ब से पहुचकर अध्यापकों से समय पर आने की आशा प्रशासनिक दृष्टि से अनुचित है और शाला में सामाजिक वातावरण नहीं बन पायगा।

18 आत्म विश्वास– ' किसी भी विद्यालय के प्रधानाध्यापक में आत्मविश्वास का होना आवश्यक तत्व है। इसके बिना वह अपने कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। अनेक विद्यालयों को विभिन्न कठिनाइयों का सामना प्राय इसी कारण से करना पडता है कि उसका प्रधान अपने अन्दर विश्वास नहीं फूक सकता और न ही अपने सहभागी अध्यापकों का विश्वास प्राप्त कर सकता है। 3 अत उसे संवेगात्मक स्थिरता नहीं त्यागनी चाहिए।

19 निष्पक्ष एव न्यायप्रिय – न्याय समाज का सर्वोच्च आदर्श है। जब तक समाज न्याय पर आधारित नहीं होता है, तब तक वह सुचारू रूप से कार्य नहीं कर सकता। विद्यार्थियो संरक्षको एव अध्यापको के प्रति प्रधानाध्यापक का व्यवहार निष्पक्ष एव न्यायप्रिय होना चाहिए। पक्षपातपूर्ण व्यवहार से यदि वह एक ओर कुछ सहयोगियो की श्रद्धा बनाये एव सहयोग प्राप्त करता है तो दूसरी ओर वह अपने विरोधियो को भी जन्म देता है। अत ऐसी परिस्थिति मे वह सबके साथ न्योचित एव समानता का व्यवहार करे, यही उससे आशा की जाती है।

1 जसवन्तसिंह — 'सफल प्रधानाध्यापक' पेज/40

2 रायबर्न, डब्ल्यू एम 'दी ऑर्गनाइजेशन आफ स्कूल्स पेज/22

3 रायबर्न,डब्ल्यू एम, ,, पेज/5

20 अपनी कमजोरियों को दूर करने का प्रयास – उसे विभिन्न क्षेत्रों में कहा तक सफलता प्राप्त हुई है और कहां तक हो पाई है-इसका महत्व विचारकरता है। वह अपने कार्य के क्षेत्र का माप करेगा और उसमें कहां तक सफलता प्राप्त हुई है इसका माप करता रहेगा। अपनी कमजोरियां को सदैव दूर करने के प्रयास में वह सदा अपने कार्य का माप करता रहगा।

प्रधानाध्यापक के कर्तव्य तथा दायित्व

(Headmaster's Duties & responsibilities)

शाला की सभी गतिविधियां का केन्द्र बिन्दु प्रधानाध्यापक होता है। अत उसके कार्यों की महत्ता, गम्भीरता को दृष्टि में रखते हुए उसके कर्तव्य एव दायित्व को निम्न आठ भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1) प्रशासनात्मक कार्य एव दायित्व 2) शिक्षण व्यवस्था सम्बन्धी दायित्व।
3) शिक्षकों से सम्बन्धी दायित्व। 4) छात्रों सम्बन्धी दायित्व।
5) समाज व अभिभावकों के प्रति दायित्व।
6) विद्यालय क्रियाओं के सचालन करने सम्बन्धी दायित्व।
7) शिक्षा विभाग,उसके अधिकारियों से सम्बन्धित दायित्व
8) राज्य में स्थित बोर्ड और उसके अधिकारियों से सम्बन्ध
9) शाला सगम सस्थाओं से सम्बन्ध 10) मूल्यांकन।

1 प्रशासनात्मक कार्य एव दायित्व – प्रधानाध्यापक का पद अत्यधिक जिम्मेदारियों को अपने कन्धों पर लिए हुए है। विद्यालय की शक्षिक व सहगामी प्रवृतियों के लिए योजना का निर्माण,उसकी क्रियान्विति,उसे सचालन करना व उसमे सफलता प्राप्त करना आदि दायित्व प्रधानाध्यापक का ही है प्रधानाध्यापक को एक प्रशासक के रूप में सगठन कर्ता के प्रमुख कर्तव्य निभाने होते हैं जिससे "उचित ढग से साधनों को काम में लेते हुए अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कर सके। कमजोर प्रशासक अच्छे सगठन को कमजोर कर देता है जबकि अच्छा प्रशासक असन्तोषजनक सगठन को उन्नत कर सकता है।' 1 वर्तमान में सारा उत्तरदायित्व प्रधानाध्यापक का ही रहता है। उसके कार्यों को ■ भागों में विभाजित किया जा सकता है

1) नियोजन 2) प्रशासनिक – बजट स्टाफ, निर्देशन, समन्वय, सभी का अभिलेखन करना। 3) पर्यवेक्षण 4) निर्देशन 5) मूल्यांकन 6) समाज से सम्बन्ध स्थापित करना।

प्रधानाध्यापक सगठन प्रक्रिया में स्वभाव से रूढिवादी न होकर आधुनिक परिस्थितियों के अनुरूप हो। शाला के अध्यापकों की रुची के अनुरूल सतुलित रूप में कार्यों

का विभाजन करना, समायोजन क्षमता उत्पन्न करना, विद्यालय प्रशासन को बनाये रखना, शिक्षकों, अभिभावकों तथा विद्यार्थियों को शिक्षा के वर्तमान उद्देश्यों से अवगत कराना, शाला पुस्तकालय की उचित व्यवस्था करना, अध्यापकों की स्वय द्वारा आलोचना न करना अपितु उन्हे आत्म मूल्यांकन के अवसर प्रदान करना, क्रियाओं का सचालन सुनियोजित एव सुसगठित रूप मे करना, क्रियाओं के सम्पादन मे प्रयुक्त शक्ति का उपयोग करना आदि उसके प्रमुख प्रशासनिक उत्तरदायित्व हैं।

प्रशासनिक दृष्टि से वह–

(1) शिक्षकों के कार्यों का निरीक्षण व निर्देशन व प्रगति हेतु प्रेरित

(2) शिक्षण कार्य का निरीक्षण

(3) सम्पूर्ण पतिविधियों का निरीक्षण व सुधार के सुझाव देना

(4) कार्यालय का निरीक्षण

(5) छात्रावास का निरीक्षण

(6) सहगामी प्रवृत्तियों का निरीक्षण–सन्तुलित विकास हेतु

(7) भौतिक तत्वों, खेल शारीरिक क्रियाओं सहकारी भण्डार, कैंटीन आदि का निरीक्षण

(8) विद्यालय-पुस्तकालय, प्रयोगशाला, भवन फर्नीचर आदि का निरीक्षण

(9) पाठ्य पुस्तकों व प्रश्न-पत्रों मे साम्यता लाने हेतु परीक्षाओं का निरीक्षण

(10) पाठ्य पुस्तकों के चयन मे परामर्श देना तथा उपयोगिता की दृष्टि से निरीक्षण करना

(11) शाला अभिभावक सघ के कार्यों का निरीक्षण

(12) शाला को जिन तत्वों से हानि होने की सभावनाएँ हो उसका निरीक्षण करना

(13) प्रवेश सख्या, अध्यापकों की सख्या तथा अन्य कर्मचारियों मे सन्तुलन बनाये रखने हेतु निरीक्षण।

2 शिक्षण व्यवस्था सम्बन्धी दायित्व – प्रधानाध्यापक का कर्तव्य पाठशाला का सगठन, निरीक्षण, परीक्षण आदि करना तो है ही क्योंकि शाला का नेता है परन्तु साथ ही वह एक शैक्षिक नेता होने के नाते शाला मे शैक्षिक पर्यावरण व स्थिति पैदा करना जिससे अध्ययन अध्यापन कार्य के साथ साथ सहगामी प्रवृत्तियों आदि का उन्नयन हो सके। वह इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु पूर्व मे नियोजित करता है, अध्यापकों को परामर्श देता है और त्रुटियों के सशोधन हेतु सृजनात्मक सुझाव मित्र के रूप मे प्रदान करता है। शिक्षण हेतु व्यवस्था करना, विषय-विशेष के योग्य अध्यापकों को अध्यापन हेतु समय सारिणी मे कालाश प्रदान करना। शैक्षिक विषयों पर विकासशील दृष्टिकोण रखना चाहिए। नई पद्धतियाँ जो भारतीय परिस्थितियों के लिए व्यवहारिक हो उसे प्रयोग मे लाना चाहिए ...यों व प्रविधियों को प्रयोग मे लाने हेतु प्रोत्साहित किया जाय।

अध्यापन कार्य होना चाहिए जहां वार्तालाप प्रजातान्त्रिक ढंग से हो। क्रियात्मक अनुसंधान को प्रोत्साहन दिया जाय कक्षा के निरीक्षण द्वारा विद्यालय में प्रस्तुत समस्या की खोज भी की जानी चाहिए। 'ज्ञान-विज्ञान की प्रगति द्रुतगति से हो रही है नई शिक्षण पद्धतियां प्रविधियां का प्रादुर्भाव हो रहा है उनकी खोज करना तथा पुरानी पद्धतियों का संशोधन करते रहना चाहिए'[1]।

शिक्षण कार्य-व्यवस्था सम्बन्धित प्रधानाध्यापक के निम्न कार्य प्रमुख रूप से हैं :-

1 सभी विषयों का समुचित शिक्षण व्यवस्था।

2 रुचि के अनुरूप विषय पढ़ाने की सुविधा

3 अध्यापकों को रुचि, योग्यता एवं क्षमता के अनुरूप के कार्य देना

4 शिक्षण कार्य में तालमेल बढ़ाना

5 सभी विषयों के दक्ष अध्यापकों की व्यवस्था करना।

6 सम्पूर्ण सत्र की शैक्षिक योजना तैयार करना

7 शाला में स्वअनुशासन हेतु प्रेरित करना

8 विषय-विशेषज्ञों के भाषण करवाना

9 अध्यापक संगोष्ठी में प्रजातान्त्रिक ढंग से विचार-विमर्श कर शैक्षिक उन्नयन करना

10 सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करना

11 शैक्षिक उन्नयन हेतु परिवीक्षण में सृजनात्मक सुझाव देना

12 जिस क्षमता के कमरे हो उतने ही छात्रों का प्रवेश

13 पुस्तकालय वाचनालय विज्ञान प्रयोगशाला, भाषा प्रयोगशाला आदि का विकास करना और समुचित उपयोग हेतु बनाना

14 दृश्य श्रवण साधनों के उपयोग की व्यवस्था करना

15 सहगामी प्रवृत्तियों के संचालन में निरन्तरता, जिसके माध्यम से सर्वांगीण विकास हो सके।

3 शिक्षकों सम्बन्धी दायित्व – प्रधानाध्यापक शिक्षकों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण मान बोध तथा प्रजातान्त्रिक ढंग से व्यवहार करना चाहिए। शिक्षकों के व्यक्तित्व का आदर करते हुए उनकी क्षमता, योग्यताओं तथा रुचि के आधार पर कार्य भार आवंटन करें। वह स्वयं एक दक्ष अध्यापक के रूप में अपनी प्रतिभा का लाभ अध्यापकों को एक शैक्षिक नेता के रूप में प्रदान करें तथा उन्हें उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करें। अध्यापकों से स्वेच्छा पूर्ण सहयोग प्राप्त करें। और शाला की समस्याओं के समाधान में उनका सहयोग प्राप्त करें। शैक्षिक निर्णयों में सहयोगी होने से कार्यविति में वे

1 जसवंत सिंह— 'सफल प्रधानाध्यापक' पेज/55

उनना हार्दिक सहयोग प्रदान करेंगे जिससे अध्यापकों में दलीय भावना जाग्रत होगी और सामाजिक वातावरण का विकास होगा। सभी अध्यापकों को समान रूप से देखे व उचित मान दे। के जी सईदैन ने ठीक ही कहा है—"एक अच्छा प्रधानाध्यापक वह होता है जो अपने सहयोगियों पर कठोर अधिकारी की भांति हावी हुए बिना उन्हे प्रेरणा एवं प्रोत्साहन दे सके।[1] एक मित्र सलाहकार, दार्शनिक की भांति व्यवहार करना चाहिये वह उसका परामर्शदाता बने न कि उसकी कमजोरियों का पता लगाने वाला जासूस। ऐसा प्रधानाध्यापक अपने लक्ष्य में कभी सफल नहीं हो सकता क्योंकि पारस्परिक विश्वास और सहयोग पर ही प्रशासन रूपी गाडी सुचारु रूप से चलती है। प्रशासक के रूप में उसके निम्न दायित्व है –

( ) शिक्षण की प्रगति हेतु योजना का निर्माण

(2) सहायक सामग्री जुटाना

(3) विज्ञान प्रयोगशाला व भाषा प्रयोग शाला की व्यवस्था

(4) शैक्षणिक योग्यता, अनुभव व कुशलता के आधार पर शिक्षण कार्य का आवटन।

(5) अध्यापकों के शिक्षण हेतु उत्पन्न समस्याओं को सुलझाने में सहयोग।

(6) सेवा में स्थायित्व लाने हेतु सफल प्रयास।

(7) अध्यापकों को सेवाकालीन मिलने वाली सुविधाओं का अविलम्ब देना।

(8) अध्यापकों की भावनाओं का स्वागत करना-प्रजातान्त्रिक दृष्टि से विचार।

(9) नवीन विधियों व प्रविधियों से अवगत करवाना।

(10) सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

(11) अध्यापकों की गलती को एकान्त में समझाना।

(12) सभी को समान उत्तरदायित्व सौपना चाहिए।

(13) अध्यापक वर्ग में दलबन्दी नहीं होने पाये और न ही किसी दल में सम्मलित हो।

(14) अध्यापकों पर ही उत्तरदायित्व सौपना चाहिए।

(15) अध्यापकों का विश्वास प्राप्त करे जिससे हार्दिक सहयोग मिलेगा।

4 छात्रों के प्रति कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व – प्रधानाध्यापक की सफलता का रहस्य छात्रों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क करने हेतु प्रयत्नशील रहना है। "जो अध्यापक विद्यार्थियों को अपने सहयोगी की अपेक्षा से देखता है वह कभी भी सफल नहीं हो सकता। छात्रों के लिए सहयोगी हो। शाला में पढने वाले में से अधिकतम छात्रों को जाने और पहिचाने,जिससे अनुशासन बना रहेगा। छात्रों को शाला प्रशासन में भागीदार बनाया जाय

1 सईदन, के जी 'शिक्षा शास्त्र' पेज/38

"शाला ससद" के माध्यम से। उन्हें सहगामी प्रवृत्तियों के सगठन व सचालन का कार्य सौंपा जा सकता है। छात्र समस्याओं का चतुराई से समाधान किया जाय। अपने पद की गरिमा को बनाये रखे छात्रो को तग करके भय व डर स नहीं। वह मानवीय बना रहे, डरे नहीं।" सामान्यत 'जब छात्र प्रधानाध्यापक के पास अपनी समस्याओं को प्रस्तुत करने जाते हैं तो वे नवस हो जाते हैं। इस प्रधान का अन्य पद को सुशोभित करना चाहिए जहा अत्यधिक सख्या म बालकों से सम्पर्क नहीं हो। '2 छात्रों को आनन्द आता है जब उसका प्रधानाध्यापक उनकी प्रवतियों का अवलोकन हेतु जाता है।' 3 फिर भला प्रधानाध्यापक छात्रो से क्यों सकोच करते हैं ? उन्हें कभी-कभी प्रत्येक कक्षा कुछ समय के लिए जाकर उनकी समस्याओ से अवगत होना चाहिए और समाधान करने का प्रयत्न करे। वह पिता-तुल्य व्यवहार करते हुए समस्याओ को ध्यानपूर्वक समझाते हुए कल्याण के लिए सतत् प्रयत्नशील रहे जिससे वह आदर व श्रद्धा का पात्र बन सकता है। इस दृष्टि से प्रधानाध्यापक का निम्न दायित्व है —

(1) शाला में प्रवेश विद्यालय एव कक्षाओ म छात्रो के बैठन की क्षमता को दृष्टि म रखना।

(2) विभिन्न वर्गों, समूहो का वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक आधार को दृष्टि मे रखकर करना।

(3) छात्रो का मूल्याकन करना।

(4) छात्रो की मानसिक, शारीरिक प्रगति को अभिलेख मे अकन करना।

(5) अभिभावको के पास छात्रो की प्रगति से अवगत कराना।

(6) आत्म अनुशासन का अनुसरण जीवन मे करने की आदत विकसित करना।

(7) शाला मे निर्देशन केन्द्र की स्थापना करते हुए उन्हे व्यवसायिक शैक्षिक परामर्श देना।

(8) सहगामी प्रवृत्तियों मे सभी भागीदार हो सके ऐसी व्यवस्था करना।

(9) उच्च बुद्धिलब्धि, पिछड़े बाल अपराधी, कुसमायोजित एव विकलाग बालकों के लिए पठन व्यवस्था करना।

(10) आत्म सयम आत्म प्रकाशन, न्याय सगत एव वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करने का प्रशिक्षण देना।

(11) छात्रों मे अवाछित चेष्टाओ से सतर्क रहकर उनका मनोवैज्ञानिक रूपान्तर करना।

1 कोचर, एस के, से 'स्कूल एडमिनिस्ट्रेसन पेज/58

जसवन्तसिंह— सफल प्रधानाध्यापक पेज/44

" " पेज/45

(12) स्वाध्याय की आदत का निर्माण करना।

(13) कल्पनाशक्ति का विकास करना।

(14) अवकाश के समय का सदुपयोग की आदत का निमाण करना

(15) सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति करना।

(16) विरूचिपूर्णता(हाबीज) उत्पन्न करना और शाला कायक्रम मे उसका समावेश करना।

(17) सामान्य ज्ञान के लिए नवीनतम सूचनाओ से अवगत कराना।

(18) प्रजातान्त्रिक गुणा का विकास करना।

(19) समभाव वृद्धि हेतु पयावरण प्रदान करना।

(20) विद्यालय छोडन पर रोजगार दिलाने के लिए 'फालो अप सेवायें गठित [illegible]।

5 समाज व अभिभावको के प्रति सम्बन्धित दायित्व – यदि किसी विद्यालय [illegible] समाज व समुदाय की सेवा करनी है और बालको का समाज का स्वच्छ [illegible] है तो उसे छात्रो के अभिभावको का सहयोग प्राप्त करना होगा। [illegible] अनुशासन बनाये रखन, छात्रो की कठिनाइयो एव समस्याओ का [illegible] उनके सर्वांगीण विकास हेतु उन्नत कायक्रम बनाने आदि कार्यों [illegible] अत एव प्रधानाध्यापक से आशा की जाती है कि व आग [illegible] आयोजन के अवसर पर आमन्त्रित करे। शिक्षक अभि[illegible] विद्यार्थियो सम्बन्धी सभी प्रकार की कठिनाइया एव [illegible] सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण किया जा सकता है।

प्रधमन रही होगा और ना ही शाला के प्रति सहानुभूति वन पायगी और अनावश्यक प्रतिकूल जनमत तयार हो जाता है जिसस शाला के द्वारा उद्देश्य प्राप्ति म बाधा माना है। 1 अत प्रधानाध्यापक को समाज व शाला मे घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। लेकिन उसे राजनतिक दल की दलगत राजनीति मे भागीदार कभी नही बनना चाहिए 2

प्रधानाध्यापक को अभिभावको व समुदाय से सम्पर्क करने हेतु निम्न मुख्य कतव्यो का पालन करना चाहिए—

(1) विद्यालय का कायक्रम के माध्यम से समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके।

(2) विद्यार्थियो की शारीरिक, मानसिक तथा अध्यापन और उनके चरित्र सम्बन्धी बातो का लेखा, 'प्रगति-पत्र के माध्यम से भेजना चाहिए।

(3) अध्यापक अभिभावक सघ का निर्माण हो और प्रधानाध्यापक उसका मन्त्री रहे।

(4) विशेष अवसरो पर अभिभावक आमन्त्रित हो, जिससे समस्याओ का समाधान।

(5) अभिभावक दिवस मनाया जाय।

(6) अभिभावको द्वारा आयोजित उत्सव पर सम्मिलित होना।

(7) समाजोपयोगी उत्पादन काम (SUPW) मे सहयोग देना, श्रमदान, सामाजिक कायक्रमो प्रौढ़ शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा कायक्रमो म सहयोग देना।

(8) सामाजिक कुरीतियो को दूर करने हेतु विभिन्न उत्सवों पर शिक्षाप्रद भजन, नाटक आदि सांस्कृतिक कायक्रम का आयोजन म समाज को आमन्त्रित करना।

(9) शिक्षाप्रद सांस्कृतिक कायक्रमो का आयोजन का प्रदशन जिससे अशिक्षित जनता का मनोरजन के साथ अपरोक्ष रुप से शिक्षा भी प्राप्त हो सके।

(1 पाठशाला को सामुदायिक केन्द्र का रुप देना चाहिए।

(1) स्थानीय मेलो, उत्सवो, बाढ़ अकाल, महामारी पर बालको को भाग लेने के लिए भेजे ताकि समाज-सेवा के साथ समाज से सम्पक भी मजबूत होगा और छात्रो के व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होगा।

(12) निश्चित उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु विकास समिति का निर्माण करे जिसम समाज के प्रमुख व्यक्तियो को रखा जाय।

(13) गणमान्य व्यक्तियो की समिति का निर्माण, जो छात्र समाज सेवा मे रुचि लें सके।

(14) विद्यालय व समाज के बीच समन्वय स समाज का दृष्टिकोण रचनात्मक बनेगा जो अप्रत्यक्ष रुप से उपादेय।

---

1 जसवन्तसिंह— सफल प्रधानाध्यापक पेज/57

2 कोषर एस के, 'माध्यमिक शाला प्रशासन पेज/59

(15) स्थानीय । समस्याओ व आवश्यकताओं विद्यालय के माध्यम से पूर्ति होने से समाज सहयोगी बनेगा ।

(16) अन्य अच्छी शालाओ से सहयोग प्राप्त करने से प्रगति होगी ।

(17) कृषि, बगीचों, कैंटीन, प्रयोगशालाओ को 'सीखो कमाओ' योजनाओ से जोडना चाहिए ।

(18) शिक्षा से समाजीकरण हो सके, ऐसी व्यवस्था करना ।

(19) अभिभावकों के सुझाव व शिकायतो पर समुचित ध्यान दे ।

(20) प्रधानाध्यापक को चाहिए की वह समाज की प्रवृत्तियो,क्रियाकलापों एव विभिन्न व्यवस्थाओ को विद्यालय म प्रतिबिम्बित करे जिससे छात्र अपने विद्यालीय जीवन मे ही भावी नागरिक जीवन के प्रत्यक्ष एव व्यवहारिक अनुभव कर सके ।

(21) प्रधानाध्यापक समाज के आदर्श विचारधाराओ, परम्पराओ,संस्कृति से अवगत करवाय जिससे समाज को समृद्ध बनाने के लिए उत्कण्ठा उत्पन्न करे ।

(22) प्रधानाध्यापक सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन से ओत-प्रोत कार्यक्रम का आयोजन करे ।

(23) शाला मे स्नेहमयी एव सहयोगी वातावरण तैयार करे

(24) प्रधानाध्यापक विद्यालय व्यवस्था मे पारिवारिक जीवन के गुणों का समावेश करे।

(25) प्रधानाध्यापक सामाजिक कार्यों मे सक्रिय भागीदार बनाने हेतु छात्रो को उत्प्रेरित करना ।

(26) विशिष्ठ बातो की शिक्षा हेतु प्रयोगात्मक प्रदर्शन करवाते रहना चाहिए ।

(27) 'परिवार नियोजन' व 'जनसंख्याशिक्षा' अप्रत्यक्ष रूप से प्रदान करने की व्यवस्था। करे ।

(28) 'यौन शिक्षा' अन्य विषयो को पढ़ाते वक्त छात्रों को समझाने हेतु प्रबन्ध करना ।

(29) प्रधानाध्यापक को चाहिए कि भावात्मक व राष्ट्रीय एकता हेतु कार्यक्रमों का आयोजन करे ।

6 विद्यालय क्रियाओ के संचालन सम्बन्धी दायित्व– बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओ का शिक्षा म महत्वपूर्ण स्थान है । माध्यमिक शिक्षा आयोग का कथन है– 'कि पाठयक्रम सहगामी प्रवृत्तिया विद्यालय कार्यक्रम का उतना ही महत्वपूर्ण भाग है जितना पाठ्यक्रम सम्बन्धी काम और उनके उपयुक्त संगठन हेतु उतनी ही सावधानी एव पूर्ण विचारशीलता की आवश्यकता होती है । यदि उनका भली भांति संचालित किया जाए तो मूल्यवान अभिवृत्तिया एव गुणो के विकास म

सहायक हो सकती है।" यह प्रकिया छात्रों की रुचि पर आधारित हो जि
माध्यम से शारीरिक विकास, साहित्यिक, सांस्कृतिक विकास प्रकराण का सदुपय
हस्तकला, नागरिकता का विकास समाज कल्याण सम्बन्धी प्रवृत्तियों का संचालन
बालकों का सर्वांगीण विकास कर सकते है। क्रियाओं के संचालन में विभिन्न क्रि
के मध्य समन्वय सन्तुलन तथा संगठन भी बनाए रखना चाहिए जिससे उनके द्वारा
लय के किसी पहलू को हानि न हो जाए।

ऐल्सवर्थ टोमकिन्स (Ellsworth Tompkins) इनके द्वारा व्यक्तिगत, सामा
तथा नागरिक तथा नैतिक उन्नयन होने की सम्भावना बताया है। विद्यालय-क्रिय
के संचालन हेतु प्रधानाध्यापक के निम्न उत्तरदायित्व है –

1 क्रियाओं को शक्ति महत्ता की दृष्टि से चयन करना।
2 छात्रों का सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से 'शाला संसद' संघ अथवा समि
का निर्माण करना।
3 छात्रों की योग्यता उम्र, रुचि एवं मादता के आधार पर क्रियाओं का आयो
करना।
4 क्रियाओं के माध्यम से स्काउटिंग, गाइडिंग बालचर,एन सी सी आदि प्रशिक्ष
5 ऐसी व्यवस्था हो कि सभी छात्र भागीदार हो सके।
6 क्रियाओं के संचालन से छात्रों में कर्तव्यपरायणता, सहयोग, धैर्य, नेतृत्व ए
सामाजिकता के गुणों का विकास हो सके।
7 प्रधानाध्यापक को भौतिक साधनों व आर्थिक स्थिति के अनुसार ही नियोजन
8 प्रधानाध्यापक क्रियाओं का पर्यवेक्षण व पथ प्रदर्शन करे।
9 एक छात्र को अनेक कार्य करने का नहीं दिए जाय।
10 समाज के सभी संगठनों का सहयोग प्राप्त करे।
11 प्रधानाध्यापक को चाहिए कि वे छात्रो में स्वेच्छा-भावना से सम्मिलित हो
प्रोत्साहित करे।
12 क्रियाओं का मूल्यांकन करे।
13 पारितोषिकों एवं पुरस्कारों का प्रबन्ध करें।

प्रा मिलर, मोयर और पटिक 1 ने भी क्रियाओं को प्रभावी बनाने हेतु f
का प्रतिपादन किया है-- सामान्य सिद्धान्त, सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम से सम्ब
सिद्धान्त, और नेतृत्व से सम्बन्धित सिद्धान्त, संगठन प्रशासन एवं पर्यवेक्षण स
सिद्धान्त। प्राय उपरोक्त लिखित बातों की ही की व्याख्या की गई है।

1 ऐल्सवर्थ टामकिन्स, ' एक्स्ट्रा क्लास एक्टीविटी फोर आल पिपल्स ' पेज/3
2 F.A Miller, J H Moyer,R.B Patrik, Planning Student Activit

7 शिक्षा विभाग व उसके अधिकारियों से सम्बन्ध – माध्यमिक शिक्षा आयोग ने प्रधानाध्यापक यह प्रमुख कर्तव्य बताया है कि–"शिक्षा विभाग के अधिकारियों के निर्देशों का पालन करना ही उसका काम है।' अतः शिक्षा विभाग के आदेशों का पालन करना चाहिए। पूछे गये प्रश्नों का प्रतिउत्तर शिक्षा विभाग को देना उसका कर्तव्य है। विभाग के अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करे। शाला के निरीक्षण के अवसर पर सम्मान करे और सभी क्रियाकलापों का प्रदर्शन करे। विशेष उत्सवों पर शिक्षा विभाग के अधिकारियों को आमन्त्रित करे। विभाग के अधिकारियों से पारस्परिक सहयोग तथा सद्भाव बढ़ाने से शाला की उन्नति होगी और अधिकतम योग प्राप्त होगा। प्रधानाध्यापक को निम्नलिखित बातों का दायित्व निर्वाह करना चाहिए –

(1) विद्यालीय शिक्षा की भिन्न भिन्न शाखाओं से सम्बन्धित परिस्थियों से शिक्षा विभाग को अवगत कराना।

(2) शिक्षा की प्रगति के सम्बन्ध में अधिकारियों को सूचित करना।

(3) शासन की शिक्षा नीति का विद्यालय में होने वाली प्रतिक्रिया में विभाग को अवगत करवाना।

(4) शैक्षिक आवश्यकताओं से अधिकारियों को अवगत कराना।

(5) अनुशासन बनाना और अन्य बाधक तत्वों के बारे में अवगत करवाना।

(6) अध्यापक व कर्मचारियों की कार्य प्रणालियों से अवगत कराना।

(7) शिक्षा विभाग के नियमों का समय सारिणी में क्रियान्वित कर देना।

(8) शिक्षा विभाग द्वारा अनुमोदित पुस्तकों का चयन करना।

(9) विद्यालय की विभिन्न प्रवृत्ति व प्रगति से विभाग को समय समय पर सूचित करना

(10) विभाग द्वारा निर्धारित शुल्क प्राप्त करना।

8 राज्य के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड व उसके अधिकारियों से सम्बन्ध –

राज्य की माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शालाओं का शैक्षिक नियंत्रण उस राज्य शिक्षा बोर्ड करता है। बोर्ड द्वारा ही शाला शिक्षा से सम्बन्धित विषय पर राज्य सरकार को सलाह देता है। सभी शालाएं इन्हीं के द्वारा मान्यता प्राप्त करती है। माध्यमिक व उच्च माध्यमिक कक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण व उनकी परीक्षाएं उसी के द्वारा सम्पन्न होती है।'1 अतः शैक्षिक उन्नयन के लिए प्रधानाध्यापक का माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से भी गहरे सम्पर्क बनाए रखना चाहिए। प्रधानाध्यापक को निम्नलिखित बातों को ध्यान में लाना चाहिए–

1 विद्यालय की विभिन्न शैक्षिक परिस्थितियों से अवगत कराना।

1 Kothari, Report of the Education Commission, P/270–271

2 निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुकूल कार्यक्रम बनाना।
3 विद्यालय की शैक्षिक आवश्यकताओं को बताना।
4 मान्यता के लिए लगी फीस को पूरा करना।
5, बोर्ड द्वारा प्रसारित नियमों को क्रियान्वित रूप देना।
6 बोर्ड द्वारा निरीक्षण के अवसर पर सभी क्रियाकलापों के बारे में अवगत करवाना।
7 बोर्ड द्वारा निर्धारित पाठ्यपुस्तकों का ही अध्ययन-अध्यापन हेतु उपयोग में लाना
8 वार्षिक-प्रतिवेदन भेजना।
9 बोर्ड द्वारा छात्रवृत्तियां, अनुदान आदि के बारे में छात्रों को अवगत करना।
10, बोर्ड द्वारा आयोजित परीक्षाओं का सचालन करना।
11, बोर्ड द्वारा आयोजित कार्य गोष्ठियों में अध्यापकों को भेजना।
12 शाला के शैक्षिक उन्नयन हेतु जो भी निर्देश बोर्ड द्वारा प्राप्त होते हैं उनकी अनुपालना करना।

"शाला सगम" की संस्थाओं से सम्बन्ध – 'शाला-सगम' के विचार में एक माध्यमिक या उच्च माध्यमिक लगभग तीन या चार उच्च प्राथमिक शालाएं तथा दस से बीस प्राथमिक शालाए, जो एक दूसरी के नजदीक है वे एक इकाई के रूप मे काय करते है।¹ माध्यमिक शाला उसकी सयोजक संस्था के रूप में काय करती है। जिससे अधिक जिम्मदारी बढ जाती है। प्रधानाध्यापक का अन्य सहयोगी संस्था से सम्बन्ध में निम्न उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना चाहिए -

(1) आसपास की संस्थाओं के प्रधानाध्यापकों की समिति उसका सयोजन करना।
(2) कम से कम वर्ष में दो बार अन्तर्विद्यालय सम्मेलन
(3) अपने विद्यालय के उत्सवों मे दूसरे विद्यालय के प्रधानाध्यापक व अध्यापकों को आमन्त्रित करना।
(4) कोई भी ऐसा काय नहीं करना जो अन्य विद्यालयों के लिए अहितकर हो।
(5) विद्यालयों के मध्य प्रतियोगिता उत्पन्न करना।
(6) शाला प्रयोगशाला व पुस्तकालय 'सगम' की संस्था के बालकों को अवकाश व रोज उपयोग करने की अनुमति दे।
(7) केन्द्रीय माध्यमिक संस्था होने के नाते पुस्तके उधार के रूप मे अन्य संस्थाओं को दे।
(8) अच्छे प्रशिक्षित अध्यापकों को भी पढाने हेतु भेजा जाय।

Report of the Education Commission, P/263

(9) चित्रकला व खेल अध्यापक प्राथमिक स्तर की शालाओं में नहीं है वहां उन अध्यापकों को शाला के कार्यभार के अतिरिक्त भेजा जाय।

(10) एक अध्यापक प्राथमिक शालाओं के अध्यापक छुट्टी रहने पर अध्यापक भेजना।

10 प्रधानाध्यापक द्वारा मूल्यांकन –पाठशाला में बालकों की परीक्षाऐं, वार्षिक, अर्द्ध–वार्षिक होती है। उनका सभी प्रबन्ध जैसे प्रश्न–पत्र बनवाना, उन्हें छापना उचित स्थान पर गुप्त रूप से छपवाना, उत्तर पुस्तिकाओं को जचवाना तथा परीक्षाओं में कोई अनियमितता न होने पावे इन सब का प्रबन्ध तथा परीक्षाफल समय पर तैयार करके घोषित करने का उत्तरदायित्व प्रधानाध्यापक का ही है।

प्रधानाध्यापक को देखना चाहिए कि छात्रों का मूल्यांकन कार्यक्रम नियमित रूप से हो रहा है या नहीं। उस अध्यापकों के अपने ही मूल्यांकन उपकरण बनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

विद्यालय — वातावरण

(The Tone ot the school)

"विद्यालय का अपना एक वातावरण अथवा रीति स्थापित करना बड़ा ही कठिन कार्य है और इसमें कई वर्ष लग जाते हैं। यह वातावरण ऐसा हो,कि इसका छात्रों और अध्यापकों पर ऐसा प्रभाव पड़े कि सभी कर्म उपरायण बने और उनका सर्वांगीण विकास हो सके। इस सम्बन्ध में भी प्रधानाध्यापक का प्रधान कर्तव्य है। जिस विद्यालय का वातावरण अच्छा रहता है उसके छात्रों का आचरण में कोई दोष नहीं दिखलाई पड़ता, वे किसी को किसी भी प्रकार का दुःख नहीं देते और उनके आदर्श तथा चरित्र की नींव उनके विद्यालय काल में ही पड़ जाती है। 1

प्रधानाध्यापक की समस्याएं एवं निराकरण पाठशाला का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व प्रधानाध्यापक का ही है और इतने अधिक कार्यों व उत्तरदायित्वों को अति विलक्षण योग्यता वाला प्रधानाध्यापक ही पूर्ण कर सकता है। अत्यधिक प्रयत्न के उपरान्त भी उसे परिवर्तित समय और समाज की बदलती हुई सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दशा में प्रतिरूप कुछ और नये कार्य भी अपनाने पड़ते हैं विशेषकर शिक्षा क्षेत्र में। स्कूल का सारा कार्य सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप क्रियान्वित करके उसे नई समस्याओं के समाधान तदनुकूल करने पड़ते हैं। आधुनिक समस्या सामान्यतः निम्न प्रकार की उनके सम्मुख आती है।–

डॉ. चौबे, सरयू प्रसाद "जनतन्त्रात्मक विद्यालय संगठन पेज/74

11 अनुपयुक्त पुस्तकालय – पुस्तकालय शाला की रीढ की हड्डी है। उसका निरन्तर विकास व उन्नयन वांछित है।

सुझाव — 1 अधिक अनुदान प्रदान किया जाय।

2 प्रशिक्षण प्राप्त पुस्तकालाध्यक्षों की नियुक्ति।

3 अच्छा साहित्य प्रदान करना।

12 अध्यापकों का शीघ्रता से स्थानान्तरण – स्थानान्तरण वर्ष के मध्य में नहीं होना चाहिए। आज प्रधानाध्यापक के बगैर पूछे ही अध्यापकों का स्थानान्तरण कर दिया जाता है जिससे उनकी योजना को क्रियान्वित रूप देने में असुविधा रहती है।

सुझाव — 1 तीन वर्ष से पूर्व अध्यापकों के स्थानान्तरण न हों।

2 स्थानान्तरण नीति का निर्माण।

3 प्रधानाध्यापक से शाला तथा शैक्षिक प्रवृतियों के संचालन के हित को दृष्टि में रखते हुए प्रधानाध्यापक की अभिशंषा उपरान्त ही स्थानान्तरण हो।

4 स्थानान्तरण राजनीति से प्रेरित न हों।

अध्यापक

विद्यालय वातावरण के निर्माण में अध्यापक की भूमिका

(Role of teacher in building tone of School)

अध्यापक माली के समान पौधों को यथास्थान रोपता-सींचता उनमें खाद डालता और ऋतुओं के आघातों से बचाकर सम्वर्धित करता है। उत्तम कोटि की शालाओं का ध्यान इससे भी आगे हैं वे पढ़कर चले जाने के पश्चात भी अपने छात्रों की चिन्ता रखती है और उनसे सम्पर्क बनाये रखती है।

कई शालाएं अपने विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त काम भी ढूंढने का सफल प्रयत्न करती हैं और इस प्रकार शाला का शिक्षक माली के समान अपने पौधों को फलता फूलता भी देखता है। इस फलते-फूलते पौधों के पीछे उस माली रूपी अध्यापक का कठिन परिश्रम, लग्न, रुचि तथा साधन सम्पन्नता निहित है। वह अपने विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करने के लिए अथक प्रयत्न करते हुए समाज की आकांक्षाओं के अनुरूप योग्य व राष्ट्रउपयोगी नागरिक के रूप में प्रदान करता है। अतः स्पष्ट है कि जैसा अध्यापक होगा वैसी ही शाला बनेगी As the teacher so is the School, यदि एक अच्छे शिक्षाविद् प्रशासक द्वारा छात्रों के उन्नयन के लिए योजना बनाये। यदि अध्यापक अप्रशिक्षित है व्यवसाय के प्रति अरुचि है व लापरवाह है तो उसका बहुत ही कम अनुपात में लाभ होगा।'1 इसी प्रकार प्रो. टी रेमाण्ट ने कहा– 'योजना चाहे कितनी ही व्यापक

टी एम स्टेनिस दी प्राफेशन आफ टीचिंग' नई दिल्ली, प्रिंटीक हाल इंडिया 1965 प्र व

क्यो न हो, विद्यालय का भवन चाहे कितना ही भव्य क्यो न हो, साज सज्जा कितनी ही आकर्षक क्यो न हो, पाठ्यक्रम कितना ही उपयोगी क्यो न हो जब तक उस योजना को कार्यान्वित करने वाले अध्यापक सुयोग्य एव सुसस्कृत नही होंगे, जब तक योजना उसी प्रकार निरर्थक सिद्ध होगी जिस प्रकार एक अनाडी के हाथो एक सुन्दर यन्त्र की स्थिति होती है।" डा पेरिस के भावार्थ भी यही है कि "जिस श्रेणी का राष्ट्र के अध्यापक होगे, उसी श्रेणी का राष्ट्र होगा।" इसी तथ्य को मुदालियार कमीशन ने दोहराया– "देश के पुन रचना मे अध्यापक एक मुख्य घटक है।"

"अध्यापक विद्यालय की गत्यात्मक शक्ति है। विद्यालय भवन एव साज-सज्जा महत्वपूर्ण और ठीक वैसा ही स्थान पाठ्यक्रम पुस्तको और प्रयोगशाला आदि का है। लेकिन इन सभी बातो के होते हुए भी अध्यापक विहिन विद्यालय आत्मा रहित (मन) शरीर के समान है।"

शाला वातावरण व अध्यापक — आधुनिक भारतीय शिक्षण सस्थाओ में किशोर बालक बालिकाओ को निर्देशन व अध्यापन दक्षता से नेतृत्व प्रदान करता है। वह बालको के लिए निर्धारित उद्देश्यो को अपनी व्यक्तिगत, सृजनात्मक क्रियाओ व विद्वता से पूरा करवाता है। वह कौशलपूर्ण प्रभावी अध्यापन के लिए योजना बनाने निर्देशन देने व अपना तथा छात्रो का समय समय पर मूल्याकन करता है। वह ही तो छात्रो को विभिन्न अध्यापन पद्धतियो से विषय वस्तु को रूचिकर व सहयोगी ढग से अध्यापन हेतु उत्प्रेरित करता है। छात्रो की समस्याओ के समाधान हेतु कौशल का विकास करता है। वह व्यक्तिगत रुप से प्रत्येक छात्र को समझने का सरल प्रयास करते हुए व्यक्तिगत निर्देशन जब भी आवश्यकता होती है प्रदान करता है आज के प्रजातात्रिक पद्धति मे अध्यापक ही समुदाय की परम्पराओ, धारणाओ मूल्यो को समझते हुए उनमे अच्छे सहसम्बन्ध बनाता है। अपने छात्रो व उनके अभिभावको से मधुर सम्बन्ध स्थापित करने हेतु शाला व समुदाय मे आयोजित कार्यक्रमो मे सहभागी बनता है। अध्यापक जीवन भर विद्यार्थी समझते हुए अपने व्यवसायिक दक्षता का निरतर विकास करता है। अपने अध्यापको कार्यालय लिपिक, चतुर्थश्रेणी कर्मचारियों व प्रधानाध्यापक से मधुर व परिवार जैसे सम्बन्धो की स्थापना करता है ताकि शाला मे अध्ययन अध्यापन हेतु सामाजिक वातावरण की स्थापना हो सके। इन सबसे प्रमुख विशेषता उसमे होनी चाहिए कि वह एक सचेत विद्यार्थी बना रहे। यदि इन सभी गुणो से ओत–प्रोत है तो स्वाभाविक है कि वह एक अध्यापक के रूप मे,अकादमिक कार्य के नियोजन व क्रियान्विति मे,अभिभावको से मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने मे, प्रधानाध्यापक व साथियो से मधुर सम्बन्ध स्था

प्रा मुकर्जी, एस एन, "सकेण्डरी स्कूल एडमिनिस्ट्रेशन पेज/106

पित करने मे, सामाजिक परिवर्तना म गतिशील बनाने म, विद्यालय का शैक्षिक व भौतिक वातावरण के निर्माण मे अहम भूमिका रहेगी जिसमे समस्त शाला एक समुदाय के रूप मे प्रतीत होने लगेगी।

अध्यापक की सामान्य योग्यताए – अध्यापक का उत्तरदायित्व इतना अधिक और महत्वपूर्ण है कि उसे एक सामान्य बुद्धि एव सामान्य चरित्र का व्यक्ति पूर्ण नही कर सकता। 'विवेकानन्द ने कहा कि– 'एक सच्चा अध्यापक वह है जो तुरन्त विद्यार्थियो के स्तर तक उत्तर कर विद्यार्थी की आत्मा मे अपनी आत्मा स्थानान्तरित कर उसके मस्तिष्क के माध्यम से उस समझ सके।'1 विद्वान और कर्तव्यपरायण व अनुकरणीय आदतो वाला होना चाहिए स्वामी दयानन्द ने कहा है– 'जो अध्यापक पुरुष व स्त्री दुष्टाचारी हो उनसे शिक्षा न दिलावें किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त और धार्मिक हो वे ही पढाने और शिक्षा देने के योग्य है।' 2 विद्वानो ने अध्यापको के विभिन्न गुणो को अपने अपने ढग से प्रस्तुत किया है जैसे प्रो आथर बी मोइलमन पाच गुणो का होना परम आवश्यक बतलाया है।3 (1) शक्ति, (2) भावात्मक स्थिरता, (3) बुद्धि, (4) सामाजिक गुण, (5) प्रशिक्षण।

सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे डा एफ एल कैल्प (F L Calpp) शिक्षण व्यक्तित्व के दस गुणो का होना परम आवश्यक बतलाया है।

(1) सम्बोधन (2) वैयक्तिक आकृति (3) आशावादिता (4) गम्भीरता (5) उत्साह (6) चिन्तन की स्पष्टता (7) वफादारी (8) सहानुभूति (9) जीवन शक्ति (10) विद्वता

प्रो पी सी रेन सफल अध्यापक के लिए बताया है — (1) असीमित धैर्य (2) आकर्षक व्यक्तित्व (3) निपुणता (4) दक्षता (5) वाकपटुता (6) विनोदप्रिय (7) विभिन्न रूचियो (8) मौलिकता (9) उल्लास (10) कार्यक्षमता (11) आशावादिता (12) शीघ्र निर्णय (13) निष्कपट (14) चरित्र (15) विनय (16) स्फूर्ति (17) समस्वभाव (18) तीव्र श्रवण (19) दृश्य शक्ति (20) अध्यवसाय (21) आत्म सम्मान (22) आत्मनिर्भरता (23) स्वस्थ्य एव शारीरिक बल (24) दया (25) पूर्ण–दृढता।

प्रो रायबन ने कहा है कि —"अध्यापक का चुनाव करते समय प्रधानाध्यापक एव प्रबन्धक को इन तमाम बातो का ध्यान रखना चाहिए सर्व प्रथम तथा परमावश्यक है

---

1 विवेकानन्द 'एज्यूकेशन मद्रास श्रीरामकृष्ण माह 1953 पेज/28

2 स्वामी दयानन्द, महर्षि दयानन्द के सर्वश्रेष्ठ भाषण, पेज/123

3 मोइलमैन, आथर बी शाला प्रशासन" पेज/315

चरित्र, उसके बाद बच्चों को समझाने तथा उसके साथ उचित रूप से कार्य करने की क्षमता, अध्यापन की योग्यता, काम करने की इच्छा, शक्ति और सहयोगिता।"1

प्रो एस एन मुखर्जी ने 'सफल अध्यापक के लिए निम्नलिखित गुण व अच्छाइयां वांछित बताया है-'2

1 व्यक्तिगत गुण – व्यक्तिगत प्रस्टीकरण, मदुलभाषी, शिष्ठ, मेहनती, उत्साह,अभियान चलाने वाला, पहल कदमी, खुले दिमाग।

2 व्यवसायिक गुण – मनोविज्ञान का ज्ञाता, विषय वस्तु का ज्ञाता, अध्यापन की पद्धतियों का ज्ञान अध्यापन में रुचि, पढाने का बढ़िया कौशल।

3 सास्कृतिक व शैक्षिक गुण - पढाये जाने वाले विषय का ज्ञान सामान्य ज्ञान, संस्कृति का ज्ञान।

4 शारीरिक गुण – स्वास्थ्य, शारीरिक शक्ति, स्फूर्ति शारीरिक दोषों से मुक्त।

5 मानसिक गुण — उच्च बुद्धि, मानसिक चेतन निर्णय शक्ति, सामान्य बुद्धि।

6 संवेगात्मक सतुलन का गुण — आत्मनियत्रण, मानसिक स्थिरता, सहनशीलता अनुचित विश्वास से स्वतन्त्र, पूर्वाग्रह से ग्रसित न होना।

7 सामाजिक समायोजन — सामाजिक परम्पराओं का ज्ञान, दूसरों के साथ समायोजन की क्षमता नैतिक गुणों से ओत प्रोत।

भिन्न भिन्न शिक्षाविदों के ही आधार पर छात्रों को कुछ स्पष्ट करने के दृष्टिकोण से विवरण सहित बिन्दुवार अध्यापकों के गुणों का संक्षिप्त विवेचन अवबोधन हेतु प्रस्तुत है।

(1) अपने विषय का पण्डित— होने पर आत्म सम्मान पैदा होगा, बालक गलतियां पकड़ेंगे आदर प्राप्त नहीं होगा और ना ही उचित ढंग से ज्ञान दे पायेगा।

(2) शिक्षण कला का प्रवीण — जिससे वह ज्ञान को अधिक सरल और प्रभावशाली ढंग से व्यवहारगत परिवर्तन करवाने में सफल हो सकेगा।

"अध्यापक को बाल अध्ययन में उत्साहित, अपने विषय एवं विधि में उत्साहित होना चाहिए।'3

(3) प्रभावशाली व्यक्तित्व – जिससे बालकों, अभिभावकों और दूसरे अध्यापकों आदि पर प्रभाव पड़ेगा और सम्मान प्राप्त कर सकेगा।

(4) मनोविज्ञान का ज्ञान — से ही निर्धारित कर सकता है कि वह अपनी शिक्षण

1 रायबन डब्ल्यू एम, (अनु श्री वास्तव)—विद्यालय सगठन पेज/32

2 प्रो मुकर्जी एस एन से 'स्कूल एडमिस्ट्रेसन पेज/106 107

3 " " "

पद्धति में कब परिवतन करे जिससे बालको की मानसिक स्थिति को अपने अनुकूल बना सके।

(5) बच्चो से प्रेम तथा सहानुभूति — बालका म अपने प्रति तथा अपने द्वारा प्रदत्त विषय ज्ञान के प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न करने के लिए प्रेम तथा सहानुभूति आवश्यक है। "अध्यापक के हृदय मे बालक के प्रति गहरा प्रेम और सहानुभूति तथा उसके व्यक्तित्व के प्रति सम्मान की भावना का होना आवश्यक है।'1

(6) अध्यापन काय के प्रति रूचि – रुचि के साथ शिक्षण काय न करन पर बालक उससे कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। परिश्रम व्यय गमित होगा। 'जिसने दृढता से निश्चय कर लिया हो कि आजन्म शिक्षक रहगा।'2 "अधिकाश देखा गया है जब तक नवयुवका को अच्छी नौकरी नही मिलती, तब तक वे अध्यापन काय करते रहते हैं तथा अच्छी नौकरी मिलन पर अध्यापन काय का त्याग देते हैं।' 3 अध्यापक काय एक व्यवसाय नहीं है यह ता एक स्वेच्छा पर आधारित नैतिक काय।' 4

(7) उच्च चरित्र — अध्यापक मे चारित्रिक दुबलता होने पर बालको मे चरित्र स्तर भी निम्न होगा। चरित्रहीन अध्यापक श्रद्धा, बालका व समाज म नहीं हा सकती।

(8) नेतृत्व शक्ति — मनोवैज्ञानिक युग मे बालका मे स्वाभाविक विकास पर विश्वास किया जाता है – अध्यापक से नेतत्व व पथ प्रदर्शन की ही आशा की जाती है। नेतत्व के बगैर शिक्षण सम्पादित नही होगा।

(9) धैयवान — अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियो म मानसिक सन्तुलन नहीं खाना चाहिए और धय के साथ परिस्थिति पर नियन्त्रण कर लेना चाहिए।

(10) प्रत्युत्पन्नमति – अध्ययन अध्यापन मे बाधा या उपक्रमा शिक्षण सहायक सामग्री न होने पर भी, समय विशेष पर उपलब्ध साधनो से विषय वस्तु का स्पष्ट करना

---

1 प्रो तनेजा, बी आर, "एज्यूकेशनल थाट एण्ड प्रेक्टिस अध्याय 8

2 The fist condition of a good teacher is that he shall be n teacher& nothing else, that he shall be trained as a teacher not brought to sirve other profession Murk Pottison

3 पेस्टालाजी हाउ जरटयुड टीचेज हर चिल्ड्रन अध्याय 1

4 प्रो रायबन, पेज/30

चाहिए । कक्षा के बाहर भी ऐसा उपागम की आशा की जाती है ।

(11) आत्म सम्मान – अध्यापक का पद श्रेष्ठ है अत उसमे आत्म समान का भाव होना चाहिए । अपने अधिकारो व कतव्यो का निर्वाह सही रूप से करना चाहिए।

(12) आत्म नियत्रण — आवेश मे आकर किसी भी कार्य को नही करना।

(13) अधिकारो और कर्तव्यो का ज्ञान जिससे वह समय-समय पर अधिकारो का उचित प्रयोग और अपने कतव्यो का पालन भी । "शिक्षा की पुनर्रचना मे कोई भी बात इतनी महत्वपूर्ण नही जितनी अध्यापको की योग्यता और उसकी कतव्य परायणता ।' 1

(14) कुशल वक्ता – कलापूर्ण तरीके से प्रस्तुत की गई बात का विद्यार्थी तथा जनता पर अत्यधिक प्रभाव पडता है ।

(15) सहगामी प्रवृत्तियो मे रूचि – अध्यापक स्वय सहगामी क्रियाओ मे भाग लेता है तो बालक भी आकर्षित होगे ।

(16) जनतन्त्रात्मक दृष्टिकोण — कक्षा मे विभिन्न प्रकार की समितिया बनाकर उत्तरदायित्व सौपा जाय, इसके साथ ही उनके विचारो तथा अच्छे कार्यों को आदर की दृष्टि से देखे ।

(17) विस्तृत दृष्टिकोण – छात्रो मे राष्ट्र प्रेम, विश्व बधुत्व की भावना, अन्य धर्म जाति व क्षेत्र के लोगो से प्रेम उत्पन्न करने का सफल प्रयास करे ।

(18) निष्पक्षता – शाला मे विभिन्न काय जो उनके द्वारा सम्पन्न होते हैं उसमे निष्पक्षता से ही उत्तरदायित्वो का निवाह करने मे सफल होकर सम्मान प्राप्त करेगा । रायबन–' बालको मे अध्यापन का प्रभाव अन्यायी होने के कारण जितना नष्ट होता है, उतना दूसरी बात से नही । '2

(19) समय का पाबन्द – अपने काय को ठीक समय पर सम्पन्न करके व शाला व कक्षा म समय पर पहुचने से ही छात्र उनका अनुकरण करेगे ।

(20) सामाजिकता की भावना — 'पाठशाला समाज का छोटा रूप है ।' मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है– समाज के अलग कुछ नही । उसे छात्रो व सहयोगियो से मिलजुल कर सौहार्दपूर्ण वातावरण से काय करने से शाला मे सामाजिक वातावरण बनेगा अन्यथा बालको मे सामाजिकता के गुण का विकास सम्भव नहीं।

---

1 कबीर हुमायु–"एजूकेशन इन न्यू इण्डिया ' पेज/20

2 रायबन डब्ल्यु एम , "विद्यालय सगठन पेज/33

(21) उत्तम स्वास्थ्य –मानसिक व शारीरिक स्वस्थ अध्यापक ही शिक्षण व क्रियाओं मे रूचि ले सकता है ।

(22) आशावादी – समस्याओ से हतोत्साहित न होकर आशावादी बनकर काय कर तभी वह अंतिम रूप से सफलता पैर चूमेगी ।

(23) नियन्त्रण शक्ति — होने से ही कक्षा म अनुशासन रहेगा और अध्ययन अध्यापन क्रिया सम्पन्न होगी ।

(24) विनोदप्रिय – ताकि बालक उससे भय न मान और निसंकोच रूप से अपनी असुविधाए बता सके और निकट आ सके जिससे एक दूसर को समझेंगे ।

(25) जीवन के विभिन्न पक्षो का ज्ञान –शिक्षण काय करने म एक विषय का जीवन के विभिन्न पक्षो से सम्बन्ध स्थापित करने से अवबोधन होगा ।

(26) अपने विषयो के अतिरिक्त अन्य विषयो का सामान्य ज्ञान – यह तभी सम्भव है जबकि उन विषयो का सामान्य ज्ञान रखता हो ।

(27) उत्साह – सफल अध्यापक की कुंजी है । "अच्छा अध्यापक अपने काय के प्रति उत्साही होता है । 1

(28) ज्ञान–पिपासा अपने ज्ञान के भण्डार को बढाने के लिए सदा कुछ न कुछ प्रयत्न करते रहना चाहिए ।

(29) वेश भूषा — अध्यापक की वेशभूषा साफ सुथरी तथा सादगी पूर्ण हो ।

(30) कण्ठ स्वर — स्वर स्पष्ट तथा माधुय हो इतने उच्च स्वर से बोले कि उसकी आवाज समस्त छात्र सरलता से सुन सके ।

(31) कक्षा व्यवहार — ऐसा काय अध्यापक को नही करना चाहिए जिसे देखकर हसे । एस म अग्रवाल —"शिक्षक की आदते फूहड नही होनी चाहिए । दांत से नाखून काटना, हाथ म चाक स्टिक घुमाना, पतलून की जेब मे हाथ डालकर पढाना हाथ, मुह अथवा आख मटका कर पढना, हाथ फटकारना, आख निकलना पैर हिलाना नाक कान कुरेदना आदि बुरी आदत है ।"

(32) प्रायोगात्म दृष्टिकोण — हर बात की प्रमाणिकता एव विश्वसनीयता मालूम करने के लिए प्रायोगात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिए ।

उपरोक्त गुणो के अतिरिक्त उसमे दूरदर्शिता अध्ययन प्रियता दृढनिश्चय, सहनशील आकर्षक स्वर रचनात्मक दृष्टिकोण मौलिक विचार वाला, आधुनिक शिक्षा

---

1 रायबर्न डब्ल्यू–एम 'विद्यालय सगठन' (अनु श्री वास्तव) पेज/32

विकास (देश व विदेशों में) योजनाओं के बारे में पूर्ण रूप से ज्ञान रखने वाला होना चाहिए। इन पूर्व के पृष्ठों में उल्लेखित गुणों वाले अध्यापक की शाला, समाज में तो प्रतिष्ठा बढ़ेगी ही, उसके साथ ही साथ शाला का शैक्षिक, सहगामी प्रवृतियों में उन्नयन करने में सफल होगी और शाला की टोन व प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

अध्यापक के कार्य तथा उत्तरदायित्व

(Teacher's Dutes & resdonsibilities)

शाला की उन्नति व अवनति प्रधानाध्यापक पर डालते हैं परन्तु उसकी सफलता एवं असफलता का आधार अध्यापकों की कार्य क्षमता एवं प्रभावशाली ढंग से उत्तरदायित्व के निर्वाह पर ही निर्भर करती है। अध्यापक से समर्पित भाव से शाला के प्रतिआत्मक सम्बन्ध स्थापित कर कार्य को सम्पन्न करता है तो पाठशाला द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति होने में कोई कसर नहीं रह जायेगी। प्रो एस एन मुखर्जी ने कहा है— "अध्यापक बड़ी लगन व आत्मा से आज्ञाकारिता के रूप में अपने व्यवसाय का कार्य करना चाहिए। अपने आपको सुधारने की पहलकदमी करनी चाहिए। व्यक्तिगत रूप से जिन्हे अध्यापन से प्यार नहीं है उन्हे अध्यापन व्यवसाय को छोड़ देना चाहिए।"1 अध्यापक को आधुनिक शिक्षण पद्धतियों के अनुसार कार्य करने हेतु प्रो मफत ने प्रभावशाली शिक्षक के लिए निम्न विशिष्ट विशेषताओं का होना आवश्यक बतलाया है 2

(1) प्रभावशाली शिक्षण प्रविधियों का प्रयोग —

1 अधिगम क्रियाकलाप उद्देश्यनिष्ट होना चाहिए।
2 अधिगम क्रियाकलाप बाल केन्द्रीत होना चाहिए।
3 स्वयं विद्यार्थियों द्वारा भागीदार बनने की व्यवस्थाएं।
4 विद्यार्थियों का विकास व प्रगति का समय समय पर मूल्यांकन।
5 पाठ योजना की पूर्ण तयारी
6 अध्यापन की विषय वस्तु का एवं सहायक सामग्री का प्रयोग।
7 छात्रों को विभिन्न अनुभव प्रदान करने की परिस्थितियां देना।
8 व्यक्तिगत रूप से निर्देश देकर अधिगम में निरन्तरता बनाने का प्रयास।
9 विषय वस्तु तथा सहायक सामग्री की पूर्व में योजना बनाना।

---

1 डा मुकर्जी एस एन सैकण्डरी स्कूल प्रशासन, पेज/107
2 (Prof Maffat quate in his book Social Inbtruction at P/70–71)
R N Cassed and W L Johns "The critical Characteristics of an Effective Teacher" The Bulletion of the National Association of Seceondry School Prinscipals, XLIV No 259(Nov 1960), 120 122

10 अधिकृत अधिकारी की तरह निर्देश देकर अधिगम क्रियाकलाप को प्रभावशाली बनाना।

11 कक्षा म हवा और रोशनी का प्रचुर प्रबंध।

12 छात्र प्रत्येक पाठ के उद्देश्यो व व्यवहारगत परिवतन के बारे म समझे।

13 गृहकार्य को देते समय स्पष्ट समझाना चाहिए।

14 शोध, क्रियात्मक शोध के लिए काय करे।

15 अधिगम योजना अनुभव के द्योतक होनी चाहिए।

16 छात्रो की रुचि के आधार पर शिक्षण प्रक्रिया को बढावे।

17 जीवन के उद्देश्यो से कक्षा अधिगम को जोडने का प्रयत्न करना।

(2) सम्पूर्ण प्रभावशाली मनोविज्ञान का प्रयोग —

1 छात्र को उसके विकास व प्रगति के मूल्यांकन म सहयोग देना।

2 सब छात्रो की विश्वसनीयता एव प्रतिष्ठा को बनाये रखे।

3 सदव बालको की विभिन्न प्रकार की भिन्नता को दृष्टि मे रखे।

4 सही बात के लिए छात्रो को सहयोग देना।

5 छात्रो के साथ सहानुभूति रखते हुए एक दूसरे को समझना।

6 प्रभावशाली अनुशासन तथा कक्षा नियत्रण।

7 छात्रो की सामाजिक एव भावात्मक आवश्यकताओ को मान्यता देना।

8 अधिगम म आने वाली कठिनाईयो को दूर करना।

9 नतिक मूल्यो से लगाव बनाने हेतु छात्रो को उत्प्रेरित करना।

10 शाला अनुशासन को बनाये रखने हेतु आयोजित क्रियाओ पर नजर रखना।

11 छात्रो की व्यक्तिगत गुप्तता व व्यक्तिगत जीवन स्वय व परिवार का, उसे गुप्त रखना।

(3) प्रभावशाली मानवीय सम्बधो का प्रदर्शन —

1 अन्य लोगो से मधुर सम्बध बनाना।

2 वास्तविक विशिष्टता, छात्रो व प्रौढो म विद्यमान है-स्वीकारना।

3 छात्रों के कल्याण के लिए व्यक्तिगत रुचि लेना।

4 छात्रो से अच्छे सम्बधो को बनाये रखना।

5 सहगामी प्रवृतियो म स्व इच्छा से भागीदार बनने हेतु पथप्रदर्शन करना।

6 सभी से सहयोग भाव से कार्य करना।

7 सब छात्रो के साथ घनिष्ट सह सम्बधो को बनाये रखना।

8 साथ म कार्यरत लोगो से अच्छे सम्बध बनाना।

9 आवश्यकतानुसार अच्छा श्रोता बनना ।
10 किसी की विशिष्ट मान्यता को हृदय से मानना ।
11 सृजनात्मक समालोचना को सहर्ष स्वीकारना ।

(4) समाज से प्रभावशाली व ठोस सह सम्बन्ध –

1 शाला मे सम्पन्न क्रियाकलापो को प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत करना, समझाना ।
2 शाला के लिए अच्छा जन–सम्पर्क एजेण्ट का कार्य करना चाहिए ।
3 सामाजिक प्रवृतियो मे रूचि रखते हुए उसमे भागीदार बनना ।
4 अभिभावको से सहयोगी–भाव रखना ।
5 'अध्यापक–अभिभावक' प्रवृतियो मे रूचि से भागीदार बनना ।
6 समाज मे उपलब्ध साधनो को प्रभावशाली ढग से शाला हेतु उपयोग करवाना
7 स्वय को समाज का अभिन्न भाग समझें और समाज की मान्यताओ को शिरोधार्य ।
8 शिक्षा की उन्नति के कारण व उपयोग से जनता को अवगत कराना ।

(5) प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान करना —

1 प्रत्येक कार्य मे प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया मे निरन्तरता व प्रभावशाली बनाये ।
2 छात्रो का नेतृत्व क्षमता से नेतृत्व प्रदान करना ।
3 समय पर अच्छे निर्णय लेना ।
4 सगठनात्मक क्षमता से विद्यालय मे प्रभावशाली क्रियाकलाप करना ।
5 छात्रो मे निर्णय–शक्ति का विकास करना ।
6 नेतृत्व करने वाले व नतृत्व जिनका किया जा रहा है उसकी उचित भूमिका निभानी चाहिए ।
7 समूह निर्णय के आधार पर 'शाला नियमो' का निर्माण ।
8 स्वय तथा छात्रो के लिए व्यवहारिक उद्देश्यो का ही प्रतिपादन करना ।
9 अपने अनुकरणीय व्यवहार से छात्रो का उदाहरण प्रस्तुत करना ।
10 नये आयामो का अभ्यास एव क्रियान्वित रूप देना ।
11 उचित जिम्मेदारियो का निर्वाह करने हेतु छात्रो को प्रोत्साहित करना ।
12 ऐसे छात्र जो मान्यता चाहते है, उन्हे उचित प्रतिष्ठा प्रदान करना ।
13 सदव अच्छे के बारे मे सोचना ।
14 अपने विचारो को प्रस्तुत करने के उपरान्त समूह–निर्णय का ही स्वीकारना ।
15 छात्र व साथियो की इज्जत करना ।

(6) व्यवसायिक प्रदर्शन —

1 अध्यापक का व्यवसाय मे पहिचान कार्यों से होनी चाहिए।
2 सदद व्यवसायिक उन्नति करत रहना चाहिए।
3 पहनाव अध्यापक लायक हो।
4 सदैव स्पष्ट व प्रभावशाली उच्चारण होना चाहिए।
5 छात्रो की जायज बात को मान लेना चाहिए।
6 शाला की विभिन्न समितियो मे क्रियाशील रहे।
7 अध्यापन व्यवसाय को बड़े आनन्द से व्यतीत करे।
8 पूर्व के व्यवसायिक अनुभवो का होना आवश्यक है।
9 अपना स्वय का शिक्षा-दर्शन हो।
10 शोध के निष्कर्षों को निकालने मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण हो।
11 अध्यापको के लिए आयोजित सेमिनार, वर्क-शोप, सम्मेलन म सभागी बने।
12 जिस ज्ञान से अनभिज्ञ है उसे सहर्ष स्वीकार लेना चाहिए।

(7) अध्यापक व समाज — अध्यापक सदैव शाला व समाज का नजदीक लाने हेतु प्रयत्न करता है- शाला व घरो मे सहकारिता का भाव पैदा करता है। प्रो विल्स ने कहा है-"अध्यापक जो आशा करता है सारे समाज म शक्षिक क्रिया कलाप क माध्यम से नेतत्व की ता उसे समाज का समझना होगा। किस प्रकार के लोग रहते हैं ? उनकी रहन-सहन परिस्थितिया क्या है ? उनकी आशा व आकाक्षा क्या है? शक्षिक कायक्रम के लिए किस समूह का निर्माण किया है? कौन कौनसी शैं प्रवतिया करने से आकस्मिक रुप से बालक बालिकाए अधिगम करन मे सफल हो सकते हैं ? ऐसे बहुत से अध्यापक हुए है जिन्होने वर्षों उस समाज के बालका को शिक्षा दी है लेकिन उस समाज की शैक्षिक घटना का उन्हें पता नही जो प्रभाव डालती है।'1 अत समाजिक परिस्थितियो के बारे म विस्तत ज्ञान होने से ही अध्यापक समाज मे शक्षिक नेतत्व प्रदान करने मे सफल सिद्ध हो सकता है। इसके लिए समाज के व्यक्तिया, अभिभावका से अध्यापक द्वारा घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किय जाने चाहिए।

(8) अध्यापक व निर्देशन सेवा — अध्यापन काय के अतिरिक्त उस निर्देशन परामशदाता के रुप मे छात्रो व अभिभावकों को उनके भावी जीवन की योजना एव व्यवसाय चयन के लिए सहयोग प्रदान करना चाहिए। सहयोगी भाव से अध्यापक छात्रो का दनिक समस्याओ म सहयोग करना। अध्यापक छात्रा को समझना

1 K. Wiles Teaching for Better Schools 2nded Englewood cliffs,N J Printid Hall, Inc 1950 P/263

निर्णय करने की क्षमता आदि गुणो को जानने से पूर्व निर्णय नही लिया जा सकता।"2 अच्छी निर्देशन सेवा के अन्तर्गत- "परामर्श-सेवा' 'व्यवसाय चयन सेवा' 'फोलो अप सर्विस'3 इस निर्देशन सेवा के आयोजन से व्यक्तिगत सम्बन्धो मे विकास होता है- अध्यापक-छात्र, अध्यापको-अभिभावको के बीच।"4

(9) अध्यापक व अनुशासन — प्रधानाध्यापक अनुशासनमय वातावरण बनाये रखने का उतरदायित्व की पूर्ति अध्यापकगण की सक्रियता पर ही निर्भर करनी है। क्योकि अध्यापक ही अधिक समय तक बालको के निकट सम्पर्क मे रहता है। अत इस काय का अध्यापक सुचारू रुप से सम्पन्न कर सकता है।

(10) अन्य काय —इन सभी कार्यो के अतिरिक्त अध्यापक को शाला म उपस्थिति, शुल्क रजिस्टर, मूल्यांकन आदि नित्य प्रति किय गय कार्यो का डायरी में लेखा रखना, पाठ्यक्रम सहगामी प्रवृतियो मे भाग लेना, मीटिंग मे उपस्थित होना, आदि कार्य भी करने पडते है। अध्यापक को इन कार्यों म भी विशेष ध्यान देना चाहिए। उसे प्रधानाध्यापक,सहयोगी अध्यापको, अभिभावको व बालका से अच्छे सम्बन्ध रखने चाहिए जिससे शाला म सामाजिक वातावरण बन।

उपसहार अन्त मे शिक्षको का छात्रो के मस्तिष्को मे केवल ज्ञान ही नही भरना है वरन् उनमे चरित्र की आधारशिला भी स्थापित करनी है यह सुयोग्य, उत्साही एव कर्तव्य-परायण अध्यापक ही सम्पन्न हो सकता है। आज शिक्षक की स्थिति समाज म सम्मान-जनक नही है तभी तो नवयुवक कोई व्यवसाय न मिलने की स्थिति म इसम प्रविष्ट करत। "शिक्षकों पर सीधे शिक्षण का अधिक भार पड गया है कि छात्रो का परामर्श सहायता और विकास के लिए बहुत कम स्थान दिया जाता है। इससे यह अनपेक्षित धारणा बन जाती है कि शिक्षण ठीक रुप म मार्गदर्शन व परामर्श नही देता है।' 4 अत शिक्षा शास्त्रियो एव सरकार को इन व्यवसाय को गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए। जब तक समाज अध्यापक का सम्मान नही करेगा, तब तक राष्ट्र निर्माण एव बालक का सर्वांगीण विकास स्वप्न की कल्पना मात्र रह जायगी। अत अध्यापक की प्रतिष्ठाजनक स्थिति की पुन स्थापना वांछित है।

1 Educational Policies Commission, the Central Purdose of American Education (washington, Dc National Education Association,1961 P/17

2 The curriculum in the Prince George's country Public school P/13

3 California Test Bureau 'Guiding Todays youth' P/33

4 मोइलमन, आथर बी (अनु शान्ति शर्मा) "शाला प्रशासन" पेज/312

मूल्यांकन (Evaluation)

लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer type Questions)

1 प्रधानाध्यापक के नाते विद्यालय में शैक्षिक वातावरण सुधारने के पांच सुझाव दीजिये। (बी एड परीक्षा 1985)

2 एक प्रधानाध्यापक के नाते विद्यालय वातावरण सुधारने के लिए पांच सुझाव दीजिये। (1984)

3 प्रधानाध्यापक की पांच महत्वपूर्ण भूमिकाएं बताइये। (1984)

4 आप एक विद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं। [illegible] अध्यापक से आप कैसे निपटेंगे ? (1983)

5 प्रधानाध्यापक के बिना शाला की प्रगति में कौनसी कठिनाइयां आती हैं। (1983)

6 आप अपने प्रधानाध्यापक के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने हेतु क्या कदम उठायेंगे। (1982)

7 प्रधानाध्यापक और विद्यालय कर्मचारियों के बीच सम्बन्धों के सन्दर्भ में विवेचन कीजिये। (1980)

8 एक प्रधानाध्यापक की अपने अध्यापकों से पांच अपेक्षाएँ वरीयता के क्रम में लिखिये। (बी एड पत्राचार 1980)

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1 अध्यापकों के स्तर में गिरावट के मुख्य तत्व क्या हैं ? विभिन्न शिक्षा आयोगों ने अध्यापकों के स्तर को सुधारने के लिये क्या-क्या सिफारिशें की हैं ? बी एड (1983)

2 "जैसा प्रधानाध्यापक होगा वैसा ही स्कूल होगा।" इस टिप्पणी पर अपनी आलोचनात्मक समीक्षा दीजिये। अपने विद्यालय में एक आदर्श [illegible] वातावरण एवं पारस्परिक सम्बन्धों का निर्माण करने के लिये प्रधानाध्यापक अपने साथी शिक्षकों को किस प्रकार प्रेरित कर सकता है। (1983)

3 'जैसा प्रधानाध्यापक होता है वैसा ही विद्यालय होता है।' विवेचना कीजिये। (1980)

4 आपको एक कुसंचालित सरकारी शाला का प्रधानाध्यापक नियुक्त किया गया है। आप इसे एक आदर्श शाला बनाने में किस प्रकार कार्यारम्भ करेंगे ? (1979)

5 प्रधानाध्यापक की विभिन्न भूमिकाएं क्या हैं तथा एक सत्तात्मक प्रधानाध्यापक का तौर-तरीका जनतन्त्रात्मक प्रधानाध्यापक से किस प्रकार भिन्न होता है। (1978)

अध्याय
२

सह-शैक्षिक व अनुरजनात्मक प्रवृत्तिया
(Co curicular activities)

[विषय-प्रवेश, सह शैक्षिक प्रवतिया का अथ, आवश्यकता और महत्व, उद्देश्य-
प्रकार चयन एव नियोजन के सिद्धात, प्रमुख सह शैक्षिक प्रवत्तिया, अनुरजनात्मक
क्रियाओ का अथ एव क्षेत्र,शिक्षा म अनुरजनात्मक्का यकलापा की आवश्यकता एव
महत्व विविध अनुरजनात्मक प्रवृतिया, अनुरजनात्मक प्रवतिया की व्यवस्था, उपसहार]

विपय-प्रवेश -

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक का सर्वागीण विकास करना है तथा उसे लोकता-
त्रिक व्यवस्था हतु एव योग्य नागरिक बनाना है। अत वतमान युग म पाठयक्रम प्रव-
तियो क समान ही पाठयत्तर प्रवत्तिया (Extra curicular activites) का पाठयक्रम
सहगामी या सह-शैक्षिक प्रवृत्तियो या क्रियाकलापा Co curicular activities के रुप म
स्वीकार किया जाने लगा है। प्रस्तुत अध्याय म इन्ही क्रियाकलापा एव अनुरजनात्मक
प्रवृतियो के विभिन्न पक्षो पर विचार किया जायगा।

प्रवतियो का अथ -

सह शक्षिक (पाठयत्तर) प्रवतियो की सकल्पना अब पाठयक्रम सहगामी प्रवत्तिया
या क्रियाकलापो के रुप म की जाती है। सकल्पना का यह विकास शैक्षिक एव मनोवैना
निक अनुसधाना एव प्रयोगो के आधार पर हुआ है तथा लोकतान्त्रिक व्यवस्था स भी
इस नवीन दृष्टिकोण को प्रेरणा मिली है। पाठयत्तर प्रवतियो के प्रति परम्परागत
दृष्टि क अनुसार इन्ह अतिरिक्त क्रियाकलाप माना जाता था जिन्ह विद्यालय म छात्रा
का समय व्यय म नष्ट होने के कारण उपक्षणीय समझा जाता था क्योकि विद्यालय का
काय छात्रो को केवल पुस्तकीय ज्ञान कराना था। किन्तु शिक्षण प्रक्रिया की नवीन सक
ल्पना के उदय के साथ इन प्रवतियो का पाठयक्रम सहगामी प्रवृत्तियो की श्रेणी मे माना
जाकर उनको विद्यालय म विशिष्ट स्थान दिया गया है।

पाठयक्रम सहगामी प्रवृतियो का परिवर्तित अथ निम्नाकित शिक्षाविदा क मत
से स्पष्ट होता है —

डॉ एस एस माथुर - "बालक का सर्वागीण विकास उसी समय सभव है जबकि

उसे विभिन्न क्रियाओ मे भाग लेने को प्रोत्साहित किया जाये और वे क्रियाए ऐसी हो, जिनको करने से बालक का मानसिक,शारीरिक एव नतिक विकास होसके ।
यदि सहगामी क्रियाओ का सगठन एव सचालन उचित ढग से किया जाये तो वे शक्षिक दृष्टिकोण से बहुत मूल्यवान सिद्ध हो सकती है । अतएव हम ऐसी क्रियाओ को अतिरिक्त क्रियाएँ न कह कर सहगामी क्रियाए कहते हैं ।' 1

पारस नाथ राय — "पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ वे क्रियाएँ हैं जिनके सहयोग से शिक्षण–क्रिया और विद्यालय का वातावरण सजीव हो उठता है तथा छात्रा के सर्वांग विकास मे सहायता मिलती है ।'1

किशनचन्द जैन — "कुछ समय पूव तक छात्र–प्रवत्तिया के लिए पाठयक्रमातिरिक्त प्रवत्ति (Extra curicular)शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है इस शब्द म यह निहित था कि य प्रवत्तिया पाठयक्रम से पृथक तथा असबद्ध है । पाठयक्रम की व्याख्या अब उन सब प्रवतियो एव अनुभवो के रूप म की जाती है जो विद्यालय द्वारा छात्र को उसके विकास हेतु उपलब्ध किय जाते है । अत छात्र प्रवतिया को अब विद्यालय कायक्रम का एक अभिन्न अग माना जाता है । वास्तव म पाठयक्रम सम्बन्धी तथा पाठयत्तर प्रवत्तिया विद्यालय–उद्देश्य की दृष्टि से एक दूसरे की पूरक हैं और दानो को विद्यालय कायक्रम म समान महत्व एव बल देना आवश्यक है ।"2

जॉन डिवी (Johan Dewey) — 'विद्यालय जीवन की तैयारी का स्थान नही, वह तो स्वय ही जीवन है ।'

कोठारी शिक्षा आयोग — "हमारी दृष्टि से विद्यालय पाठयक्रम, विद्यालय के तत्वावधान म उसके अन्दर और बाहर आयोजित होने वाली असख्य प्रवतियो की एक सपूर्णता (Totality)है जिनके द्वारा वह बालको को सीखने के अनुभव प्रदान करती है । इस दृष्टि स पाठयक्रम सम्बन्धी और पाठयेत्तर काय मे अन्तर दृष्टिगत होना समाप्त हो जाता है ।' 3

उपरोक्त कथन शिक्षा के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण के फलस्वरूप पाठयत्तर प्रवत्तियो को पाठयक्रम का अभिन्न अग मानकर उन्ह पाठयक्रम सहगामी प्रवत्तियाँ कहना आवश्यक समझत हैं । प्रवति शब्द भी अग्रेजी के Activities के लिए प्रयुक्त होना उपयुक्त नही है क्योंकि इसका समानार्थक अग्रेजी शब्द Tendency ही अभिव्यक्ति

1 डॉ एस एस माथुर विद्यालय सगठन एव स्वास्थ्य शिक्षा (पेज/197)
2 पारस नाथराय शक्षिक प्रशासन एव विद्यालय सगठन पेज/76
3 किशन चन्द जैन शक्षिक सगठन, प्रशासन एव पयवेक्षण पेज/57
4 कोठारी शिक्षा आयोग पेज/207

(Attiludr) का परिचायक है। अत 'प्रवत्ति' के लिए 'क्रियाकलाप' शब्द अधिक उपयुक्त है। वस्तुत पाठ्यक्रम क्रियाकलाप केवल ज्ञानात्मक उद्देश्य की पूर्ति ही अधिक करते है, ज्ञानोपयोग, अवबोध, कौशल अभिरुचि एव अभिवत्ति सम्बन्धी उद्देश्या पर आधारित विद्यार्थियो मे वाछित व्यवहारगत परिवतन पाठ्यक्रम सहगामी प्रवृतिया अथवा क्रियाकलापो द्वारा ही सभव होत हैं। अत ये परस्पर एक दूसरे के पूरक होते है तथा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलाप पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अग हैं।

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलापो की आवश्यकता एव महत्व —

इस सम्बन्ध म निम्नाकित बिन्दु ध्यातव्य है —

(1) सर्वांगीण विकास — ये क्रियाकलाप विद्यार्थियो के सामाजिक, मानसिक, नैतिक एव शारीरिक विकास म सहायक होकर उनका सर्वांगीण विकास करते है।

(2) नागरिकता की भावना का विकास — लोकतात्रिक जीवन शैली के उपयुक्त नागरिक गुणो का विकास होता है जैसे सहयोग, सेवा, सहकारिता, कत्त व्यपरायणता, श्रम के प्रति निष्ठा आदि गुणो का विकास।

(3) सामाजिकता की भावना का विकास — विद्यार्थी समूह म कायकर समाजोपयोगी गुणो का अजन करत है।

(4) चारित्रिक विकास — इन क्रियाकलापो द्वारा विद्यार्थिया म सत्यता ईमानदारी न्याय नतृत्व आदि चारित्रिक गुणो का विकास होता है।

(5) पाठ्य विषयो मे सहायक — ये क्रियाकलाप पाठ्य विषया को इनम निहित खेल द्वारा शिक्षा तथा क्रियाशीलन द्वारा अधिगम' सिद्धान्ता के कारण रोचक व बोधगम्य बनात हैं तथा कक्षागत क्रियाओ द्वारा सभव न होने वाले वाछित व्यवहारगत परिवतनो की सम्प्राप्ति म सहायक होते हैं।

(6) अवकाश के क्षणो का सदुपयोग — य क्रियाकलाप छात्रा को अपने रुचिकाय (Hobies) कर अवकाश के क्षणो का सदुपयोग करने के अवसर प्रदान करत हैं।

(7) मूल प्रवृत्तियो का उन्नयन या शोधन — ये भी प्रवृतिया सहायक हाती है। इसका विवचन पूव म किया जा चुका है।

(8) बालको की अतिरिक्त शक्ति (Surplus energy) की अभिव्यक्ति — डा एस एस माथुर ने क्रियाकलापा का मनोवज्ञानिक महत्व प्रकट करत हुए कहा है कि "एक किशार के लिए इन क्रियाओ का महत्व और भी अधिक है। किशोर म अन्दर अतिरिक्त शक्ति (Surpuls energy) होती है। सहगामी क्रियाए एक प्रकार की सेफ्टी वाल्व (Safty Valve) है जिनके द्वारा किशोर की अतिरिक्त शक्ति को निकास का मार्ग मिल जाता है।"1

1 पूर्वोद्धृत पज/200

(9) शारीरिक विकास— खेल सम्बन्धी क्रियाकलापों द्वारा बालक का शारीरिक विकास होता है तथा उसमें अंग प्रत्यंगों के सोद्देश्य संचालन का कौशल विकसित होता है। शारीरिक विकास स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

(10) मनोरंजन का साधन – बालकों को इन क्रियाकलापों द्वारा अपनी रुचि के अनुकूल स्वेच्छा से स्वस्थ मनोरंजन होता है तथा कार्य में विविधता आकर मानसिक कार्य की थकान (Fatigu) का निराकरण होता है।

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलापों के उद्देश्य—

इस क्रियाकलापों के उद्देश्य उपरोक्त बतलाये गये उनके महत्व में निहित है प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित है —

(1) व्यक्तित्व का पूर्ण विकास— पुस्तकीय ज्ञान से बालकों का एकांगी विकास होता है। इन विविध प्रकार के क्रियाकलापों द्वारा उनका शारीरिक, मानसिक, नैतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक सर्वांगीण विकास संभव होता है।

(2) समाजोपयोगी नागरिकों का निर्माण — इन क्रियाकलापों द्वारा लोकतान्त्रिक व्यवस्था पर आधारित समाज के अनुकूल गुणों का विकास होता है।

(3) पाठ्यक्रमीय कक्षागत कार्यों का रोचक बनाना— ये क्रियाकलाप पाठ्यक्रमीय कार्य की पूरक है तथा उसे रोचक व बोधगम्य बनाकर अर्जित ज्ञान को व्यावहारिक एवं स्थायी बनाती है।

(4) बालक की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास— इन प्रवृत्तियों द्वारा बालक में अन्तर्निहित क्षमताओं एवं शक्तियों के निदान एवं उनका समुचित विकास होता है।

(5) बालकों की विद्यालय के प्रति रूचि उत्पन्न करना— छोटी आयु के बालकों व किशोरों में ये प्रवृतियां खेल व क्रियाशीलन द्वारा विद्यालय के प्रति रुचि एवं आकर्षण उत्पन्न करने में सहायक होती है। उनमें विद्यालय के प्रति अपनत्व की भावना भी विकसित होती है।

(6) अवकाश का सदुपयोग — ये क्रियाकलाप बालकों को अपने अवकाश के समय का स्वस्थ मनोरंजन द्वारा सदुपयोग करने की प्रेरणा देते हैं।

(7) नेतृत्व एवं उत्तरदायित्व की भावना का विकास विभिन्न क्रियाकलापों के नियोजन क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन में विद्यार्थियों के सहभागित्व द्वारा उनमें नेतृत्व एवं उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है।

(8) स्वानुशासन का प्रशिक्षण —ये प्रवृतियां विद्यालयों में अनुशासनहीनता की समस्या का निराकरण कर विद्यार्थियों को स्वानुशासन (Self Disipline) का प्रशिक्षण

(9) लोकतान्त्रिक जीवन-शैली का विकास—विद्यार्थी परिषद् या संसद एवं विभिन्न

क्रियाकलापों हेतु गठित समितियों के क्रियाकलापों से विद्यार्थी लोकतान्त्रिक संस्थाओं से अवगत होते हैं तथा उनमें लोकतन्त्रात्मक जीवन शैली अपनाने की प्रेरणा मिलती है।

(10) चारित्र विकास—इन प्रवृत्तियों के माध्यम से उनमें अनेक नैतिक गुणों का विकास होता है जिससे उनका चारित्रिक उत्थान होता है।

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलापों के प्रकार —

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलापों (प्रवृत्तियों) का वर्गीकरण कुछ शिक्षाविदों ने उनके उद्देश्यों तथा विकास योग्य क्षमताओं के आधार पर किया है तथा कुछ शिक्षाविद् उन्हें पाठ्यक्रम सहगामी होने के कारण पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों के आधार पर वर्गीकृत करते हैं। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान ने आंतरिक मूल्यांकन योजना (Internal Assessment Schme) का माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक कक्षाओं में समावेश किया है। यही योजना यथासम्भव साधन सुविधाओं के अनुसार प्राथमिक तथा माध्यमिक कक्षाओं में भी प्रयुक्त की जा सकती है। इस योजना के अनुसार क्रियाकलापों का इस प्रकार वर्गीकरण किया है —

(क) रचनात्मक प्रवृत्तियाँ

(1) साहित्यिक—जैसे वाद विवाद, शाला-पत्रिका, अंत्याक्षरी, कविता-पाठ, चित्र कला आदि, (2) सांस्कृतिक-जैसे नाटक, संगीत, नृत्य पर्वोत्सव का आयोजन आदि, (3) विकास संबंधी गोष्ठी (Clubs) —जैसे विज्ञान, वाणिज्य, भूगोल इतिहास आदि के क्लब।

(2) शारीरिक प्रवृत्तियाँ-इसके अंतर्गत वे प्रवृत्तियाँ हैं जिससे शारीरिक श्रम होता हो जैसे खेल स्पोर्टस (Sports) एन सी सी बालचर (Scouting), समाज सेवा, योगासन व भ्रमण आदि।

उपरोक्त प्रवृत्तियों के अतिरिक्त निम्नांकित प्रकार भी हो सकते हैं —

(3) सामाजिक प्रवृत्तियाँ-लोकतान्त्रिक जीवन शैली एवं गुणों का विकास हेतु सामाजिक-प्रवृत्तियाँ जैसे विद्यार्थी परिषद् या संसद, सहकारी समितियाँ, बचत बैंक, स्वानुशासन हेतु गठित समितियाँ, स्थानीय संस्थाओं का परिदर्शन व भ्रमण आदि उपयुक्त रहती है।

(4) रुचि कार्य (Hobies) — संग्रह कार्य (टिकिट, सिक्के, पत्र खनिज पदार्थ आदि का संग्रह), फोटोग्राफी, चित्रकला आदि रुचि कार्य जो अवकाश के क्षणों के सदुपयोग हेतु विद्यार्थियों की रुचि के अनुकूल आयोजित की जायें।

(5) कार्यानुभव यद्यपि कार्यानुभव विद्यालय पाठ्यक्रम का अंग है किंतु उत्पादन एवं

'सीखो-कमो' की दृष्टि से किया गया कार्यानुभव इन प्रवृत्तियो के अन्तर्गत माना जा सकता हैं।

दूसरा वर्गीकरण विषयो की दृष्टि से भी किया जा सकता है जिससे कि ये प्रवृतियां कक्षागत कार्य की पूरक बन कर विद्यार्थियो म वाछित व्यवहारगत परिवर्तन की प्राप्ति मे सहायक बन सकें। जैसे भाषा शिक्षण से लेख, कहानी, एकाकी लेखन प्रतियोगिताए वाद विवाद भाषण, अन्त्याक्षरी कवि सम्मलन, विद्यालय-पत्रिका आदि को सम्बद्ध किया जा सकता है। इसी प्रकार उपरोक्त सभी प्रवृतियो का पाठयक्रम के किसी न किसी विषय से सम्बद्ध कर उन विषयो से सबद्ध कर उन विषयो का शिक्षण रोचक एव प्रभावी बनाया जा सकता है। पारस नाथ राय के शब्दो म-"यदि पाठयक्रम सहगामी क्रियाओ का आयोजन करते समय उनके सम्बन्ध और महत्व को स्पष्ट करदें तथा पाठय विषयो से उनका सम्बन्ध जोड दें तो पाठ सजीव हो उठेंगे और इन क्रियाओ का मूल्य स्वय स्पष्ट हो जायगा।"1

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलापो के चयन एव नियोजन के सिद्धान्त

पाठयक्रम सहगामी क्रियाकलापो (प्रवृतियो) का सगठन जिन सिद्धान्तो के आधार पर किया जाना वाछनीय है, वे निम्नाकित हैं —

(1) **प्रवृतियो का चयन**–प्रवतियो का चयन विद्यालय के उद्देश्य, उपलब्ध मानवीय भौतिक एव वित्तीय ससाधनो (Resources), उनके शक्षिक महत्व, छात्रो की आवश्यकताओ एव रुचियो के आधार पर किया जाना चाहिए।

(2) **समय व स्थान का प्रावधान** विभिन्न प्रवतियो के लिए विद्यालय समय विभाग चक्र मे निश्चित समय का प्रावधान किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रवतियो के सचालन हेतु स्थान या स्थल तथा उसम भाग लेन वाले विद्यार्थियो के समूह या वर्ग का निर्धारण भी आवश्यक है। खेल-कूद प्रवृति विद्यालय समय के बाद आयोजित करना सुविधाजनक रहता है। पूर्व म बतलाया जा चुका है कि पाठयक्रम सहगामी प्रवतियो की पथक से समय-तालिका बना कर विद्यार्थियो एव शिक्षको की सूचनार्थ उपयुक्त स्थान पर प्रदर्शित की जानी चाहिए।

(3) **समस्त विद्यार्थियो की प्रवृतियो मे सह भागत्व (Participation)** प्राय देखा जाता है कि कुछ चुने हुए विद्यार्थियो को ही प्रवृतियो मे भाग लेन का अवसर देकर उपलब्ध धनराशि उन्ही पर खर्च करदी जाती है। यह शैक्षिक दृष्टि से अनुचित है। प्रत्येक बालक के सर्वागीण विकास हेतु सभी बालको को उनकी

1 पूर्वोद्धत पेज/86

रुचि के अनुसार किसी न किसी प्रवृति मे भाग लेने का प्रावधान होना चाहिए। साधन सुविधाओ के अभाव मे तदनुकूल प्रवृतियो का ही चयन किया जाय तथा विद्यार्थियो के वर्ग या समूह बनाकर उनके लिए समय तालिका मे प्रवृतियो का नियोजन किया जाय।

(4) प्रोत्साहन का प्रावधान– प्रवतिया में रूचि के अनुकूल भाग लेने, लोकतात्रिक विधि से उनका सचालन करने तथा स्वानुशासन स्थापित करने की दृष्टि से विद्यार्थियो की सम्बन्धित प्रवृति के नियोजन, कियान्वयन एव मूल्याकन हेतु, शिक्षक को प्रभारी व परामर्शदाता नियुक्त कर, समितिया गठित की जानी चाहिए व विद्यार्थियो को उनके सचालन का दायित्व सापा जाय। प्रवृतियो मे भाग लेन हेतु व अच्छे प्रदर्शन हेतु विद्यार्थियो का प्रोत्साहन व प्रेरणा भी देना आवश्यक होना है।

(5) मार्गदर्शन– प्रत्यक प्रवृति के प्रभारी रूप म ऐस शिक्षक को नियुक्त किया जाना चाहिए जिसकी उस प्रवृति म गति एव रुचि हो ताकि वह छात्रो को मार्गदशन दे सके व प्रवृतियो के शैक्षिक उद्देश्यो की उपलब्धि हा सके।

(6) सतुलित प्रावधान– पाठयक्रम सहगामी प्रवृतियो को इतना महत्व भी न दिया जाये कि वे पाठयक्रमीय क्रियाओ मे बाधक बन जाये। पाठयक्रमीय क्रियाओ व इन प्रवृतियो के प्रावधान मे सतुलित दृष्टिकोण अपनाया जाये।

(7) सभी शिक्षको का सहयोग प्राप्त हो प्राय देखा जाता है कि विद्यालया म केवल पी टी आई (शारीरिक शिक्षा अनुदेशक) या कुछ अध्यापको पर सभी प्रवृतियो के सचालन का भार डाल दिया जाता है। फलत अव्यवस्था अनियमितता व अनुशासनहीनता की प्रवृति पनपन लगती है। अत प्रत्येक अध्यापक का किसी न किसी प्रवृति का प्रभारी या सहायक प्रभारी बनाकर छात्रो क मार्गदशन एव प्रवृति मे सक्रिय भाग लेकर उन्हे प्रोत्साहित करने के लिए सहयोग प्राप्त होना आवश्यक है।

(8) अत्यधिक महत्वाकाक्षी न होना- इन प्रवृतियो के विद्यालय मे समावेश हेतु अत्यधिक महत्वाकाक्षी होना भी हानिकर है। मानवीय और भौतिक ससाधनो की दृष्टि से इन्हे धीरे धीरे लागू किया जाय तथा उत्तरोत्तर उनकी सख्या और गुणात्मकता म वृद्धि की जानी चाहिए।

(9) अध्यापको का प्रशिक्षण- प्रशिक्षण विद्यालयो मे अथवा बाद म आयोजित अल्प कालीन प्रशिक्षण कायक्रमा द्वारा प्रत्यक शिक्षक का विद्यालय की आवश्यकता–

नुसार एक दो प्रवतिया के सचालन म प्रशिक्षित करने की व्यवस्था होनी चाहिए

(10) प्रवति साधन है साध्य नही प्रवतियो द्वारा शक्षिक उद्देश्यो की पूर्ति होना वांछ नीय है। निरद्देश्य, अव्यवस्थित महत्वाकाक्षी एव उपक्षित दृष्टि से इनका प्रायो जन निरथक होता ह। वस्तुत प्रवतियां स्वय साध्य नहीं बल्कि ये शक्षिक लक्ष्या की पूर्ति का एक साधन अथवा माध्यम ह।

(11) विद्यार्थियो की शारीरिक एव मानसिक क्षमतानुकूल होना प्रत्यक कक्षा व आयुवर्ग के बालका की मानसिक व शारीरिक क्षमता के अनुरुप प्रवृत्तियां का प्रावधान और उनका सचालन किया जाना चाहिए।

(12) पुरस्कार की व्यवस्था अच्छा प्रदशन दिखाने वाले, नियमित रूप से भाग लेने वाले तथा उत्तरदायित्व का वहन करने वाले शिक्षको व विद्यार्थियो का प्रोत्साहित करने हेतु उनके लिए कुछ पुरस्कार या प्रमाण पत्र देने की व्यवस्था होनी वांछनीय है।

(13) सततमूल्यांकन— प्रवतियां के स्तर के उन्नयन हेतु प्रत्येक प्रवति का नियमित अभिलेख रखने, विद्यार्थियो के प्रदशन का मूल्याकन करने तथा मूल्यांकन के आधार पर उनमे निरन्तर परिस्कार करते रहने की अत्यन्त आवश्यकता है ताकि वे एक नियमित (Routine) काय न होकर प्रेरणा का स्त्रोत बन सकें।

(14) समयबद्ध(Time bound)कार्यक्रम शिविरा द्वारा प्रकाशित'विभागीय पचाग म निर्धारित समयावधि के अनुसार इन प्रवतियो को समयबद्ध कायक्रम के रूप म आयोजित किया जाये।

(15) स्थानीय समुदायो से सम्पर्क-प्रवतियो के आयोजन म स्थानीय समुदाय से घनिष्ठ सम्बन्धो के विकास का भी ध्यान रखा जाना चाहिए ताकि विद्यालय 'सामुदायिक केन्द्र बन सकें।

उपसहार— अन्त मे माध्यमिक शिक्षा आयोग के शब्दो म पाठयक्रम सहगामी प्रवतियो का महत्व इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है—'पाठयत्तर प्रवृतियां विद्यालय म प्रदत्त शिक्षा का अभिन्न अग होना चाहिए तथा समस्त अध्यापको को ऐसी प्रवतियो म निर्धारित समय अवश्य लगाना चाहिए।"1

---

1 माध्यमिक(मुदालिया) पेज/235

अनुरंजनात्मक प्रवृत्तियां
(Recreation activities)

विषय-प्रवेश —

पूर्व मे इसी अध्याय मे पाठ्येत्तर प्रवृतियो के विवेचन के समय यह स्पष्ट किया जा चुका है कि बालका मे वांछित व्यावहारगत परिवर्तन प्राप्त करने हेतु इन प्रवृ तियो का आयोजन किया जाता है, अत इन्हे पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलाप अधिक उपयुक्त है। यह भी बतलाया गया था कि इनका एक उद्देश्य बालको का अनुरंजन या मनोरंजन करना भी है। कुछ क्रियाकलाप ऐसे होते है जिनका विशुद्ध उद्देश्य मात्र अनुरंजन करना होता है। ऐसी प्रवतियो को अनुरंजनात्मक प्रवतिया मानकर उन्हे भी शिक्षा का अभिन्न अग माना जाना चाहिए। अत अनुरंजन का शिक्षा से सम्बन्ध तथा उसके विविध पक्षो की चर्चा इसी अध्याय के भाग के पृष्ठो मे की जा रही है।

अनुरंजनात्मक क्रियाओ का अर्थ एव क्षेत्र—

अर्थ— 'अनुरंजन' अंग्रेजी शब्द 'Recreation या 'Entertainment' शब्द का पर्याय-वाची शब्द माना जा सकता है जिसका अर्थ होना है मनोरंजन, विनोद, विहार आदि 'मन + अनुरंजन' मिलकर 'मनोरंजन' अर्थात् मन को प्रसन्न करना या आनन्द देना कहलाता है। मनोरंजन प्राय हम अपने अवकाश या फुर्सत के समय Leisure time करते हैं जब हम अपने दैनिक कार्य से मुक्त होकर अपनी रूचि और स्वेच्छा से आनन्द-दायक कार्यो मे प्रवत्त होते है। इसमे हम पर कोई बाहरी दबाव या आग्रह नही होता। इस प्रकार किय गये कार्य ही अनुरंजनात्मक क्रियाएँ होती है।

मनोवैज्ञानिक शीवस (Shivers) के अनुसार "अनुरंजन (Recreation) व्यक्ति मे तनाव को दूर करके सतुलन उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया का अंतिम परिणाम है।" अत व्यक्ति को अनुरंजन की आवश्यकता उस समय होती है जब वह अपनी ऊबBoredom को दूर करना चाहता है। यह ऊब प्राय मानसिक या शारीरिक थकान (Fatigue) के कारण होती है अथवा किसी कार्य की नीरसता (Monotonusness), एकरसता Routine) व निरंतरता से भी उत्पन्न होती है इस ऊब को दूर करने का उपाय (Variety) लाना तथा अनुरंजनात्मक कार्य करना होता है। इस प्रकार अनुरंजनात्मक क्रियाएँ ऊब का निवारण करने हेतु की जाने वाली क्रियाएँ भी हैं।

अत "अनुरंजनात्मक क्रियाएँ वक्रियाएँ हैं जो व्यक्ति की अन्तत प्रेरणा से की जाती हो और जिनके सपादन मे उसे खेल से प्राप्त होने वाले आनन्द की सी अनुभूति होती है।"1

1 पत्राचार पाठ्यक्रम – पाठ सख्या 128 (राज शैक्षिक अनुसधान एव प्रशिक्षण सस्थान उदयपुर) पेज/54

क्षेत्र — अनुरंजनात्मक क्रियाओं का क्षेत्र (Scope) निरंतर विस्तृत होता जा रहा है। अब ये क्रियाएँ विद्यालयों में खेल या पाठ्यक्रम सहगामी प्रवृत्तियों तक ही सीमित न रहकर उसके अंतर्गत विद्यार्थियों की आयु, रुचि, आर्थिक स्थिति, संसाधनों की उपलब्धता, सामाजिक परिवेश आदि के आधार पर अन्य अनेक क्रियाकलापों का समावेश हो गया है। वैज्ञानिक और तकनीकी विकास ने अनुरंजनात्मक प्रवृत्तियों की विविधता में अभिवृद्धि की है।

शिक्षा में अनुरंजनात्मक प्रवृत्तियों की आवश्यकता और महत्व

शिक्षा में अनुरंजनात्मक प्रवृत्तियों की आवश्यकता और महत्व निम्नांकित बिंदुओं से स्पष्ट होता है —

1 आधुनिक युग में वैज्ञानिक विकास के कारण अवकाश (Leisure) का समय अधिक उपलब्ध होता है जिसके सदुपयोग की आवश्यकता है।

2 बालक की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही अनुरंजनात्मक प्रवृत्ति या खेल की ओर होती है जिसका शैक्षिक उपयोग वांछनीय है।

3 चिकित्सा सुविधाओं में प्रगति के कारण रोगों पर काफी सीमा तक नियंत्रण हो जाने से मानव की औसत आयु में वृद्धि हुई है, अतः शिशु, बालक, किशोर, प्रौढ़ तथा वृद्ध सभी आयु के व्यक्तियों के लिए अनुरंजनात्मक क्रियाओं के प्रति स्वस्थ अभिव्यक्ति विकसित करना शिक्षा का कार्य है।

4 वैज्ञानिक और तकनीकि विकास के कारण विशेषीकरण (Specialigation) जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त हो गया है। इससे एक ही प्रकार के कार्य करने से उत्पन्न नीरसता (Monotonusness) का निवारण वांछनीय है।

5 व्यक्ति की ऊब (Boradom) का मनोरंजन द्वारा दूर करना अपेक्षित है।

6 लोकतांत्रिक व्यवस्था में समाज मान्य स्वस्थ मनोरंजन की प्रवृत्तियों में भाग लेने का प्रशिक्षण देना शिक्षा का एक उद्देश्य है।

7 औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के कारण आधुनिक अनुरंजनात्मक प्रवृत्तियों में लोगों की रुचि अधिकाधिक होती जा रही है।

8 आज के व्यस्त संघर्षमय जीवन में मानसिक तनावों (Mental Tensions) को अनुरंजन द्वारा दूर करना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

9 अनुरंजन क्रियाओं द्वारा बालक की अन्तर्निहित क्षमताओं व योग्यताओं का विकास सम्भव है।

10 बालक की मूल प्रवृत्तियों (Instincts) का शोधन व मार्गान्तीकरण (Sublimation) अनुरंजनात्मक प्रवृत्तियों से करना सरल होता है।

विविध अनुरजनात्मक प्रवृतियाँ

विद्यालयो मे आयोजनीय अनुरजनात्मक प्रवतियो को निम्नांकित रूप मे वर्गीकृत किया जा सकता है —

(1) बाल प्रवृतियाँ— छोटी आयु मे बालको के शारीरिक और मानसिक विकास के अनुकूल उनकी सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने हेतु ऐसी सरल एव अनुरज-नात्मक प्रवृतियो का आयोजन किया जाना चाहिए जिन्हे बालक स्वेच्छा से कर सकें तथा जो उनमे आनन्दानुभूति उत्पन्न करे। जैसे विभिन्न खेल, रुचि काय उद्योग, कार्यानुभव की वे प्रवृतियाँ जो पूर्व उल्लेखित अनुरजनात्मक प्रवृतियो की सकल्पना के अनुकूल हो।

(2) रुचि काय — (Hobies) रुचि काय का आधार व्यक्ति की स्वेच्छा से उद्भूत रुचि है। "विभिन्न रुचि लोक" उक्ति के अनुसार यह रुचि काय विभिन्न प्रकार की प्रवतियों के प्रति हो सकती है जैसे सगीत, नृत्य, चित्रकला, साहित्यिक खेल, फोटोग्राफी, तैरना, पर्वतारोहण आदि। रुचि काय अवकाश के समय के सदुपयोग और स्वस्थ मनोरजन के उत्तम साधन है यह स्मरण रखना वाछनीय है कि प्रत्येक प्रकार की पाठ्यक्रम सहगामी प्रवृति या काय रुचिकाय नही हो सकता। रुचिकाय की श्रेणी मे व ही क्रियाकलाप माने जाये गे जिन्हे बालक स्वेच्छा से रुचि पूवक करे तथा जिनसे उसे आनन्द या मनोरजन की उपलब्धि हो।

(3) सगीत और अनुरजन — सगीत नृत्य, अभिनय, मूर्तिकला व चित्रकला की भाति ललित कलाओ के अन्तर्गत माना जाता है। अन्य ललितकलाओ की भाति सगीत भी बालक के लिए विभिन्न अनुरजनात्मक प्रवृतियो मे अवसर प्रदान करता है। सगीत शिक्षा का रोचक साधन भी है। इसीलिये उसे छोटी कक्षाओ के पाठ्यक्रम मे स्थान दिया गया है। सगीत सम्बन्धी प्रवतियो मे बालगीत, समूह-गीत अभिमान गीत, देशभक्ति पूर्ण गीत, प्रार्थना व राष्ट्रगान, पर्वोत्सव पर गाये जाने वाले गीत सम्मिलित किय जा सकते हैं। सगीत के अन्तर्गत कण्ठ एव वाद्य दोनो प्रकार की सगीत सम्बन्धी प्रवृतिया हो सकती हैं।

(4) नृत्य और अनुरजन।— नृत्य व सगीत का घनिष्ट सम्बन्ध होता है। नृत्य उपयुक्त लय एव गति से अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। आयु वर्ग की क्षमता एव रुचि के अनुसार लोक-नृत्य या शास्त्रीय-नृत्य की स्वत प्रेरित प्रवतियाँ बालको के लिए आयोजित की जा सकती हैं। शिशु और बालकों की आधुनिक शिक्षण पद्धति मे ऐसी प्रवृतियो को विशेष महत्व दिया गया है। ये प्रवतिया शिक्षा के साथ अनुरजन का साधन भी होती हैं।

(5) अभिनय एवं अनुरंजन—अभिनय ललित कला का अंग है तथा अभिव्यक्ति का अनुरंजनात्मक साधन है। अभिनय शिक्षण पद्धति (Dramatisation method of teaching) इतिहास, भाषा आदि विषयों की रोचक शिक्षण विधि हो सकती है जिसमें बालक स्वेच्छा से रुचि पूर्वक भाग लेते हैं व उससे आनन्द प्राप्त करते हैं। विद्यालयों में कभी कभी एकांकी, नाटक, मूकाभिनय, छायाभिनय, विचित्र वेश-भूषा प्रदर्शन, छद्म संसद (Mock Parliament) आदि अभिनय सम्बन्धी प्रवृत्तियां अनुरंजन एवं शिक्षा दोनों ही दृष्टियों से आयोजित किया जाना उपयोगी है।

(6) चित्रकला एवं अनुरंजन — चित्रकला भी आत्माभिव्यक्ति का साधन है। अतः यह शिक्षा एवं अनुरंजन की दृष्टि से उपयोगी है। विभिन्न आयु-वर्ग एवं उनकी रुचि के अनुसार रेखांकन, प्राकृतिक चित्रण, पेंटिंग, पेस्टल कलर चित्रांकन, माडल-चित्रकला, कार्टून अंकन आदि चित्रकला की अनुरंजनात्मक प्रवृत्तियाँ आयोजित करना अनुरंजन के उद्देश्य की पूर्ति करती है। शंकर द्वारा आयोजित बालकों की चित्रकला सम्बन्धी प्रतियोगिता में देश विदेश के हजारों बालक स्वेच्छा से भाग लेते हैं। यह बालकों की अनुरंजनात्मक प्रवृत्ति के प्रति उनकी रुचि का परिचायक है। विद्यालय स्तर पर प्रतियोगिताएँ आयोजित कर बालकों को इसके लिए प्रेरणा दी जा सकती है।

(7) साहित्यिक कार्यक्रम और अनुरंजन — पूर्व में अध्याय पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलापों में ऐसी साहित्यिक प्रवृत्तियों का उल्लेख किया जा चुका है जिनसे विद्यार्थियों का पर्याप्त अनुरंजन होता है। विभिन्न पर्वोत्सव कविता पाठ, कवि दरबार, वाद विवाद, भाषण प्रतियोगिता, बाल सभा अन्त्याक्षरी, कवि सम्मेलन आदि साहित्यिक-प्रवृत्तियों में प्रस्तुतकर्ता तथा श्रोता, दर्शक या पाठक दोनों को आनन्द आता है। कक्षा-स्तर के अनुसार इनका आयोजन किया जा सकता है।

(8) उद्योग एवं अनुरंजन — उद्योग सम्बन्धी क्रियाकलाप यद्यपि किसी उद्योग के विधिवत् प्रशिक्षण से सम्बन्धित होते हैं किन्तु उनमें भी अनुरंजन करने की क्षमता है। यदि पर्याप्त सूझ बूझ और कौशल से प्रवृत्तियाँ आयोजित की जाती हैं तो इनमें बालक काफी रुचि लेते हैं और उन्हें आत्म सन्तोष व मनोरंजन की अनुभूति होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि व कुटीर उद्योग के क्रियाकलापों में बालक रुचि से भाग लेते हैं।

(9) कार्यानुभव तथा अनुरंजन —कार्यानुभव का उद्देश्य जीवन की वास्तवि

स्थितिया म किसी उत्पादक काय मे भाग लेना है। यह रुचि काय से भिन्न है, रुचि काय मे आनन्दानुभूति होती है जबकि उत्पादकता स जुडा होने के कारण कार्यानुभव मे ऐसा होना आवश्यक नही है। किन्तु वास्तविक स्थितिया म कार्यानुभव का रुचि से किये जाने पर उसमे भी आत्मसन्तोष मिलता है। अन कार्यानुभव से ही अनुरजन कुछ सीमा तक होता है।

(10) समाजसेवा काय और अनुरजन —यदि नि स्वाथ भाव से सेवा काय किया जाये ता आनन्द दायक होता है। समाज सेवा व अनुरजन एक दूसरे के पूरक हैं। श्रमदान, स्काउटस द्वारा मलो म सहायता-काय, प्रौढ शिक्षा आदि काय समाज सेवा तथा अनुरजन दोनो उद्देश्यो की पूर्ति करती है। एस काय विद्यालयो म आयोजित किय जान चाहिए।

उपरोक्त अनुरजन के प्रकारो के अतिरिक्त विषयवार या पाठयक्रम सहगामी प्रवृत्तियो के आधार पर भी अनुरजनात्मक क्रियाओ का वर्गीकरण किया जा सकता है।

(11) अनुरजनात्मक प्रवृत्तियो की व्यवस्था —शिक्षा म अनुरजन का विशेष महत्व है क्योकि अनुरजन शिक्षा का एक रोचक माध्यम होने के साथ साथ विद्यार्थियो के अवकाश के क्षणो म स्वस्थ मनोरजन के अवसर भी प्रस्तुत करता है। किन्तु यह जब ही सभव होता है जबकि अनुरजनात्मक क्रियाओ की सुनियोजित व्यवस्था हो तथा उनका प्रभावी सचालन हो। विद्यार्थियो के लिए इन प्रवृत्तियो म भाग लेन के लिय उत्प्रेरण भी दिया जाना आवश्यक है। बालको की रुचि का भी ध्यान रखना चाहिए ताकि उनस उन्हे आनन्दानुभूति हो सके। विद्यार्थियो की क्षमता योग्यता तथा विद्यालय म उपलब्ध साधन सुविधाओ के अनुसार इन प्रवृत्तियो का चुनाव किया जा सकता है। शिक्षक का मार्गदशन उत्प्रेरण व प्रोत्साहन इनकी सफल क्रियान्विति मे सहायक होता है। इनकी व्यवस्था मे यह भी सावधानी रखनी है कि सभी छात्रो का इनम नियमित रूप स भाग लेने का अवसर मिल।

उपसहार —

यदि उपरोक्त बातो का ध्यान रखकर अनुरजनात्मक प्रवृत्तियो का आयोजन किया जाता है तो ये प्रवृत्तियाँ शिक्षाप्रद होने के साथ-साथ आनन्द देने वाली भी हो सकती है जो इन प्रवृत्तियो का मूल उद्देश्य है। शिक्षको का विद्यार्थियो के स्तर के अनुकूल अनुरजनात्मक प्रवृत्तियो के अवसर प्रस्तुत करने का प्रयास करना चाहिए।

मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1 विद्यालय में सहगामी क्रियाओं के पांच लाभ लिखिये। (बी एड 1984)
2 सहगामी क्रियाओं की विद्यालय में क्या भूमिका है ? (,, 1981)
3 आप विद्यार्थियों में साहित्यिक रूचि का विकास करने हेतु कौन कौनसी विशिष्ट प्रवृतियाँ आयोजित करना चाहेंगे ? (,, 1978)
4 विद्यार्थियों को नियमित रूप से खेलने की प्रवृति उत्पन्न करने के लिए आप क्या प्रयास करेंगे ? (,, 1978)
5 विद्यालय में अनुरंजनात्मक क्रियाओं की क्या उपयोगिता है ?

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न–

1 आप विद्यार्थियों के नेतृत्व के गुणों को विकसित करने हेतु कौन–कौनसी प्रवृतियाँ एवं शाला में आयोजित करना चाहेंगे ? (बी एड 1979)
2 "पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए उपयोगी होती हैं।" आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ? युक्ति युक्त विवेचना कीजिए।
3 शिक्षा में मनुरंजनात्मक प्रवृतियों की आवश्यकता और महत्व पर प्रकाश डालें।

अध्याय
३

स्वास्थ्य एव व्यायाम शिक्षा
(Health & Physical Education)

[विषय प्रवेश स्वास्थ्य शिक्षा का अर्थ, स्वास्थ्य शिक्षा का महत्व एव आवश्यकता, बालक के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक (Factors) स्वास्थ्य के प्रकार, शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य का अधिगम पर प्रभाव, उपसहार

व्यायाम का अर्थ एव आवश्यकता, व्यायाम के प्रकार एव पद्धतियाँ – 1 पाश्चात्य पद्धति के व्यायाम (क) पी टी (ड्रिल), (ख) खेल, (ग) एथलेटिक्स , (घ) जिमनेस्टिक (Gymanastics) 2 भारतीय पद्धति के व्यायाम (क) कसरत कुश्ती, (ख) योगासन यौगिक आसनो के प्रकार एव लाभ, उपसहार परीक्षोपयोगी प्रश्न]

(अ) स्वास्थ्य शिक्षा

विषय प्रवेश

शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है जिसके अन्तर्गत उसके शारीरिक मानसिक,नैतिक आदि सभी पक्षो का विकास सम्मिलित है। सर्वांगीण विकास की दृष्टि से बालक का शारीरिक और मानसिक रूप मे स्वस्थ रहना अत्यन्त आवश्यक है। उसके लिये विद्यालयो म बालको को स्वास्थ्य शिक्षा अथवा निर्देशन (Guidance) देना वांछनीय होता है। प्राय देखा जाता है कि विद्यालयो मे स्वास्थ्य शिक्षा को उचित महत्व नही दिया जा रहा है। इस उपेक्षा और उदासीनता का उल्लेख करते हुए माध्यमिक शिक्षा आयोग ने कहा है— देश के युवको के शारीरिक कल्याण का मुख्य दायित्व राज्य का होना चाहिए तथा जीवन की इस अवधि मे शारीरिक कल्याण के सामान्य स्तर मे नीचे गिरने से गम्भीर परिणाम होते हैं — ये रोग उत्पन्न कर सकते है या कुछ रोगो से ग्रस्त होने की आशका बनी रहती है। अत शारीरिक स्वास्थ्य और स्वास्थ्य शिक्षा का इतना महत्व हो जाता है जिसकी उपेक्षा किसी राज्य को नही करनी चाहिए।" स्वास्थ्य शिक्षा के अतर्गत शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रहने हेतु बालको को निर्देशन दिया जाता है जिसका उत्तरदायित्व शिक्षको का होता है। डा एस एस माथुर के अनुसार "विद्यार्थी के स्वास्थ्य को अच्छा रखने का उत्तरदायित्व अध्यापक पर अधिक रहता है परन्तु अध्यापक इस दायित्व का उसी समय निभा सकता है जबकि वह स्वास्थ्य विज्ञान से परिचित हो।" शिक्षक प्रशिक्षण सस्थाओ मे प्रशिक्षणार्थियो का इसका ज्ञान दिया जाना अपेक्षित है।

गत अध्यायो मे पाठशाला प्रबन्ध से सभी आवश्यक पक्षो का विस्तार से विवेचन

किया जा चुका है । प्रस्तुत तथा आगामी अध्यायों में स्वास्थ्य शिक्षा के महत्व को देखते हुए उस पर विचार किया जा रहा है ।

स्वास्थ्य शिक्षा का अर्थ

स्वास्थ्य शिक्षा का अर्थ प्रकट करते हुए डा एस एम माथुर ने कहा है-"स्वास्थ्य शिक्षा से तात्पर्य उन सभी साधनों से है जो व्यक्ति को स्वास्थ्य के सम्बन्ध में ज्ञान प्रदान करते हैं । विद्यालय में स्वास्थ्य शिक्षा देने का प्रयोजन यह है कि छात्रों में इसके द्वारा स्वस्थ आदतों का निर्माण हो तथा वे अपना स्वास्थ्य सुन्दर बनाये रखने के लिए प्रयत्न करते रहें ।

एम एस रावत ने अपनी पुस्तक "स्कूल स्वास्थ्य विज्ञान" में स्वास्थ्य शिक्षा को उसके उद्देश्यों के रूप में परिभाषित करते हुए कहा है—"स्वास्थ्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्र छात्राओं के चरित्र तथा व्यवहार में स्वास्थ्य सम्बन्धी परिवर्तन लाना है। स्वास्थ्य शिक्षा का उद्देश्य छात्र को वैज्ञानिक ढंग से रहना, सुचारू रूप से जीवन व्यतीत करना तथा सदैव सुखी और प्रसन्न रहना सिखाना है । साधारण विश्लेषण किया जाय तो यह प्रतीत होता है कि स्वास्थ्य शिक्षा के दो मुख्य उद्देश्य हैं –

(1) स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान (Knowledge about Health)
(2) स्वास्थ्य के प्रति वास्तविक अभिरुचि होना (Proper Attitude for Health)"

जे पी भरी ने स्वास्थ्य शिक्षा अथवा निर्देशन का अर्थ इस प्रकार व्यक्त किया है "स्वास्थ्य निर्देशों से बालक को उन सब बातों की जानकारी दी जाती है जिनकी समाज तथा जाति के वर्तमान तथा भविष्य के स्वास्थ्य को बनाये रखने की आवश्यकता होती है।

डी पी विजयवर्गीय एवं रामदत्त शर्मा के शब्दों में — "विद्यालयों में विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास की ओर ध्यान दिया जाने के निमित्त बालकों के बौद्धिक विकास की दृष्टि से विषयाध्यापन किया जाता है वैसे ही उनके शारीरिक विकास के निमित्त खेलकूद व व्यायाम की व्यवस्था की जाती है और उनके व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्वास्थ्य की रक्षा कैसे की जानी चाहिए इसकी जानकारी दी जाती है । विद्यालयों के लिए इस प्रकार स्वास्थ्य सम्बन्धी जो सैद्धांतिक और प्रायोगिक ज्ञान दिया जाता है उसे स्वास्थ्य रक्षा के विषय में सम्मिलित किया जाता है ।'

उपरोक्त परिभाषाओं से स्वास्थ्य शिक्षा की अवधारणा में निम्नांकित तत्व विद्यमान हैं —

(1) विद्यालयों में बालकों के सर्वांगीण विकास हेतु स्वास्थ्य शिक्षा दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है ।

(2) स्वास्थ्य शिक्षा के अन्तर्गत बालकों स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान देना तथा उनमे स्वास्थ्य के प्रति उचित अभिवृत्तियो का विकास करना।

(3) स्वास्थ्य शिक्षा से बालकों मे स्वस्थ आदतो का निर्माण होता है।

(4) इसके द्वारा व्यक्तिगत एव सामूहिक स्वास्थ्य की रक्षा होती है।

(5) यह बालको को समाज तथा राष्ट्र के वर्तमान तथा भविष्य के स्वास्थ्य को को बनाये रखने हेतु सक्षम बनाती है।

(6) इसके अन्तर्गत शारीरिक व मानसिक दोनो प्रकार की स्वास्थ्य की रक्षा हेतु निर्देशन दिया जाता है।

(7) इसके क्षेत्र मे मानव-शरीर की रचना व कार्य प्रणाली, बालक के शारीरिक एव मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्व, बाल्यावस्था के विशेष एव सामान्य रोग कुपोषण से बचाव तथा सतुलित आहार का ज्ञान, शारीरिक अगो की स्वच्छता प्राथमिक उपचार, विद्यालय स्वास्थ्य सेवाएँ तथा स्वास्थ्य परीक्षण सम्मिलित हैं।

स्वास्थ्य शिक्षा का महत्व एव आवश्यकता—

स्वास्थ्य शिक्षा की उपरोक्त अवधारणा मे इसकी आवश्यकता उद्देश्य एव महत्व निहित है। स्वास्थ्य शिक्षा के महत्व एव आवश्यकता सम्बन्धी निम्नांकित बिंदु उल्लेखनीय है

(1) बालको के उचित विकास हेतु स्वस्थ आदतो का निर्माण - प्राथमिक स्तर के 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के बालको के लिये विशेषत स्वास्थ्य शिक्षा की आवश्यकता एव महत्व है क्योकि इसी अवधि मे बालक का शारीरिक मानसिक, सामाजिक एव सवेगात्मक विकास द्रुतगति से होता है जिसमे स्वस्थ आदतो के निर्माण मे विशेष सहायता मिलती है।

(2) सामान्य एव सक्रामक रोगो मे सुरक्षा इसी आयु मे बालको का विभिन्न सामान्य एव सक्रामक रोगो से सुरक्षा की आवश्यकता होती है। स्वास्थ्य शिक्षा इस आवश्यकता की पूर्ति करती है।

(3) समुचित विकास हेतु कुपोषण एव सन्तुलित आहार का ज्ञान – अत्यन्त आवश्यक है। स्वास्थ्य शिक्षा से पोषण सम्बन्धी कार्यक्रमो मे सहायता मिलती है।

(4) अधिगम मे सहायक—सीखने अथवा अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने मे बालक का शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य का विशेष महत्व है। इस दृष्टि से

स्वास्थ्य शिक्षा अधिगम में सहायक होती है।

(5) व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक स्वच्छता (Hygene)—स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा शारीरिक अंगो की स्वच्छता तथा विद्यालय मे अन्य लोगो की दृष्टि से वातावरण की स्वच्छता सम्बन्धी उचित अभिवृत्तियो एवं आदतो का विकास बालकों में होता है।

(6) आकस्मिक दुर्घटना मे प्राथमिक उपचार—किया जाना अत्यन्त आवश्यक है ताकि डाक्टर की चिकित्सा के पूर्व रोगी की जान बचाई जा सके। छात्रा का स्वास्थ्य शिक्षा के अन्तर्गत इसका ज्ञान कराया जाता है।

(7) मानसिक स्वास्थ्य मे सहायक—बालको मे अनेक कारणों से कुसमायोजन से उत्पन्न अनेक मानसिक विकृतियाँ हो जाती हैं। स्वास्थ्य शिक्षा बालकों मे आत्म विश्वास, दृढ इच्छा शक्ति तथा सामाजिकता का विकास कर उनके मानसिक स्वास्थ्य एव व्यक्तित्व समायोजन म सहायक होती है।

उपरोक्त कुछ प्रमुख बिंदु स्वास्थ्य शिक्षा की आवश्यकता एव महत्व को प्रकट करते हैं। शिक्षको का इस दृष्टि से दायित्व विशेष होता है। डा एस एस माथुर के शब्दो मे—"प्रत्येक शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह विद्यार्थियो मे स्वस्थ भावना का निर्माण और करे उन्हे स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करके स्वस्थ आदतो एव दृष्टि कोण को बनाने मे सहायता प्रदान करे।'

बालक के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक (Factors)

बालक के स्वास्थ्य (शारीरिक और मानसिक) को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नांकित हैं —

(1) दूषित वातावरण —घर तथा विद्यालय के दूषित वातावरण का प्रभाव बालक के स्वास्थ्य पर सर्वाधिक पडता है।

(2) वंशानुक्रम – (Heredity) कुछ स्वास्थ्य सम्बन्धी विकार वंशानुगत होते हैं।

(3) अध्यापक का व्यवहार — बालक के स्वास्थ्य को अध्यापक का व्यवहार भी काफी सीमा तक प्रभावित करता है।

(4) कुपोषण — बालक के शारीरिक विकास हेतु उसे खाद्य पदार्थो से उचित मात्रा म भोजन के तत्व कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन लवण, विटामिन, वसा व जल मिलने चाहिए जिससे उस आयु क अनुसार ऊर्जा उत्पादन हेतु कैलोरीज (Calories) प्राप्त हो सके। कुपोषण से अनेक रोग उत्पन्न होते है। सन्तुलित भोजन व सुपोषण से बालक का स्वास्थ्य ठीक रहता है।

(5) व्यायाम खेल-कूद एव मनोरंजन के अवसर — बालक के स्वास्थ्य के लिये

विशेष महत्व रखते हैं।

(6) सामान्य एव सक्रामक रोग — बालको के स्वास्थ्य को खराब कर देते हैं। अत इनकी रोकथाम, उचित चिकित्सा एव परिचर्या की आवश्यकता है।

(7) स्वास्थ्य परीक्षण —नियमित रूप से किया जाना चाहिए ताकि बालको के रोगो और विकृतियो का पता चल सके और उनके अभिभावकों को चिकित्सा हेतु परामर्श दिया जा सके। इसके अभाव मे बालको के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

(8) अच्छी आदते तथा अभिवृतियाँ —बालको मे स्वस्थ जीवन हेतु अच्छी आदतो और अभिवृतियो का निर्माण किया जाना वाछनीय है। बुरी आदतो व अभिवृतियो से उनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है।

(9) मानसिक स्वास्थ्य — मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहने से बालको का प्रत्येक काय और परिस्थिति से सुसमायोजन होता है। इसके अभाव मे कुसमायोजन के कारण बालको में अनेक मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अत ऐसे छात्रो का पता लगा कर उनके रोगो का निराकरण करना आवश्यक है।

(10) वैयक्तिक निर्देशन (Personal Guidance) —वैयक्तिक विभिन्नताओ, घरेलू वातावरण तथा शैक्षिक कारणो से बालको को अनेक कठिनाईयो एव समस्याओ का अनुभव होता ह जिनका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पडता है। अत वैयक्तिक निर्देशन द्वारा बालको की समस्याओ का समाधान किया जाना अपेक्षित है।

(11) व्यक्तिगत एव सामूहिक स्वच्छता—व्यक्तिगत शारीरिक अ गो की स्वच्छता तथा शाला एव घर पर सभी लोगों की स्वच्छता बालक के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

(12) शारीरिक आसन (Postures)—अनेक शारीरिक विकृतियो एव मानसिक व शारीरिक थकान का कारण बालको के बैठने, खडे होने पढने या लिखने के अनुचित शारीरिक आसन होते हैं जो अनुपयुक्त फर्नीचर तथा शुद्ध वायु, जल व प्रकाश के अभाव से बन जाते है। अत इन कारणो का निवारण कर बालको को उचित आसनो की आदतें डाली जानी चाहिए।

वालक के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले उपरोक्त कारणो तथा स्थानीय परिस्थिति से उत्पन्न विशेष कारणो पर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए।

स्वास्थ्य के प्रकार —

स्वास्थ्य के मुख्यत दो प्रकार है (1) शारीरिक स्वास्थ्य (2) मानसिक स्वास्थ्य

शारीरिक स्वास्थ्य के विषय के अन्तर्गत खेलकूद और शारीरिक शिक्षा के सन्दर्भ में विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। व्यायाम के सन्दर्भ में इसकी और चर्चा की जायेगी। यहां मानसिक स्वास्थ्य के अर्थ व उसके महत्व को स्पष्ट करना आवश्यक है।

मानसिक स्वास्थ्य — मानसिक स्वास्थ्य की निम्नांकित परिभाषाएं उल्लेखनीय हैं – क्रो तथा क्रो (Crow and Crow) "मानसिक स्वास्थ्य मानव कल्याण का विज्ञान है जो मानव सम्बन्धों के समस्त प्रक्षों को अपने में समाहित करता है।

डा. एस.एस. माथुर —"हम मानसिक स्वस्थ व्यक्ति उसी को कह सकते है, जिसके सम्पूर्ण अर्जित या वंशानुगत गुण पूर्ण रूप से विकसित होते हैं और उद्देश्य को सामने रखते हुए इनका अन्य वस्तुओं के साथ सामंजस्य रहता है। मानसिक स्वस्थ से तात्पर्य एक आकर्षक व्यक्तित्व वाला व्यक्ति नहीं, परन्तु वह व्यक्ति मानसिक स्वस्थ कहे जाते हैं जो सामाजिक हो तथा जिसकी इच्छा शक्ति दृढ़ हो और जिसमें आत्म-विश्वास हो।

मानसिक आरोग्य विज्ञान के दो मुख्य कार्य हैं—

(1) मानसिक विकृति को रोकना, और (2) मानसिक विकृति का उपचार करना।

इन परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मानसिक स्वास्थ्य बालक की मानसिक विकृतियों के कारण उत्पन्न उसके कुसमायोजन का निराकरण कर उसके व्यक्तित्व के समायोजन में सहायक सिद्ध होता है तथा उसमें आत्म विश्वास कर उत्पन्न उसके अधिगम को प्रभावी बनाता है।

शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य का अधिगम पर प्रभाव

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का अधिगम या सीखने पर प्रभाव को स्पष्ट करते हुए डा. रामपालसिंह वर्मा तथा राधावल्लभ उपाध्याय का कथन है—"शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य भी सीखने की प्रक्रिया पर प्रभाव डालते हैं। जो बालक शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं उनकी ज्ञान या क्रिया को सीखने में रुचि रहती है और शीघ्र सीखते हैं। इसके विपरीत सदैव रुग्ण रहने वाले छात्र शारीरिक दृष्टि से इतने कमजोर होते हैं कि वे कक्षा में किसी कार्य को सीखते समय शीघ्र थकान अनुभव करने लगते है अथवा अनियमित रहने के कारण अध्यापक द्वारा सिखाये गये ज्ञान में तारतम्य न बिठा सकने से उस पाठ में रुचि नहीं ले पाते हैं। इसके साथ ही मानसिक रोगों से पीड़ित छात्रों से तो यह आशा ही नहीं की जा सकती कि वे सीखने में कुशल होंगे।' अतः प्रभावी अधिगम की दृष्टि से यह आवश्यक है कि बालकों को शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रखा जाये तथा इस दृष्टि से रोगी बालकों के निदान चिकित्सा तथा उनके प्रति सहानुभूति पूर्ण व्यवहार एवं उनके व्यक्तिगत निर्देशन पर ध्यान दिया जाये।

उपसहा —

स्वास्थ्य शिक्षा के अर्थ, महत्व और उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए विद्यालयो मे इसके शिक्षण की उपयुक्त विधिया पर भी ध्यान दिया जाना वाछनीय है। विजयवर्गीय एव शर्मा के शब्दो मे —"स्वास्थ्य रक्षा का ज्ञान केवल सिद्धाता की शिक्षा से ही नही दिया जा सकता। इसे प्रत्येक बालक मे उचित स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतो को विक-विकसित करके ही दिया जा सकता है। इस प्रकार व्यक्तिगत शिक्षण के रूप मे ही अधिक उपयोगी एव हितकर हो सकता है।" स्वास्थ्य शिक्षा प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष दोनो विधिया से ही दी जा सकती है। सामान्य विज्ञान, शारीरिक शिक्षा आदि विषयो के अन्तर्गत स्वास्थ्य सम्बन्धी सद्धातिक ज्ञान देने के अतिरिक्त विद्यालय के सभी क्रियाकलापो तथा दृश्य श्रव्य सामग्री के माध्यम से बालको मे अप्रत्यक्ष रूप से वाछित स्वस्थ आदतो एव अभिवृत्तियो का विकास किया जाना चाहिए।

(ब) व्यायाम

विषय प्रवेश

विद्यालयो मे स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रमो मे व्यायाम का प्रमुख स्थान है। भारतीय शिक्षा मे शारीरिक शिक्षा व व्यायाम का महत्व प्राचीन काल से विद्यमान है जो व्यायाम की देशी पद्धति के रूप मे विकसित हुआ था। देश मे अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के प्रचलन के साथ ही विद्यालयो मे व्यायाम की पाश्चात्य पद्धति का समावेश हुआ जिसका प्रभुत्व आज भी बना हुआ है। व्यायाम की देशी पद्धति मे शारीरिक तथा मानसिक दोनो प्रकार के विकास पर बल दिया जाता था किन्तु पाश्चात्य पद्धति मे व्यायाम मात्र शारीरिक विकास ही करता है। विद्यालयो मे देशी पद्धति के व्यायाम के प्रति उपेक्षा विचारणीय है। व्यायाम हेतु विद्यालयो मे व्यायाम प्रशिक्षक, स्थान एव उपकरणो के अभाव मे देशी व्यायाम पद्धति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। बालक के सर्वांगीण विकास हेतु व्यायाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 1956 मे भारत सरकार द्वारा निर्मित 'शारीरिक शिक्षा की राष्ट्रीय योजना' इस महत्व को इस प्रकार प्रकट किया गया है —"शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य बालक को शारीरिक मानसिक एव सवेगात्मक रूप से सक्षम बनाना तथा उसकी उन व्यक्तिगत तथा सामाजिक गुणो के विकास करना होना चाहिए जो उसे दूसरो के साथ प्रसन्नता से रहने तथा उसे एक अच्छा नागरिक बनाने मे सहायक हो सके।" अत विद्यालयो मे जो भी व्यायाम की पद्धति अपनाई जाय वह इस लक्ष्य की पूर्ति मे सहायक होनी चाहिए। प्रस्तुत अध्याय मे व्यायाम के उन प्रकारो का विवेचन किया जायगा जो सह-शैक्षिक प्रवृतियो के अन्तर्गत बतलाये गये खेल कूद के अतिरिक्त है।

व्यायाम का अर्थ एव आवश्यकता

व्यायाम की वतमान में प्रचलित भ्रान धारणा तथा उसका सही समन्वय स्पष्ट करते हुए कोठारी आयोग न कहा है— "शारीरिक शिक्षा सम्बन्धी हान की सरकारी योजना मे यह प्रवति देखन को मिलती है कि शारीरिक शिक्षा म शरीर का स्वस्थ्य रखन पर ही बल दिया जा रहा है और उसके मानसिक मूल्य को भुलाया जा रहा है। यह स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है कि शारीरिक शिक्षा से न केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ही अच्छा प्रभाव पडता है, बल्कि शारीरिक क्षमता, मानसिक गुणा और परिश्रम दल-भावना नेतृत्व, नियम का अनुसरण विजय और पराजय म समभाव जैसे कुछ उच्च गुणा के विकास मे सहायता मिलती है।' इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि शारीरिक शिक्षा या व्यायाम न केवल शारीरिक विकास के लिए आवश्यक है बल्कि यह मानसिक एव सवेगात्मक विकास हेतु उतना ही अपेक्षित है। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। इस प्रकार व्यायाम बालक की अधिगम प्रक्रिया में भी सहायक होता है। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने इस तथ्य को प्रकट करत हुए कहा है - "यह(व्यायाम) न केवल शारीरिक धारणा से अपरिहार्य है बल्कि इसलिए भी कि शारीरिक स्वास्थ्य पर पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य निभर रहता है। अत समस्त विद्यालयो का यह दायित्व होना चाहिए कि उनके बालक स्वस्थ रहे ताकि वे अपनी शिक्षा से अधिकाधिक लाभान्वित हो सकें।"

व्यायाम की आवश्यकता और महत्व

व्यायाम की आवश्यकता और महत्व उसके निम्नाकित लाभो से स्पष्ट होता है -

(1) व्यायाम से रक्त-भ्रमण व हृदय गति तीव्र होकर शरीर की मांसपेशियाँ भोजन के पौष्टिक तत्वो को अधिक ग्रहण कर शक्तिशाली बनती है।

(2) नियमित व्यायाम से सभी अग पुष्ट एव सुदर होते हैं।

(3) व्यायाम द्वारा तेज सास लेने व छोडने से शरीर क्रमश अधिक आक्सीजन ग्रहण करता है तथा कार्बन डाइआक्साइड छोडता है जिससे मांसपेशिया अधिक विकसित होती हैं।

(4) व्यायाम से वक्ष(Chest) सम्बन्धी रोग नही होते।

(5) इससे शरीर हृष्ट पुष्ट व आकर्षक हो जाता है।

/4

(6) यह पाचन क्रिया एवं मल-मूत्र उत्सर्जन क्रिया को ठीक करता है।

(7) इससे मानसिक थकान (Fatigue) तथा ऊब (Boredom) कम होती है।

(8) सुधारात्मक व्यायाम से बालको के अनुचित आसन (Postures) ठीक हो जाते हैं।

(9) व्यायाम मासपेशियो व मस्तिष्क मे उचित सतुलन व समन्वय उत्पन्न करता हैं।

(10) इससे अनेक सामाजिक एव नागरिक गुणो का विकास होता है।

(11) व्यायाम से बालको मे स्फूर्ति व ताजगी पैदा होती है।

(12) व्यायाम मे बालक की रुचि होने से वह बालक का मनोरंजन भी करता है।

(13) यह बालक मे स्वानुशासन की भावना विकसित करता है।

(14) इससे बालक को व्यायाम विशेष मे दक्षता प्राप्त होती है।

(15) व्यायाम बालक को सयमी बनाकर उसका चारित्रिक विकास करता है।

व्यायाम के प्रकार एव पद्धतियाँ

व्यायाम की मुख्यत निम्नाकित दो पद्धतियाँ देश मे प्रचलित हैं जिनकेवि भिन्न प्रकार इस प्रकार है —

(1) व्यायाम की पाश्चात्य पद्धति —के अ तगत निम्नाकित प्रकार प्रमुख है —

(क) पी॰ टी॰ अथवा ड्रिल — पी टी (Physical Training) अथवा ड्रिल (Drill) विद्यालयो म शारीरिक शिक्षा की सर्वाधिक प्रचलित पाश्चात्य पद्धति का व्यायाम है जिसके लिये एक शारीरिक प्रशिक्षण अनुदेशक (Physical Training Instractor या P T I) प्रत्यक विद्यालय मे होता है तथा इस हेतु एक कालाश का प्रावधान समय विभाग चक्र मेभी किया जाता है। पी टी शारीरिक अ ग सचालन की विभिन्न मुद्राओं का सामूहिक रूप स अभ्यास होती है जिसका उद्देश्य विभिन्न अ गो को चुस्त व पुष्ट करना होता है और ड्रिल छात्रो की सामूहिक परेड है जो छात्रो को समूह मे अनुदेशक के निर्देशानुसार अनुशासित रूप म गतिशील होना सिखाती है। जब पी टी या ड्रिल बैंड या सगीत के साथ होती है तो छात्रो मे लय, गति एव सौन्दर्य बोध का विकास होता है।

(ख) खेलपाश्चात्य पद्धति के खेलो का विवेचन सह-शैक्षिक प्रवृत्तियो के

अन्तगत वाले अध्याय मे किया जा चुका है। खेल भी व्यायाम के रोचक साधन हैं।

(ग) एथलेटिक्स (Athletics)—इसके अन्तगत लम्बी कूद, ऊँची कूद दौड़, बाधा दौड़ पाल वाल्ट, जवेलिन, चक्का तथा गोला फेंक, रस्साकसी, रिले दौड़ आदि व्यक्तिगत या सामूहिक व्यायाम हैं। ये स्वस्थ स्पर्धा व प्रतियोगिता को प्रोत्साहित करते हैं। इसके लिये उपयुक्त ट्रैक, स्थल तथा उपकरणों की आवश्यकता होती है।

(घ) जिमनैस्टिक्स (Gymnastics)—इसके लिये विशेष व्यायामशाला एव उपकरणों (परेललबार हारीजा टलबार रिंग आदि) की आवश्यकता हाती हैं। प्रशिक्षित जिमनास्टिक (Coach) के निर्देशन म विद्यार्थी विभिन्न व्यायाम (exercises) सीखते हैं। इनस शरीर सतुलन व नमनीयता के साथ शक्ति का विकास होता है।

(2) भारतीय व्यायाम पद्धति —के अन्तर्गत निम्नांकित प्रकार प्रमुख हैं —

(क) कसरत-कुश्ती — पाश्चात्य पद्धति की कुश्ती फोम रबर के गद्दा पर विशेष पोशाक पहन कर फ्री स्टाइल प्रकार की होती है जबकि भारतीय पद्धति में जमीन पर अखाड़ा बनाकर केवल लगोट-कच्छा पहनकर पहलवान जोर करते हैं। देशी कसरतो मे दण्ड-बैठक, मुग्दर घुमाना आदि प्रमुख है। भारतीय पद्धति में विशेष उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती और न अधिक स्थान की ही। अत विद्यालयों मे इनका प्रचलन होना चाहिए।

(ख) यौगिक आसन —यह भारतीय पद्धति का अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित व्यायाम है जिससे शारीरिक विकास के अतिरिक्त मानसिक और सवेगात्मक विकास भी होता है। इसका विस्तार से विवेचन आगे किया जा रहा है।

भारतीय एव पाश्चात्य पद्धति के उपरोक्त प्रकार के व्यायामों के अतिरिक्त कुछ और भी व्यायाय हैं जैसे मुक्केबाजी (Boxing), तैराकी (Swimming) पर्वतारोहण (Mountaineering), गोताखोरी (Diving), धनुर्विद्या (Archery), घुड़सवारी (Horse riding) आदि। साधन सुविधाओं के अनुसार इन्हें शिक्षा सस्थाओं म अपनाया जा सकता है।

यौगिक व्यायाम (योगासन)

यौगिक व्यायाम भारतीय योगदर्शन का अभिन्न अग है। योगदर्शन के

अनुसार अष्टांग योग के अंतर्गत आठ अनुष्ठान इस प्रकार हैं — (1) यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह), (2) नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय व ईश-प्रार्थना), (3) आसन, (4) प्राणायाम, (5) प्रत्याहार, (6) धारणा, (7) ध्यान, तथा (8) समाधि। इस प्रकार योगासन भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं जिनसे व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास होता है। विद्यार्थी जीवन में इनका विशेष महत्व है। अनेक रोगों की चिकित्सा में भी योगासन सहायक होते हैं। विशेष स्थान, उपकरण व धन की आवश्यकता के अभाव में ये विद्यालयों के लिए अत्यन्त अनुकूल हैं। इस दिशा में अब प्रयत्न किये जा रहे हैं। अतः शिक्षकों को इनसे परिचित होना आवश्यक है।

यौगिक आसनों के प्रकार — वैसे तो यौगिक आसनों के अनेक प्रकार हैं जो समय, आवश्यकता एवं शारीरिक क्षमता के अनुसार विकसित किये गये हैं किन्तु स्थानाभाव के कारण यहां हम कुछ प्रमुख आसनों की प्रक्रिया और लाभों का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं —

(1) पद्मासन—इस आसन में दायां पैर बायीं जांघ पर तथा बायाँ पैर दायीं जांघ पर पालकी से बैठा जाता है व हाथ गोद में, शरीर सीधा, ठोडी को गले से लम्बाकार रखकर दृष्टि सामने केन्द्रित की जाती है। इस आसन से रक्त, पाचन, वीर्य आदि के विकार दूर होते हैं तथा अतिसार जैसे रोगों का उपचार होता है।

(2) सर्वांगासन—सीधे चित्त लेट कर जुड़े हुए पैरों को शनै शनै उठाते हुए गर्दन से नीचे का शरीर ऊपर इस प्रकार उठाते हैं कि शरीर का समस्त भार गर्दन व कंधों पर आ जाये जो जमीन पर टिके रहते हैं। इस आसन से पेट, आमाशय, काष्ठबद्धता (कब्ज), रीढ की हड्डी, नेत्र आदि अनेक रोगों का उपचार होता है।

(3) मयूरासन—इसमें साधक की स्थिति व आकृति मोर जैसी होती है। इस आसन में पेट के बल उल्टा लेटना पड़ता है। हथेलियों को जमीन पर टिका कर कुहनियों को नाभि पर टिका देते हैं। तथा सारे शरीर का हथेलियों पर संतुलित कर जमीन के समानान्तर उठाते हैं कि सामने दृष्टि गडाकर मोर के सामान स्थिति में बना रहे। इस आसन से पेट, दस्त, वमन, पेचिश, कब्ज, पित्त, कफ आदि के विकार दूर होते हैं।

(4) धनुषासन — इसमें आकृति धनुषाकार होती है। पीठ ऊपर कर जमीन पर लेटे हुए साधक अपने हाथों से पैर के पंजों का पीठ के ऊपर पकड़ता है तथा सिर ऊपर उठा कर सीना ताने रखता है। इससे पीठ के विकार दूर होकर नेत्रों व उदर के रोगों का निराकरण होता है।

(5) हलासन — इसमें साधक जमीन पर चित्त सीधे लेट जाता है तथा पैरों को ऊपर उठाते हुए शरीर के सारे धड़ को उठा लेता है तथा पैरों को मुख के पास जमीन से स्पर्श करता है। इस प्रकार हल जैसी आकृति बन जाती है। इस आसन से रीढ़ की हड्डी, गर्दन, कमर, मधुमेह, यकृत, प्लीहा आदि रोग दूर होते हैं।

(6) पाद हस्तासन — इसमें सीधे खड़े होकर आगे झुकते हुए हाथ के पंजों से पैर के अंगूठे पकड़ते हैं तथा सिर को घुटनों से स्पर्श करते हैं। फिर पुनः पूर्वक स्थिति में आ जाते हैं। नीचे झुकते समय सांस अन्दर खींचते हैं तथा उठते समय बाहर फेंकते हैं। इससे मोटापा कम होकर पेट के सभी विकार दूर होते हैं।

(7) चक्रासन — इस आसन में पैरों के मध्य एक फुट का अन्तर रखकर सीधे खड़े होते हैं। शनैः शनैः हाथों को ऊपर उठा कर पीछे की ओर मोड़ इस प्रकार ले जाते हैं कि हथेलियाँ जमीन पर टिक जायें। इस स्थिति में पेट आकाश की ओर व पीठ जमीन के समानान्तर हो जाते हैं। सारा शरीर चक्र या पहिये की आकृति में हो जाता है। इस आसन से मेरुदण्ड व पेट के विकार दूर होकर मोटापा, दमा, कमर दर्द आदि रोगों का उपचार होता है।

(8) शीर्षासन — इस आसन में सिर के बल उल्टा सीधा खड़ा हुआ जाता है। धीरे धीरे दिवार का सहारा लेकर इसे प्रारम्भ किया जा सकता है। सिर के नीचे तकिया या गद्दे का आधार होना चाहिए। इस आसन से सिर, पेट, कमर, नेत्र आदि के रोग दूर होते हैं तथा अन्य सभी रोगों के उपचार में सहायक होता है। अतः यह सर्वाधिक उपयोगी आसन है।

यौगिक आसनों के लाभ — निम्नांकित हैं —

(1) शरीर स्वस्थ, सुडौल तथा आकर्षक होता है।
(2) शरीर निरोग होकर स्फूर्ति एवं शक्ति सम्पन्न होता है।
(3) मानसिक तनाव एवं रोगों का निराकरण होता है।

(4) ये मनुष्य की आयु में वृद्धि करते हैं क्योंकि वृद्धावस्था के रोगों को दूर करते हैं।

(5) ये रोगों का उपचार बिना औषधि के प्राकृतिक रूप से करते हैं।

(6) इनसे अवधान, स्मृति, ध्यान, विचार आदि मानसिक शक्तियां विकसित होती हैं।

(7) ये संवेगात्मक संतुलन स्थापित करते हैं।

(8) इनसे तामसी व राजसी प्रवृत्तियों के स्थान पर सात्विक प्रवृत्ति जागृत होती है।

(9) ये शरीर एवं मस्तिष्क में सामंजस्य उत्पन्न करते हैं।

(10) ये चारित्रिक उत्थान में सहायक होते हैं।

उपसंहार –

इस अध्याय में वर्णित पाश्चात्य एवं भारतीय पद्धति के विभिन्न व्यायामों से छात्रों को लाभान्वित करने हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि इनका नियोजन, क्रियान्वयन तथा मूल्यांकन सावधानी से किया जाना चाहिए। विद्यालय के मानवीय एवं भौतिक संसाधनों को दृष्टिगत रखते हुए व्यायामों का चुनाव एवं संगठन सावधानी से किया जाना चाहिए। छात्रों की रुचि, आयु वर्ग, क्षमता एवं आवश्यकता का ध्यान रखा जाना चाहिए। यदि सुनियोजित ढंग से व्यायामों का संचालन किया जाय तो ये निश्चित रूप से छात्रों के शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1 विद्यालय में स्वास्थ्य सेवा के क्या क्या उद्देश्य होते हैं ?
(बी एड 1982)

2 विद्यालय में शारीरिक शिक्षा की क्या आवश्यकता है ?
(बी एड 1982)

3 विद्यालय में शारीरिक शिक्षा के महत्व का वर्णन कीजिए।
(बी एड 1979)

4 शाला मे खेलो के सगठन के बुनियादी सिद्धातों के बार म लिखिय !

(बी एड 1978)

5 सुधारात्मक व्यायाम से आप क्या समझते हैं ?

6 विद्यालय म स्वास्थ्य शिक्षा की व्यवस्था क्या आवश्यक है ?

7 शारीरिक विकास पर आसनो का क्या प्रभाव पड़ता है ?

8 'योग अभ्यास महत्वपूर्ण व्यायाम है ।' स्पष्ट कर ।

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न–

1 विद्यालय शिक्षा म खेलकूद अभिन्न अग क्यों है ? अनुशासन एव राष्ट्रीय एकता के विकास मे अनिवार्य खेलो के क्या लाभ है ? (बी एड 1985)

2 विद्यालय कायक्रम में खेलकूद का क्या महत्व है ? विद्यालय कायक्रम म खेलकूद को अभिन्न भाग बनाने हेतु एक योजना बनाइय । (बी एड 1984)

3 हमारे विद्यालयो में शारीरिक शिक्षा क्यो आवश्यक है ? एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में आप खेलकूद का कायक्रम कैसे सगठित करेंगे ? (बी एड 1982)

4 आप एक ऐसे माध्यमिक विद्यालय के लिए जिनके पास खेलने का पर्याप्त मैदान नही है किन–किन शारीरिक कायक्रमो की अभिशसा करेंगे ? (बी एड पत्राचार 1981)

5 किसी उच्च माध्यमिक विद्यालय की IX, X व XI कक्षाओ में क्रमश 30,35,40 विद्यार्थी है । उक्त सभी विद्यार्थियो को खेलो व खेलकूद में भाग लिवाने की दृष्टि से एक व्यवहारिक योजना बनाइय । (बी एड पत्राचार 1981)

6 हमारी शिक्षण–सस्थाओ में सगठित खेलो का क्या महत्व और मूल्य है ।

7 खेलकूद का सगठन करते समय किन किन बातो का ध्यान रखा जाना चाहिए ?

अध्याय ४

विद्यालय अनुशासन
(School Descipline)

[विषय प्रवेश, अनुशासन की नवीन सकल्पना स्वानुशासन-अनुशासन के प्रकार, अनुशासनहीनता के कारण एव उनके निराकरण हेतु सुझाव, कक्षानुशासन कक्षाध्यापक के सामान्य कर्तव्य और दायित्व, एक अध्यापकीय शाला मे मोनटीरिंग व्यवस्था, छात्रो के बैठने की व्यवस्था के अनुसार हेर फेर, स्वानुशासन के विकास मे सहायक प्रवृतिया, पुरस्कार और दण्ड अनुशासन के साधन के रुप म मूल्यांकन, उपसहार]

विषय-प्रवेश —

विद्यालय अनुशासन ही शिक्षा के उस लक्ष्य की पूर्ति करता है जो विद्यार्थियो को राष्ट्र व समाज का एक योग्य नागरिक बनाना चाहता है। माध्यमिक शिक्षा आयोग के शब्दों म —"शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य युवको को नागरिकता के दायित्वो का वहन करने हेतु प्रशिक्षित करना है। और सभी लक्ष्य आवश्यक है। अत अनुशासन माता-पिता शिक्षक, सामान्य जनता तथा सम्बन्धित अधिकारियो का उत्तरदायित्व होना चाहिए।' आज विद्यार्थियो मे बढती हुई अनुशासनहीनता एव असन्तोष की प्रवृति विद्यालयो मे अनुशासन बनाये रखने की आवश्यकता और महत्व को प्रकट करती है। प्राथमिक एव उच्च प्राथमिक विद्यालयो म जिन चारित्रिक गुणो और नागरिक भावना का विकास किया जा सकता है वे विद्यार्थी के सतुलित व्यक्तित्व का निर्माण कर उसे भावी जीवन मे स्वानुशासनप्रिय बना सकते है। यद्यपि माता पिता, अभिभावक व समाज का दायित्व छात्र-अनुशासन की दृष्टि से सर्वाधिक है तथापि विद्यालय का इसमे योगदान महत्वपूर्ण होता है। प्रस्तुत अध्याय मे विद्यालय अनुशासन के विभिन्न पक्षो का स्पष्ट किया जायेगा।

अनुशासन की नवीन सकल्पना स्वानुशासन

अनुशासन का अर्थ— डा एस एस माथुर का कथन है—"अनुशासन स तात्पर्य यह है कि विद्यार्थी विद्यालय के नियमो इत्यादि का पालन कर परन्तु अनुशासन का अर्थ हम सीमित रुप मे ही प्रयोग करते हैं। विस्तृत रुप मे अनुशासन से अर्थ है कि विद्यार्थी का शारीरिक व मानसिक प्रशिक्षण हो और वे इन दोनो को नियन्त्रण मे लाना सीख जाये। विस्तृत अर्थ मे अनुशासन का जो अभिप्राय

आता है उसी को सामने रखकर हम विद्यार्थियो को अनुशासित रखने के लिय बल दे सकते हैं । यह कहने से हमारा तात्पर्य यह है कि विद्यार्थियों को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाय कि व अपनी आत्मा अपने मस्तिष्क एव अपने शरीर पर नियंत्रण रखना सीख लें वे जब भी कोई काय करें तो ऐसा न हो कि उनमें आत्म नियंत्रण या आत्मसयम का अभाव हो।' इस कथन म उल्लिखित विस्तृत अर्थ मे अनुशासन स्वानुशासन ही है। यही अनुशासन की आधुनिक सकल्पना हैं । किन्तु इस सकल्पना क विकास को समझने हेतु अनुशासन की पुरातन धारणा को देखना होगा।

अनुशासन की पुरातन धारणा — अनुशासन की पुरातन धारणा प्राचीन काल स चली आ रही उस मान्यता का परिणाम थी जिसके अनुसार छात्रों को नियंत्रण म लाना ही अनुशासन है। इस मान्यता के अनुसार छात्रो के मानसिक, नैतिक तथा शारीरिक विकास के लिय कठोर नियम बनाये जाते थे और उन नियमो का उल्लघन करने पर कठोर दण्ड देने का प्रावधान था। इस अनुशासन का आधार शक्ति एव छात्रो मे भय एव आतंक उत्पन्न करना था। यह अनुशासन का दमनात्क रूप था। लोगा म यह धारणा थी कि डडे का सहारा न लेने से बच्चे बिगड जाते हैं (Spare the rod and spoil the child) पाश्चात्य देशो मे भी यही पुरातन धारणा प्रचलित थी। प्रो हैरिस न आज्ञापालन को ही अनुशासन का प्रमुख आधार बतलाते हुए कहा है—' विद्यालय का प्रथम नियम व्यवस्था स्थापित करना या शिक्षक का पहला काय नियमो का पालन करना तथा शिक्षार्थी का प्रथम कर्तव्य आज्ञापालन के अनुरूप व्यवहार करना था।' इस प्रकार अनुशासन की यह धारणा केवल बाह्य नियंत्रण का ही अधिक महत्व देती थी आतरिक नियंत्रण या स्वानुशासन को नही।

अनुशासन की नवीन धारणा का विकास —आधुनिक युग मे अनुशासन की उपरोक्त धारणा की शिक्षा शास्त्रियो द्वारा आलोचना की जाने लगी व बालक को कठोर दण्ड दिये जाने का विरोध होने लगा । बाल मनोविज्ञान एव लोकतान्त्रिक विचार धारा के विकास के साथ शिक्षा बाल केन्द्रित (Child Central) मानी जाने लगी जिसका प्रभाव अनुशासन की नवीन धारणा के विकास मे स्पष्ट दिखाई देने लगा।

अनेक शिक्षा-शास्त्रियो एव विचारको ने इस धारणा को व्यक्त किया है। प्लेटो के अनुसार –"बालक को दण्ड की अपेक्षा खेल द्वारा नियंत्रण करना कहीं अच्छा है।'

पेस्टालोजी ने कहा — 'अनुशासन का आधार और नियंत्रण शक्ति प्रेम होना चाहिए। रूसो के मतानुसार ' बालको को प्रकृति के अनुसार चलने दो, उसके काय म बाधा मत

दो।" जान डिवी ने अपने ग्रंथ 'Democracy and Education' मे कहा है—"अनुशासन शक्ति है और काय करने के लिए उपलब्ध साधनो का सदुपयोग है। हमे क्या करना है कैसे करना है तथा किन साधनो से करना है यह जानना ही अनुशासन है। विद्यालय मे अनुशासन भी पूर्णत सामाजिक होना चाहिए। स्कूल जीवन की तैयारी का स्थान नही अपितु स्वय ही जीवन है। इस प्रकार निरकुशतावादी और स्वेच्छाचारी व तानाशाही विचारो पर आधारित अनुशासन की भ्रात धारणा के स्थान पर आधुनिक युग म लोकतात्रिक विचारधारा और बाल केद्रित शक्षिक मान्यता से प्रेरित नवीन अवधारणा का विकास हुआ जो 'स्वानुशासन Self discipline' के रूप मे अनुशासन को मानने लगी। "विद्यालय सगठन" म आत्माराम शर्मा ने इस धारणा को स्पष्ट करते हुए कहा है "आधुनिक युग मे बालको को स्वानुशासन मे रहना सिखाना ही सर्वोत्तम माना जाने लगा है जिसके लिए उचित वातावरण तथा स्वय का आदश उपस्थित किया जाता है और बालको को विभिन्न क्रियाओ मे स्वतन्त्रता से करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। इस प्रकार वे बालक वातावरण से अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होकर स्वय ही आत्मविकास करते है।"

अनुशासन के प्रकार— अनुशासन के सम्बन्ध मे विभिन्न सकल्पनाओ के आधार पर अनुशासन के निम्नाकित तीन स्वरूप या प्रकार है —

(1) दमनात्मक अनुशासन (Repressionist Discipline) पुरातन धारणा के अनुसार अनुशासन का वह स्वरूप है जिसका अथ विद्यार्थियो को शक्ति, भय और आतक से नियत्रित करना होता है। यह अमनोवज्ञानिक एव अलोकतात्रिक है, अत वतमान स्थिति मे त्याज्य है।

(2) प्रभावात्मक अनुशासन (Impressionist Discipline) के अनुसार शिक्षक को अपने आदश आचरण और चारित्रिक गुणो के अनुकरण करने की प्रेरणा छात्रो को देनी चाहिए तथा छात्रों मे दण्ड का भय उत्पन्न न कर शिक्षक के प्रति श्रद्धा और भक्ति विकसित की जानी चाहिए। यह एक आदशवादी दृष्टिकोण है जिस मे छात्र के व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास न होकर छात्र को शिक्षक का अनुकरण करनेवाला बना दिया जाता है। मैकमन का मत है कि छात्रो के ऊपर शिक्षक के व्यक्तित्व की प्रधानता लादना भी एक प्रकार का दण्ड है तथा छात्रा द्वारा शिक्षक का अन्धानुकरण करना अनुचित है। अत अनुशासन का यह रूप शिक्षा के उद्देश्यो की पूर्ति के लिये एक मात्र साधन नही माना जा सकता।

(3) मुक्त्यात्मक अनुशासन — (Emancipationist Discipline) म दमनात्मक

अनुशासन के विपरीत बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता देकर स्वानुभव के आधार पर अनुशासन सीखने की धारणा विद्यमान है। रूसो इस विचारधारा के प्रवर्तक थे। फ्रोबेल, माण्टेसरी नील, नारमन मेक्मन तथा जान डिवी शिक्षा शास्त्री भी इसी विचारधारा के समर्थक थे। इनका विचार था कि बालक मूलतः सात्विक प्रकृति का होता है और स्वतन्त्र व स्वाभाविक विकास द्वारा उसमें अनुशासन स्वतः ही उत्पन्न हो जाता है।

उपरोक्त अनुशासन के विभिन्न स्वरूपों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दमनात्मक स्वरूप तो पूर्णतया अनुचित है तथा मुक्तात्मक स्वरूप भी बालकों की अपरिपक्व स्थिति को देखते हुए एक मात्र साधन नहीं माना जा सकता। टी पी नन का यह कथन सत्य है — 'बालक को आरम्भ से ही पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती। जब तक वह अपने पैरों पर खड़ा होने की योग्यता नहीं प्राप्त कर लेता, वह स्वतन्त्रता का उपयोग नहीं कर सकता। बालक को अपनी जिम्मेदारी पर छोड़ देना उसका हित करना नहीं बल्कि अहित करना है। सामाजिक संस्थाएँ इसी लिए बनी हैं कि उनके द्वारा व्यक्ति का शिक्षण हो और वह इस प्रकार दूसरों की सहायता से आत्म नियन्त्रण की शक्ति प्राप्त करे।" अनुशासन का यही रूप श्रेष्ठ है और श्रेयस्कर है। डा एस एम माथुर ने कहा है— "अनुशासन का नवीन दृष्टिकोण स्वानुशासन (Self discipline) के रूप में है और इसकी मुख्य विशेषता है आत्म-नियन्त्रण (Self Control) नवीन विचार भी विद्यालय में व्यवस्था की महत्ता को महत्ता को प्रधानता देती है। अन्तर केवल यह है कि यहां व्यवस्था तथा अनुशासन बालक की सजनात्मक क्रियाओं की उपज है। यह विश्वास किया जाता है कि यदि बालकों को आत्म-प्रकाशन के अवसर मिल जाये तो वे स्वानुशासन तथा आत्म-नियन्त्रण सीख लेंगे और उनमें उचित वृत्तियों तथा आदतों का निर्माण हो जायगा जो व्यवस्था तथा अनुशासन के लिए गुणकारी सिद्ध होगी।'

अनुशासनहीनता के कारण एवं उनके निराकरण हेतु सुझाव –

विद्यालय अनुशासन को बनाये रखने हेतु अनुशासनहीनता के कारणों का संक्षेप में देख लेना उनके निराकरण हेतु उचित रहेगा। ये कारण निम्नांकित हैं—

(1) आर्थिक कठिनाइयां–माता पिता अथवा अभिभावक की निर्धनता और आर्थिक कठिनाइयों के कारण बालकों की उचित शिक्षा व्यवस्था नहीं हो पाती तथा उन के लिये आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने में कठिनाई होती है। फलतः छात्रों में असन्तोष व अनुशासनहीनता उत्पन्न हो जाती है।

(2) अशिक्षित अभिभावक — देश म अधिकाश अभिभावक निरक्षर या अशिक्षित है। अत वे बालको की शिक्षा पर उचित ध्यान नही दे पाते हैं जिसके कारण शिक्षको को अभिभावको का सहयोग नही मिल पाता और छात्रो म अनुशासनहीनता व अवांछित व्यवहार का निराकरण नही हो पाता।

(3) समाज मे व्याप्त अनुशासनहीनता – आज समाज म भ्रष्टाचार एव अनैतिकता व्यपत है जिसका प्रभाव बालको के अनुशानहीन व्यवहार म परिलक्षित होता है। अनेक राजनैतिक पार्टिया विद्यार्थियो का उपयोग अपने स्वार्थों की पूर्ति मे करती है।

(4) सामाजिक मूल्यो म परिवर्तन –पाश्चात्य प्रभाव के कारण भारतीय सांस्कृतिक मूल्यो का विघटन हो रहा है तथा सामाजिक मूल्या म तीव्र गति से परिवतन हो रहा है। इसके फलस्वरूप कुसमायोजन के कारण छात्रो म अनुशानहीनता उत्पन्न होती है।

(5) असुरक्षित भविष्य –शिक्षित बेरोजगारी के कारण छात्रा को अपना भविष्य असुरक्षित लगता है। यह असुरक्षा की भावना अध्ययन म अरुचि एव अनुशासनहीनता की अभिवृत्ति पैदा करती है।

(6) अयोग्य अध्यापक – अधिकाश अध्यापक अयोग्य होने के कारण बालको म अध्ययन के प्रति रुचि एव उत्साह जागृत करने म असफल रहते हैं तथा अपने व्यवहार और चारित्रिक गुणो का कोई अनुकूल प्रभाव छात्रा पर नही डालते।

(7) दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली - वतमान शिक्षा प्रणाली पुस्तकीय तथा अव्यावहारिक है। विद्यार्थियो का उद्देश्य केवल परीक्षा पास करना ही रह गया है जिसके कारण परीक्षा म अनुचित साधनो के प्रयाग सम्बधी अनुशासनहीनता पनपती है अत शिक्षा प्रणाली का व्यवहारिक व्यावसायोन्मुख तथा विचार प्रेरक बनाया जाना चाहिए।

(8) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओ का अभाव – बालका के व्यक्तित्व म गौण विकास हेतु पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओ म अपनी रुचि के अनुरूप प्रत्येक छात्र का भाग लेना वांछनीय है। विद्यालयो म प्राय इन क्रियाओं की उचित व्यवस्था नही की जाती। अत इस ओर ध्यान देना आवश्यक है।

(9) अनुपयुक्त पाठ्यक्रम एव शिक्षण विधिया – प्राय पाठ्यक्रम सैद्धान्तिक पक्ष पर अधिक बल देते हैं तथा शिक्षण विधियाँ परम्परागत [illegible] होती है। इन्हे सोद्देश्य तथा रोचक बनाना आवश्यक है [illegible]

रूचि लेकर अनुशासनहीन व्यवहार में प्रवृत्त न हो सकें।

(10) धार्मिक व नैतिक शिक्षा का अभाव – विद्यालय के सौहार्दपूर्ण वातावरण, शिक्षकों के अनुकरणीय व्यवहार तथा प्रत्यक्ष विधियों द्वारा धर्मनिरपेक्ष नैतिक शिक्षा द्वारा बालकों में चारित्रिक एवं नागरिक गुणों का विकास किया जाना अपेक्षित है। इस ओर विद्यालयों में प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता। कक्षाध्यापक का दायित्व इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रार्थना सभा, प्रवचन, धार्मिक पर्वों एवं महापुरुषों की जयन्तियों का आयोजन आदि प्रवृत्तियाँ इस दिशा में अधिक सहायक सिद्ध हो सकती है।

(11) दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली – केवल वार्षिक परीक्षा पर ही अधिक बल देना परीक्षा प्रणाली को प्रभावहीन बना रहा है। परीक्षा-सुधार की दृष्टि से 'अनवरत मूल्यांकन योजना' का अपनाया जाना नितान्त आवश्यक है जिससे कि सत्र-पर्यन्त छात्र अपने अध्ययन के प्रति रूचि एवं अवधान बनाये रख सकता है। परीक्षा प्रश्न पत्रों को वस्तुनिष्ठ और उद्देश्याधारित बनाया जाना वांछनीय है ताकि परीक्षा कार्य में वैधता और विश्वसनीयता के साथ व्यावहारिकता का भी समावेश हो सके।

अनुशासनहीनता के उपरोक्त प्रमुख कारणों के अतिरिक्त भी अन्य कुछ कारण हो सकते हैं जिन्हें विद्यालय अपनी स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार खोज कर उनका निदान एवं उपचार कर सकते हैं।

कक्षानुशासन

विद्यालय अनुशासन का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इसके अन्तर्गत कक्षा-कक्ष, विद्यालय-प्रांगण, खेल के मैदान, पुस्तकालय, विभिन्न क्रियाकलाप, समाज-सेवा आदि में छात्रों का व्यवस्थित एवं उत्तरदायित्वपूर्ण वह व्यवहार होता है जो स्वानुशासन भावना से प्रेरित हो। इन सभी क्षेत्रों में विद्यार्थियों को स्वशासन का भार सौंपना चाहिए। इसके लिए सम्बन्धित क्षेत्र की एक-एक समिति होनी चाहिए जिसके सदस्य अध्यक्ष, सचिव आदि छात्र-अधिकारी छात्रों द्वारा निर्वाचित होने चाहिए तथा निर्धारित नियमों तथा प्रभारी शिक्षक के निर्देशन के अन्तर्गत प्रत्येक समिति को उन्हें सौंपा गया कार्य सम्पादित करना चाहिए। स्वानुशासन की आधारभूत इकाई कक्षा को माना जा सकता है। कक्षानुशासन का दायित्व कक्षाध्यापक (Class teacher) का होता है। अतः कक्षाध्यापक के सामान्य कर्तव्य एवं दायित्वों से अवगत होना वांछनीय है।

' 4

कक्षाध्यापक के कर्तव्य और दायित्व

सामान्यत प्रत्येक अध्यापक को कक्षाध्यापक का उत्तरदायित्व निभाना होता है। कक्षाध्यापक प्राय उसे कहा जाता है जिसे किसी कक्षा की उपस्थिति अकन, कक्षानुशासन, छात्रो की प्रगति का लेखा जोखा रखने, शुल्क वसूल करने आदि का दायित्व सौंपा जाता है। इसके अतिरिक्त विषय शिक्षक के सभी कार्य करने ही होते हैं। राजस्थान एज्यूकेशन कोड (Education code) मे कक्षाध्यापक से जो अपेक्षाएं की गई हैं उन्हें सक्षेप मे निम्नांकित रूप मे दिया जा रहा है —

(1) बालकों पर व्यक्तिगत अवधान — कक्षाध्यापक को अपनी कक्षा के प्रत्येक बालक की प्रगति व अनुशासन पर व्यक्तिगत ध्यान रखना होता है। अभिभावको से सम्पर्क कर इस प्रगति से उन्हे अवगत कराने का दायित्व भी उसी का होता है।

(2) बालको की सर्वोतोमुखी प्रगति पर दृष्टि — प्रत्येक बालक की शारीरिक मानसिक, नैतिक, शैक्षिक, सामाजिक व सास्कृतिक प्रगति पर रखते हुए उन्हे उचित परामर्श व निर्देशन देना उसका कर्तव्य है।

(3) पिछड व प्रतिभावान बालको पर विशेष ध्यान रखना — कक्षाध्यापक का विशेष दायित्व है।

(4) पाठ्यक्रम सहगामी प्रवृतियो को प्रोत्साहन — छात्रो की रुचि एव क्षमता के आधार पर देना उसका कर्तव्य है।

(5) कठिनाई व आवश्यकता पडने पर अभिभावको से सहयोग लेने की अपेक्षा उससे की जाती है।

(6) छात्रो को अपनी कठिनाइया रखने हेतु प्रोत्साहन देना भी उसका दायित्व है।

(7) छात्रो को दिये जाने वाले गृहकार्य मे समन्वय कक्षाध्यापक को ही करना चाहिए ताकि विषयाध्यापक छात्र की क्षमता एव रुचि के अनुकूल ही गृह–कार्य दे सकें। यह कार्य उस कक्षा के सभी विषयाध्यापकों की सहमति से गृह काम का समय विभाग-चक्र बना कर करना चाहिए।

(8) गृहकार्य न करने वाले छात्रो को अतिरिक्त समय की व्यवस्था करना कक्षाध्यापक का काम है।

(9) अनुशासनहीन तथा नैतिक अपराधो को प्रधानाध्यापक तक पहुचाना कक्षाध्यापक का दायित्व है।

(10) कक्षा की उपस्थिति का नियमित तथा समय पर अकन भी उसे ही करना होता है।

(11) छात्र प्रगति पत्रो की पूर्ति कर अभिभावको को भेजने व वापस मगाने का काय उसे ही करना होता है।

(12) विद्यालय शुल्क की कक्षा के छात्रो से समय पर वसूली उसे ही करनी होती है।

(13) छात्रवत्ति पात्रता से दिलाने मे योगदान कक्षाध्यापक का ही होता है।

(14) प्रधानाध्यापक द्वारा प्रदत्त अधिकारो का निष्पक्ष भाव से उपयोग करने की अपेक्षा कक्षाध्यापक से की जाती है।

)15) दोपहर के भोजन की व्यवस्था कक्षाध्यापक को ही करनी चाहिए।

(16) छात्रो के बैठने की स्वस्थ एव सन्तोषजनक व्यवस्था कक्षाध्यापक को ही करनी पडती है।

(17) छात्रो के लिए चिकित्सा की व्यवस्था कक्षाध्यापक को अभिभावको से सम्पर्क कर करनी चाहिए।

(18) छात्रो को रुचिकार्य अपनाने के लिए प्रोत्साहन उसे देना चाहिए।

(19) छात्रो मे नतिक मूल्य वैयक्तिक और सामाजिक स्वास्थ्य की आदतो का विकास करना कक्षाध्यापक का कत्तव्य है।

(20) छात्रो मे आत्मविश्वास के विकास की अपेक्षा उससे की जाती है।

प्राथमिक विद्यालय म तो प्राय अध्यापक को कक्षा 1 से5 तक की सभी कक्षाए पढानी पडती है, अत उसे किसी कक्षा के कक्षाध्यापक के दायित्व निभाने म कठिनाई नही होती। उच्च प्राथमिक विद्यालयो में जिस कक्षा के कक्षाध्यापक का दायित्व निभाना होता है, उसमे किसी विषय का अध्यापन काय अवश्य किया जाना चाहिए। एकल अध्यापकीय शालाओ (Single teacher school) म एक ही अध्यापक को विषयाध्यक्ष कक्षाध्यापक व प्रधानाध्यापक तीनो का दायित्व निभाना होता है। कक्षाध्यापक अपने दायित्व को भली भाति जब ही निभा सकता है जबकि वह अभिभावक की भाति छात्रो से स्नेह व सहानुभूति रखे। एकल अध्यापकीय शाला म मानीटरिंग व्यवस्था एव छात्रो के बठने की व्यवस्था म हेर-फेर करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योकि य विद्यालय अनुशासन मे सहायक होत हैं।

एक अध्यापकीय विद्यालय मे मॉनीटरिंग व्यवस्था

एक अध्यापकीय शाला मे एक ही अध्यापक को कक्षा 1 से 5 तक की सभी कक्षाओ की व्यवस्था करने तथा प्रत्यक छात्र पर व्यक्तिगत ध्यान देने की दृष्टि से उसे प्रत्यक कक्षा म योग्य छात्रो को मानीटर तथा सहायक मानीटर नियुक्त कर उन्हे कक्षा

के कुछ उत्तरदायित्व सौंपना चाहिए। मॉनीटर यदि निर्वाचित हो तो उचित रहेगा अन्यथा योग्य छात्रों को चुन कर उन्हें नियुक्त करना चाहिए। ऐसे छात्र पढने में कुशाग्र बुद्धि के होने चाहिए तथा उनमें निष्पक्ष भाव से कक्षा को अनुशासित रखने की क्षमता भी होनी चाहिए।

ऐसी शालाओं में एक ही अध्यापक को कक्षा 1 से 5 तक की सभी कक्षाओं को पढाना पडता है किन्तु एक समय एक कक्षा से अधिक कक्षाओं को पढाना उसके लिए असम्भव होता है अत एक अध्यापकीय शाला का समय विभाग चक्र इस प्रकार बनाया जाता है कि जिस कालांश में अध्यापक एक कक्षा को पढाता है तो उस कालांश में अन्य कक्षाओं को मानीटर के परिवीक्षण में अन्य कार्य में व्यस्त रखा जाता है जैसे— सुलेख, नकल गिनती बोलना, पी टी पठन, खेल, कार्यानुभव आदि। इस प्रकार के समय-विभाग-चक्र का नमूना पिछले अध्याय में दिया गया है। कुशाग्र बुद्धि का छात्र जो मानीटर होता है, वह इन कार्यों में कक्षा को व्यस्त एव व्यवस्थित रखता है। इसके अतिरिक्त कक्षाध्यापक के कुछ कार्य भी मॉनीटर कर सकता है जैसे उपस्थिति अकन, शुल्क वसूली, प्रगति पत्र वितरण, मध्याह्न भोजन की व्यवस्था, प्रार्थना-सभा के आयोजन में सहायता देना, सफाई का निरीक्षण करना, उद्दण्ड छात्रों पर नियत्रण रखना, कमजोर व पिछड़े छात्रों को सहायता देना गृह-कार्य सशोधन करना आदि। इस प्रकार मानीटर व्यवस्था एक अध्यापकीय शालाओं में काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

छात्रों के बैठने की व्यवस्था के अनुसार हेर-फेर

कक्षानुशासन की दृष्टि से कक्षा में छात्रों के बैठने की व्यवस्था तथा विभिन्न क्रियाकलापों के अनुसार बैठक व्यवस्था में हेर फेर करना विशेष महत्त्व रखता है। विशेषत एक अध्यापकीय शालाओं में कक्षा 1 व 2 की अविभक्त इकाई की कक्षाओं में बैठक-व्यवस्था में हेर-फेर करना अपेक्षित होता है। बैठक व्यवस्था के सम्बन्ध में निम्नांकित बिंदु ध्यातव्य है —

(1) छात्रों को अध्यापक के समक्ष सीधी व समानान्तर पक्तियों में इस प्रकार बैठाया जाय कि वे अध्यापक की क्रियाओं तथा श्यामपट्ट का ठीक प्रकार से देख व सुन सकें।

(2) बैठक-व्यवस्था इस प्रकार हो कि वे आते जाते समय असुविधा का अनुभव न कर सकें। इसके लिए प्रत्येक छात्र के आसपास पर्याप्त स्थान छोड़ा जाना चाहिए।

(3) छात्रो को उनके कद के अनुसार बैठाया जाये। छोटे छात्र तथा दृष्टिदोष व कम सुनने वाले छात्रो को अगली पंक्ति मे तथा लम्बे कद वाले पिछली पंक्ति मे

(4) कक्षा मे फर्नीचर (आसन कुर्सी, स्टूल, बेंच, डेस्क आदि) छात्रो के आयु वर्ग के अनुकूल हो ताकि छात्रो मे गलत आसन (Postures) से बैठने के कारण शारीरिक दोष उत्पन्न न हो।

(5) बैठक व्यवस्था मे हेर फेर निम्नांकित परिस्थितियो मे किया जाना वांछनीय है - प्रायोगिक कार्य करते समय, वाद विवाद, अन्त्याक्षरी, श्रुतिलेख, सावधिक परख (Test) या परीक्षा प्रोजेक्टर या एपीडायस्कोप द्वारा प्रदशनीय वस्तुओ (फिल्म, फिल्मस्ट्रिप चित्र, स्लाइड आदि) का प्रक्षेपण रेडियो या टी वी क प्रसारण तथा मौसम (सर्दी गर्मी-बरसात) के समय बैठक-व्यवस्था मे अनुकूल हेर फेर आवश्यक होता है।

(6) श्याम पट्ट की स्थिति के सम्बन्ध मे निम्नांकित बिन्दु ध्यान में रखे जाने चाहिए (क) श्यामपट्ट की स्थिति ऐसी हो जहा छात्र उसे सुविधापूर्वक देख सकें, (ख) श्यामपट्ट पर पर्याप्त प्रकाश हो किन्तु उस पर प्रकाश के परावर्तन के कारण चकाचौंध उत्पन्न न हो (ग) श्यामपट्ट लेख सुपाठय व सुन्दर हो, (घ) लिखते समय कक्षानुशासन पर दृष्टि रखी जाये, (ङ) उसका अनावश्यक प्रयोग न किया जाये।

स्वानुशासन के विकास मे सहायक प्रवृत्तियाँ

स्वानुशासन ही वास्तविक अनुशासन है। अत कक्षा-कक्ष के अतिरिक्त अन्य प्रवृत्तियों या क्रियाकलापों के माध्यम से छात्रो में स्वानुशासन का विकास किया जा सकता है। कुछ प्रवृत्तियाँ स्वानुशासन में विशेष सहायक हो सकती हैं। ये प्रवृत्तियाँ निम्नांकित हैं (1) विद्यालय-संसद या छात्र-परिषद (2) विभिन्न क्रियाकलापों (खेलकूद, सास्कृतिक कार्यक्रम सफाई आदि) की समुचित व्यवस्था हेतु अध्यापक के निर्देशन में विभिन्न समितियों के कार्य (3) राष्ट्रीय व सास्कृतिक पर्वों का आयोजन (4) समाज-सेवा या श्रमदान की क्रियाएँ (5) खेल कूद प्रतियोगिताएँ, (6) भ्रमण व शैक्षिक यात्राएँ, (7) नाटक व एकांकी का अभिनय आदि।

उपरोक्त क्रियाकलापो द्वारा स्वानुशासन का विकास छात्रो का कोई उत्तरदायित्व सौंपने से ही सम्भव हो पाता है। 'शैक्षिक एव माध्यमिक शिक्षालय व्यवस्था' ग्रंथ मे गड एव शर्मा ने कहा है — 'स्वशासन तभी सफल हो सकता है। जब हमे विश्वास है और साथ ही साथ हम यह अनुभव करते हैं कि विद्यार्थियो मे भी जिम्मेदारियो को

निभाने की क्षमता है। यदि हम इस विश्वास के साथ कार्य नही करते हैं तो हम विद्यार्थियो को जनतन्त्रीय जीवन का अभ्यास नही करा सकते। स्वनुशासन स्कूल मे सामूहिक जीवन को सुदर बनाने के लिए बहुत महत्व रखता है और अनुशासन की दृष्टि से इसका बहुत महत्व है।"

पुरस्कार एव दण्ड अनुशासन के साधन के रुप मे

विद्यालय मे अनुशासन बनाये रखने और अनुशासनहीनता को दूर करने के दो साधन या उपाय हो सकते हैं —

(क) सकारात्मक उपाय – वे है जिनसे छात्रों मे अनुशासित रहने अथवा स्वानुशासन की भावना जागृत होती है। इन उपायो मे विद्यार्थी परिषद् कक्षा समितिया, विभिन्न विषय परिषद्, मॉनीटर या प्रीफेक्ट पद्धति, हाऊस पद्धति (House-system) शिक्षक अभिभावक परिषद्, खेल कूद, पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाएँ, विद्यालय प्रबन्ध मे छात्रो का सहयोग, नैतिक शिक्षा तथा पुरस्कार प्रमुख है।

(ख) नकारात्मक उपाय — वे हैं जिनके द्वारा छात्रो को अनुशासनहीनता के कार्यों से रोका जा सकता है। इनका आधार भय, आतंक, शक्ति तथा सामाजिक निंदा होता है। इनमे प्रमुख हैं — निंदा, धमकाना, सामाजिक बहिष्कार, पद च्युत करना, शाला समय के पश्चात रोक कर कार्य करवाना, शारीरिक दण्ड, आर्थिक दण्ड (जुर्माना करना), दूसरो के सामने लज्जित करना आदि।

पुरस्कार — पुरस्कार की आवश्यकता एव महत्व प्रकट करते हुए डा एस एस माथुर का का कथन है — "शिक्षा मे पुरस्कार भी एक शक्तिशाली प्रेरक माना जाता है। यह समझा जाता है कि पुरस्कार मिलने से विद्यार्थी को अधिक सीखने की प्रेरणा मिलती है यदि विद्यार्थी अच्छा व्यवहार करता है या अनुशासित रहता है और इसके लिए जब उसे पुरस्कार मिलता है तो वह ओर अच्छे व्यवहार की प्रेरणा ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार पुरस्कारो का महत्व अनुशासन रखने मे बहुत अधिक है।" किन्तु कभी कभी पुरस्कार देना हानिकारक भी होता है। ऐसी स्थिति तब होती है जब यह दूसरे बालका में द्वेष की भावना उत्पन्न करे, जब पुरस्कार प्राप्त करना ही बालको का लक्ष्य बन जाय और वे बनावटी रुप से उसे प्राप्त करने की चेष्टा करे तथा जब पुरस्कार न प्राप्त करने वाले छात्रो मे उदासीनता व अच्छे कार्यों के प्रति रुचि व उपेक्षा का भाव उत्पन्न हो जाय।

अतः पुरस्कार प्रदान करते समय निम्नांकित बातो का ध्यान रखा जाना चाहिए—

(1) पुरस्कार किसी विशेष कार्य के लिये देने के स्थान पर सभी कार्यों का सब भर

मूल्यांकन करने के पश्चात् दिया जाये।

(2) व्यक्तिगत रूप की अपेक्षा सामूहिक रूप से (कक्षा या टीम या हाउस) पुरस्कार दिया जाना श्रेयस्कर होता है।

(3) पुरस्कार समय पर तत्काल दिया जाये। विलम्ब कर देने से उसका महत्व कम हो जाता है।

(4) पुरस्कारों की संख्या अधिक न हो। सामान्य कार्यों के लिये पुरस्कार न दिये जाये।

(5) पुरस्कार पदार्थ के रूप में देने की अपेक्षा प्रशंसा या सराहना के प्रमाण पत्र के रूप में दिया जाना उचित है।

दण्ड —दण्ड अनुशासन का नकारात्मक साधन है। आत्माराम शर्मा ने अपनी पुस्तक "विद्यालय संगठन" में कहा है—"शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट पहुंचाकर दण्ड देने का उद्देश्य है बालकों को अनुचित और अवांछनीय कार्य करने से रोकना तथा दूसरे छात्रों को यह अनुभव कराना है कि इस प्रकार के अनुचित कार्य करने पर किस प्रकार अपमान अथवा दुःख सहन करना पड़ता है। यद्यपि दण्ड देने की परंपरा विद्यालयों में प्राचीन काल से चली आ रही है तथापि आधुनिक युग में बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से अनेक शिक्षा शास्त्री इसका विरोध करते हैं। इनका कहना है कि दण्ड द्वारा स्थापित अनुशासन अस्थायी होता है इससे बालकों में विद्रोह एवं असन्तोष की भावना उत्पन्न होती है दण्ड का दुष्प्रभाव केवल शरीर तक ही सीमित न रहकर मस्तिष्क को भी विकृत कर देता है, दण्ड के कारण छात्रों में स्कूल से भागने की प्रवृत्ति पैदा होती है इससे अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या विषम हो जाती है तथा बालक निर्लज्ज हो जाते हैं।

अतः दण्ड देते समय निम्नांकित सावधानियां रखनी चाहिए।

(1) दण्ड बालकों की आयु शारीरिक अवस्था, बुद्धि स्वभाव आदि को दृष्टिगत रखते हुए दिया जाना चाहिए।

(2) दण्ड अपराध के अनुकूल तथा उसके अनुपात में देना चाहिए।

(3) दण्ड देने के पूर्व अपराध के कारणों की पूरी जानकारी प्राप्त कर तथा चेतावनी देने के पश्चात् ही दिया जाना चाहिए।

(4) दण्ड देने में कोई पक्षपात नहीं करना चाहिए।

(5) दण्ड केवल सुधार करने के उद्देश्य से दिया जाना चाहिए।

(6) इसका उपभोग आवश्यकतानुसार बहुत कम अवसरों पर व कम मात्रा में किया जाना चाहिए।

(7) दण्ड देते समय अभिभावक का सहयोग भी लेना चाहिए।

(8) दण्ड का निर्णय छात्रों की निर्मित "अनुशासन समिति" द्वारा किया जाये तो स्वानुशासन विकसित होता है।

दण्ड देने सम्बन्धी विभागीय नियम शिक्षा संहिता (Education Code) में दिये हुए हैं जिनका पालन किया जाना चाहिए।

उपसंहार —

विद्यालय-अनुशासन के उपरोक्त विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि विद्यालय के सुचारु रूप से संचालन व शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विद्यालय के छात्रों, शिक्षकों एवं अन्य कर्मचारियों में स्वानुशासन की भावना को विकसित करने की चेष्टा करना अत्यन्त आवश्यक है। प्रधानाध्यापक विद्यालय अनुशासन एवं विद्यालय में अनुकूल वातावरण बनाने में प्रमुख भूमिका निभाता है। वह विद्यालय के भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक वातावरण को आकर्षक बना सकता है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रकाशित "दस वर्षीय स्कूल शिक्षाक्रम" (Carriculam for the Ten Year School) में विद्यालय-वातावरण के संदर्भ में कहा गया है-"प्रधानाध्यापक विद्यालय वातावरण को आकर्षक बनाने में प्रमुख भूमिका निभाता है। इस वातावरण के दो तत्व होते हैं-भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक शाला भवन सामान्य होते हुए भी उसे आकर्षक बनाया जा सकता है। विद्यालय का मनोवैज्ञानिक वातावरण बालक तथा अभिभावक के लिये आकर्षक होना चाहिए जिससे कि विद्यालय के प्रति शाला परिवार के सभी सदस्यों में अपनत्व की भावना विकसित हो सके। प्रधानाध्यापक, शिक्षक छात्र एवं अभिभावक में पूर्ण सद्भाव होना चाहिए।" इस प्रकार विद्यालय के अनुकूल वातावरण से विद्यालय अनुशासन को बनाये रखने में पर्याप्त सहायता मिलती हैं।

मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न - (Short Answer type Questions)

1 छात्रों में अनुशासन बढ़ाने के लिए पाँच उपाय लिखिये। (बी एड 1985)

2 विद्यालय में अनुशासन सुधारने हेतु पांच क्रियायें लिखिये। (बी एड. 1984)

3, आपकी कक्षा से भाग जाने वाले छात्रों के सम्बन्ध म आप क्या अनुशासनिक उपाय अपनाये गे ? (बी एड 1979)

4 पुरस्कार और दण्ड विद्यार्थियो म व्यवहार म सुधार हेतु किस प्रकार लाभदायक है?

5 स्वानुशासन के विकास हेतु कौन कौनसी सहायक प्रवृत्तियाँ आयोजन करनी चाहिए।

6 विद्यालय मे शारीरिक दण्ड के विरोध मे पांच तर्क प्रस्तुत करें।

7 स्वशासन से क्या तात्पर्य है ? स्वशासन कितने प्रकार का हो सकता है ?

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न— (essay type Qnestions)

1 छात्र अनुशासनहीनता स क्या अर्थ है ? विश्वविद्यालयों म छात्र अनुशासनहीनता कम करने के सुझाव दीजिए। (बी एड 1984)

2 अनुशासन की प्राचीन एव नवीन अवधारणाओं म अन्तर बतलाइय। विद्यालय प्रवृत्तियों द्वारा इसे कैसे विकसित किया जा सकता है। (बी एड पत्राचार 1984)

3 हमारे विद्यालय म छात्रो म स्वानुशासन का विकास करने के लिए कुछ व्यवहारिक सुझाव दीजिय। (बी एड 1982)

4 "हमारे स्कूलो मे अधिकांशत छात्रो में आत्म-अनुशासन अर्थात् अनुशासनपूर्ण व्यवहार का अभाव पाया जाता है। यहा अनुशासन का मात्र प्रदर्शन ही होता है।" इस कथन की व्याख्या करे अनुशासन स्थापित करने के सकारात्मक व नकारात्मक साधन के प्रसग मे व्याख्या कीजिए।

5 दण्ड देते समय किन-किन बातो को ध्यान में रखना चाहिए ? दण्ड देने के सिद्धांतों का उल्लेख कीजिए।

अध्याय ५

विद्यालय के भौतिक ससाधन
(Building & equipment)

[विषय प्रवेश, विद्यालय के भौतिक ससाधन (1) विद्यालय की स्थिति, विद्यालय भवन, (3) फर्नीचर, (4) प्रयोगशाला, (5) पुस्तकालय एव वाचनालय, (6) कार्यालय, (7) खेल के मैदान, (8) शिक्षण सहायक सामग्री, (9) अन्य ससाधन विद्यालय के मानवीय एव भौतिक ससाधनो का प्रभावी समन्वय एव सचालन उपसहार, परीक्षोपयोगी प्रश्न]

विषय प्रवेश —

विद्यालय के मानसिक ससाधनो का महत्व एव उनके अन्त सम्बन्धो से हम पूव अध्याय म अवगत हो चुके हैं। विद्यालय के ये मानवीय ससाधन–प्रधानाध्यापक,अध्यापक विद्यार्थी, अन्य कमचारी एव अभिभावक यद्यपि विद्यालय के शैक्षिक उद्देश्यो की पूर्ति मे एक महत्वपूण भूमिका निभाते हैं तथापि विद्यालय के भौतिक ससाधनो के अभाव मे ये मानवीय ससाधन स्वय को असहाय, असमथ एव निष्प्रभावी समझते हैं। विद्यालय के भौतिक ससाधन — भवन, खेल के मैदान, पुस्तकालय–वाचनालय, कार्यालय, शिक्षण–सहायक सामग्री आदि—ही विद्यालय मे वे सुविधाएँ उपलब्ध कराते है तथा वह वातावरण निर्मित करते हैं जिनके माध्यम से मानवीय ससाधन क्रियाशील एव प्रभावी होते हैं। बिना न्यूनतम आवश्यक भौतिक ससाधनो के विद्यालय के शैक्षिक एव सह–शैक्षिक क्रियाकलाप सुचारू रूप से सम्पन्न नही हो सकते। प्रस्तुत अध्याय मे इन्ही आवश्यक भौतिक ससाधनो का विवेचन किया जायेगा।

विद्यालय के भौतिक ससाधन

विद्यालय की स्थिति —

विद्यालय की स्थिति से तात्पय विद्यालय भवन हेतु उपयुक्त स्थल, भूमि एव वातावरण के चुनाव से है। शिक्षाविद् विलियम येगर (William yeager) का कथन है—"समस्त शैक्षणिक कार्यक्रमो मे आवश्यक वातावरण की अपेक्षा अन्य कोई तत्व इतना प्रभावी नही होता जो विद्यार्थियो मे सहकारिता की अभिवृत्ति तथा विद्यालय के प्रति प्रेम विकसित कर सके।" विद्यालय की स्थिति वह अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करता है जिसम शिक्षक तथा शिक्षार्थी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया मे सुविधापूवक संलग्न रह सकते हैं।'

"शैक्षिक एवं माध्यमिक शिक्षालय व्यवस्था" ग्रंथ में डी एन गौड तथा ग्रार पी शर्मा ने विद्यालय भवन की स्थिति के विषय मे अपना मत प्रकट करते हुए कहा है —
"स्कूल की इमारत के लिए जगह चुनते समय यह ध्यान रखा जाये कि किन परिस्थितियों म बालकों को भौतिक सुविधाएं आसानी से प्राप्त हो सकती है और स्कूल म स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा वातावरण प्रस्तुत किया जा सकता है।' अत विद्यालय-भवन के लिए उपयुक्त स्थान एवं भूमि के चुनाव हेतु आवश्यक बातो को दृष्टिगत रखना आवश्यक है।

विद्यालय-भवन की स्थिति के चुनाव हेतु ध्यातव्य बिंदु

ये बिंदु निम्नांकित हैं —

(1) स्थान — विद्यालय भवन का स्थान गाँव या नगर की आबादी से कुछ दूर हटकर होना चाहिए जो बच्चो के लिये आने जाने मे दूर भी न हो तथा जिस पर आबादी के कोलाहल, शोरगुल तथा प्रदूषण (धूल, धुएँ, गन्दगी आदि) का दुष्प्रभाव भी न पड़े।

(2) स्वास्थ्यप्रद और आकर्षक पर्यावरण — भवन स्थल ऐसे स्थान पर हो जहाँ शुद्ध वायु प्रकाश एव जल उपलब्ध हो सके तथा उसका निकटवर्ती पर्यावरण हरे भरे वृक्षो एव मनोहारी प्राकृतिक दृश्य के कारण आकर्षक एव स्वास्थ्यप्रद हो।

(3) भूमि — शाला-भवन के स्थान की भूमि क्षारीय, नम,दलदलीय, बालूमय पोली तथा गन्दे नदी नाले के पास न हो। भूमि ऊँची हो जहाँ वर्षा का पानी न रुकता हो। भूमि उपजाऊ तथा दीमक जैसे किटाणुओं से रहित हो ताकि विद्यालय वाटिका या कृषि उद्योग के काम मे बाधा न पहुचे। भूमि समतल हो ताकि भवन व खेल के मैदान बनाने मे असुविधा न हो।

(4) क्षेत्रफल — भूमि का क्षेत्रफल शाला-भवन छात्रावास खेल के मैदान, वाटिका कृषि कार्य मूत्रालय शौचालय प्रयोगशाला कार्यशाला(Workshop) आदि का प्रावधान करने के लिए पर्याप्त हो। यथा सम्भव भविष्य मे छात्र-संख्या मे वृद्धि के कारण भवन विस्तार की सम्भावनाओ की पूर्ति करने हेतु भी उस भूमि मे प्रावधान रखा जाना चाहिए।

(5) दुर्घटना से सुरक्षित — शाला भवन हेतु भूमि सडक के पास तो हो जिससे छात्रो के आवागमन म सुविधा हो किन्तु वह इतना समीप न हो कि सडक के

यातायात के शोरगुल से प्रभावित रहे तथा सडक दुघटनाओं की आशका बनी रहे। दुर्घटनाओ से सुरक्षा की दृष्टि से इस भूमि के पास कोई नदी, नाला, रेल की पटरी,खुला कुआ,बावडी,ज्वलनशील सूखीघास,लकडी की टाल आदि न हो।

(6) अवांछनीय स्थलो से दूरी — शाला भवन की भूमि के निकट असामाजिक और अवांछनीय स्थल जैसे — श्मशान भूमि, कब्रिस्तान, जुआघर मदिरालय, सिनेमागृह, फैक्ट्रियां, मिल, आदि न हों।

(7) जल — शाला भूमि के निकट शुद्ध और मीठे जल का स्रोत हों जो सुरक्षित हो। रेगिस्तानी क्षेत्रो में शाला प्रांगण मे ढका हुआ जल-भण्डार हेतु टाका होना आवश्यक हैं।

[2] विद्यालय भवन

विद्यालय हेतु उपयुक्त स्थल के चुनाव के पश्चात् वहा शिक्षा स्तर (प्राथमिक या उच्च प्राथमिक स्तर) के अनुकूल ऐसी शाला भवन के निमाण की आवश्यकता है जो उपयुक्त हो। वतमान में शाला भवनों की स्थिति के सन्दभ में कोठारी शिक्षा आयोग के शब्द उल्लेखनीय है — 'स्कूली इमारतो की वर्तमान अवस्था अति असन्तोषजनक है। प्राथमिक स्तर पर केवल 30 प्रतिशत स्कूलो के लिए सन्तोषप्रद भवनों की व्यवस्था होना कहा जाता है।'' राजस्थान में अधिकाश प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालय भवनो की स्थिति असन्तोषजनक है। ग्रामीण क्षेत्रो में कूपे या छप्पर वाले एक कमरे म तथा नगरीय क्षेत्रो मे किराये के अनुपयुक्त पुराने व जर्जर भवनो में अनेक विद्यालय चल रहे हैं जो शिक्षा स्तर एव छात्रो व अभिभावकों के मनोबल को गिराने के लिए उत्तरदायी है। अत विद्यालय भवन के निर्माण हेतु उपयुक्त योजना बनाई जाना वांछनीय है जो न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति करे तथा जिससे भवन निर्माण की लागत भी कम आये।

विद्यालय भवन निर्माण सम्बन्धी ध्यातव्य बिन्दु निम्नांकित हैं —

(1) भवन निर्माण से पूर्व किसी योग्य इंजीनियर तथा कला विशेषज्ञ (Architect) की सलाह से भवन का मानचित्र (Blue Print) बनाया जाना आवश्यक है। भवन की लागत कम लाने की दृष्टि से कोठारी शिक्षा आयोग ने रुड़की के "केन्द्रीय भवन अनुसंधान सस्थान" तथा "भारतीय मानक संस्था" द्वारा प्रस्तुत शाला भवनो के प्रारुपो के आधार पर भवन-निर्माण की अभिस्तावना की है।

(2) शाला-भवन एक मंजिल का ही ताकि बच्चों को कोई असुविधा न हो। भवन में दोनो ओर बरामदे हो ताकि प्रत्येक ऋतु मे सुविधा रहे।

(3) कक्षा-कक्षों (कमरा) मे शुद्ध वायु के आने और अशुद्ध वायु के निष्कासन तथा प्रकाश के आने हेतु पर्याप्त दरवाजे, खिडकियां तथा रोशनदान (Ventilators) होने चाहिये।

(4) भवन मे सभी कक्षाओं व विषय-विशेष के कक्षों, कार्यालय, पुस्तकालय, वाचनालय, प्रयोगशाला, भण्डार-गृह, व्यायशाला, शौचालय, मूत्रालय, सभा-भवन आदि का प्रावधान रखा जाना चाहिए।

(5) भवन का धरातल बाहर की भूमि के धरातल से ऊँचा रहे।

(6) सभी कमरों की ऊँचाई कम से कम 15 फीट हो, कक्षा-कक्ष का क्षेत्रफल 400 से 600 वर्ग फीट हो, सभा-भवन (Hall) का क्षेत्रफल 1000 वर्गफीट, कार्यालय 360 व फी, पुस्तकालय-वाचनालय 800 व फी, भंडार गृह 400 व फी जल-गृह 300 व फी व मूत्रालय-शौचालय प्रत्येक 20 व फी हो।

(7) शाला-प्रांगण मे खेल के मैदान दो (एक छोटा व एक बडा) वाटिका 1000 व फी क्षेत्रफल की तथा चार दीवारी चारो ओर 4 फी ऊँची व $1\frac{1}{2}$ फी चौड़ी एव पक्की होनी चाहिए।

(8) शाला-भवन का मुख्य-द्वार दक्षिण या पूर्व की ओर होना चाहिए ताकि वायु व प्रकाश पर्याप्त मात्रा मे मिले।

(9) कक्ष व हॉल के दरवाजे बरामदे म खुलने चाहिए खिडकियां आमने-सामने हों तथा फर्श से $1\frac{1}{2}$ फी की ऊँचाई पर हो। सभी कमरो म फर्श से4फी ऊँचाई तक काले या गहरे रग की पुताई हो फर्श सीमेंट पत्थर या ईंट का हो। दीवार पर श्यामपट्ट पर्याप्त लबे व चौडे तथा छात्रो की आयु वर्ग के अनुसार ऊँचे बनवा देना उपयुक्त रहता है। अध्यापक के बैठने का स्थान फर्श से कुछ ऊँचा प्लेटफार्म पर ही होना चाहिए।

(10) विद्यालय भवन की आकृति —विद्यालय-भवन की आकृति बंद शैली की अपेक्षा खुली शैली की आकृति अब उपयुक्त मानी जाती है। खुली शैली की शाला-भवन की आकृतियां अंग्रेजी के निम्नांकित अक्षरों के आकार की होती है —

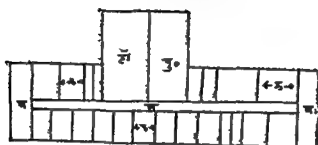
I T, U E तथा H

इनमे E आकृति का भवन सर्वोत्तम माना जाता है। अगले पृष्ठ पर उपरोक्त आकृतियों के भवनो के रेखाचित्र दिये जा रहे हैं जिनमे क=कक्ष हा=हाल पु=पुस्तकालय, व=बरामदा आदि संकेतो से दर्शाये गये है —

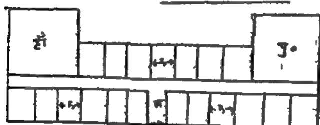
'I' आकृति के भवन



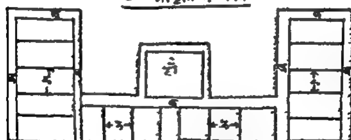
'T' आकृति के भवन



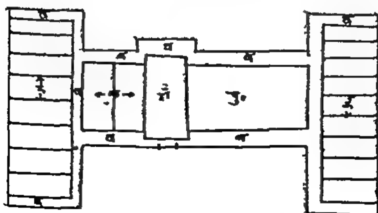
'U' आकृति के भवन



'E' आकृति के भवन



'H' आकृति के भवन



[3] फर्नीचर

विद्यालय के फर्नीचर के विषय मे पी सी रैन(P,C wren)का कथन है ' शिक्षार्थियों के शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक विकास मे फर्नीचर एक अत्य त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । यदि अनुपयुक्त डेस्कें हो या डेस्को की जगह बेंचों का प्रयोग किया जाय तो रीढ की हड्डी का टेढा होना, सीना सकडा होना, कन्धों का गोल होना, दृष्टि दोष होना आदि शारीरिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं, खराब अनुशासन चिड़चिड़ापन, असताष तथा असुविधा जसे नैतिक दोष हो जाते हैं तथा शारीरिक असुविधा के कारण अनवरत अवधान बनाये रखने मे असमर्थता जैसे मानसिक दोष हो जाते हैं " फर्नीचर का बालकों की आयु वग तथा काय की प्रकृति के अनुसार सुविधाजनक होना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा आसन (Postures) सम्बन्धी अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिनका मन और मस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव पडता है । इसके अतिरिक्त उपयोग की दृष्टि एव सुरक्षा के लिए कुछ विशिष्ट प्रकार के फर्नीचर की आवश्यकता होती है । फर्नीचर के अन्तर्गत छात्रो के बैठने व लिखने पढने के काय हेतु उपयुक्त आसन, बचे, कुर्सिया डैस्कें तथा चीजो की सुरक्षा हेतु अलमारियाँ प्रदशन पेटियां (Show Cases), मेजे, स्टूल बनसे प्रयोग तथा उद्योग का विशेष मेजो की अपेक्षा होती है ।

फर्नीचर के विषय मे निम्नांकित बातो का ध्यान रखा जाना वाछनीय है —

(1) छात्रो की आयु तथा शारीरिक विकास के अनुकूल बठने व लिखने पढ़ने का फर्नीचर होना चाहिए ।

(2) बैठने की बैंचों व स्टूलो के पीछे छात्रा को सहारे की व्यवस्था होनी चाहिए। सीट सुविधाजनक हो ।

(3) बैंचो व स्टूलो की ऊँचाई इतनी हो कि जमीन पर पैर टिकाने समय छात्रों के घुटने समकोण बनाते हुए झुके तथा डेस्को की ऊँचाई छात्रो के सीने तक हो व धरातल से उनका झुकाव 15° के कोण का रहे ।

(4) फर्नीचर को कक्षा मे इस प्रकार लगाया जाये कि सभी छात्रो के लिए वह पर्याप्त हो तथा उन्हें आने जाने में उससे कोई असुविधा न हो । अत उसे कुछ पक्तियों म विभक्त कर कुछ दूर दूर रखा जाये ।

(5) अन्य आवश्यक फर्नीचर उपयोग के अनुकूल हो ।

(6) फर्नीचर के क्रय करते समय उनके स्तर, किफायत तथा टिकाउपन पर ध्यान रखा जाये ।

(7) फर्नीचर के रख रखाव, सुरक्षा सफाई, रग रोगन तथा सत्यापन हेतु विद्यालय का नाम व सख्या सकेताक्षरो मे लिखने का ध्यान रखा जाये ।

[4] प्रयोगशाला — (Laboratory)

प्रयोगशाला विज्ञान-विषयो के विभिन्न प्रयोगो के करने तथा सम्बन्धित सामग्री के रख रखाव हेतु एक विशेष कक्ष होता है । यद्यपि वर्तमान में बहुत कम प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयो में इसका प्रावधान रखा जाता है तथापि अब 10+2 शिक्षायोजना के अन्तर्गत विज्ञान शिक्षण पर विशेष बल दिये जाने के कारण कम से कम उच्च प्राथमिक विद्यालयों मे तो एक प्रयोगशाला का प्रावधान रखा जाना अत्यन्त आवश्यक है। प्रयोगशाला के अभाव में विज्ञान-शिक्षण को प्रभावी नहीं बनाया जा सकता। कक्षा म ही विभिन्न उपकरणों को लाने-लेजाने में व्यर्थ समय नष्ट होता है तथा समान के टूटने व फूटने की आशंका भी रहती है । दिनेशचन्द्र भारद्वाज के शब्दों में— 'विज्ञान का शिक्षण केवल पुस्तकों के आधार पर ही नहीं किया जा सकता, वैज्ञानिक सिद्धान्तों को कसौटी पर कसने के लिये हमे प्रयोग का ही सहारा लेना पड़ता है । छात्र किसी भी बात को जितनी शीघ्रता से प्रयोगो के माध्यम से समझ जाते हैं उतने और किसी माध्यम से नहीं । इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान शिक्षण म प्रयोगशाला का अपना विशेष महत्व है ।'

प्रयोगशाला की साज सज्जा - प्रयोगशाला कक्ष लगभग30छात्रों के एक साथ प्रयोग करने हेतु पर्याप्त होनी चाहिए । इसका माप 45'×25' हो तथा उससे संलग्न 25'×16' का एक भण्डार गृह (Store room)तथा एक ओर छोटा सा अँधेरा-कक्ष (Dark Room) भी विशेष प्रयोग हेतु होना चाहिए । प्रयोगशाला मे शीशे लगी अलमारियों मे विभिन्न वैज्ञानिक उपकरण व रसायन व्यस्थित रूप से रखे जाने चाहिए । विषैले एव विस्फोटक पदार्थ विशेष सावधानी से रखे जायें । प्रयोगशाला की दीवारों पर वैज्ञानिक चार्ट, रेखाचित्र, चित्र आदि प्रदर्शित किये जायें तथा प्रदर्शन-पेटिकाओं (Show cases) मे मॉडल्स तथा वनस्पति एव प्राणी शास्त्र सम्बन्धी नमूने (Specimens) रखे जा सकते हैं । प्रयोशाला की मेज का माप6'×4' व ऊँचाई छात्रों के कद के अनुकूल हो । ऐसी लगभग सात मेजे हो जिनमे प्रत्येक पर 4 छात्र प्रयोग कर सके । मेज के बीच मे विभिन्न रसायन शैल्फ (Shelfs) म रखे जायें । मेज के मध्य में पानी का सिंक (Sink) हो जिसमें नल लगा हो । मेज पर प्रयोग हेतु स्प्रिट-लैंप अथवा गैस बनर हो। छात्रो के बैठने हेतु ऊँचे स्टूल हो । प्रयोगशाला में प्रकाश, जल व शुद्ध वायु की उचित व्यवस्था हो तथा फर्श पक्का, चिकना ढालू हो । इस कक्ष में एक श्याम-पट्ट व एक प्रदर्शन-पट्ट (Display Board) हो जिस पर प्रयोग हेतु छात्रो की सूचनार्थ विशेष सामग्री प्रदर्शित रहे ।

[3] फर्नीचर

विद्यालय के फर्नीचर के विषय में पी सी रेन(P,C,wren)का कथन है 'शिक्षार्थियों के शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक विकास में फर्नीचर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि अनुपयुक्त डेस्कें हों या डेस्कों की जगह बेंचों का प्रयोग किया जाय तो रीढ की हड्डी का टेढा होना, सीना सकडा होना, कन्धों का गोल होना, दृष्टि दोष होना आदि शारीरिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं, खराब अनुशासन चिड़चिड़ापन, असंतोष तथा असुविधा जसे नैतिक दोष हो जाते हैं तथा शारीरिक असुविधा के कारण अनवरत अवधान बनाये रखने मे असमर्थता जैसे मानसिक दोष हो जाते हैं" फर्नीचर का बालकों की आयु वर्ग तथा कार्य की प्रकृति के अनुसार सुविधाजनक होना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा आसन (Postures) सम्बन्धी अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिनका मन और मस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त उपयोग की दृष्टि एवं सुरक्षा के लिए कुछ विशिष्ट प्रकार के फर्नीचर की आवश्यकता होती है। फर्नीचर के अन्तर्गत छात्रों के बैठने व लिखने पढ़ने के कार्य हेतु उपयुक्त आसन, बेंचे, कुर्सियां डेस्कें तथा चीजों की सुरक्षा हेतु अलमारियां प्रदर्शन पेटियाँ (Show Cases), मेजें, स्टूल बक्से प्रयोग तथा उद्योग का विशेष मेजों की अपेक्षा होती है।

फर्नीचर के विषय में निम्नांकित बातों का ध्यान रखा जाना वांछनीय है —

(1) छात्रों की आयु तथा शारीरिक विकास के अनुकूल बैठने व लिखने पढ़ने का फर्नीचर होना चाहिए।

(2) बैठने की बेंचों व स्टूलों के पीछे छात्रों को सहारे की व्यवस्था होनी चाहिए। सीट सुविधाजनक हो।

(3) बेंचों व स्टूलों की ऊँचाई इतनी हो कि जमीन पर पैर टिकाते समय छात्रों के घुटने समकोण बनाते हुए झुके तथा डेस्कों की ऊँचाई छात्रों के सीने तक हो व धरातल से उनका झुकाव 15° के कोण का रहे।

(4) फर्नीचर को कक्षा में इस प्रकार लगाया जाये कि सभी छात्रों के लिए वह पर्याप्त हो तथा उन्हें आने जाने में उससे कोई असुविधा न हो। अत उसे कुछ पंक्तियों में विभक्त कर कुछ दूर दूर रखा जाये।

(5) अन्य आवश्यक फर्नीचर उपयोग के अनुकूल हो।

(6) फर्नीचर के क्रय करते समय उनके स्तर, किफायत तथा टिकाऊपन पर ध्यान रखा जाये।

(7) फर्नीचर के रख रखाव, सुरक्षा सफाई, रंग रोगन तथा सत्यापन हेतु विद्यालय का नाम व संख्या संकेताक्षरों में लिखने का ध्यान रखा जाये।

[4] प्रयोगशाला — (Laboratory)

प्रयोगशाला विज्ञान-विषयों के विभिन्न प्रयोगों के करने तथा सम्बन्धित सामग्री के रख रखाव हेतु एक विशेष कक्ष होता है। यद्यपि वर्तमान में बहुत कम प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयों में इसका प्रावधान रखा जाता है तथापि अब 10+2 शिक्षायोजना के अन्तर्गत विज्ञान शिक्षण पर विशेष बल दिये जाने के कारण कम से कम उच्च प्राथमिक विद्यालयों में तो एक प्रयोगशाला का प्रावधान रखा जाना अत्यन्त आवश्यक है। प्रयोगशाला के अभाव में विज्ञान-शिक्षण को प्रभावी नहीं बनाया जा सकता। कक्षा में ही विभिन्न उपकरणों को लाने-लेजाने में व्यर्थ समय नष्ट होता है तथा समान के टूटने व फूटने की आशंका भी रहती है। दिनेशचन्द्र भारद्वाज के शब्दों मे—'विज्ञान का शिक्षण केवल पुस्तकों के आधार पर ही नहीं किया जा सकता, वैज्ञानिक सिद्धान्तों को कसौटी पर कसने के लिये हमें प्रयोग का ही सहारा लेना पड़ता है। छात्र किसी भी बात को जितनी शीघ्रता से प्रयोगों के माध्यम से समझ जाते हैं उतने और किसी माध्यम से नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान शिक्षण में प्रयोगशाला का अपना विशेष महत्व है।'

प्रयोगशाला की साज सज्जा – प्रयोगशाला कक्ष लगभग 30 छात्रों के एक साथ प्रयोग करने हेतु पर्याप्त होनी चाहिए। इसका माप 45'×25' हो तथा उससे संलग्न 25'×16' का एक भण्डार गृह (Store room) तथा एक ओर छोटा सा अँधेरा-कक्ष (Dark Room) भी विशेष प्रयोग हेतु होना चाहिए। प्रयोगशाला में शीशे लगी अलमारियों में विभिन्न वैज्ञानिक उपकरण व रसायन व्यवस्थित रूप से रखे जाने चाहिए। विषैले एवं विस्फोटक पदार्थ विशेष सावधानी से रखे जायें। प्रयोगशाला की दीवारों पर वैज्ञानिक चार्ट, रेखाचित्र, चित्र आदि प्रदर्शित किये जायें तथा प्रदर्शन-पेटिकाओं (Show cases) में माडल्स तथा वनस्पति एवं प्राणी शास्त्र सम्बन्धी नमूने (Specimens) रखे जा सकते हैं। प्रयोशाला की मेज का माप 6'×4' व ऊँचाई छात्रों के कद के अनुकूल हो। ऐसी लगभग सात मेजें हो जिनमें प्रत्येक पर 4 छात्र प्रयोग कर सकें। मेज के बीच में विभिन्न रसायन शैल्फ (Shelfs) में रखे जायें। मेज के मध्य में पानी का सिंक (Sink) हो जिसमें नल लगा हो। मेज पर प्रयोग हेतु स्प्रिट-लैंप अथवा गैस बर्नर हो। छात्रों के बैठने हेतु ऊँचे स्टूल हो। प्रयोगशाला में प्रकाश, जल व शुद्ध वायु की उचित व्यवस्था हो तथा फर्श पक्का, चिकना ढालू हो। इस कक्ष में एक श्याम-पट्ट व एक प्रदर्शन-पट्ट (Display Board) हो जिस पर प्रयोग हेतु छात्रों की सूचनार्थ विशेष सामग्री प्रदर्शित रहे।

प्राथमिक एव उच्च प्रायमिक शालाग्रो मे विज्ञान–शिक्षरण हेतु विभिन्न विधियो एव आवश्यक सामग्री की सूचना व परामश राजस्थान राज्य विनान सस्थान (State Institut of Science), उदयपुर से प्राप्त किये जाने चाहिए। इस सस्थान ने विनान शिक्षरण हेतु उपकरणो का एक किट (Kit) भी तैयार किया है जो प्राप्त किया जा सकता है। प्रयोग शाला के सामान के रख–रखाव व सुरक्षा का पूरा ध्यान विज्ञान–शिक्षक तथा प्रयोगशाला सहायक को रखना चाहिए।

[5] पुस्तकालय व वाचनालय (Library & Reading Room)

प्राय प्रायमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयो में पुस्तकालय व वाचनालय का कोई प्रावधान या उचित व्यवस्था नही की जाती। यह अनुचित है। डा एस एस माथुर ने पुस्तकालय के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए कहा है कि— "पुस्तकालय का मुख्य प्रयोजन यह है कि वह अधिक से अधिक विद्यार्थियो मे अध्ययन की रुचि का विकास करे। जब विद्यार्थियो मे अध्ययन की रुचि विकसित हो जाती है तो वे अच्छी अच्छी पुस्तका और पत्रिकाओ को पढने लगते हैं, जिसके कारण उनका बौद्धिक विकास होता रहता है। पुस्तकालय का यह भी यह प्रयोजन है कि इसके द्वारा विद्यार्थियो को अपने अवकाश का सदुपयोग करना आ जाये। वे अवकास के समय अच्छी पुस्तकें पढें और इस प्रकार अपना अमूल्य समय नष्ट न करके उसे अपने बौद्धिक विकास के लिये उपयोग कर। पुस्तकालय द्वारा विद्यार्थिया की अनेक समस्याओ तथा प्रश्नो के उत्तर ढूढ निकाले जा सकते हैं।" इस प्रकार पुस्तकालय तया वाचनालय की आवश्यकता एव महत्व उसके प्रयोजन म निहित है।

पुस्तकालय व वाचनालय की व्यवस्था –इस सन्दभ मे निम्नाकित बिन्दु उल्लेखनीय

(1) कक्ष — बहुधा पुस्तकालय व वाचनालय का एक ही कक्ष कुछ विद्यालयो मे होता है। पुस्तको एव समाचार पत्रो को पढने के लिए एक पृथक कक्ष होना आवश्यक है। इसके अभाव मे छात्रो को पुस्तकें व समाचार पत्र चुनकर पढने तथा उन्हें अध्ययन हेतु लेने मे असुविधा होती है। पुस्तकालय व वाचनालय का कक्ष इतना बडा होना चाहिये कि उसमे पुस्तका की अलमारियाँ, समाचार–पत्रो के अध्ययन हतु बडी मेज व छात्रो के बैठन का फर्नीचर तथा पुस्तकालय प्रभारी अध्यापक या लिपिक के लिए पर्याप्त स्थान हो। इस कक्ष मे एक समय पर 30–40 छात्रो का बैठकर पढ़ने की व्यवस्था हो ताकि रिक्त कालाश अथवा पुस्तकालय कालाश मे एक कक्षा के विद्यार्थी उसका उपयोग कर सकें। इस कक्ष मे शुद्ध वायु, प्रकाश व जल की व्यवस्था होनी चाहिए।

(2) पुस्तको व समाचार पत्रो का चयन–प्राथमिक एव उच्च प्राथमिक विद्यालयों

मे कक्षा एव आयु वग की अभिरुचि योग्यता एव पठन क्षमता के अनुसार विभिन्न विषयो की उपयोगी पुस्तको एव समाचार पत्रो का विवेकपूर्ण चयन किया जाना चाहिए। शिक्षा विभाग द्वारा शिक्षा स्तर के अनुकूल विद्यालयो के लिए उपयुक्त पुस्तको व समाचार-पत्रो को क्रय करने हेतु अभिपषित किया जाता है। यह काय प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा, राजस्थान के बीकानेर स्थित निदेशक के कार्यालय में उपनिदशक (समाज-शिक्षा) द्वारा किया जाता है। अत विभाग प्रसारित सूची का अवलोकन कर चयन किया जा सकता है।

(3) व्यवस्था –पुस्तकालय व वाचनालय की समुचित व्यवस्था हेतु कम से कम उच्च प्राथमिक विद्यालयो मे तो एक पुस्तकालयाध्यक्ष (Librarian) अथवा प्रभारी अध्यापक की व्यवस्था होनी चाहिए। पुस्तकालयाध्यक्ष या प्रभारी का अनुभवी, रुचि शील एव विद्यार्थियो को स्वाध्याय हेतु उत्प्रेरित करनेकी क्षमता सम्पन्न होना वाछनीय है। डा0 एस0 एस0 माथुर का यह कथन सत्य है—"पुस्तकालय अध्यक्ष विद्यार्थियो को अध्ययन करने के सम्बन्ध मे उचित परामश दे सकता है तथा उन्हे प्रोत्साहित कर सकता है कि वे अच्छी पुस्तकें पढें। यदि अध्यक्ष अपने उत्तरदायित्व को ठीक ढग से निभाये तो पुस्तकालय विद्यालय की समस्त क्रियाओ का केन्द्र बन सकता है।"

(4) कक्षा पुस्तकालय (Class Library) कक्षा स्तर के अनुकूल पुस्तको का चयन कर उन्हे सम्बधित कक्षा अध्यापको को दिया जाना छात्रो के लाभाथ दिया जाना चाहिए। ये पुस्तकें कक्षा-कक्ष मे अलमारी मे रखकर कक्षा-पुस्तकालय के रूप मे प्रयुक्त की जा सकती हैं।

(5) विषय-पुस्तकालय (Subject Library)—उच्च प्राथमिक विद्यालयो मे कुछ विषयो-जैसे विज्ञान, अंग्रेजी, सामाजिक ज्ञान आदि-की पुस्तकें पृथक विषय पुस्तकालय के रूप में विषयाध्यापको के प्रभार में रखी जा सकती हैं। विषयाध्यापक इन पुस्तको में से पढन हेतु छात्रो को परामश दे सकता है।

इस प्रकार पुस्तकालय एव वाचनालय को न केवल स्वाध्याय एव अवकाश के समय के सदुपयोग हेतु प्रयुक्त किया जाना चाहिए बल्कि इसका प्रयोग उन्नत शिक्षण-विधियो (जैसे परिवीक्षित अध्ययन, प्रायोजना-विधि, विचार-विमश विधि आदि) हेतु भी किया जाना चाहिए।

6] कार्यालय (Office)—प्रधानाध्यापक के कक्ष के निकट ही विद्यालय का कार्यालय होना चाहिए जिसमें लिपिक अथवा प्रभारी अध्यापक के बठने की पृथक व्यवस्था

होनी चाहिए। कार्यालय में अभिलेखों (पंजिकाओं व पत्रावलियों की सुरक्षा हेतु अलमारियों एवं अन्य आवश्यक फर्नीचर (कुर्सी, मेज रैक, लेखन-सामग्री आदि) की व्यवस्था होनी चाहिए।

[7] खेल का मैदान— शिक्षा का लक्ष्य बालक का सर्वांगीण विकास करना होता है। बालकों के शारीरिक विकास में खेल-कूद का विशेष महत्व है। इस प्रवृत्ति में सहायक भौतिक संसाधनों में खेल के मैदान प्रमुख हैं। प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पास प्रायः खेल के मैदानों का अभाव रहता है। इस अभाव की पूर्ति जन सहयोग या स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाओं के माध्यम से किया जाना आवश्यक है। खेल के मैदान कम से कम एक छोटा और एक बड़ा प्रत्येक विद्यालय में होना चाहिए जहाँ कबड्डी, खो-खो, वॉलीबॉल, फुटबाल आदि के खेल एक निर्धारित समय-सारिणी के अनुसार प्रत्येक छात्र को उसकी रुचि के अनुकूल उपलब्ध हो सकें। खेल के मैदान को समतल बनाने तथा उसे खेल के नियमानुसार व्यवस्थित रखने का कार्य पी० टी० आई० के निर्देशन में किया जाना चाहिए खेलों में प्रयुक्त सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए जो आवश्यकतानुसार भंडार प्रभारी द्वारा छात्रों को दी जानी चाहिए।

[8] शिक्षण सहायक सामग्री (Teaching Aids) — शिक्षण को प्रभावी बनाने में जहां मानवीय संसाधन अर्थात् शिक्षक का स्थान तो सर्वोपरि है ही किन्तु शिक्षण प्रक्रिया को सुबोध, रोचक एवं विचार प्रेरक बनाने में भौतिक संसाधन अर्थात् शिक्षण-सहायक सामग्री का प्रयोग भी उतना ही महत्वपूर्ण है। शिक्षण-सहायक सामग्री के अंतर्गत न्यूनतम आवश्यक वस्तुओं के रूप में निम्नांकित प्रमुख हैं —

(1) श्याम पट्ट, (2) चित्र, (3) रेखा-चित्र या चार्टस, (4) मानचित्र, (5) ग्लोब, (6) विभिन्न विषयों से सम्बन्धित उपकरण जैसे विज्ञान में प्रयोग हेतु उपकरण (टैस्ट ट्यूब, फ्लास्क बर्नर, स्टैण्ड, थर्मामीटर बैरोमीटर, सूक्ष्म दर्शक यंत्र दूर दर्शक यंत्र, विभिन्न रसायन आदि), भूगोल में सम्बन्धित उपकरण (जैसे रिलीफ मैप्स मानचित्र चित्र, चार्ट, माडल्स, वायु दिशा सूचक यंत्र आदि) तथा इतिहास व नागरिक शास्त्र सम्बन्धी मानचित्र व रेखाचित्र, (7) मॉडल्स (8) छात्रों द्वारा संग्रहीत स्थानीय पेड़-पौधे, पत्तियों, पुष्पों, बीजों, मिट्टी चट्टान, खनिज जीवों के नमूने आदि (9) दृश्य-श्रव्य-साधन जैसे मैजिक लैंटर्न, प्रोजेक्टर, एपीडायस्कोप, रेडियो टी० वी०, ग्रामोफोन, टेपरेकॉर्डर आदि,

(10) शिक्षको व छात्रो द्वारा बनाये गये उपकरण।

शिक्षण सहायक सामग्री का प्रयोग एव व्यवस्था –

शिक्षण सहायक सामग्री जैसे महत्वपूर्ण भौतिक ससाधनों का उपलब्ध होना ही पर्याप्त नहीं है, उनका सही प्रयोग एव उनके रख-रखाव की उपयुक्त व्यवस्था किया जाना अधिक वाछनीय है। इस सदभ मे निम्नाकित बिन्दु ध्यातव्य है-

(1) प्राथमिक एव उच्च प्राथमिक विद्यालयो मे यथासभव उपरोक्त शिक्षण सहायक सामग्री का होना अपेक्षित है। इनके अभाव की पूर्ति विभाग के उच्चाधिकारियो जन सहयोग व शाला सगम के माध्यम से की जानी चाहिए। अध्यापको के मार्ग दर्शन मे छात्रो द्वारा स्थानीय साधनो से तैयार किये गये आशु-उपकरण (Improvised Apparatus) इस कमी की पूर्ति मे सहायक हो सकते हैं।

(2) इस सहायक सामग्री के उचित भण्डारन, रख रखाव एव उनके उचित समय पर उचित विधि मे प्रयोग किये जाने हेतु इसका दायित्व पुस्तकालयाध्यक्ष अथवा अन्य किसी प्रभारी शिक्षक को सौंपा जाना चाहिए। विषयाध्यापको को प्रतिदिन अपनी आवश्यकतानुसार इसे प्रभारी व्यक्ति से लेकर प्रयोग के बाद लौटा देना चाहिए। जिन विषयो के लिए पृथक कक्षो की व्यवस्था है उन विषयो से सम्बन्धित सामग्री विषयाध्यापक के प्रभार मे सम्बन्धित कक्षो मे रखना ही उपयुक्त है जैसे विज्ञान, भूगोल, इतिहास, कला उद्योग आदि की सामग्री।

(3) शिक्षण सहायक सामग्री मे आवश्यकतानुसार निरतर वृद्धि की जानी चाहिए तथा उनकी टूट फूट की मरम्मत की जानी चाहिए।

(4) इस सामग्री का उपयोग मात्र-प्रदर्शन के लिए न किया जाकर उसे विषय-शिक्षण का विचार प्रेरक, रोचक व बोधगम्य बनाने मे किया जाना चाहिए।

(5) शाला सगम के माध्यम से विद्यालय परस्पर विनिमय द्वारा उनके पास उपलब्ध सामग्री अथवा कीमती उपकरणो (जैसे टी वी, प्रोजेक्टर आदि) का अधिकतम उपयोग कर सकते हैं।

[9] अन्य भौतिक ससाधन —

अन्य भौतिक ससाधन जो विद्यालय के सुचारु सचालन मे सहायक हो सकते हैं, वे निम्नाकित हैं —

(1) छात्रावास — ग्रामीण क्षेत्रो के उच्च प्राथमिक विद्यालयो मे प्राय बालक दूरस्थ स्थानो से भी पढने आते हैं। उनका बहुत सा समय एव शक्ति स्कूल आने जाने मे ही नष्ट हो जाते हैं जिसके कारण वे अपना अध्ययन नियमित गृह कार्य करने मे असमर्थ होते हैं। ऐसे छात्रो के लिए विद्यालय के किसी प्रभारी अध्या

पक के मार्गदर्शन मे चलने वाले एक छात्रावास की आवश्यकता होती है। ऐसे छात्रावास भवन किराये पर अथवा स्थानीय जन सहयोग से प्राप्त कर किसी अध्यापक के मार्ग दर्शन मे उसकी इस प्रकार व्यवस्था की जा सकती है जो छात्रो के लिये सुविधाजनक एव उपयोगी हो। छात्रावास मे आवश्यक सामान जैसे —पलग अलमारियाँ, स्टूल, टेबल, एव प्रकाश की व्यवस्था, भोजनालय के उपकरण खेल व मनोरजन के साधन वाचनालय आदि होना चाहिए जिससे छात्रो को कोई असुविधा न हो। छात्रावास अधीक्षक (Warden) के रहने का कक्ष भी छात्रावास से सलग्न होना चाहिए। छात्रावास की उपयोगिता को डा एस एस माथुर इन शब्दो म व्यक्त करते है —"हम यह विश्वास पूर्वक कह सकते है कि यदि छात्रावास मे अच्छा वातावरण व उचित व्यवस्था अच्छा प्रबन्ध हो तो छात्रावास मे छात्रो का शारीरिक, मानसिक एव नैतिक विकास बहुत ही सुन्दर एव प्रभावशाली ढग से हो सकता है।"

(2) सह-शैक्षिक क्रियाओ मे सहायक भौतिक ससाधन —विद्यालय में अनुकूल वातावरण के निर्माण तथा छात्रो के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से सह-शैक्षिक क्रियाओ के प्रभावी सचालन हेतु कुछ भौतिक ससाधनो की आवश्यकता होती है जैसे शारीरिक शिक्षा हेतु व्यायाम सम्बन्धी उपकरण (डबल्स, लेजिम, जिमनास्टिक के उपकरण आदि), कार्यानुभव या उद्योग सम्बन्धी कार्यशाला व उपकरण, प्रकृति निरीक्षण एव सग्रह की प्रवृत्ति के विकास हेतु सग्रहालय व उसकी साज-सज्जा की वस्तुएँ प्रार्थना सभा को प्रभावी बनाने मे सहायक उपकरण जैसे हारमोनियम तबला, स्कूल बैंड, का सामान आदि श्रमदान और समाजसेवा हेतु आवश्यक वस्तुएँ कक्षा एव सास्कृतिक कार्यक्रमो के उपयोगी उपकरण जैसे ड्राइग पेंटिंग का सामान नाटक अभिनीत करने हेतु रगमच, परदे, वेष भूषा आदि। इन भौतिक ससाधनो से सह-शैक्षिक क्रियाओ को प्रभावी व उपयोगी बनाया जा सकता है।

विद्यालय के मानवीय एव भौतिक ससाधनो का समन्वय व सचालन

विद्यालय के मानवीय एव भौतिक ससाधन उपलब्ध होना ही पर्याप्त नही है। वे स्वय अपने पृथक अस्तित्व से क्रियाशील एव प्रभावी नही बन सकते। उनमे परस्पर उचित समन्वय द्वारा उनके प्रभावी सचालन से ही शैक्षिक उद्देश्यो की उपलब्धि हो सकती है, अत उचित विद्यालय सगठन एव प्रधानाध्यापक की प्रशासनिक योग्यता द्वारा ही सभव हो सकता है। प्रथम अध्याय मे वर्णित पाठशाला प्रबन्ध के सिद्धान्तो व प्रक्रिया के तत्वो—नियोजन सगठन, समन्वय, निर्देशन नियन्त्रण तथा मूल्यांकन- के

आधार पर ही विद्यालय के मानवीय और भौतिक ससाधनो मे उचित समन्वय लाकर उनका प्रभावी सचालन किया जा सकता है आगामी अध्याय म समय-विभा चक्र के विवेचन के सन्दर्भ म यह स्पष्ट किया जायगा कि इन ससाधनो का अधिकतम उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है। प्रधानाध्यापक मानवीय सम्बन्धो के आधार पर इन ससाधनो का उचित समन्वय कर समय विभाग चक्र द्वारा उनके सचालन की व्यवस्था करता है। इस समन्वय और सचालन की प्रक्रिया मे मुख्य लक्ष्य बालक का सर्वांगीण विकास करना होता है।

विद्यालयो मे प्राय ससाधनो के अभाव म काय क्षमता की कमी तथा गिरत शिक्षा-स्तरो का औचित्य प्रकट करने की अवाछनीय प्रवृत्ति देखी जाती है। यह अनुचित है क्योकि कोठारी शिक्षा आयोग ने विद्यालय समुन्नयन योजना द्वारा उपलब्ध ससाधना स ही शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने की अभिप्सा करते हुए कहा है— "गुणात्मक सुधार के कायक्रमो में अब तक आधारभूत दृष्टिकोण यह रहा है कि मानवीय तत्वो की क्रिया के स्थान पर भौतिक सुविधाओ की व्यवस्था पर ही जोर दिया गया है। हमने यहाँ राष्ट्रीय गुणात्मक सुधार कायक्रम का जो सुझाव दिया है उसका उद्देश्य ही इस प्रक्रिया को उलट देना और उस योगदान पर जोर देना जो शिक्षा के गुणात्मक सुधार में अध्यापक, पयवेक्षक, बच्चो के माता-पिता और छात्र अपने सम्मिलित प्रयास से कर सकते हैं।" अत उपलब्ध ससाधनो के अन्तर्गत भी प्रधानाध्यापक और अध्यापक अपनी पहल शक्ति, सजनशीलता और प्रयोगशीलता के आधार पर विद्यालय में शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठा सकते हैं।

उपसहार

विद्यालयो के प्रभावी सचालन हतु आवश्यक न्यूनतम मानवीय एव ससाधना का होना आवश्यक है। छात्र सख्या मे निरन्तर वृद्धि एव लोकतन्त्र मे लोगो की शैक्षिक आकाक्षाओं की पूर्ति हेतु विद्यालयों की सख्या म निरन्तर वृद्धि हो रही है। इस अनियन्त्रित वृद्धि के परिणाम स्वरूप ऐसे सुन्दर, दुर्गम एव पिछड़े क्षेत्रो मे विद्यालय खुल रहे हैं जिनमे न्यूनतम भौतिक ससाधनो की कमी है तथा एक अध्यापकीय शालाओं (Single Teachers Schools) व अध्यापको की नियुक्ति के अभाव मे जहा मानवीय ससाधन भी नही है। ऐसी स्थिति मे विद्यालय सचालन नितान्त असम्भव हो जाता है। शिक्षा विभाग एव सरकार को इन विद्यालयो का खोलने के पूर्व ही इन ससाधनो की व्यवस्था कर देनी चाहिए तथा बाद मे भी इनकी कमी की पूर्ति तत्काल करनी चाहिए। किन्तु यह भी सत्य है कि सरकार के सीमित वित्तीय साधनो और पिछड़ेपन के कारण विद्यालयो मे ससाधनों की कमी होना अपरिहार्य है। इस विषम परिस्थितियो मे उपलब्ध ससाधनो के अधिकतम उपयोग और जन-सहयोग द्वारा शिक्षा के गुणात्मक उन्नयन हेतु कोठारी शिक्षा आयोग की उपरोक्त अभिप्सा ध्यानस्थ है।

मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न – (Short Answer type Questions)

1 विद्यालय-लाइब्रेरी के संगठन मे किन-किन बातो का ध्यान रखना चाहिए ।
(बी एड 1982)

2 मध्य दिवसीय भोजन योजना विद्यालय कार्यक्रम म किस प्रकार योगदान देती है।
(बी एड 1981,79)

3 शाला मे एक संग्रहालय का क्या महत्व है ? (बी एड 1979)

4 विद्यालय भवन आकृति के दृष्टि से कितने प्रकार के होते हैं, तथा इनकी न्यूनतम आवश्यकताओ का उल्लेख कीजिये ।

5 विद्यालय प्रयोगशाला के महत्व के बारे मे संक्षिप्त म वर्णन कीजिए ।

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (essay type Questions)

1 मध्य अवकाश भोजन, कैंटीन सेवायें तथा टिफन सेवाय एक दूसरे से किस प्रकार भिन्न है ? किन परिस्थितियो मे एक को अपेक्षा दूसरे को वरीयता देनी चाहिए ?
(बी एड 1983)

2 नगरो की सीमित परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए बतलाइये कि विद्यालय भवन स्थल का चुनाव करते समय किन आधारभूत बातो को ध्यान म रखना चाहिय ?
(बी एड 1981)

3 यदि आपको किसी विद्यालय के पुस्तकालय का दायित्व सौंपा जाता है तो आप अधिकतम उपयोग की दृष्टि से इसकी सेवा का पुनर्गठन किस प्रकार करेंगे ?
(बी एड पत्राचार 1981)

4 किसी भी विद्यालय म अजायबघर (म्यूजियम)का क्या महत्व है तथा इसकी सेवाओं को किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है ? (बी एड 1979,पत्राचार198

5 'पुस्तकालय एक शाला की आत्मा है' – पर विचार प्रस्तुत कीजिय ।(बी एड 197

6 विद्यालय मे पुस्तकालय का क्या महत्व है ? इसका सर्वोत्तम उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है ?
(बी एड 1978)

अध्याय ६

विद्यालय प्रयोगशाला
(School Laboratary)

[प्रयोगशाला की सकल्पना उसका महत्व, प्रयोगशाला स्थापना के सिद्धात प्रयोग शाला के प्रकार–विज्ञान प्रयोगशाला, भाषा प्रयोगशाला सामाजिक ज्ञान प्रयोगशाला, विभिन्न प्रयोगशालाओ की साज सज्जा, विभिन्न प्रयोगशालाओ की सामग्री, प्रयोगशाला बनाम वर्कशाप, साराँश]

सकल्पना —प्रजातान्त्रिक जीवन दर्शन के अनुसार व्यक्ति को स्वय ही अपनी चि तन शक्ति विकसित करनी चाहिए जिससे वह अपने जीवन के विश्वासो और मूल्यो के आधार पर आत्म निर्णय कर सके । मुख्यत अध्यापक का कार्य शैक्षिक पर्यावरण पैदा करके विषय के प्रति रूचि पैदा करने हेतु उत्तेजना पदा करते हुए प्रयोगात्मक शिक्षण को प्रोत्साहित करना है, इसका अर्थ वस्तुपरक प्रमाण को खोजने प्रयोग करने की योग्यता उत्पन्न करना, वज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना तथा दूषित तथा भावनाजन्य आंशिक सत्य को पहचान कर उसे दूर करना है । ऐसी योग्यता प्राप्त करने के लिए विचारो की अभिवृद्धि से पूव बालक तथ्यो का व्यवहारिक एव जीवनोपयोगी ज्ञान प्राप्त करता है जिसका आधार करके सीखना (Learning by doing) है । जिसके परिणाम स्वरूप व केवल मात्र ज्ञान क लिए सद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त नही करते है बल्कि अधिकाधिक व्यवहारिक तथा जीवन से सम्बन्धित ज्ञान को अजन करने मे सफलसिद्ध होते हैं तथ्या, नियमा और सामान्य सिद्धान्तो के सत्यापन कर सके,, ताकि कालान्तर म वे व्यवहारिक–जीवन मे खरे उतर सके ।

आज शिक्षा का स्वरूप वास्तव मे बडा गतिशील, प्रयोगात्मक और प्रनाग्रही है जिसे कार्यात्मकवादी व अभ्यास दोनो को क्रियात्मक रूप देने से ही बालक का परिवर्तनशील समाज मे उपयोगी सिद्ध हो सकता है ।

परम्परागत प्रयोगशाला केवल विज्ञान विषय के लिए ही प्रयोग मे लाया जाता था लेकिन बदलते हुए परिवेश तथा कार्यात्मकवादी उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास वांछित है । अत भाषा सामाजिक ज्ञान के विषय भी वैज्ञानिकता

को लेकर छात्रों को प्रस्तुत किया जाता है और प्रयोगात्मक प्रणाली से अध्ययन अध्यापन का काय सम्पन्न करने का सफल प्रयास किया जाता है।

प्रयोगशाला के महत्व —

(1) बालको मे रटन व अप्रयोगिात्मक शिक्षण को प्रोत्साहन न देकर प्रयोगात्मक पक्ष पर अधिक जोर देना।

(2) विषय के अनुकूल शैक्षिक वातावरण बनाने मे प्रयोगशाला वांछित है।

(3) विषय की प्रयोगशाला उस विषय विशेष के अध्ययन हेतु कुशलता प्राप्त करने का वातावरण छात्रो मे उत्साह भरता है।

(4) विषय से सम्बंधित उपकरणो, चाट, ग्रॉफ, मॉडल आदि को देखकर उसमे जिज्ञासा पदा होती है और उनका प्रयोग करन व देखने मे विशेष आनन्द का अनुभव करते है।

(5) व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए विषय मे विविधता एव रुचि जाग्रत होती है।

(6) विषय मे अधिकतम रुचि लेने हेतु उत्तेजना का काय करता है।

(7) विषय-प्रयोगशाला मे रखें समान उपकरण, चाट, माडल ग्राफ, आदि का अवलोकन करने से बालक अनायास ही अधिगम हो जाता है।

(8) वज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है।

(9) काय कारण सम्बन्ध स्थापित करके, रचनात्मक शक्ति का विकास होता है।

(10) समस्याओ का हल करने के लिए सम्पन्न किए गय कार्यों से छात्रों मे व्यवहारिक जीवन में आने वाली समस्याओ को हल करने का प्रशिक्षण मिलता है।

(11) प्रयाग के माध्यम से अपेक्षाकृत अधिगम शीघ्रता से व स्थाई रूप से होता है।

(12) प्रगतिशील क्रिया प्रधान शिक्षण पद्धतियां जसे समस्या विधि, योजना, स्रोत तथा सामूहिक विवेचन प्रयोगशाला के माध्यम से प्रभावशाली ढग से अधिगम सुलभ हो जाता है।

(13) छात्रो म पहलकदमी, आलोचनात्मक दृष्टिकोण, साधन-सम्पन्नता, सहयोग वैयक्तिक काय करन की शक्ति आदि गुणों का विकास होता है।

(14) विभिन्न विषयो के सम्बन्ध म व्यावहारिक कार्यो व योजनाओ के लिए प्रोत्साहित करती है।[2]

---

1 मफत, एम पी 'सोशिल स्टीडिज इन्स्ट्रक्शन' प्र0 212

2 गुप्ता, एम पी, ' विद्यालय प्रशासन एव सगठन" प्र0 309

(15) विषय की प्रयोगशाला मे समान एक स्थान पर ही रखा रहता है जिससे समय व श्रम की बचत होती है ।

(16) प्रयोगशाला के अभाव में उपकरणो को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने लेजाने म टूट फूट अधिक होती है ।

(17) छात्रो द्वारा सिद्धात को व्यवहारिक पक्ष देखने से आत्मविश्वास का विकास होताहै।

(18) सामाजिकता की भावना का विकास, निरतर सामूहिक रुप से कायरत होने से होता है ।

प्रयोगशाला सगठन के सिद्धात

विद्यालय मे भौतिक, रसायनिक, जीव विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और भाषा-विनान की व्यवस्था और स्थापना के सम्बन्ध मे निम्नाकित सिद्धान्तो को ध्यान मे रखा जाना चाहिए —

(1) उच्च माध्यमिक स्तर तक प्राय सभी भौतिक विज्ञान के लिए एक ही प्रयोग-शाला हो ।

(2) प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तर तक सम्पूर्ण प्रकृति तथा आसपास के पर्यावरण को प्रयोशाला के रुप मे अपनाया जाय ।

(3) माध्यमिक स्तर पर सभी भौतिक विनान के निए पथक पृथक प्रयोगशालाये स्थापित की जायें ।

(4) प्रयोगशाला के लिए जो कक्ष निर्मित किय जाय या चुने जाय उनकी निम्नलिखित विशषताये हा —

(अ) प्रयोगशाला कक्ष सामान्य कक्ष से बडा हो ।

(ब) प्रयोगशाला मे सवातन की पयाप्त व्यवस्था हो ।

(स) मुख्य कक्ष के साथ सलग्न दो छोट-छोट कक्ष कक्ष भी हों जिनम एक भडार के रूप मे तथा दूसरा प्रभारी के कार्यालय के रुप में प्रयोग किया जाय ।

(द) प्रयोगशाला कक्ष मे पानी की अच्छी व्यवस्था हो ।

(5) प्रयोगशाला मे पर्याप्त और उपयुक्त साज-सज्जा हो । प्रयोगशाला के लिए रखी गई साज-सज्जा तथा फर्नीचर के सम्बन्ध मे निम्नांकित तथा ध्यान मे रखना चाहिए ।

(अ) प्रत्यक छात्र के लिए कुछ ऊँची स्टूलो तथा उपयुक्त आकार की मेजे हों ।

---

2 रामपालसिंह, "विद्यालय सगठन और स्वास्थ्य सेवा" पज/90-91

(ब) मेज मे दराजे हो जिन पर छात्र अपने ताले लगा सके।

(स) आवश्यक स्थलो पर हाथ आदि धोने के लिए जल की व्यवस्था हो।

(द) प्रयोगशाला मे छात्रो के अनुपात मे पर्याप्त उपकरण एव साज सज्जा हो।

(य) प्रयोगशाला मे प्राथमिक चिकित्सा की व्यवस्था रखी जाय।

(र) प्रयोगशाला मे आग बुझाने की व्यवस्था हो।

(6) प्रत्येक प्रयोगशाला का विषय से सम्बन्धित अध्यापक प्रभारी हो। प्रभारी अध्यापक के अलावा एक सहायक भी हो।

(7) सभी प्रयोग प्रभारी-अध्यापक की देख रेख म ही सम्पन्न किय जाये।

(8) प्रभारी अध्यापक तथा छात्र एप्रिन पहिनकर प्रयोगशाला मे काय करें अत पर्याप्त मात्रा मे एप्रिन भी होने चाहिय।

(9) सामाजिक विषयो की प्रयोगशालाओ मे सम्बन्धित विषय के लिये उपयोगी सभी साहित्य तथा उपकरण होन चाहिय।

(10) भाषा विज्ञान प्रयोगशाला में सम्बन्धित साहित्य टेप रिकार्ड, स्टिरियो आदि उपकरण होने चाहिए।

(11) प्रयोगशाला में उचित उपकरणो की उपलब्धि प्रयोग के समय देख-रेख तथा स्वच्छता आदि क प्रति शिक्षक क सतक रहना चाहिए।

(12) प्रयोगशाला काय मे यथा सम्भव छात्रो का सहयोग लिया जाये जस समान बाँटने मे या उन्हें एकत्रित करने मे।

(13) छात्रो को उपकरणो के विषय में पूर्ण ज्ञान दिया जाना चाहिए तथा उन्हें रखने में सावधानिया भी बता देनी चाहिए।

(14) विजातीय एकत्रित पदार्थों का निवतन कराते रहना चाहिए।

(15) पुराने तथा खराब अथवा दोष युक्त उपकरणो को तुरन्त ठीक कराया जाय या नये उपकरणो की व्यवस्था की जानी चाहिय।

(16) उपकरण छात्रो की सख्या के अनुपात मे अवश्य बढते रहने चाहिए अन्यथा सभी छात्र प्रयोग नही कर पायेंगे और इधर उधर से पूछ ताछ कर आलेखन कर सकें।

(17) प्रतिभाशाली तथा पिछड़े बालको के प्रयोगात्मक कार्य पर पूर्ण ध्यान दिया जाये और उनका उचित प्रकार से पथ प्रदर्शन किया जाना चाहिए।

(18) अनुपस्थित हुए छात्रो के प्रयोग पूर्ण करने की अतिरिक्त समय में व्यवस्था की जानी चाहिए।

(19) प्रयोगशाला की प्रत्येक वस्तु पर उसके नाम लिखे होने चाहिए अन्यथा दुर्घटना की सम्भावनाएँ हो सकती है।

(20) प्रयोगशाला मे प्रत्येक वस्तु का स्थान निश्चित होना चाहिए।

(21) एक ही प्रकार के उपकरण पर क्रमाक लगाने से गिनती में सुविधा रहेगी।

(22) पाठ्यक्रम की आवश्यकता के अनुरूप उपकरण क्रय करे।

(23) विभिन्न प्रयोग शालाओ का स्टॉक रजिस्टर रखा जाय।

(24) *विषय से सम्बन्धित उपकरण को विक्रय करने वाली सभी दुकानो की विवरणिका होनी चाहिए।*

(25) प्रयोगशाला में "प्रयोगशाला–निर्देश" छात्रो को दिए जाने चाहिए।

सस्थाओ मे प्रयोगशालाओ की स्थिति

प्रयोगात्मक कार्यं को सफल रुप से करने के लिए एक प्रयोगशाला का होना आवश्यक है। हमारे देश मे प्रयोगशालाओ का अभाव है। जो प्रयोगशालाएँ हैं, वे आदर्श रुप मे नही है। एक आदर्श प्रयोगशाला के निर्माण के लिए विषय विशेष के अध्यापको से राय लेनी चाहिए।

लेकिन दुर्भाग्य है कि "प्रयोगशाला के दरवाजे कभी–कभी ही खुलते हैं। मेजो की गर्द को कभी–कभी ही बाहर निकालने की तकलीफ की जाती है।"3

प्रयोगशालाओ के प्रभावशाली उपयोग से ही छात्रो मे व्यावहारिक ज्ञान करके सीखने के गुण का विकास सम्भव है अत उसके लिए– "आधुनिकीकरण, यन्त्र सज्जा तथा सदर्भ ग्रन्थ सग्रह युक्त रखने हेतु राज्य सरकारो से अनुदान सहायता विशेष प्रयत्नो द्वारा और सम्भव मुद्रा की अपेक्षा उपकरणो के रुप मे प्राप्त की जाय। इसके अतिरिक्त राज्य–सरक्षित ऐसी सस्थान भी उपलब्ध रहे जहाँ प्रयोगशाला के *यन्त्रीयकरणो की मरम्मत*, साज सभाल उचित मूल्य पर करायी जा सके।"4

विभिन्न विषय और उनकी प्रयोगशालाओ के प्रकार–विज्ञान विषय की माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर सामान्यत भौतिक, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान की प्रयोगशालाएँ होती है। भाषा–विज्ञान और सामाजिक विज्ञानो के विषयो के प्रभावशाली अधिगम हेतु प्रयोगशाला की अपनी विशिष्ट विशेषताएं होती है। सभी विषयो की प्रयोगशाओ के बारे मे सामान्य जानकारी प्रस्तुत की जा रही है।

---

3 अग्रवाल श्याम सरन, *"विज्ञान शिक्षण एक विवेचन" साहित्य परिचय 1976 पे/219*

4 प्रो श्री वास्तव, भगवती प्रसाद वही ,,

विज्ञान विषयो की प्रयोगशाला की सरचना हेतु निर्देशन —

(1) एक प्रयोगशाला मे एक बार में सामान्यत 24 तथा अधिकतम 30 विद्यार्थी कार्यरत हो सके ।

(2) 30 विद्यार्थियो के लिऐ 1000 वग फीट, यानि 45 X 25 लम्बाई व चौड़ाई होनी चाहिए ।

(3) कक्षा मे विद्यार्थियो की सख्या अधिक हाने पर उन्हे दो वर्गों मे विभाजित करना चाहिए ।

(4) प्रयोग के लिए मेजे तथा उनके बीच सिन्क की व्यवस्था हो ।

(5) प्रत्येक सिन्क के किनारो म पानी के नलो का प्रबन्ध होना चाहिए ।

(6) विद्यार्थी की मेज पर गैस पाईप व बिजली का समुचित प्रबन्ध हो ।

(7) मेजो को फर्श में जमाकर नही रखा जाय जिससे सफाई आदि सुविधा से हो सके ।

(8) प्रत्येक मेज मे पत्र अथवा समान रखने के लिए कप बोर्डस हाने चाहिए ।

(9) अध्यापक की मेज मे गैस बनर, सिन्क, बिजली, कप बोर्ड आदि का प्रबन्ध होना चाहिए ।

(10) विद्यार्थियो के लिए स्टूल 22 इच से 25 इच तक की हो ।

(11) अध्यापक अध्यापन के समय छात्र उसकी ओर मुँह करके बठे ।

(12) प्रयोगशाला का मुख सदा उत्तर की ओर होना चाहिए ताकि सूय का प्रकाश आ सके ।

(पे3) खिडकियाँ काच की होनी चाहिए ।

(14) रोशनदान का प्रबन्ध हो तथा रसायन शास्त्र प्रयोगशाला में एक्जेस्ट फन लगाया जाय ।

(15) खिडकियाँ फश से 4 फीट ऊँची हो ।

(16) एक्टयेरियम एव अलग स्थान पर बनाया जाय ।

(17) अन्धेरे कमरे बनाने के लिए खिड़कियो पर काले पर्दे लगाने जान चाहिये ।

(18) दीवार के किनारो पर उचित स्थानो मे आलमारिया रखी जानी चाहिए ।

(19) कप बोडस की चाबिया रखने के लिए अलग स्थान बनाया जाय ।

(20) छत पर एक पानी की टकी का प्रबन्ध होना चाहिए ।

(21) बुन्सन बनर(Bunsen Burner) के प्रयोग हेतु गैस-टकी की व्यवस्था हो ।

(22) भौतिक तुला आदि के लिए समतल व कठोर धरातल हो ।

(23) अध्यापक की मेज के पीछे श्यामपट्ट हो ।

(24) फश मजबूत हो व नालिया फश के नीचे हो ।

(25) प्रयोगशाला के पास सामान रखने हेतु छोटा कमरा हो।
(26) सामान तथा प्रयोगशाला बन्द करने की व्यवस्था हो।
(27) कमरे में रोशनी, पानी, गैस का प्रचुर मात्रा में प्रबन्ध हो।
(28) अँधेरे कमरे को कई प्रयोग में लिया जा सकता है जैसे फोटोग्राफी आदि।
(29) विषय विशेष या सामान्य फिल्म दिखाने हेतु पर्दे की व्यवस्था की जानी चाहिए
(30) सशोधित मॉडल, उपकरण आदि बनाने हेतु व्यवस्था होनी चाहिए।
(31) प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के चित्र व उनके द्वारा किये गये आविष्कारों का उल्लेख हो जिससे उचित वातावरण व उत्प्रेरणा देने में सहायक होते हैं।

अब हम विभिन्न विषयों की प्रयोगशाला के बारे में विचार-विमर्श करेंगे जो सामान्यत माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शालाओं की आवश्यकता है और उनके लिए विभिन्न प्रकार के उपकरण।

प्रयोगशाला की सामग्री व उपकरण — अध्यापक प्रभारी को पाठ्यक्रम का विश्लेषण करते हुए निश्चय करना चाहिए कि कौन कौनसी सामग्री और उपकरणों की आवश्यकता छात्रों को हो सकती है फिर बजट को भी दृष्टि में रखना चाहिए कम व्यय में अधिक उपयोगिता के सिद्धान्त का पालन करें। इम्प्रूवाईज्ड उपकरण छात्रों के द्वारा भी बनाने हेतु प्रोत्साहन दिया जाना उचित है। समान प्राप्त करने के लिए विज्ञान के उपकरण व सामग्री विक्रय करने वाले फर्म से सूचियाँ मंगवा कर तुलनात्मक अध्ययन करके क्रय आदेश प्रसारित किये जाय। उपकरण व सामग्री के चयन हेतु निम्नलिखित बातों को दृष्टि में रखा जाय—

(1) उपकरणों को ठीक करने वाले औजार को प्राथमिक क्रम दिया जाय।
(2) महंगे उपकरण की बजाय सस्ते ही क्रय किये जाय।
(3) उपकरणों को प्राथमिकता के आधार पर क्रय किया जाय अर्थात् आवश्यक को प्रथम।
(4) छात्र संख्या को दृष्टि में रखकर ही उपकरण व सामग्री खरीदी जाय।
(5) प्रयोगशाला में काम में आने वाली प्रयोग सामग्री पर अपेक्षाकृत अधिक व्यय किया जाय।
(6) प्रयोगशाला में वही उपकरण रखे जाय जो छात्रों के उपयोग हेतु हों केवल प्रदर्शन के लिए नहीं।
(7) सामग्री को क्रय करने से पूर्व उसकी सुरक्षा की व्यवस्था के बारे में गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

(8) साधारण-यन्त्र अथवा वस्तुओ को विद्यार्थी स्वय प्रयोगशाला मे ही बनावे । जिससे कालातर मे विद्यार्थियो मे खोज करने की आर अग्रसर होगे ।

(9) भ्रमण के अवसर पर अध्यापको के निर्देशानुसार 'सग्रहीत'वस्तुओ को कम कीमत पर प्रयोगशाला मे रखी जानी चाहिए ।

(10) चाट, वैज्ञानिकों के चित्र, क्रियात्मक रेखाचित्र आदि जहा तक हो सके छात्रो को तयार करने हेतु उत्प्रेरित किया जाय ।

प्रयोगशालाओ मे सामग्री व उपकरणो का रख-रखाव —प्रयोगशाला मे सामान क्रय करके याने या 'सग्रह (Collection) द्वारा प्राप्त होने वाले स्थाई व रोजाना खर्च होने वाली वस्तुएँ सभी का प्रयोगशाला के स्टाक रजिस्टर मे दज हाते हैं और प्रतिवर्ष इनका सत्यापन होता है। इस व्यवस्था को अध्यापक स्वय या प्रयोगशाला सहायक द्वारा सम्पन्न किया जाता है । इसके लिए स्टॉक रजिस्टर के अतिरिक्त क्रय रजिस्टर आवश्य-कता रजिस्टर (Demand Register) तथा वस्तुओ के लेन देन रजिस्टर का उपयोग सामायत किया जाता है । इन रजिस्टरो मे वस्तु, मूल्य, तादाद क्रय की गई दुकान का नाम आदि का विवरण होता है । जब वस्तुए खच हो जाती है या जो टूट-फूट जाती है उन्ह प्रधानाध्यापक की अनुज्ञा से खारिज की जा सकती है । स्थायी वस्तुओ के टूटन या खो जाने पर समिति के निर्णय के उपरान्त राशि को दृष्टि मे रखकर ही सक्षम अधिकारी द्वारा 'सर्वे रिपोट फाम' खारिज की जा सकती है । विद्यार्थियो द्वारा निर्मित इम्प्रोवाइज्ड उपकरणो को भी स्टाक रजिस्टर मे दज किया जाना वाछित है ।

प्रयोगशाला मे वस्तुओ को सुरक्षित रखने की व्यवस्था — प्रयोगशाला की कीमती विषैली और विस्फोटक पदार्थों से हानि या दुघटना का उत्तरदायित्व सम्बन्धित अध्यापक पर होता है। समान भाने उनको प्रयोग द्वारा उपयोग हेतु प्रदान करने आदि का विवरण रजिस्टरो मे दज होना होना चाहिए । प्रयोगशाला म स्वच्छता और अनुशासन का कठोरता से पालन हो । अध्यापक को अपेक्षाकृत कम कायभार दिया जाय ताकि वह अच्छी प्रकार से प्रयोगशाला के लिए सुरक्षात्मक उपाय कर सके । अध्यापक प्रति माह अपने स्टाक रजिस्टर से सामान की मिलान करता रहे और प्रतिवर्ष स्टाक रजिस्टरो के आधार पर सर्वे रिपोट फाम भरकर समिति द्वारा निरीक्षण करवाकर खारिज करने की कायवाही करनी चाहिए । प्रयोगशाला हेतु अध्यापको और छात्रो के लिए नियमो का पालन करना चाहिए ।

प्रधानाध्यापक, अध्यापक एव छात्रो का शाला प्रयोगशाला के प्रति कर्तव्य —

प्रधानाध्यापको को शाला की विज्ञान सकाय मे जिन उपकरणो की आवश्यकता है उन्हें अपने साधनो को दृष्टि मे रखकर अध्यापक की अभिपानुसार व नियमानुसार

क्रय करने मे सचेत रहना चाहिए । प्रति माह पर्यवेक्षण करके सृजनात्मक सुझाव दे तथा प्रति वष सत्यापन करवाते हुए अनावश्यक वस्तुओ को खारिज की व्यवस्था करे ।

अध्यापक को चाहिए कि वे प्रयोग मे ही रहे जब छात्र कायरत हो, उन्हे नियन्त्रण मे रखते हुए छात्रो को दुघटनाओ से बचाने हेतु प्राथमिक चिकित्सा व्यवस्था को तैयार रखे । छात्रो को समय समय पर आवश्यक निर्देश दे तथा प्रयोग विधि और सावधानिया के बारे म विस्तृत ज्ञान दे । गैस, विद्युत विस्फोटक पदाथ व जहरीली वस्तुओ के प्रति सचेष्ट रहे । सामग्री व उपकरणा को पर्याप्त मात्रा मे छात्रो को उपलब्ध करवाये । विज्ञान विषय की विभिन्न प्रयोगशालाओ म प्रभारी द्वारा 'प्रयोगशाला–क्रियाओं' के प्रति सचेत रहना चाहिए और निर्धारित समय पर सम्पूर्ण हो जाय ।

छात्रो को सदैव प्रयोग शाला व उनके उपकरण व प्रयोगशाला की सुरक्षा व स्वच्छता के प्रति सचेत रहना चाहिए । प्रयोगशाला म आत्मानुशासन के आधार पर कार्य हो और अध्यापक प्रभारी केआदेश, निर्देशानुसार ही काय करे । धैय न रहने से दुघटना हो सकती है । गैस,पानी,बिजली सामग्री का आवश्यकतानुसार ही उपयोग करे। अनजानी वस्तुओ पर प्रयोग अहितकर होता है ।

सामाजिक विषयो की प्रयोगशाला (Laboratory of Social Subjects)

आधुनिक विषय वस्तु की इकाई या समस्या जो विषय केन्द्रित या अनुभव केन्द्रित, उन्ह कोर–कक्षाओ के माध्यम से प्रभावशाली अधिगम का वातावरण छात्रो को दिया जा सकता है, जिससे वे क्रियाशील बनाने के लिए आवश्यक साज–समान तुरत उपयोग हेतु उपलब्ध करवाये जाय । सामाजिक अध्ययन–सम्बन्धी सभी प्रकार की सुविधाओं से ही छात्र मूल्यवान अनुभव प्राप्त करते जो प्रभावशाली अध्ययन हतु आवश्यक है ।

वतमान में सामाजिक अध्ययन हेतु परम्परागत विधियो की बजाय योजना, स्त्रोत तथा सामूहिक विवेचन जैसी विधियों का सामान्यत प्रयोग होता है या समस्याए जो विषय केन्द्रित या अनुभव केन्द्रित होती है उन्हे 'कोर–कक्षाओं' के माध्यम से स्थाई एव प्रभावशाली अधिगम हेतु वातावरण देकर स्वत क्रियाशील बनाने को प्रेरणा दी जाती है अच्छे अधिगम जिससे परिणाम–सृजनात्मकता एव चिन्तन शक्ति की बढ़ोतरी अच्छे साधन–सुविधाओ पर निर्भर करते है । जहा प्रत्येक छात्र विशिष्ट समस्या 'कायरत होते है, परन्तु विषय–वस्तु की इकाई से सम्बन्धित हो । अत सामाजिक विषयो से सम्बन्धित सभी सामग्री अध्ययन अध्यापन क्रिया केअवसर पर छात्रो को उपलब्ध

करवाई जाय तथा उन्हे व्यवस्था सम्बन्धी दायित्व सौपा जाय ।

सामाजिक अध्ययन कक्ष मे अध्यापक उनकी प्रगति हेतु आवश्यक निर्देश देता हैं जहाँ विज्ञान की प्रयोगशाला जैसा ही वातावरण हो जिससे प्रयोगात्मक क्रियाओ द्वारा प्राप्त अनुभवो से छात्रो के ज्ञान मे सहज विकास सम्भव हो सके । अत हम निर्विवाद रूप से सामाजिक विषयो की प्रयोगशाला को आवश्यकता का आवश्यक समझते है ।

सामाजिक अध्ययन कक्ष की सामग्री —प्रा0 मेक कानेल एव ग्रॉवड के अनुसार 'परिवर्तनशील व एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण करने योग्य फर्नीचर, श्रव्य दृश्य सामग्री, टेलीविजन, पुस्तकालय, प्रोजेक्शन–रूम आदि की सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाय।' 1

प्रा0 मफल के अनुसार — 'अध्ययन अध्यापन प्रक्रिया हेतु बडी आवश्यकताहै–स्कूल कुर्सिया डेस्क फाईलिंग केबिनेट बुक–केसेज आलमारिया, चाक–बोर्ड, बुलेटिन बोर्ड ग्लाब, मैप चार्ट, प्रोजेक्टर, रिकार्डर, रेडियो, टलीविजन, पुस्तकें, वर्क बुक, विश्व–कोष, शब्द–कोष आदि ।''2

साराश रूप मे कहा जा सकता है —अधिगम प्रयोगशाला का उद्देश्य क्रियाशील क्रियाकलापो द्वारा मूल्यवान अनुभव की सुविधाएँ प्रदानकर प्रभावशाली अधिगम करवाना है ।

भाषा प्रयोगशाला (Language Laboratory)

भाषा अध्यापन मे नई विचार धारा

बीसवी शताब्दी म भाषा अध्यापन के सिद्धांत (Theories) द्रुतगति से भाषा ज्ञान तत्व व मनोवैज्ञानिक अनुसधान के आधार पर पुनर्स्थापना हो रही है। परम्परागत कक्षा–अध्यापन विधियाँ केवल अक्षम नही बल्कि कुछ अशो मे हानिकर सिद्ध हो रह है इसीलिए उन विधियो को भाषा विज्ञान के अध्यापन विधियो से हटाया जा रहा है । वैज्ञानिक आधार पर भाषा विज्ञान को पढाने हेतु नई प्रविधियाँ, अध्यापक की दक्षता को बढाते हुए प्रभावशाली ढग से अध्यापन हेतु काम मे ली जाती है। परम्परागत दृष्टिकोण से अध्यापन को कला समझा जाता था लेकिन आधुनिक युग मे अध्यापन को

1 जे डी, मेक कानील एव जी एफ ग्रॉवड "प्लान प्लानिंग एकेडेमिक क्लाश रूम, जनरल प्रोसिजर इन प्लानिंग एकेडेमिक क्लाश रूम" पे 36

2 प्रो मर्फत एम पी " सोसिल स्टडिज इनस्ट्रेशन", पे 154

विज्ञान माना जाता है । अध्यापन-कार्य को एक सामान्य अध्यापक वैज्ञानिक आधार पर नियोजन करते हुए अभ्यास द्वारा उच्च श्रेणी की दक्षता प्राप्त करने में सफल सिद्ध हो सकता है ।

भाषा शिक्षण का तात्पर्य भाषा सम्बन्धी ज्ञान व सूचना प्रदान करना नहीं है बल्कि विभिन्न प्रकार के उपकरणों के माध्यम से भाषा अध्ययन के कौशल का विकास करना है अध्यापक की व्यवसायिक दक्षता के मूल्यांकन का आधार छात्रों को भाषा अध्ययन करवाते हुए उन्हें बोलने, पढ़ने व लिखने हेतु कौशल के विकास में सहयोगी बन सके । अध्यापक की सफलता छात्रों को धीरे धीरे अध्ययन के कौशल इस ढंग से विकास करे कि वे विदेशी भाषा में विभिन्न तत्वों का स्वाभाविक ढंग से प्रति उत्तर देने में सफल हो सके । सफल अध्यापक छात्रों में निरन्तर अभ्यास व कौशल से ऐसा आत्म विश्वास पैदा करदे कि वे उक्त भाषा का गलत उपयोग कर ही न पाये ।' 1

भाषा प्रयोगशाला— टेप रेकार्डर युक्ति का ही एक विकसित रूप भाषा प्रयोगशाला है जिसका प्रयोग अमेरिका में बहुत किया जाता है और अब अन्य देशों में उसका प्रचार बढ़ रहा है । इसके प्रयोग के लिए 'बूथ' होते हैं । और प्रत्येक बूथ में टेप रेकार्डर होता है जो एक मुख्य टेप से परिचालित होता है । द्वितीय भाषा शिक्षण में इसका विशेष उपयोग होता है । बालक विदेशी भाषा की ध्वनि एवं संरचना का शुद्ध रूप टेप से सुनता है और दूसरे टेप पर उन्हें दोहराता है । दूसरे टेप को फिर बजाकर अपनी ध्वनियों की तुलना मूल ध्वनि (प्रथम टेप की ध्वनि) से करता है । इस प्रकार वह विविध संरचनाओं का अभ्यास करता है । वह अनुच्छेदों में बोध प्रश्नों का उत्तर देता है । भाषा प्रयोगशाला द्वारा सभी बालकों को अपनी गति से प्रगति करने का अवसर मिलता है ।'2

उपसंहार –विद्यालय में सन्निहित प्रयोगशालाओं का अत्यधिक महत्व है विभिन्न विषयों में विशेष कौशल अर्जित कराने हेतु इनकी उपयोगिता स्वयंसिद्ध है । यहाँ आते ही विद्यार्थी विशेष उत्साह का अनुभव करते हैं वे रुचि साथ प्रत्येक बात को गहराई से समझने के साथ साथ 'करके सीखने के सिद्धान्त की भी अनुपालना करते हैं । विभिन्न प्रयोगशालाओं के विषय विशेषज्ञों को विचार विमर्शकर एवं गहन चिन्तन के पश्चात ही इनका संगठन करना चाहिए तभी उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव हो सकेगी ।

---

1 देशपांडे, एस. के. "न्यू टेक्नीक्स आफ लेंग्वेजेज टीचिंग"
(नया शिक्षक वर्ष 9 अंक 2 3, 1967, पृ/212 213)

2 निरंजनकुमारसिंह, "माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण," पृ 393

मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न – (Short Answer Type Questions)

1 विद्यालय में प्रयोगशालाओं के महत्व की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।

2 विद्यालय मे प्रयोगशाला का भाषा–शिक्षण म क्या महत्व है ?

3 प्रयोगशाला सगठन के क्या सिद्धान्त है ?

(ब) निम्बन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1 विद्यालय शिक्षा मे प्रयोगशाला का क्या महत्व है ? एक विज्ञान प्रयोगशाला की रुपरेखा प्रस्तुत कीजिए तथा उसके रखरखाव हेतु सुझाव दीजिए।

2 माध्यमिक स्तर की प्रयोगशाला के निर्माण व सामग्री के लिए योजना प्रस्तुत कीजिए

3 विज्ञान विषयो की प्रयोगशाला की सरचना करते समय किन–किन बिन्दुओ को दृष्टि म रखना चाहिए ?

अध्याय ७

शाला–पुस्तकालय

(School Library)

[विषय प्रवेश, नई शिक्षा व्यवस्था मे पुस्तकालय की आवश्यकता, शाला पुस्तकालय का उद्देश्य, शाला पुस्तकालय की वतमान दशा, पुस्तकालय नियोजन एव सगठन पुस्तकालय कक्ष, फर्नीचर पुस्तको का चयन, पुस्तको का वर्गीकरण, खुला पुस्तकालय पद्धति, अनुलय सेवा, कक्षा पुस्तकालय, पुस्तकालय को छात्रों हेतु आकर्षक बनाने के उपाय पुस्तकालयाध्यक्ष के करणीय काय, उपसहर, परीक्षापयोगी प्रश्न]

पुस्तकालय की आवश्यकता एव महत्व

(Need & Importance of School Library)

शाला पुस्तकालय का महत्व शैक्षिक दृष्टि से माध्यमिक शिक्षण व्यवस्था म सव मान्य है। पुस्तकालय कक्षा मे अध्ययन अध्यापन के काय का पूरक करता है क्योंकि कक्षा मे छात्रो का कुछ विषयो की सीमित पाठय पुस्तके पढाई जाती है परतु छात्रो का सर्वांगीण विकास करन के लिए आवश्यक है कि वह विभिन्न विषयो की अनेको पुस्तक पढकर ज्ञान प्राप्त करे और पत्रिकाएँ पढकर वर्तमान सामयिक घटनाओ आदि का परिचय प्राप्त करे। विभिन्न प्रकार की पद्धतियों से सामाजिक अभिरुत द्वारा ज्ञान को अर्जन करने का सफल प्रयास करता है। धीमी गति से अधिगम करने वाले बालक व बालिकाओ को भी कक्षा–अध्यापन के उपरान्त स्वाध्याय कर कक्षा स्तर के समान आ सकता है।

विभिन्न क्षेत्रों मे ईकट्ठा किया हुआ ज्ञान प्राप्त करवाने का पुस्तकालय साधन है। सैकडो वर्षो पूव जिसने समाज को ज्ञान उपलब्ध करवाया, हम आज उनकी पुस्तको के माध्यमसे प्राप्त कर सकते है माध्यमिक शिक्षा आयोग ने पुस्तकालय के महत्व पर प्रकाश डाला है — 'विज्ञान सम्बन्धी विषयो को पढाने के लिए जो स्थान प्रयोगशाला का है तकनीकी विषयो के लिए जो स्थान कार्यशाला का है पुनर्गठित स्कूल मे बौद्धिक एव साहित्यिक ज्ञान अभिवृद्धि के लिए वही स्थान पुस्तकालय का है क्योकि यही किसी भी सस्था का मुख्य स्थान अथवा केन्द्र तथा धुरी माना जाता है। व्यक्तिगत शैक्षिक काय सामूहिक प्रोजेक्ट या प्रयोजन, अनेकानेक व्यक्तिगत रुचियों तथा विविध सहायक कार्यक्रमो की सफलता के लिए एक समृद्ध तथा सुव्यवस्थित पुस्तकालय की नितान्त आवश्यकता है"

"महान दार्शनिक सिसरो के अनुसार—"A room without book is a body without Soul"

बालक प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था मे स्वचिन्तन करते हुए भिन्न भिन्न प्रकार की प्रवृतियो मे अग्रसर हो अर्थात् प्रशिक्षित नागरिकता का प्रशिक्षण शाला समय मे ही प्राप्त होता है।

"आधुनिक शिक्षा प्रणाली मे छात्रो को समस्या का चयन करना, काय सम्पन्न करने लिए योजना का निर्माण करना, तथा विश्वसनीय सूचनाओं के आधार पर अधिकृत विचारधारा का प्रतिपादन करना सीखाते है। इसके लिए विस्तृत अध्ययन, बहुत से सदर्भो का अवलोकन करते हुए मूलरूप की सूचना का ज्ञान वांछित है। पुस्तके, पत्र पत्रिकाए, पेम्पलेटस, मैप, दृश्य श्रव्य सहायक सामग्री, तथा प्रशिक्षण प्राप्त पुस्तकाध्यक्ष द्वारा पुस्तकालय का सगठन प्रभावशाली ढग से करते हुए इनसे लाभ उठाने के लिए उत्प्रेरित करना आवश्यक है। आधुनिक युग में किसी भी प्रकार का कायक्रम प्रभावशाली ढग से सचालित न होकर उद्देश्य प्राप्ति नही कर सकता, जब तक पुस्तकालय सेवा किसी न किसी रूप में नही मिलती। 1

एक पाठ्य पुस्तक से पाठय क्रम पर अधिकृत अधिकारी बनाने वाला जमाना नहीं है। आज गत्यात्मक पाठयक्रम की पूर्ति के लिए बहुत सी पुस्तकें व विभिन्न सदर्भ विषय वस्तु का अवलोकन करना होता है जिससे शाला पुस्तकालय अपरिहाय होगई है बालक विभिन्न विद्वानो की पुस्तकें पत्रिकाऐं चित्र, पेम्पलेटस, डिक्सनरी, विश्व-कोष, तथा अन्य साधनो से सूचनाऐं प्राप्त करने के लिए शाला पुस्तकालय का सगठन ही उपलब्ध करवाता है। 2

"अध्यापक के काय तथा प्रभाव के अतिरिक्त भी पुस्तकालय शिक्षा का मुख्य साधन है। अध्यापक के पास जो शिक्षा के अन्यान्य साधन है, उसम पुस्तकालय अत्यधिक रुप से मुख्य है। और यदि किसी बच्चे मे पुस्तको के अध्ययन के प्रति रुचि तथा प्यार उत्पन्न कर दिया जावे तो बच्चे के लिए ऐस असख्य माग खुल जाते हैं जिस पर चलकर वह मानवीय ज्ञान तथा अनुभव की एक समृद्ध निधि प्राप्त कर सकता है। ऐसे वातावरण मे जहा पुस्तको को उचित स्थान दिया जाता है, पले हुए बच्चे, अन्य बच्चों से निश्चय ही अधिक ज्ञानवान होगे, क्योकि बच्चो को आरम्भ से ही ऐस वातावरण की आवश्यकता रहती है जो कि आकषक तथा मनोरजन पुस्तकमय हो और विद्यालय का

1 Ceil and W A Heaps School Library Service ,P 17-18
2 Helen Hesternan, "Foreword to Teachers & Parants' P/7 8

सवप्रथम कतव्य है कि वे बच्चे की इस आवश्यकता को पूर्ण करें तथा उन्हें ऐसा वातावरण जुटाएँ।"1 आनन्दमय अनुभूति से पुस्तकालय का उपयोग निश्चय ही पुस्तकों के प्रति प्रेम करने को अग्रसर होगे।

"शिक्षा के दो मुख्य उद्देश्य– छात्र का व्यक्तिगत सर्वांगीण विकास तथा समाज के सदस्य के रूप मे विकास। प्रथम उद्देश्य पूर्णरूपेण विकास करते हुए उसकी क्षमता, योग्यता, शारीरिक स्फुर्ति के आधार पर बालक का अधिकतम विकास करते हुए संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण करना है। जबकि दूसरा उद्देश्य कक्षा स्कूल रूपी छोटे समाज खेल के मदान मे सामाजिक व्यवहार का विकास करना। जो व्यवहारिक जीवन मे उससे आशा की जाती है। उसमे सामान्य जिम्मेदारियो के निर्वाह का प्रशिक्षण दिया जाता है।'2

"इस प्रकार शिक्षा दशन, नये आयाम, नवाचार व शिक्षा के उद्देश्यो के दृष्टिकोण का छात्रो मे विकास शाला पुस्तकालय के माध्यम से सम्पूर्ण करने मे सफल हो सकते हैं। 3

जॉन डिवी "शाला व समाज' मे लिखा है कि पुस्तकालय विद्यालय का हृदय है। छात्र जहा विभिन्न अनुभव, समस्याये तथा प्रश्न लेकर आते हैं और तब उन पर विचार विमश करते हैं और दूसरो के अनुभवो तथा संग्रहीत विद्वता, जो कि पुस्तकालय में सुसज्जित, सुव्यवस्थित तथा प्रदर्शित रहती है, के माध्यम से नवीन ज्ञान की खोज करते है।' 4 यह पुस्तकालय के महत्व को स्वत ही स्पष्ट करता है।

नई शिक्षा व्यवस्था मे शाला पुस्तकालय की आवश्यकता 5

डा एस आर रगनाथन ने नई शिक्षा व्यवस्था मे पुस्तकालय का महत्व बताया है कि —

(1) व्यक्तिगत विभिन्नता व विकलाग छात्रो के सहयोग के लिए
(2) डाल्टन शिक्षण-पद्धति के प्रतिपादन के लिए
(3) गृह काय के लिए
(4) एसाइनमेंट के लिए
(5) प्रोजेक्ट शिक्षा पद्धति के लिए
(6) उद्देश्यनिष्ट अध्ययन के लिए

1 Smeaton, J "School Libraries Ministry of Edu 1959 P/1
2 Carnegie united Kigdom Trust" Libraries in Secondary Schools' P/12
3 Viswanathan, CG, 'The High School Library ' P/4
4 Ranganathan, SR ' Suggestions for org of Libraries in India P/15
5 , , P/15 24

(7) वार्षिक लघु शोध लिखने के लिए
(8) चित्रमय अध्ययन के लिए
(9) गलत सकल्पना को सही समझने के लिए

डा रगनायन1 ने पुस्तकालय को विश्व शांति के लिए अच्छा साधन बतलाया है कि अच्छे साहित्य पढने से तथा शान्तिकाल में उन्नति होती है। ऐसा ज्ञान प्राप्त करने से छात्रों मे युद्ध अभिवृद्धियाँ नष्ट होगी। कार्यशाला की सज्ञा भी शाला पुस्तकालय को दी है जहा छात्र अपने अध्ययन कार्य मे क्रियाशील रहते है शिक्षण-सस्था की धुरी शाला पुस्तकालय को बताया हैं क्योंकि शिक्षण के सारे उपागम इसी पर निभर करते हैं। "क्या है" और क्या होना चाहिए, हम आंखे मु दे हुए नही, खोलकर निष्कर्ष निकालते है। पुस्तकालय आखे खोलती है पुस्तकालय की पठनीय सामग्री से।"

प्रो फरगो के अनुसार विद्यालय पुस्तकालय के निम्न उद्देश्य हैं —

(1) छात्रो तथा उनके पाठयक्रम की आवश्यकताओ के अनुसार पुस्तकें तथा दूसरी सामग्री प्राप्त करना तथा उनका ठीक प्रकार से प्रबन्ध करना।
(2) विद्यार्थियों को पुस्तकें व अन्य शैक्षणिक सामग्री स्वय चयन करने हेतु पथ प्रदशन करना।
(3) विद्यालय में पुस्तकालय तथा पुस्तको का प्रयोग सम्बन्धित कुशलता उन्नत करना तथा स्वय शोध सम्बन्धी आदता को प्रोत्साहन करना।
(4) आवश्यक रूचियो को उन्नत करने मे विद्यार्थियो की सहायता करना।
(5) सौन्दर्यात्मक अनुभव तथा कलात्मक प्रशसा को उन्नत करना -
(6) आजीवन शिक्षा को प्रोत्साहन करता है।
(7) साजिक रूझानो को प्रोत्साहित करना तथासामाजिक एव प्रजातान्त्रिक जीवन में अनुभव देना।
(8) विद्यालय तथा प्रशासन की दृष्टि से स्कूल स्टाफ के साथ सहकारिता का कार्य करना है।

उपरोक्त कथन के आधार पर हम कह सकते हैं कि पुस्तकालय की आवश्यकता तथा महत्व– छात्रो मे अध्ययनशीलता का विकास,विभिन्न रूचियो और आवश्यकताओ की पूर्ति, सामान्य ज्ञान की वृद्धि सहायक पुस्तको के अभाव की पूर्ति, प्रिय विद्वान लेखकों से सम्पर्क, कक्षा शिक्षण की पूर्ति, अवकाश के समय का सदुपयोग, अध्यापको के बौद्धिक विकास मे सहायक, मौन पाठ का अभ्यास,आधुनिकतम ज्ञान प्राप्ति नई शिक्षण विधियो

1 Ranganathan SR ' New Education and School Library ' P/17 18

द्वारा मध्ययन, शकाओ का निवारण तथा बालको के चरित्र गठन मे सहायक होता है। लेकिन जहा तक सभव हो पुस्तकालय के सगठन एव सचालन मे प्रजातात्रिक रूख अपनाते हुए छात्र व अध्यापको को अधिकाधिक भाग लेने दिया जाय जिससे वे पुस्तकालय की ओर स्वत आकृष्ट होगे और उनमे पढन की प्रवृति बढेगी और पुस्तका से प्रेम बढगा

शाला पुस्तकालय का उद्देश्य (Objectives of School Library)

माध्यमिक शिक्षा आयोग निम्नलिखित उद्देश्य बतलाये हैं।

(1) वर्तमान प्रजातात्रिक सामाजिक व्यवस्था मे सहभागी होने का प्रशिक्षण देना।

(2) अपने राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि के लिए प्रायोगिक और व्यवसायिक दक्षता का विकास करना।

(3) छात्रो में साहित्यिक कलात्मक और सांस्कृतिक की रुचियो का विकास करना जो स्वय का स्पष्टीकरण करने तथा व्यक्तित्व के विकास हेतु आवश्यक है।"1

(4) 'पुस्तकालय-वातावरण से विद्यार्थी को प्रजातात्रिक नागरिकता के गुणो का विकास हेतु बहुत से अवसर प्राप्त होते है।"2

(5) 'शाला पुस्तकालय मानव जगत् के तजुर्बे व ज्ञान का प्रतीक है जो विद्यार्थी तजुर्बा व ज्ञान प्राप्त करते हैं। 3

(6) अध्यापको की अध्ययन अध्यापन मे सुविधा देना।

(7) स्वाध्याय मे कौशल का प्रशिक्षण देना।

(8) पुस्तकों को प्रदर्शित कर उत्प्रेरित करना ताकि छात्र खाली समय मे मित्रवत् साबित हो सके।

(9) पाठ्यक्रम का अधिक उपादेय बनाने मे सहयोग देना।

(10) छात्रो के लिए विविध साहित्य को वर्गीकरण द्वारा क्रमबद्ध करना तथा सूचीकरण द्वारा निर्धारित स्थान की ओर इगित करना।

(11) पुस्तकालय प्रगतिशील अध्यापन विधियो का अभ्यास करवाने का अनिवार्य साधन है।'4

(12) 'दृश्य-श्रव्य साधनो के माध्यम से सम्पन्न कार्यक्रम से छात्रो मे उन पर काम करने का प्रशिक्षण मिलता है और शैक्षिक उपयोगिता भी है।'5

---

1 Secoundray Education Report quitud by Dr C G Viswanathan Book title 'The High School Library' P/4

2 Matfatt M P, Social studies Ist Instruction' 309

3 " " 308

4 Govt of Indian Report op cit 110

5 Linder Ivan H, 'Secondary School Adm, 249

(13) 'पुस्तकाध्यक्ष व समाज के नेताओं के सहयोग से समाज या क्षेत्र के विकास हेतु कार्यक्रम का निर्माण करना ।1

(14) विद्यार्थियो के लिए उपयोगी पुस्तको के चयन और अन्य साधनो के एकत्रीकरण के लिये अध्यापको का सहयोग प्राप्त करना ।

(15) छात्रो मे शैक्षिक सम्पन्नता प्रदान कर उपयोगी व व्यवहारिक दृष्टिकोणा का विकास करना ।

(16) छात्रो को सन्दर्भ साहित्य व ग्रन्थो के बारे मे परिचित करवाना और उपयोग करने की विधि भी समझाना ।

(17) तर्क-चिन्तन व निर्णय शक्ति का विकास हेतु तयार करना ।

शाला पुस्तकालयो की वर्तमान दशा (Present Condition School Libraries)
शाला पुस्तकालय नाम मात्र की न होकर सरकार इस ओर ध्यान दे रही है परन्तु अभी भी स्थिति विशेष सुधार नही है । गन्दे, सकरे अनाकर्षक एवं शोर गुल के बीच स्थित है । पुस्तकालय प्रभारी अप्रशित, पुस्तको की सख्या व स्तर दोनो दृष्टियो से हीन है । माध्यमिक शिक्षा आयोग ने अपने प्रतिवेदन म पुस्तकालय को नाम मात्र ही बताया है । उन्होने उल्लेख किया है अधिकाश माध्यमिक अनुपयुक्त तथा छात्रो की अभिरुचियो एव रुचियो को ध्यान मे न रखकर चयन की हुई पुस्तकें है । उनको कुछ आलमारियो मे रख कर बन्द कर दिया गया है । आलमारिया अनुपयुक्त एव अनाकर्षक कक्ष मे रख दी गयी हैं । पुस्तकालय जिन व्यक्तियों के अधीन, वे या तो क्लर्क हैं या शिक्षक, जो अशकालिन आधार पर इस कार्य को करते हैं और जिनकी इस कार्य मे रुचि नही है और न ही उनको पुस्तको से प्रेम है और न पुस्तकालय-नीतियो का ज्ञान । स्वभावत वहाँ सुव्यवस्थित पुस्तकालय सेवा नाम की कोई वस्तु नही है जो कि अध्ययन करने तथा उनमे पुस्तकों के प्रति प्रेम जागत कर सके।"2

वतमान पुस्तकालयो मे आयोग ने भी इनकी दुदशा के बारे मे प्रकाश डाला है कि इन पुस्तकालय की ठीक आवास व्यवस्था नहीं,प्रशिक्षण प्राप्त पुस्तकाध्यक्ष नही, अध्यापक पुस्तकालय व पुस्तको के प्रति अपेक्षाभाव, पुस्तके निम्नकोटि की चयन की जाती है, बजट बहुत कम रहता है गुम होने के भय से वर्गीकरण नही की जाती, समय सारिणी मे स्थान नही, परीक्षा उत्तीर्ण ही उद्देश्य होने से सस्ती कुजीया ही छात्र पढते है ।

1 Jacobson et at, op cit P/603
2 Report of the Education Commission P 180

"पुस्तकालय के लिए 20 प्रतिशत शालाएँ है जयाँ अलग से पुस्तकालय-कक्ष है। पुस्तकालय-कक्ष है भी तो बहुत छोटा केवल दस प्रतिशत के पास 250' फीट है, पुस्तको व पत्र-पत्रिकाओ के लिए बजट नही देश की लगभग 50% सस्थाएँ ऐसी है जहा वर्ष मे 500/- पुस्तकालय पर खर्च होता है। देश की शाला पुस्तकालयो मे केवल 0 10% प्रशिक्षिण प्राप्त पूरे कार्यकाल के लिए पुस्तकाध्यक्ष उपलब्ध है।'1

ऐसी स्थिति मे पुस्तकालय के उन्नयन के लिए कार्यवाछित है।

पुस्तकालय सेवा के उन्नयन हेतु शाला पुस्तकालय के नियोजन, वर्गीकरण, सूचीकरण, कक्षा-पुस्तकालय, पुस्तकालय-पुस्तक चयन, छात्र व छात्रो के पुस्तकालय के प्रति स्नेह करना सीखाया जाना चाहिए ताकि शाला पुस्तकालय का सगठन ठीक ढगसे किया जाकर प्रभावशाली सेवाएँ प्रदानकर डा एस ग्रार रगनायन के पाच सूत्रो का निर्वाह किया जा सके।'2

पुस्तकालय का नियोजन एव सगठन

(Planning and Organisation of School-Library)

स्थिति —शाला पुस्तकालय की स्थिति शाला की चार दीवारी मे केन्द्र स्थल पर हो जहा से सभी छात्र व अध्यापक बगैर आलस्य किए आकर उपयोग कर सके। केन्द्रीय-स्थल पर पुस्तकालय की स्थिति प्राय सभी पाठको के लिए सुविधाजनक रहेगी। यह स्थान पूर्ण रूप से शान्त होना चाहिए। यह शारीरिक शिक्षा कक्ष, सगीत जलपानग्रह तथा प्रशासनिक कार्यालय के पास नही होनी चाहिये।'3

यदि शाला-ब्लॉक व्यवस्था (Block System) का है तो, मुख्य भवन से दूर होना चाहिए।"4

कमरा या हॉल पुस्तकालय के लिए चयन किया जाय तो यह निम्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला हो —

(1) वातावरण शान्त एव स्वास्थ्यप्रद हो।

(2) पुस्तकालय मे प्रचुरमात्रा मे प्राकृतिक रोशनी व स्वच्छ हवा का प्रवेश हो।

(3) क्षेत्रफल पर्याप्त मात्रा मे हो जिससे आराम से व्यक्तिगत व समूह मे कार्य हो सके।

(4) पुस्तकालय के उपयोग हेतु शाला समय के उपरान्त भी खुला रहे।

(5) भविष्य मे पुस्तकालय के विकास की व्यवस्था हो।

चतुर्भुजाकार शाला भवन मे पुस्तकालय का स्थिति केन्द्र कक्ष या हॉल मे होना चाहिए।

---

1 Mukerjee Ak. School Library'-NCERT P (vi)

2 डा रगनायन, एस ग्रार. 'पुस्तकालय विज्ञान की भूमिका' पत्र/पृष्ठ ...

3 Viswanathan, C G, 'The High School Library P/27

4 Ralph,R G, The Library in Education' P/108

पुस्तकालय कक्ष — "प्रत्येक पुस्तकालय का एक आकर्षक सुन्दर एवं मनोहर भवन होना चाहिए। जैसे ही आप पुस्तकालय मे प्रवेश करते हैं आपकी दृष्टि लेन देन विभाग, आकर्षक शेल्फ और चमकती हुई मेज–कुर्सियो पर पडती है। आकर्षक पुस्तकालय मे बैठकर कुछ उपयोगी कार्य करने को आमंत्रित करे "।[1]

डा रंगनाथन के पांचवे सिद्धान्त– 'पुस्तकालय विकासशील संस्था है (Library is growing organism) अत पाठकों की संख्या निरन्तर बढेगी। पाठक और पुस्तका की अभिवृद्धि के साथ–साथ सदस्यो आशातित अभिवद्धि पुस्तकालय निर्माण के कारण हुआ करती है पुस्तकालय भवन के निर्माण मे भी व्यस्क व्यवस्था की आवश्यकता को ध्यान मे रखना चाहिए इसके भवन को अशो मे पूर्ण करने का कार्यक्रम बनाना चाहिए।"[2]

शाला पुस्तकालय एक अलग इकाई के रूप मे कार्यरत रहेगा। यदि ब्लाक–व्यवस्था के आधार पर शाला का निर्माण हुआ है तो केन्द्रीय–ब्लॉक मे रखा जायेगा। माध्यमिक व उच्च माध्यमिक पुस्तकालय यदि एक बडे हॉल या बहुत बडे कमरे मे स्थापित करना है तो सामान्यत पाँच भागो मे विभाजित करना चाहिए— 1 मुख्य पुस्तकालय, 2 पुस्तकालयाध्यक्ष का कार्य–कक्ष 3 सम्मेलन कक्ष 4 वाचनालय एवं 5 स्टॉक रूम।[3]

शाला पुस्तकालय के लिए इतने बडे क्षेत्रफल का भवन हो कि एक बार मे एक कक्षा पुस्तकालय का उपयोग हेतु समा सके पाठको के लिए बैठने की क्षमता शाला में प्रविष्ट छात्र संख्या पर ही निर्भर करता है। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने 30 से 40 छात्रो की संख्या एक कक्षा के लिए निर्धारित की है तथा 500 से 750 शाला म कुल छात्र संख्या। आग अभिशंषा की है कि प्रत्येक छात्र के लिए 10 वर्ग फीट क्षेत्रफल होना चाहिए। अत इस आधार पर एक साथ 40 विद्यार्थियो के बैठने की व्यवस्था हो।

फर्नीचर — पुस्तकालय अधिक चमकदार न हो। फर्नीचर उपयुक्त मजबूत तथा सुन्दर हो और उन्ह सरलता के साथ फिट किया जा सके। फर्श को कवर किया जाना चाहिए जिससे देखने मे आकर्षक तथा आवाज का न आना। यह कवर ऐसे ढग से लगा या जाय कि सफाई आसानी से सम्भव हो सके। जूट, कारपेट, नाईलॉन, कार्पेट अपेक्षा कृत ज्यादा उपादेय रहेगा।

पुस्तकालय के लिए लकडी का कार्य आकर्षक टीक की लकडी से तयार किया हुआ होना चाहिए। खिडकियों पर साधारण पर्दे लगाये जाने चाहिए। पुस्तकालय म सूर्य की

---

1 डा रंगनाथन, एस आर 'पुस्तकालय विज्ञान की भूमिका पेज/21
2 " " 753–754
3 विश्नाथन सी जी 'दी हाई स्कूल लाईब्रेरी' 29–30

रोशनी को आने मे किसी प्रकार की बाधा नही होनी चाहिए। साज सज्जा आकर्षक हो। चित्र को उत्प्रेरणादायक हो, जिसकी कला–मूल्य हो उसे लगाना चाहिए जो सामान्यत पाठक देख सके और उन पर रोशनी की भी प्रचुर व्यवस्था हो। चित्रो का चयन शाला के वरिष्ट छात्रो से ही सम्पन्न करवाया जाय।

पुस्तको को रखने के लिए सल्वस प्रमुख फर्नीचर है। सैल्वस खुले तथा आवश्यकतानुसार समायोजित करने की क्षमतावाला हो। लकडी के सैल्वज लोहे के सैल्वस से सस्ते होते हैं। 'युनिट–बुक केसेज' बढिया होते हैं।

सैल्वस की ऊँचाई 5 फीट 4 इन्च से अधिक नही होनी चाहिए और उसका नीचला सैल्वस धरातल से एक फीट ऊँचा होना चाहिए। सल्वज 8 इन्च से 10 इन्च गहरे, $\frac{3}{4}$ to 1 मोपे तथा 3 फीट लम्बा नही होना चाहिए।

सुविधाजनक तथा आकर्षक कुर्सियाँ व टेबुल पुस्तकालय के लिए होनी चाहिए। टेबुल का साईज 5'×3' पाठको के लिए उपयुक्त है। छोटे छात्रो के लिए 2 फीट तथा बडे छात्रों के लिए 3 फीट ऊँचाई होनी चाहिए।

कुर्सियाँ आकर्षक हो लेकिन बगैर हत्थे की होनी चाहिए। कुर्सियो के पैरो के नीचे रबड के गुटके लगे हो ताकि आवाज नहीं आये।

फाईलिंग केबिनेट— पुस्तकालयाध्यक्ष की डेस्क, मैगजीन, रेक सूचीकरण फाइलें, आदान प्रदान करने की टेस्क चार्जिंग ट्रे, एटलस स्टेण्ड बुलेटिन–बोर्ड पेम्पलेट बॉक्स बुक–स्पोटम तथा दीवार घडी आदि।

पुस्तकों का चयन

(Book–Selection)

पुस्तकालय के भवन के निर्माण के उपरान्त सबसे महत्वपूर्ण कार्य पुस्तको का चयन करना है जिसके पीछे उद्देश्य है "पुस्तको का चयन ना कि पुस्तको का संग्रह।' शाला पुस्तकालय अपने निर्धारित बजट के अनुरूप ही चयन कार्य करता है पुस्तको का चयन–आवश्यकता, उपयोगिता, स्थायी साहित्य होना चाहिए। पुस्तक को क्रय करने से पूर्व गम्भीरता से पुस्तक की उपयोगिता व स्थाईत्व को दृष्टि मे रखकर ही सम्पन्न किया जाना चाहिए। पुस्तक क्रय करने से पूर्व गम्भीरता से विचार वांछित है। "पुस्तको के चयन के बारे मे नीति का स्पष्टीकरण सभी को कर देना चाहिए जिसमे चार सिद्धान्तो को दृष्टि मे रखा जाना चाहिए। (1) उपयोगी पुस्तकें लेनी है, (2) पुस्तकालय मे तु

लित रहे (3) छात्रो की रुचियों का सन्तुष्टिकरण हो जाय, तथा (4) रुचिया में परिमाजन व समाजोपयोगी बनाना।"[1]

शाला-पुस्तकालय सभी स्तर के छात्रा के हित को दृष्टि मे रखते हुए करना चाहिए। पाठय-पुस्तकें उत्प्रेरणादायक पुस्तकें, कविताएँ, नाटक, धर्म जीवनी, दर्शन, उपन्यास, सूचनाप्रद पुस्तकें विज्ञान, इतिहास यात्रा एव उपयोगी-कला, मनोरजन के लिए पुस्तके हास्य लेख, सभी छात्र क्षेत्र का हल्का-फुलका साहित्य।

अनुलय सेवा —सभी से महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व पुस्तकालय का है-अनुलय सेवा प्रदान करना। सदर्भ सेवा (अनुलय-सेवा। छात्रो के स्तर के अनुरूप मयबोधन हेतु विन्द काय जैसे "वरड बुक इनसायोपिडियाँ, आक्सफोर्ड जुनियर एनसाईक्लोपिडियाँ क्षेत्रिय भाषा का विश्व-कोष, अच्छे स्तर का शब्द कोष तथा एटलस जो यदि स्थाई शब्द कोष हो तो क्रय करना चाहिये।

अध्यापको के सदर्भ हेतु अलग से विभाग होना चाहिए जहाँ वहृत्त सामान्य ज्ञान एव अनुलय पु तके उपलब्ध होनी चाहिए।

पुस्तको के चयन के लिए सभी अध्यापकों का क्रियाशील करना चाहिए। स्थानीय सावजनिक पु तकालय के पुस्तकाध्यक्ष, भी सम्मिलित किया जाय छात्रों के सजनात्मक सुझावो का मान्यता देनी चाहिये। पुस्तकों के चयन करते वक्त सभी उम्र व स्तर के बालको को दृष्टि मे रखे। शाला की माग, आवश्यकता व अथ व्यवस्था तीनों म सामन्जस्य बैठाकर क्रय किया जाय।

पुस्तके आकषक कवर पेज अच्छी छपाई, प्रचुर मात्रा मे प्रासागिक रेखा चित्र के साथ ही पुस्तकालय सस्करण ही क्रय किया जाय जिसकी जिल्द मजबूत हो।

पुस्तक क्रय करने के साधन —राष्ट्रीय सूची, विषय एव लेखक सूची साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक लिस्ट जो विभिन्न विश्व विद्यालयो व बोड द्वारा प्रसारित होती है, शिक्षा निदेशक से प्रसारित लिस्ट, प्रकाशक का सूचि-पत्र, पत्र-पत्रिकाओ मे छपी समालोचनाएँ, पाठको व विषय विशेष के विद्वानो द्वारा दिए गये सुझावो के आधार पर क्रय करने की व्यवस्था की जानी चाहिये।

आर सी रेल्फ के शब्दो म पुस्तक चयन की बात समाप्त करत हैं—"A School Library Can not reflect the Character, it is better for it make its own Collection which, if not ideal, will at least be Characteristic "2

---

1 रेल्फ आर जी 'दी लाईब्रेरी इन एज्यूकशन' प 58

1 Ralph Rc 'The Library in Education" P/58

'🙰

पुस्तको का वर्गीकरण एव सूचीकरण

(Classification and Cataloging of Books)

वर्गीकरण –पुस्तकालय पुस्तके पाठकों के लिए तैयार होती है उसमे सब प्रथम वैज्ञानिक क्रमसे आलमारियो मे व्यवस्थित करना पडता है जिससे उसका अधिक से अधिक उपयोग सरलतापूर्वक हो सके। पुस्तकालय विज्ञान के अतर्गत इस क्रिया को पुस्तक–वर्गीकरण कहा जाता है। कटर के अनुसार— 'एक ही विषय या सामान्य विषय पर लिखी हुई पुस्तकों को समूह मे करने को वर्गीकरण कहते हैं।' वर्गीकरण करते समय निम्न पाच सिद्धान्तो को दृष्टि मे रखा जाना चाहिए।"2

(1) मूल विषय के आधार पर अधिक उपयोगी वर्गीकरण हो।

(2) एक पुस्तक कई विषयो से सम्बन्धित है तो सबसे महत्व के विषय मे रखी जाय।

(3) विषय के उपभाग के विशिष्ट विषय म रखी जाय।

(4) पुस्तक का वर्गीकरण करते हुए निर्धारित क्रम दिए जाय।

(5) विषय को आगे भाषा, प्रकार, पुस्तक प्रकाशन वर्ष आदि को ध्यान म रखते हुए रखी जाय।

ससार मे अनेक वर्गीकरण पद्धतिया प्रचलित है उसमे छ प्रसिद्ध व उल्लेखनीय है—(1) दशमलव पद्धति, (2) विस्तारशील पद्धति, (3) कांग्रेस ला पद्धति, (4) विषय पद्धति (5) कालन पद्धति, (6) वाडमय सूचि विषय। इसमे सबसे प्रसिद्ध पद्धति 'डवी क्लासीफिकेशन प्रणाली है। जिसम सम्पूर्ण ज्ञान का 9 वर्गो म विभाजित किया गया है। दस वर्ग इस प्रकार है —0 सामान्य, 1 दर्शन, 2 धर्म, 3 सामाज विज्ञान, 4 भाषा शास्त्र, 5 शुद्ध विज्ञान, 6 उपयोगी कलाएँ 7 ललितकलाएँ 8 साहित्य एव 9 इतिहास।

सूचीकरण —पुस्तकालयो मे सकलित अध्ययन सामग्री का अधिक से अधिक उपयोग सूचिकरण के माध्यम से ही हो सकता है। सूचीकरण पुस्तकालय की 'आखे' है जिस प्रकार बगैर आंखे व्यक्ति नही देख पाता ठीक इसी प्रकार बगैर सूचीकरण पुस्तक का निश्चित स्थान मालूम नही पड सकता। सूचीकरण उन सभी वर्णित विषयो की जानकारी सहज मे ही प्रदान करता है। 'सूचिकरण के बगर लेखक पुस्तक आलेख, व विषय का ज्ञान नही हो सकता, पुस्तक के विषय की व लेखक की पुस्तक उपलब्ध है या नही पसन्द को पुस्तक प्राप्त करवाने मे सहायता करता है।"3 इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु लेखक सूचीकरण, आलेख सूचीकरण व विषय सूचीकरण तैयार की जाती है।

2 Dutta, A Practical to Library Procedure P/20

3 Mukerjee, AK 'School Library" P/19

अच्छी सूचीकरण प्रणाली के आवश्यक तत्व है। —(1) पाठका के अनुकूल हो (2) उत्तम पद्धति, (3) आधुनिक व उपयोगी हो, (4) पद्धति सुबोध हो, (5) पूर्ण एवं नियन्त्रित होना चाहिए। सूचिकरण मे रजिस्टर, खुले पत्र एव पत्रक प्रणाली है।

खुला पुस्तकालय पद्धति (Open Shelf System)

स्वच्छन्द प्रवेश व्यवस्था से आशय है कि प्रत्येक पाठक को अधिकार है कि वह पुस्तक आलमारियो के पास जाकर अपनी इच्छा की पुस्तक का चयन करना। वह बिना किसी हिचकिचाहट के व्यक्तिगत घरेलू पुस्तकालय की तरह उपयोग कर सकता है।'1 इसके परिणामो की ओरभी सचेत रहना चाहिए और उसे कम करने के लिए भवन का निर्माण करते वक्त पुस्तकालय मे आने और जाने का एक ही रास्ता रखा जाय और अन्य खिडकियाँ तारवाली जालियो से बन्द कर दी जानी चाहिए। पुस्तको के पेज फाडना जानबूझ कर पुस्तको को गलत स्थान पर रख दना अत दुलभ ग्रन्थ छोटे–छोटे पेम्फलैट आदि स्वच्छन्द प्रवेश से अलग रखे जाय।

जब तक कोई मुकम्मिल व्यवस्था पूर्व मे न हो जाय तब तक 'स्वच्छन्द प्रवेश' व्यवस्था को लागू करने की नही सोचनी चाहिए।'2

अनुलय सेवा (Reference Service) सामान्य सन्दभ पुस्तकों के बारे मे उपयोग करने का ज्ञान प्रभावशाली अधिगम के लिए उपयोगी है। शाला पुस्तकालय निर्देशन सुझाव, सही तथ्य छात्रो तक पहुचाने का सफल प्रयास किया जाता है। बहुत से छात्रो को शाला पुस्तकालय मे जाकर भी यह ज्ञान नही होता कि सही सूचनाओ को किन प्रकार सग्रहीत करे।

पुस्तकालयाध्यक्ष को चाहिए कि पुस्तकालय के नियमो, पुस्तकालय व्यवहार, वर्गीकरण, सूचीकरण व्यवस्था तथा सूचियो को देखना, निश्चय समय पर निकलने वाली पत्र पत्रिकाओ व पुस्तको के बारे म व्यक्तिगत निर्देश दे। उसे बहुत ही व्यवहार कुशल व मृदुल स्वभाव का होना चाहिए ताकि छात्र बगैर हिचक के उससे सहयोग के लिए पहुच सके। सन्दर्भ सेवा दो प्रकार की होती है— 1 प्रस्तुत सदभ सेवा और व्याप्त(लम्बे समय तक चलने वाली) सदभ सेवा। प्रस्तुत अनुलय सेवा म रिफ्रेंस पुस्तको के द्वारा अभीष्ट सूचना शीघ्रतिशीघ्र प्रस्तुत की जाती है। 2 व्याप्त अनुलय सेवा मे सूचनाओ का प्रस्तुतीकरण प्रस्तुत अनुलय सेवा की अपेक्षा कुछ अधिक समय लेता है।

---

1 डा रगनायन एस आर पुस्तकालय विज्ञान की भूमिका पेज/743
2 मुकर्जी ए के स्कूल लाइब्रेरी 25

/ 4

कक्षा पुस्तकालय (Class Library) 'आधुनिक युग मे यह दृष्टिकोण बन गया है कि प्रत्येक शाला मे केन्द्रीय पुस्तकालय स्थापित हो। कक्षा कक्ष पुस्तकालय स्वच्छन्द प्रवेश केन्द्रीय पुस्तकालय व्यवस्था अधिक लाभान्वित होता है। आज भी शाला मे कक्षा पुस्तकालय को प्राथमिकता देते है।"1 यदि कक्षा पुस्तकालय को व्यवस्थित रखें तो अत्यधिक उपयोगी सम्भावनाएँ बन जाती है। ये कक्षा के छात्रो द्वारा स्वय ही पुस्तकें सग्रहित की जाती है और सगठित की जाती है। यह शाला के कार्यक्रम का ही भाग है। खाली समय का सदुपयोग कक्षा-पुस्तकालय व्यवस्था से व्यवहारिक रूप दिया जा सकता है इसको प्रभावशाली ढग से चलाने हेतु अधिक धन की बजाय अध्यापक का दृढ निश्चय ही काम आता है। कक्षा पुस्तकालय से आदान-प्रदान अर्द्ध अवकाश मे सम्पन्न किया जा सकता है। शाला पुस्तकालय म महत्वपूर्ण पुस्तको की कई प्रतिया लेकर कक्षा पुस्तकालय के उपयोग हेतु दे सकता है।2

पुस्तकालय को छात्रो हेतु आकर्षक बनाने के उपाय

(Suggestions to make Library attractive to the Students)

शाला या कक्षा पुस्तकालय का सगठन करने मात्र से उद्देश्य की पूर्ति नही होती। सर्वप्रथम बालको को पुस्तक के प्रति प्रेम जाग्रत करना है। यद्यपि इस क्रिया की गति धीमी है लेकिन एक दफा छात्रो मे इस आदत का निर्माण हो जाता है तो वे स्वय ही खाली समय मे पुस्तको का उपयोग हेतु पुस्तकालय स्वत ही जाने की आदत बन जायेगी।

शाला छात्रो को ज्ञान, अच्छी पुस्तके प्रदान करना अच्छे पत्र एव पत्रिकाओ की व्यवस्था करना उनका महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है। शाला पुस्तकालय छात्रो मे ऐसा कौशल पैदा करता है कि वे अच्छी और गन्दी पुस्तक अच्छी व गन्दी पत्रिका, के बारे म भेद कर सकें, और विश्वकोष, शब्द कोष तथा अनुक्रमिका का उपयोग करना सीख लेता है। पुस्तकालय व पुस्तको के आदान-प्रदान की व्यवस्थाओ को हृदयगम कर लेता है।

"उसे पाठको का ध्यान नई पुस्तको पर लाना चाहिए तथा समय-समय पर पुरानी पुस्तको की अवस्था पर ध्यान आकर्षित करना चाहिए। शाला पत्रिका म प्रसारण करना चाहिए।"3 पुस्तकालय की प्रभावशाली सेवा के लिए उसे विशिष्ट पुस्तकालय

1 रगनायन, एस आर 'पुस्तकालय विज्ञान की भूमिका पृ XB 3
2 Mukerjee AK School Library'-NCERT P 34
3 डा रगनायन, एस आर 'पुस्तकालय विज्ञान की भूमिका' पेज/730

दिवस, बुलेटिन बोड का समुचित उपयोग, पुस्तक प्रदर्शिनी, विशिष्ट अध्ययन सूचि का का प्रसारण, पुस्तको की समालोचना आदि उपागम कर पुस्तकालय सेवा को प्रभाव शाली बना सकता है। यह सब तभी होगा जब पुस्तकाध्यक्ष व्यक्तिगत रुचि लेते हुए अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करेगा।

पुस्तकालयाध्यक्ष के करणीय कार्य (Functions of Librarian)

शाला पुस्तकालय सेवा का माध्यम, प्रशिक्षण माध्यम, अध्ययन केन्द्र, सग्रह केन्द्र, और वह केन्द्र जहां अध्ययन की आदत डालने हेतु निर्देश देने वाली सस्था है। यह उद्देश्य अप्रशिक्षण प्राप्त व पुस्तको से प्रेम न रखने वाले पुस्तकालयाध्यक्ष से सम्पन्न होने मे सदिग्धता है।

शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त पुस्तकालयाध्यक्ष व उसका स्तर — वह ग्रेजुएट मय पुस्तकालय विज्ञान मे उपाधि प्राप्त होना चाहिए। उसका शाला मे अच्छा स्तर होना चाहिए। यदि प्रशिक्षित पुस्तकालयाध्यक्ष उपलब्ध नहीं है तो बी एड म पुस्तकालय विषय का विशिष्ट प्रश्न-पत्र लेकर उपाधि प्राप्त को प्रभारी बनाया जा सकता है।

कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व

(1) वह देखे कि पुस्तकालय के लिए उपयुक्त स्थान है या नहीं जहाँ प्राकृतिक हवा और रोशनी आ रही है या नही।
(2) पुस्तकालय केन्द्र स्थल पर है या नहीं।
(3) वहा उपयुक्त फर्नीचर है या नही।
(4) पुस्तकालय-कक्ष पूर्णरूपेण सजा हुआ है या नहीं।
(5) पुस्तकालय समिति का निर्माण करे जिसका सभापति प्रधानाध्यापक हो और वरिष्ट अध्यापक विभिन्न विषयो के तथा छात्रो का सहयोग भी लिया जाय।
(6) उचित पुस्तकालय-नियमो का निर्माण करना।
(7) सभी छात्रो के उपयोग हेतु पुस्तको का चयन।
(8) पुस्तक क्रय के तुरन्त बाद उधार देने हेतु तैयार रखे।
(9) पुस्तका का वर्गीकरण व सूचीकरण की ओर ध्यान रखे।
(10) पत्र-पत्रिकाएँ निर्धारित समय पर आते है या नही, पाठको के उपयोग हेतु प्रदर्शित करे।
(11) पुस्तक-बिल व पत्राचार की ओर व्यक्तिगत ध्यान देना।

(12) पुस्तकालय कालाश समय सारिणी मे लगाया है या नही।

(13) अनुलय सेवा हेतु निर्देशन देना।

(14) कक्षा पुस्तकालय के क्रियाकलाप का पर्यवेक्षण करना तथा उन्हे पुस्तकालय सगठन के बारे मे निर्देशन देना।

(15) छात्रों को पुस्तकालय के प्रति प्रेम पैदा करने हेतु उत्प्रेरित करें।

(16) 'बुक जाकेट' का प्रदशन करना।

(17) पुस्तकालय के समान की सुरक्षा के बारे मे निर्देश देना।

(18) पुस्तको का आदान-प्रदान निर्धारित समय पर हो।

(19) पुस्तकालय की वार्षिक सत्याभूति प्रतिवेदन प्रस्तुतिकरण।

(20) पुस्तकालय बजट मे से विभिन्न मदो मे व्यवस्थित रूप से खर्च करना।

पुस्तकालय के प्रति छात्रो मे प्रेम उत्पन्न करना —

(1) वाद विवाद का सगठन करना, पुस्तक समालोचना पढ़वाना।

(2) अच्छी पुस्तको की प्रदर्शनी आयोजित करना।

(3) शैक्षिक फिल्म दिखाना।

(4) राष्ट्रीय विभूतियो के जन्मदिन मनाना।

(5) राष्ट्रीय पव मनवाना आदि कार्यों के सगठन से छात्रो मे पुस्तकालय के प्रति भावात्मक सम्बन्धित स्थापित होंगे।

उसे उपरोक्त सभी कार्यों से महत्वपूर्ण कार्य यह है कि उसमे कौशल पैदा हो कि वह अध्यापन वस्तुओ को ऐसे ढग से सगठित करे कि छात्रो मे स्वाध्याय की आदत निर्माण हो सके। ये सभी कार्य वाला व्यक्ति जिसने प्रशिक्षण भी प्राप्त किया है और वह पुस्तको से प्रेम व व्यवसाय से प्रेम रखता हो।

मूल्याकन (Evaluation)

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 विद्यालय पुस्तकालय-सेवा का अधिकतम उपयोग करने हेतु पाच सुझाव दीजिए। (बी एड 1985)

2 विद्यालय-पुस्तकालय सेवा का अधिकतम उपयोग करने हेतु पाच उपाय प्रस्तुत कीजिए। (बी एड पत्राचार 1984)

3 विद्यालय लाइब्रेरी के सगठन मे किन-किन बातो का ध्यान रखना चाहिए ? (बी एड 1982)

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (*Essay Type Questions*)

1 यदि आपको किसी विद्यालय के पुस्तकालय का दायित्व सौंपा जाता है तो आप अधिकतम उपयोग की दृष्टि से इसकी सेवा का पुनर्गठन किस प्रकार करेंगे ?

(बी एड पत्राचार 1981)

2 'पुस्तकालय एक शाला की आत्मा है'— विचार प्रस्तुत कीजिए । (बी एड 1979)

3 विद्यालय मे पुस्तकालय का क्या महत्व है ? इसका सर्वोत्तम उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है ? (बी एड 1978)

4 आप विद्यालय मे पुस्तकालय का प्रयोग किस ढग से करेंगे जिससे छात्रो के अन्दर स्वाध्याय के लिए प्रेम उत्पन्न हो सके तथा उनको अपनी विशेष रुचियो की पुस्तक पढ़ने मे पथ-प्रदर्शन मिलता रहे ?

अध्याय ८

छात्रावास
(Hostel)

[रूपरेखा छात्रावास की आवश्यकता व महत्व, छात्रावास का सगठन,छात्रावास का प्रबन्ध, छात्रावास अध्यक्ष के कार्य, बालको के रहन सहन सम्बन्धी कार्य, सामाजिक कार्य, अनुशासन सम्बन्धी कार्य, निरीक्षण सम्बन्धी कार्य, स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य, अन्य करणीय कार्य, छात्रावास नियम, छात्रावास व प्रधानाध्यापक सम्बन्धी समस्याएँ और उनके निराकरण हेतु सुझाव, छात्रावास से लाभ, छात्रावास की परिसीमाएँ एव सावधानिया, मूल्याकन]

भारत मे छात्रावास की व्यवस्था प्राचीन काल से चली आ रही है। गुरुकुल शिक्षण व्यवस्था मे छात्र अपने गुरु के चरणो मे बैठकर अध्ययन करते और ब्रह्मचर्य आश्रम की अवस्था तक छात्र आश्रम मे ही निवास करता था। मध्य युग मे मठो, बिहारो मन्दिरो तथा मसजिदो के साथ विद्यार्थियो के आवास की व्यवस्था होती थी। आधुनिक शिक्षण व्यवस्था खास तौर से माध्यमिक स्तर पर जहाँ बच्चे को सस्कारिक करने का परम उद्देश्य है, वहाँ छात्रावास मे आवास कर उसमे भिन्न भिन्न गुणो का विकास किया जा सकता है। आश्रम व्यवस्था मे प्रत्यक छात्र छात्रावास मे रहता है लेकिन आज की बढती हुई छात्र सख्या म सम्भव नही है।

छात्रो मे सामूहिकता, सहयोग और आत्म निर्भरता विकसित करने की शिक्षा जितनी छात्रावास से प्राप्त होती है उतनी विद्यालय के किसी अन्य साधन से नही। छात्र छात्रावास मे रहकर स्वशासन की शिक्षा प्राप्त करने के साथ ही जीवनोपयोगी बातो की भी शिक्षा प्राप्त करते हैं।

"छात्रावास के माध्यम से छात्रो की शारीरिक मानसिक तथा नैतिक स्वास्थ्य का प्रशिक्षण देना चाहते हैं तो छात्रावास म अच्छा वातावरण उचित व्यवस्था तथा अच्छा प्रबन्ध ही तो छात्रो का शारीरिक, मानसिक एव नैतिक विकास बहुत ही सुन्दर और प्रभावशाली ढग से हो सकता है।"1

शिक्षा के प्रसार अभियान के फलस्वरूप माध्यमिक विद्यालय ग्रामीण क्षेत्रो मे

1 माथुर एस एस, "विद्यालय सगठन एव स्वास्थ्य शिक्षा", प0 187

निरंतर बढ रहे हैं । आसपास के छात्र पढ़कर अपने-अपने घरों को चले जाते हैं। शहरी छात्र अभिभावकों के साथ रहते हैं । आज छात्रावास का जीवन भी तो आर्थिक दृष्टि से महंगा होने के कारण बाहर से आने वाले छात्र भी कहीं व्यक्तिगत व्यवस्था करके विद्यालय मे अध्ययन करते है ।

विद्यालय छात्रावास की आवश्यकता तथा महत्व

(Need and Significance of Hostel)

इस सन्दर्भ में निम्नलिखित बिन्दु उल्लेखनीय है —

(1) छात्र दूरदराज से विद्यालयों मे अध्ययन के लिए आते हैं उन्हें उचित शिक्षण परिस्थितियाँ पैदा करने के दृष्टि से रहने व खाने की सुविधाएँ छात्रावास के रूप मे वांछित है ।

(2) जिन छात्रों का ग्रह वातावरण अस्वस्थ व कष्टदायक है उन लड़कों के लिए छात्रावास की आवश्यकता है ।

(3) छात्रों के ऐसे अभिभावक जो निरन्तर स्थानान्तरण होते रहते हैं ।

(4) आस-पड़ौस मे अच्छी शिक्षण संस्था के न होने पर अभिभावक अच्छी संस्था में अध्ययन करवाने की इच्छा से छात्रावास वाली संस्था मे पढाना चाहेंगे ।

(5) छात्रावास से विशेष शिक्षा उद्देश्य प्रजातन्त्रीय गुण पैदा होते है।

(6) छात्रावास के नियम और अनुशासन का मानता हुए और सामूहिक जीवन का अभ्यास करते है । जो भावी नागरिक के लिए आवश्यक है ।

(7) छात्रावास मे अपनत्व की भावना का विकास होता है ।

(8) समानता, स्वालम्बन, उदारता उत्तरदायित्व आदि के आधार पर दिनचर्या व्यतीत करने से प्रजातान्त्रिक गुणों का विकास होता है ।

(9) "छात्रावास विद्यालय मे सीखने के सिद्धान्तों की प्रयोगशाला है। यह वह स्थान है जहां बालक के व्यक्तित्व का विकास होता है तथा उपयुक्त आदतों एवं आदर्श का निर्माण किया जाता है।' 1

(10) छात्रावास का स्वास्थ्यप्रद वातावरण होता है जहां छात्र खुले मैदान में खेल-कूद करते हुए नियमित जीवन व्यतीत करके अपने चरित्र को सुदृढ कर सकते है।

(11) छात्रावास सर्वांगपूर्ण विकास (शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक) मे सहायता देती है, क्योंकि वहां पढने, लिखने, खेलने-कूदने तथा सामाजिक कार्यों मे भाग लेने की पूर्ण व्यवस्था रहती है।

(12) अपने व्यवहारिक जीवन की शिक्षा स्वतन्त्रतापूर्वक आत्म निर्भर तथा कम पैसों

---

1 रायबर्न डब्ल्यू एम "विद्यालय संगठन," पृ

से जीवन चलाने का प्रशिक्षण सहज ही मिलता है ।

(13) सोचन-विचारने के दृष्टिकोण मे व्यापकता आती है ।

(14) अनुकरणीय शिक्षको के सम्पर्क मे आने से बहुत से गुण अनायास ही सीख जाता है ।

(15) पुस्तकालय, वाचनालय तथा अध्ययन के विभिन्न साधनो के उपलब्ध होने से मानसिक विकास होता है और स्वाध्याय की आदत का निर्माण होता है ।

(16) छात्रावास मे सारा दिनचर्या नियमित होती है और अच्छी आदतो का विकास होता है और व्यय के समय क्रियाशील रहते है जिससे नैतिकता का समावेश उसके व्यक्तित्व मे हो जाता हैं।

(17) रूसो के अनुसार —खेल के मैदान तथा छात्रावास मे बालक एक दूसरे से जो पाठ सीखते हैं, वे विद्यालय मे सीखे हुए पाठो से सौ गुना अधिक उपयोगी होते है ।"

(18) विभिन्न धर्म, जाति, सम्प्रदाय तथा क्षेत्र के विद्यार्थी छात्रावास मे एक साथ रहने से उनमें भावात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाते है जो राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता के लिए आवश्यक गुण है ।

(19) बालक व्यवहारिक जीवन मे प्रविष्ट होने से पूर्व विभिन्न दशाओं एव समस्याओ का अध्ययन व निदान करते हुए समाधान ढूढने की आदत का विकास होता है ।

(20) छात्रावास में अपनी प्रत्येक वस्तु को निर्धारित स्थान पर ही व्यवस्थित तरीके से रखने का प्रशिक्षण लेता है ।

उपरोक्त बिन्दुओ के अवलोकन से स्पष्ट है कि विद्यार्थी-जीवन मे छात्रावास का मूल्यवान अनुभव प्रदान करवाते हुए व्यवहारगत परिवर्तन करवाने का सफल प्रयास करता है । अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान ठोस व स्थाई होता है, लेकिन यह सब उद्देश्य ढग से सगठित एव सचालित होने से ही हो पायगा ।

छात्रावास का सगठन

स्थिति — छात्रावास की स्थिति शाला भवन के समीप होनी चाहिये । शाला भवन के ऊपर छात्रावास बनाने की प्रथा साधारणत श्रेयस्कर नहीं । अत उसे केवल शाला के पास ही रखा जावे । यह ऐसे स्थान पर हो जहां स्वास्थ्यप्रद अवस्थाए हो और खेल कूद हेतु पर्याप्त मात्रा में खुली जगह हो । इसके उपरान्त भी कहीं दूर भी हो तो मुख्य मार्ग पर स्थित होने चाहिये ताकि छात्रों के आने जाने में यातायात सम्बन्धी असुविधा न हो छात्रावास में छात्रो द्वारा निर्वाचित मॉनिटरस जनरल मोनिटर तथा मैस मानिटर

होते हैं जो रोजाना के काय मे जिम्मेदारी से सहयोग देते हैं।

छात्रावास मे रहन की व्यवस्था सामान्यत तीन प्रकार की होती है—(1) डार मिट्री विधि, (2) कॉटेज पद्धति तथा (3) हाऊस पद्धति।

प्रो0 रायबन 2 के अनुसार — 'छात्रावास भवन के बारे मे जा विशेषता होनी चाहिए इस प्रकार है —

(1) छात्रावास मैदान मे पर्याप्त दूरी पर होना चाहिए । यदि सम्भव हो तो पाठशाला सडक के सन्निकट हो छात्रावास उसके पीछे हो।

(2) सर्वोत्कृष्ट ढग की इमारत एव मजिल की होती हैं।

(3) रात के समय आसानी से बन्द किया जा सके।

(4) इमारत मे फाटक के पास एक ओर प्रबन्धकों का निवास स्थान कार्यालय और दूसरी ओर वाचनालय तथा अध्ययन-कक्ष होना चाहिए।

(5) भवन के तीनो किनारे शयनागारो मे विभाजित हो जहाँ 12 से 20 विद्यार्थी रह सके।

(6) प्रति विद्यार्थी 50 से 60 वर्ग फीट की जगह होनी चाहिए।

(7) शयनागरो की ऊँचाई 16 या 17 फीट होनी चाहिए।

(8) शयनागरो की चौडाई इतनी होनी चाहिए कि उसमें दो बिस्तरे कतारो मे बिछाये जा सके और कतारो के दोना सिरो पर एक एक बिस्तर और लगा दिय जाय तो दीवार से मिले हो।

(9) प्रत्येक विद्यार्थी के लिए एक-एक आलमारी दीवार मे होनी चाहिय।

(10) प्रत्येक विद्यार्थी को एक कुर्सी व एक मेज दी जानी चाहिय।

(11) विद्यार्थियो को खराब, धुआधार लैम्पो के पास काम न करने देना चाहिए।

(12) खिडकियाँ और रोशनदान बहुतायत से होना चाहिए।

(13) भवन मे अन्दर की ओर आगन के चारो तरफ बरामदे होने चाहिए ।

(14) फर्श ईंट या सीमेन्ट का बना हुआ होना चाहिए।

(15) भवन के पीछे के कमरो मेंस एक कमरे को खाने का कमरा बना लिया जाय,जिसका द्वार बाहर रसोई की ओर खुलना हो।

(16) भवन के पिछवाडे की तरफ उसी सिरे पर, जिधर धुलाई के कमरे स्थित हो, सेप्टिक टैंकवाले पाखाने बनाये जाने चाहिए।

(17) भवन के उस भाग में जिधर रसोई हो, नौकरो के निवास स्थान तथा अनाज

1 प्रो0 रायलन 'शिक्षालय सगठन' प0 132-133

और ईंधन रखने के कमरे होने चाहिए।

(18) आवश्यक बनाने के लिए पेड और फूलो के पौधे लगाये जा सकते है।

(19) चित्रो का प्रयोग स्वच्छन्दता से करना चाहिए।

(20) अतिथि कक्ष, वाचनालय, चिकित्सा कक्ष, सामूहिक कक्ष, जिमनास्टिक-कक्ष, सहकारी वस्तु भण्डार तथा कार्यालय की व्यवस्था हो।

छात्रालय का प्रबन्ध (Organization of the Hostel)

छात्रालयाध्यक्ष(Hostel Warden) — जिस अध्यापक द्वारा छात्रावास की देख रेख व प्रबन्ध किया जाता है उसे छात्रालयाध्यक्ष कहते हैं इसके रहन की व्यवस्था सामान्यत छात्रावास में ही होती है क्योकि वह अधिक सम्पर्क मे आता है और स्थानीय अभिभावक होता है।

"छात्रावास के प्रबन्धक का काम बडा ही कठिन है उसके लिए धैय, कौशल तथा वज्ञानिक दृष्टिकोण और चतुराई की आवश्यकता है। यदि यह ठीक से किया जाय तो निश्चय ही पूरे समय का काम है।" 1 क्योकि यही सभी सुविधाएँ जुटाना है छात्रो के लिए। इतनी बडी जिम्मेदारी का निर्वाह करने के लिए वह गुणवान हो।

छात्रालयाध्यक्ष के गुण —

(1) छात्रालयाध्यक्ष उच्च और दृढ चरित्र तथा उत्तम विचारो वाला व्यक्ति होना चाहिए।

(2) छात्रालयाध्यक्ष बालको से पिता के समान स्नेह रखे।

(3) वह सयमी हो तथा नियमित जीवन व्यतीत कर छात्रो के सम्मुख आदश प्रस्तुत करे।

(4) किसी प्रकार का व्यसन जसे तम्बाकू,मदिरा, जुआ आदि नही हो।

(5) कई विषयो का ज्ञाता, खेलकूद मे रूचि लेने वाला हो।

(6) व्यवहारिक अनुभवो का अच्छा ज्ञाता हो।

(7) रुपये पैसे का हिसाब व्यवस्थित रखने की क्षमता हो।

(8) सुयोग्य एव कुशल प्रबन्धक हो।

(9) शील स्वभाव तथा बाल-मनोविज्ञान का ज्ञाता।

(10) निष्पक्ष तथा दूरदर्शिता हो।

(11) सभी छात्रा के साथ उदार रहना चाहे किसी भी जाति,धर्म, सम्प्रदाय क हो।

(12) कक्षा म भी व्यवहार ठीक हो, छात्रो का विश्वासी हो।

---

1 रायबन, 'विद्यालय सगठन' पज/126

(13) उसका प्रत्येक काय नि स्वाथ एव सेवा भावना से प्रेरित होना चाहिए।
(14) सतुलित भोजन एव व्यायाम की प्रक्रिया सम्बन्धी ज्ञान होना चाहिए।
(15) छात्रो के बीच झगडो को सुनकर तुरन्त निर्णय लेकर न्याय करे।

छात्रालयाध्यक्ष के कार्य (Functions of Hostel Warden)

छात्रालयाध्यक्ष की अनेक जिम्मेदारिया है और उनके सफल सम्पादन द्वारा ही छात्रावास मे उपयुक्त वातावरण की सृष्टि सम्भव है जिसमे रहकर बालक प्रजातान्त्रिक आदर्शों की प्राप्ति कर सकते हैं। इसके प्रमुख कार्य एव उत्तरदायित्व निम्न हैं —

(1) बालको के रहन सहन सम्बन्धी काय — छात्रालयाध्यक्ष ही वहा रहने वाले बालकों को मा बाप जैसा स्नेह देना उसका पुनीत कतव्य है। अत वह उनके स्वास्थ्य, रहन सहन सम्बन्धी सभी निम्नलिखित बातो का ध्यान रखे —

(1) भोजन व जल व्यवस्था का समय समय पर निरीक्षण
(2) स्नानागार, पेशाबघर, टट्टी आदि की सफाई का ध्यान दे।
(3) छात्रावास की सफाई और शुद्ध वातावरण बनाये और आवश्यक दवाइयाँ व 'प्राथमिक चिकित्सा बाक्स' सदव रखे।
(4) कमरो की व्यवस्था ऐसी हो कि छात्र सुविधा से रह सके।
(5) खेलकूद की व्यवस्था को नियमित व उत्साहित बनाये।

रायबन ने छात्रावास मे रहने की दशाओ पर छात्रालयाध्यक्ष के कतव्य बतलाये हैं—1

(6) शयनागार काफी हवादार है या नहीं
(7) सप्ताह म कम से कम तीन बार बिस्तर धूप मे डाले।
(8) कमरो की सफाई और वे किस ढग से रखे जाते हैं, उस ओर ध्यान दे।
(9) गन्दगी और दुव्यवस्था के मामले मे उसे बडी सख्ती से काम लेना चाहिए
(10) उसे तश्तरियो और खाने के बतन की धुलाई पर जरूर नजर रखनी चाहि
(11) रसोई खाने, खाना पकाने के प्रबन्ध और खाना रखने तथा सामान रखने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।
(12) गोदाम का निरीक्षण नियमित रूप से करना चाहिए।
(13) नौकरो व छात्रो की समितियो पर सामान्य पर्वेक्षण बनाय रखे।
(14) आर्थिक दृष्टिकोण स छात्रावास का जीवन इतना महगा न हो। जाये कि सामान्य व्यक्ति अपन बालक को छात्रावास मे रख ही न न सके
(15) छात्राओ की छात्रावास सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा जाय।

1 रायबर, 'विद्यालय सगठन' पृ/127

[2] छात्रालयाध्यक्ष के सामाजिक कार्य —

(1) बगैर आर्थिक, सामाजिक भेदभाव के सभी को एकसा पिता–तुल्य व्यवहार करे।

(2) छात्रो के साथ उठने–बैठने, खेलने–कूदने, मिलने–जुलने तथा सामूहिक काय करके कौटुम्बिक वातावरण बनाये।

(3) छात्रावास के प्रब ध व व्यवस्था मे छात्रो को भागीदार बनाने हेतु विभि न उप–समितियो का गठन करे, जैसे सफाई समिति, अनुशासन समिति, मैस-समिति और विकास समिति आदि।

(4) छात्रो की रूचि प्रवृति के बारे मे प्रधानाध्यापक व अभिभावको को अवगत कराते रहना चाहिए।

(5) सामूहिक गीत, सामूहिक प्रायना, भजन, कीतन, गोष्टिया, सास्कृतिक कायक्रम, सेमीनार, समूह–विचार विमश आदि के आयोजन से मनोरजन के साथ सामाजिकता की भावना का विकास होता है।

(6) छात्रावास अहाते मे सभी छात्रो को वृक्षारोपण के लिए उत्प्रेरित करें।

[3] छात्रालय व्यवस्था तथा अनुशासन सम्बन्धी कार्य

(1) अनुशासन बनाये रखने म ढील नही दी जानी चाहिए तो अनुशासन तानाशाह भी न हो बल्कि सहयोग प्राप्त करके करना चाहिए जिसके लिए मनोवैज्ञानिक उपचार वांछित है।

(2) छात्रावास के अनुशासन नियम सत्र के प्रारम्भ मे ही बना लिए जाय।

(3) अनुशासन नियमो को बगैर भेदभाव के लागू किये जाय।

(4) छात्रावास के लिए छात्रो मे से एक प्रिफेक्ट को मनोनीत करें।

(5) उपयुक्त समय विभाग चक्र का निर्माण हो जहा प्रात 4 30 से रात्रि 10 बजे तक दिनचर्या योजना हो, आवश्यकतानुसार सशोधन हो सकता है।

(6) सामूहिक कायक्रम मे सदैव उपस्थित रहना चाहिए।

(7) सामूहिक प्रार्थना मे सदैव उपस्थित रहना चाहिए।

(8) आज्ञा प्राप्त किये बगैर छात्रावास से बाहर नही जाये।

(9) बाहर का भी कोई व्यक्ति बगैर छात्रालयाध्यक्ष की अनुमति के नहीं ठहरे।

(10) बडे छात्रो द्वारा छोटे बालको को तग करना, भयभीत करना आदि प्रवृतिया को कठोरता से समाप्त करे।

(11) चोरी, घोर-जबरदस्ती छीन–झपट आदि कार्यो से कठोर सुरक्षात्मक प्रब ध करे।

(12) छात्रो के सामा य आचरण पर निगाह रखे ताकि छात्रो के आचरण का स्तर भी ऊँचा बना रहे।

[4] निरीक्षण सम्बन्धी काय —

(1) भोजन तथा भोजनालय का निरीक्षण करते हुए आवश्यक पौष्टिक पदार्थों की मात्रा है या नही देखते रहे ।

(2) छात्रो को भोजन उचित समय पर प्राप्त हो ।

(3) पढाई के लिए निर्धारित समय पर अध्ययनरत है या नहीं ।

(4) अध्ययन समय मे एक-दूसरे के कमरे म सामान्य नही जान पावे ।

(5) कमरो मे प्रविष्ठ होकर अन्य निरीक्षण के साथ क्या पढ रहे हैं, कहीं असामाजिक साहित्य तो नही पढ़ रहे है ।

[5] स्वास्थ्य सम्बन्धी काय —

(1) छात्रो को व्यक्तिगत स्वास्थ्य व सफाई के लिए प्रोत्साहित कर ।

(2) छात्रावास के पास औषधालय की व्यवस्था होती है उसका आवश्यकतानुसार छात्रो के लिए प्रभावशाली उपयोग करवाय ।

(3) चेचक, हैजा, बी सी जी आदि के टीके लगवाना चाहिए ।

(4) कीटाणुओ द्वारा बीमारी न फैले उसके लिए सचेत रहे ।

(5) किसी छात्र को छुत की बीमारी हो गई हो तो उपचार के साथ अन्य छात्रो स अलग रखना चाहिए ।

(6) पीने के पानी को स्वच्छ रखने का प्रबन्ध करे ।

(7) गर्मी के मौसम मे पानी का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए ।

[6] अन्य करणीय काय —

(1) पाठयक्रम सहगामी प्रवृतियो का सगठन व संचालन व्यस्थित रूप से निरन्तर वर्ष भर चलाने का सफल प्रयास करे ।

(2) विभिन्न समितियो के काय, रजिस्टरो का अवलोकन व पर्यवेक्षण करते हुए सृजनात्मक सुझाव देवे ।

(3) छात्रावास के उद्यान, पेड-पौधो व खेल के मदान की देखभाल और आवश्यकता मरम्मत करवाये ।

(4) पुस्तकालय व वाचनालय की व्यवस्था पर्यवेक्षण तथा छात्रावास की पुस्तकालय समिति को उन्नयन हेतु सजनात्मक सुझाव देवे ।

(5) दण्ड, भय, प्रलोभन आदि की व्यवस्था द्वारा अनतिक कार्यों की रोकथाम करे ।

(6) छात्रावास की वस्तुओ एव सम्पति चाहे उपहार स्वरूप ही प्राप्त हुई है उसका रजिस्टर मे दर्ज करवाना ।

छात्रावास नियम (Hostel Rules)

छात्रालयाध्यक्ष को छात्रावास के सचालन हेतु अपने कर्त्तव्यों का भली प्रकार निर्वाह करने से व्यवस्थित होगा। छात्रावास नियमों का निर्माण प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया से करते हुए सभी छात्रों मे प्रसारण किया जाय। उसके लिए कुछ नमूने दिये है। प्रो0 रायबन के अनुसार निम्नलिखित है।I

(1) छात्रावास प्रवेश से पूर्व अग्रिम धन तथा सुरक्षा शुल्क जमा करवाना पड़ेगा।

(2) छात्रावास सम्पत्ति नष्ट कर देने पर नुकसान पूरा करना पड़ेगा।

(3) विद्यार्थियों के पास कुछ रूपये हो या कीमती' सामान हो तो छात्रालयाध्यक्ष का जमा करा सकते है।

(4) छात्र अपने विस्तर, कपड़े और चीजें साफ–सुथरी रखेगें।

(5) मगलवार वृहस्पतिवार और शनिवार को सारे विस्तर बाहर डाले जाने चाहिए।

(6) आलमारी बक्स व कमरे मे खाने का सामान न रखें।

(7) सिगरेट व मादक वस्तुओं का सेवन निषेद्ध है।

(8) छात्र बगैर प्रबन्धकर्त्ता की आज्ञा के छात्रावास नही छोड़ें।

(9) सदव प्रात काल के व्यायाम से अवकाश हेतु स्वीकृति वांछित है।

(10) बगैर छात्रालयाध्यक्ष की पूर्व स्वीकृति छात्र अपने अतिथि को साथ नहीं ठहरायगें।

(11) किसी दुकानदार व साथी छात्रो से लेन–देन बगैर छात्रालयाध्यक्ष की पूर्व स्वीकृति मार्याद्धित कृत है।

(12) छात्रो को समितियो को सहयोग देना चाहिए, गम्भीर मामलो मे समिति के निर्णय के विरूद्ध प्रबन्धको का अपील करें।

(13) छ मास निरन्तर छात्रावास मे रह रहे विद्यार्थियों को ही समिति निर्माण का अधिकार होगा।

(14) प्रधानाध्यापक की पूर्व स्वीकृति के बगैर, शाला समय म कोई भी विद्यार्थी छात्रावास मे नही रहेगा।

वास्तविक जीवन की शिक्षा — "छात्रावास म रहकर जीवन का अभ्यास करते है और गुणों व आदतों को सीखते है। छात्रावास के जीवन से बालक को जीवन की शिक्षा मिलता है— 1 छात्रावास में रहकर नियमित तथा अनुशासन युक्त जीवन का अभ्यास होता है, 2 एक–दूसरे के साथ रहना सीखता है, 3 छात्र एक दूसरे की सहा–

यता करते हैं, तकलीफ में एक-दूसरे के साथ खड़ा होना 4 एक दूसरे के साथ न्याय का वर्ताव करना 5 घरों के संकीर्ण वातावरण से बाहर निकल जाते हैं। 6 स्वावलम्बन जीवन का प्रशिक्षण 7 अन्य छात्रों में सौहार्द व समानता की भावना का संचार करता है'[1]

छात्रावास व शाला प्रधान — जिन संस्थाओं में छात्रावास है वहां के प्रधानाध्यापक का उत्तरदायित्व है कि वे घर जैसा वातावरण तथा सभी प्रकार की सुविधाएं प्रदान करने में कोताई न करें। प्रधानाध्यापक को छात्रालयाध्यक्ष से वस्तुस्थिति के बारे में अवगत होवे और उसके वर्तमान प्रशासन व भविष्य में विकास हेतु विचार-विमर्श करते रहना चाहिए।

उसे नियमित रूप से छात्रावास का निरिक्षण करने के लिए जाते रहना चाहिए। समय बदल बदल कर उसे छात्रावास जाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों और कर्मचारियों को यह प्रतीत होने लगे कि प्रधानाध्यपक एक विशिष्ट समय पर आते है और वह उस समय ही नियमित और अनुशासित हो जाएं। उसे यह भी देखना चाहिए कि विद्यार्थी पढ़ने के समय पर पढ़ते है, खेलने के समय पर खेलते है और ठीक समय पर सो जाते हैं।

छात्रावास सम्बन्धी समस्याएं व उनके निराकरण के सुझाव

(Problmes regrading Hostelfor their solution)

(1) बड़े लड़के छोटे लड़को के साथ अस्वाभाविक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं और तंग भी करते है। एक कमरे में समान आयु वर्ग के छात्रों का रखा जाय।

(2) रात्रि का चौकीदार से मिलकर छात्रावास से बाहर रहना। चौकीदार को कड़ी हिदायत हो कि निर्धारित समय के उपरान्त कोई आवागमन न हो। छात्राध्यक्ष को बगैर सूचना के कमरा का निरीक्षण करे।

(3) शाला समय में छात्रावास में छात्र आकर बैठ जाते हैं। विद्यालय समय समाप्ति तक छात्रावास बन्द कर दिया जाय।

(4) छात्रों द्वारा नौकरो से दुर्व्यवहार करना। नौकर छात्रावास के हैं छात्र के नहीं यह बात उन्हें हृदयगम करवादी जाय।

(5) वस्तुएं चोरी होना। अधिक धन रखने की अनुमति न देना।

(6) किसी भी मित्र को अतिथि बनाकर ठहरा देना। अभिभावकों द्वारा प्रवेश के समय छात्र के सम्भावित अतिथि की सूची प्राप्त करले, उसके अलावा नहीं ठहरे।

(7) बाहर के भिन्न लिंग वालो से नौकरो के माध्यम से पत्र-व्यवहार। नौकरों को कठोर हिदायत दी जाय कि पत्र-वाहक का काय न करे।

---

1 माथुर, एल एस, 'विद्यालय संगठन और स्वास्थ्य शिक्षा' पज/106-107

2 गैड एव शर्मा, 'भारतीय जनतन्त्र और शिक्षालय-व्यवस्था' पज/243

(8) बाहर के लोगो व दुकानदारो से रूपयो का लेन देन करते हैं। वे परस्पर उधार न ले, यदि ऐसा मालूम पड़ते ही अभिभावको को सूचित कर दिया जाय।

(9) छात्रावास मे समितियो के निर्वाचन को लेकर द्वन्द पदा होता है। छात्रावास अध्यक्ष विभिन्न पार्टियो से मिलकर भेदभाव समाप्त करवाय'

(10) छात्रावास की समिति सदस्य आमदनी का साधन बनाते है। समिति द्वारा प्रदत्त हिसाब का अन्य छात्रो द्वारा आडिट करवाई जाय और छात्रावास अध्यक्ष वस्तु-स्थिति से अवगत होकर आवश्यक कार्यवाही करे।

छात्रावास से लाभ (Advantages of Hostel)

पिछले पृष्ठो के विवचनात्मक अध्यन से स्पष्ट होता है कि छात्रो को आज के सामाजिक मूल्यो के अनुरूप विभिन्न प्रकार के गुणों का उसके व्यक्तित्व विकास मे सहभागी रहना है जैसे —

(1) नागरिकता की शिक्षा को प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था के लिए अत्यन्त आवश्यक गुण है, उसका विकास होता है।

(2) छात्रावास का संचालन छात्रो द्वारा ही सम्पन्न होने से उनम उत्तरदायित्व भावना का सहज ही विकास होता है।

(3) लोकतन्त्र की सफलता उनके नागरिको में सहन शीलता, सहयोग, भ्रातृत्व एव आत्म नियन्त्रण पर ही निर्भर करता है इन सभी गुणो का अनौपचारिक रूप म छात्रावास जीवन से स्वत हो पदा हो जाते है।

(4) छात्रावास के छात्रो मे आपसी सहयोग एव सहायता स उनके बौद्धिक स्तर का विकास होता हैं।

(5) धीमि गति से अधिगम करने वाले छात्रो को श्रेष्ठ छात्रो के सहयोग से अध्ययन मे सहयोग प्राप्त होता है।

(6) विशिष्ट बुद्धिवाले छात्रो को अध्ययन में अन्य छात्र हृदय से सहयोग करने से वे प्रखर हो जाते हैं।

(7) दूसरे छात्रो की बात व विचारो को सुनते व प्रस्तुत करने की स्वतन्त्रता स विचार विमर्श करने की दक्षता प्राप्त होती है।

(8) छात्रो मे स्नेह एव सौहार्दपूर्ण वातावरण से पैदा हुई अभिवृद्धि व्यवहारिक जीवन मे एक विशिष्ट स्थान बनाने म सफल हो जाते है।

(9) स्कूल में यह अत्यधिक ज्ञान प्राप्ति का साधन बन सकता है।

(10) सामाजिक एव मानवीयता के भावों का प्रकटीकरण होता है।

(11) सामाजिक एव मानवीयता के भावो को प्रकट होने से अनुपयुक्त और अप्रयोग-शील भावनाओ तथा अह की भावना का दिमाग से उन्मूलन होता है ।
(12) छात्रो मे भावावेश, साहस तथा उत्साह मे परिपक्वता स्थान लेती है ।
(13) छात्र चितमन लगाकर योजना बनाना, उस पर काय करना और सम्पूर्ण करना आदि प्रक्रिया से द्वारा काय पूर्ण करने की आदत का विकास होता है ।
(14) व्यवहारिक जीवन के लिए उपयोगी प्रशिक्षण सम्मिलित होकर काम करने का गुण छात्रावास जीवन की देन है ।
(15) अपनी दक्षता के आधार पर काय पर दृष्टि रखकर अपनी दक्षता और योग्यता से काय को आगे बढाने की आदत पर निभर करता है ।

छात्रावास की परिसीमाए और सावधानिया

छात्रावास जिस उद्देश्य के आधार पर सचालित किया जाता है उसके भिन्न प्रकार के दोष निरीक्षण व्यवस्था कमजोर होने से बन जाती है जैसे—

(1) छात्र अध्ययन की बजाय गप्प शप मे या अन्य व्यथ के कार्यो मे समय बर्बाद कर देते हैं ।
(2) विभिन्न जातिया नगरो से आने वाले बालको की स्वय रीति रिवाज व परम्परायें होती है लेकिन सामूहिक मिलन से सब भूल जाते हैं ।
(3) बडे लडके कम आयु के बच्चो को तग करते हैं ।
(4) छात्रावास की अव्यवस्था मे शैक्षिक वातावरण खराब होने की प्रबल सभावनाए हो जाती है ।
(5) छात्रावास के खराब, शरारती, व्यसनी छात्र ऐसा अशैक्षिक वातावरण बना देते हैं जिससे परिश्रमी तथा योग्य छात्रो के अध्ययन मे अवरोध पैदा होता है ।
(6) योग्य और परिश्रमी छात्र अपने परीक्षा परिणाम आशा के विपरीत होने की स्थिति मे हीनता की भावना पैदा तो होती ही है साथ ही अभिभावको द्वारा विनियोजन व्यथ सिद्ध होता है ।
(7) अभिभावको से दूर रहने पर छात्रालयाध्यक्ष ही स्थानीय सरक्षक होते हैं उनकी ढील से फायदा उठाकर छात्र अनुचित कार्यो के व्यसनो मे अनुरक्त होते हैं ।
(8) अनुचित कार्यो से ग्रसित होने के फलस्वरूप उनके शारीरिक मानसिक और नैतिक पतन की सभावनाएं बढती है ।
(9) छात्रावास मे राजनैतिक, जाति, धम, समुदाय या क्षेत्र के आधार पर दलबन्दी होने से सघष जैसी स्थिति हो जाती है ।

(10) दलगत सघप से अनुशासनहीनता, विघटनात्मक क्रियाएँ, लडाई–झगडे होने से छात्रा को नुकसान होता है ।

अत छात्रावास के अधिकारी व प्रधानाध्यापक का दायित्व अधिक दत्तचित होने तथा अभिभावको का भी पूरा सहयोग मिलने पर ही छात्रावास शैक्षिक सस्थान की पवित्रता को बनाये रख सकती है ।



मूल्याकन (Evaluation)

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 विद्यालय मे छात्रावास की क्या उपयोगिता है ?

2 छात्रावास अध्यक्ष मे किन किन गुणो का होना आवश्यक है ?

3 छात्रावास मे किन–किन अभिलेखो का रखना आवश्यक है ? परिचय दीजिए ।

4 छात्रावास के सगठन एव सचालन में क्या सावधानियाँ वाछित है ?

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1 आप छात्रावास मे रहने वालो छात्रो का जीवन किस प्रकार नियमित करेंगे ? विस्तार योजना प्रस्तुत करे ।

2 यदि आप छात्रावास के वाडन बना दिये जाय तो आप कौन–कौन से कार्य करेंगे जिससे छात्रा के जीवन नियमित बन सके ।

अध्याय ९

प्रवेश एव गृह-कार्य
(Admissions and Assignments)

[विषय-प्रवेश—(क) प्रवेश सबधी प्रमुख समस्याएँ एव उनका निराकरण (1) प्राथमिक स्तर पर, (2) उच्च प्राथमिक स्तर पर, तथा (3) माध्यमिक स्तर पर-प्रवेश सबधी विभागीय नियम नाम पृथक्करण एव पुन प्रवेश—स्थानातरण प्रमाण-पत्र (ल((T C) गृह-कार्य का परम्परागत एव नवीन सप्रत्यय गृह कार्य के उद्देश्य उसकी आवश्यकता एव महत्व गृह कार्य के प्रकार-गृह कार्य के सिद्धात गृह कार्य सम्बन्धी समस्याएँ एव उनका निराकरण (1) गृह कार्य की मात्रा का नियमन,(2) गृह कार्य का सशोधन, तथा (3) गृह-कार्य का अनुवतन (Follow up) गृह कार्य का समय-विभाग-चक्र उपसहार मूल्याकन]

विषय-प्रवेश —

विद्यालयो मे छात्र-प्रवेश अथवा नामाकन की समस्या सत्रारम्भ में सर्वाधिक तथ सत्रपर्यन्त किसी न किसी रूप म बनी रहती है । शिक्षा के प्रत्यक विद्यालयीय स्तर (प्राथमिक उच्च प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर । की सस्थाओ मे प्रवेश की समस्या प्रमुख होती है । प्रवेश अथवा नामाक (Enrolment) की राष्ट्रीय नीति की चर्चा करते हुए कोठारी शिक्षा आयोग (1966) न कहा है "हमारे मानव-ससाधन का विकास राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के महत्वपूर्ण कार्यक्रमो म से एक है और इस दृष्टि से शिक्षा के प्रसा की कोई सीमा भी निर्धारित नही की जा सकती । लेकिन किसी वर्ष मे किसी एक समय पर शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओ का स्वरूप, परिणाम तथा स्तर किस प्रकार का हो यह द बातो पर निर्भर करता है। यह बात अशत तो साधनो के उपलब्ध होने पर अशत जनता क सामाजिक एव राजनीतिक जीवन-दर्शन के सिद्धान्ता पर निर्भर रहती है । भारत ने एक लोकतान्त्रीय तथा समाजवादी ढग से समाज की स्थापना का सकल्प लिया है ।'1 इस सन्दर्भ म आयोग न शिक्षा के विभिन्न स्तरों और क्षेत्रो म शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओ की व्यवस्था करने की दिशा मे मार्गदर्शन के लिए मूल सिद्धात इस प्रकार

1 काठारी शिक्षा आयोग (1966) पृष्ठ/100

बतलाये हैं —

(1) प्रत्येक बालक/बालिका को नि शुल्क व अनिवार्य कम से कम 7 वर्ष तक की प्रभाव शाली सामान्य शिक्षा और यथासम्भव बड़े से बड़े पैमाने पर अवर माध्यमिक शिक्षा का विस्तार होना चाहिए।

(2) जो उच्चतर माध्यमिक शिक्षा तथा विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक तथा योग्य होंउनके लिए ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना। इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करते समय प्रशिक्षित जनशक्ति (Man Power) की मांग और आवश्यक स्तर बनाये रखने की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखना चाहिए। आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त व्यक्तियों को समुचित आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।

(3) वत्तिक तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा के विकास पर बल देना चाहिए तथा कृषि व उद्योगो पर बल देना चाहिए तथा कृषि व उद्योगो के विकास के लिए अपे क्षित कुशल कर्मचारी तयार करने चाहिए।

(4) प्रतिभा की पहिचान करनी चाहिए और उसके पूर्ण विकास में सहायता देनी चाहिए, तथा

(5) शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं की समान रूप से व्यवस्था करने के लिये निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए और आरंभ में कम से कम अत्यधिक स्पष्ट असमानताए दूर की जानी चाहिए।

प्रस्तुत अध्याय मे माध्यमिक विद्यालयो की प्रवेश सम्बन्धी समस्याओ व उनके निराकरण के सुझावो का कोठारी शिक्षा आयोग द्वारा निर्धारित उपरोक्त राष्ट्रीय नामा कन नीति के संदर्भ मे विवेचन करेंगे। तत्पश्चात् इसी अध्याय मे दूसरी प्रमुख समस्या गृह कार्य की चर्चा करेंगे।

प्रवेश सम्बन्धी प्रमुख समस्याएँ एव उनका निराकरण .

विभिन्न शिक्षा स्तरो पर ये समस्याएँ इस प्रकार है —

[1] प्राथमिक स्तर — भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 अनुसार 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चो के लिये नि शुल्क और अनिवार्य तथा अच्छे ढग की शिक्षा की व्यवस्था करना ही इस स्तर की सबसे महत्वपूर्ण बात हैं। यह दो चरणों मे विभक्त है —(1) प्राथमिक स्तर (कक्षा 1 से 5 अर्थात् 6+ व 10+ के आयु वर्ग हेतु) की शिक्षा, तथा (2) उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6 से 8 अर्थात 11+ व 14+ के आयु वर्ग हेतु) शिक्षा/प्राथमिक स्तर की प्रमुख सम स्याएँ व उनके निराकरण हेतु सुझाव निम्नांकित है —

(1) नामाकन की समस्या।—सविधान के प्रावधान के अनुसार प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा नि शुल्क, अनिवाय एव सावजनीन होने का लक्ष्य गत 36 वर्षों के प्रयास के बाद भी अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। अब इस लक्ष्य का 1990 तक प्राप्त करने का सकल्प किया गया है। लक्ष्य की पूर्ति म बाधक तत्व नामांकन का शत प्रतिशत न होना है - विशेष कर ग्रामीण क्षेत्रो म।

इस समस्या के समाधान का एक मात्र यही उपाय है कि इस स्तर के आयु वर्ग के बच्चो के लिए प्राथमिक विद्यालय उनकी सुविधानुसार सवत्र खोल जायें तथा नामाकन शतप्रतिशत किया जाये। ग्रामीण क्षेत्रों म 'नामांकन अभियान' (Enrolment Drive) जो चलाया जा रहा है, उसे गति प्रदान की जाय।

(2) निधन छात्रो को वित्तीय सहायता प्रदान की जाय — छात्रवृति, पुस्तक व पाठ्य-सामग्री, मध्याह्न भोजन गणवेश आदि के नि शुल्क वितरण द्वारा तथा पूर्व प्राथमिक शिक्षा (आगनवाडी) क्रीडा-केन्द्र आदि की व्यवस्था कर।

(3) अपव्यय एव अवरोधन की समस्या —प्राथमिक विद्यालयो मे केवल नामाकन शतप्रतिशत करना ही पर्याप्त नही है बल्कि उन्ह कक्षा 5 तक विद्यालय म रोके रखना भी वांछनीय है अन्यथा नामाकन निरथक सिद्ध होगा। इस स्तर पर अप व्यय और अवरोधन (Wastage and Stagnation) की समस्या सबस अधिक है। इसक कारणो का निराकरण किया जाये। निराकरण हेतु अविभक्त इकाई योजना विद्यालय वातावरण का आकषक होना, शिक्षण काय प्रभावी होना, अध्यापक-अभिभावक सम्पक घनिष्ट होना, अभिभावको के अनुकूल विद्यालय समय का निर्धारण जैसे प्रहर पाठशालाएँ आदि।

[2] उच्च प्राथमिक स्तर —उच्च प्राथमिक स्तर पर भी प्राय उन्ही प्रवेश सबधी समस्याओ का सामना करना पडता है जो कि उपरोक्त प्राथमिक स्तर पर है। यह स्तर भी सविधान के अनुसार 14 वष तक की नि शुल्क अनिवाय एव सावजनिक शिक्षा के अन्तर्गत महत्वपूर्ण है। प्राथमिक स्तर की शिक्षा की प्रगति के साथ ही उच्च प्राथमिक स्तर पर प्रवेश या नामांकन मे तदनुरूप वृद्धि होनी चाहिए। दश के विभिन्न राज्यो तथा राज्यो के विभिन्न क्षत्रों मे व्याप्त शिक्षा सुविधाओ के असतुलन को दूर किया जाना चाहिए।

इस स्तर पर प्राथमिक विद्यालयो की शिक्षा समाप्त कर बच्चे प्रवेश लेते हैं। अत प्रवेश सम्बन्धी विभागीय नियमो का अनुपालन किया जाना चाहिए जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा है। यद्यपि इस स्तर पर सामान्य शिक्षा-

क्रम होता है किन्तु कुछ वैकल्पिक विषयों जैसे चित्रकला व वाणिज्य में से प्रवेश के समय एक विषय चुनना होता है तथा कार्यानुभव अथवा समाजोपयोगी उत्पादन(Work experience orSUPW)सम्बन्धी क्रियाकलापो का भी चुनावकरना होता है। अत प्रवेश के समय उन्हे इन विषयो के चुनाव हेतु पर्याप्त निर्देशन (Guidance) मिलना चाहिए।

अपव्यय एव अवरोधन की समस्या इस स्तर पर भी गम्भीर रूप मे व्याप्त है। अत उपरोक्त वर्णित उपायो को अपनाना चाहिए।

[3] माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक स्तर — पर प्रवेश या नामांकन सम्बन्धी निम्नांकित समस्याएँ होती है जिनके निराकरण सम्बन्धी उपाय इस प्रकार हैं —

(1) प्रवेश सम्बन्धी विद्यार्थियो की निरन्तर बढती हुई सख्या — माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक विद्यालयो की सख्या अभी प्रवेशार्थियो की सख्या के अनुपात मे काफी अपर्याप्त है। यद्यपि प्रत्येक राज्य माध्यमिक स्तर के विद्यालयो म निरन्तर वृद्धि कर रहा है तथापि वित्तीय साधनो की कमी तथा जनसख्या वृद्धि के कारण वह सभी विद्यार्थियो को प्रवेश देने मे असमर्थ है। इस समस्या का निराकरण अधिकाधिक विद्यालयो को खोलने हेतु राज्यो को केन्द्रीय वित्तीय सहायता देना तथा पत्राचार पाठ्यक्रमो(Correspondance Course)के प्रचलन द्वारा हो सकता है। कुछ राज्यो म ऐसे पाठ्यक्रम वहा के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा सचालित भी किये जा रहे है। इसके अतिरिक्त निजी विद्यालयो (Private School) के खोलने हेतु अनुदान (Grants) भी दी जानी चाहिए।

(2) खुले अथवा चयनित प्रवेश(Open or Secited Admissions)की समस्या देश म जन साधारण की शिक्षा सम्बन्धी आकाक्षाओ मे वृद्धि हुई है तथा लोकतान्त्रिक देश का यह दायित्व भी है कि वह इन आकाक्षाओ की पूर्ति करे किन्तु वित्तीय साधनो के अभाव मे ऐसा करना सम्भव नही जान पडता। अतः खुले प्रवेश के स्थान पर चयनित प्रवेश की नीति को ही तब तक अपनाना होगा जब तक कि माध्यमिक शिक्षा सब सुलभ नही हो जाती। किन्तु चयनित प्रवेश म इस बात का ध्यान रखना होगा कि प्रतिभाशाली व योग्य विद्यार्थियो को निष्पक्ष होकर प्रवेश दिया जाय तथा समाज के पिछडे वर्गों, बालिकाओ आदि को प्रवेश हेतु आरक्षण (Reservation) दिया जाये।

(3) स्तरीय व निम्नस्तरीय विद्यालयो मे प्रवेश की समस्या — कुछ स्तरीय अथवा अच्छी शिक्षा व्यवस्था वाले विद्यालयो जैसे कान्वेंट स्कूल, पब्लिक स्कूल,

निजी विद्यालय आदि में प्रवेश हेतु विद्यार्थियों में अधिक आकांक्षा होती है। किन्तु स्थान (Seats) सीमित होने के कारण योग्यता के आधार पर प्रायः वे ही विद्यार्थी प्रवेश पाते हैं जो सम्पन्न वर्ग के हैं। जबकि निम्न स्तरीय (विशेषतः राजकीय) विद्यालय में प्रवेश हेतु कम विद्यार्थी आते हैं और जो आते हैं वे प्रायः निर्धन या निम्न मध्य वर्ग के होते हैं। अच्छी शिक्षा सभी को निष्पक्ष रूप से उपलब्ध हो, इस हेतु कोठारी शिक्षा आयोग द्वारा अभिशंसित सुझावों का अनुपालन किया जाना चाहिए जैसे स्तरीय विद्यालयों में निर्धन किन्तु योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देकर प्रवेश दिया जाय सामान्य व पड़ोसी विद्यालय (Common or neighbourhood School), निम्न स्तरीय विद्यालयों के स्तरोन्नयन आदि के द्वारा।

[4] क्षेत्री असन्तुलन के कारण उत्पन्न प्रवेश समस्या—शिक्षा राज्य का विषय है, अतः माध्यमिक शिक्षा सुविधाओं की दृष्टि से विभिन्न राज्यों के मध्य असंतुलन (In balance) है तथा राजनैतिक प्रभाव के फलस्वरूप एक ही राज्य के विभिन्न प्रदेशों तथा ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में इस शिक्षा सुविधाओं में काफी असन्तुलन है। इसके फलस्वरूप कुछ विद्यालय एसे स्थानों पर खुल गये हैं जहाँ विद्यार्थियों की संख्या नगण्य है और वे अनार्थिक और अधिक खर्चीले (Un economic) सिद्ध हुए हैं जबकि कुछ स्थानों पर आवश्यकता होते हुए भी विद्यालय नहीं खुले जिसके कारण विद्यार्थियों को दूर स्थित विद्यालय में प्रवेश लेना पड़ता है जो उनकी आर्थिक स्थिति के अनुकूल नहीं। अतः इस समस्या का समाधान आवश्यकता पर आधारित उचित स्थान पर विद्यालय खोलकर इस असंतुलन को दूर करने से हो सकता है। अनार्थिक विद्यालयों को बदलकर आवश्यकता वाले कस्बों के मध्यवर्ती केन्द्रीय स्थान पर विद्यालय व छात्रावास स्थापित करके भी इस समस्या का हल खोजा जा सकता है।

[5] नगरीय या ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों में स्थानाभाव की समस्या—कुछ विद्यालयों में स्थानाभाव या अतिरिक्त अनुभाग (Sections) की स्वीकृति न मिलने के कारण स्थानीय विद्यार्थी प्रवेश लेने से वंचित रह जाते हैं। अतः राज्य द्वारा अतिरिक्त कक्ष बनवाने हेतु वित्तीय सहायता देकर व अतिरिक्त अनुभाग खोलने की अनुमति पूर्व योजनानुसार देनी चाहिए।

[6] माध्यमिक स्तर पर विभिन्न शिक्षा-संरचना (Structere) होने से प्रवेश लेने की समस्या— उत्पन्न होती है। एक ही राज्य में उदाहरणार्थ राजस्थान

मे अधिकांश विद्यालय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान से सम्बद्ध होने कारण 10+1 सरचना के हैं तथा कुछ केन्द्रिय विद्यालय या निजी विद्यालय ऐसे है जहा 10+2 शिक्षा योजना प्रचलित है। इन विद्यालयो सरचना तथा पाठ्यक्रम सम्बन्धी पर्याप्त विभिन्नताएँ है। इस कारण इन विद्यालयो के विद्यार्थी एव विद्यालय को छोडकर भिन्न सरचना वाले विद्यालय म प्रवेश लेने पर कठिनाई अनुभव करते हैं। इस समस्या का समाधान देश मे समान माध्यमिक शिक्षायोजना (10+2) अपनाकर हो सकता है।

[7] अन्तर्राज्यीय स्थानान्तर पर प्रवेश की समस्या —राज्यो मे माध्यमिक शिक्षा की विभिन्न प्रणालियां क प्रचलित होने से एक राज्य से दूसरे राज्य म स्थानान्तरित होने वाले विद्यार्थी को कठिनाई आती है क्योंकि वह नय पाठ्यक्रम में स्वय को समायोजित नहीं कर पाता। यह समस्या भी समान शिक्षा-योजना (10+2) अपनाने पर हल हो सकेगी।

[8] प्रवेश के समय भाषा सम्बन्धी कठिनाई किसी राज्य म भिन्न भाषा भाषी राज्य या प्रदेश से आये हुए विद्यार्थी को भाषा सम्बन्धी कठिनाई आती है जैसे शिक्षा के माध्यम की भाषा तथा तृतीय भाषा (Thired Language) सम्बंधी। इस कठिनाई का निराकरण राज्यो द्वारा इस हेतु निर्मित नियमो के अन्तर्गत किया जा सकता है जसे किसी विद्यालय म यदि भिन्न भाषा-भाषी विद्यार्थियो की कुल सख्या 30 है अथवा किसी एक कक्षा म 10 है तो उनकी भाषा म शिक्षण हेतु व्यवस्था की जानी चाहिए।

9] एच्छिक विषयो मे प्रवेश की समस्या —माध्यमिक विद्यालयो मे कलासकाय की अपेक्षा प्राय वाणिज्य, विज्ञान व गृह विज्ञान मे प्रवेश हेतु आकांक्षी अधिक होते है जबकि विद्यालय मे उपलब्ध स्थान (Seats) सीमित होती हैं। एसी समस्याओ का समाधान योग्यता (Merit) के आधार पर चयनित प्रवेश (Selcted Admissions) अथवा शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance) द्वारा किया जाना चाहिए ताकि ऐच्छिक विषयो, सकाय, उद्योग कार्यानुभव, समाजोपयोगी उत्पादन काय (SUPW) आदि का चयन छात्र द्वारा समुचित रीति से किया जा सके। चयनित प्रवेश मे भी पिछड़े वर्ग हेतु आरक्षण का प्रावधान होना चाहिए तथा निर्धन छात्रो को छात्रवृत्तियां दी जानी चाहिए।

10] सह शिक्षा (Co Education) सम्बन्धी प्रवेश की समस्या अनेक स्थाना पर कन्या माध्यमिक या उच्च माध्यमिक विद्यालय नहीं होते, अत बालिकाओ को विवश होकर बालको के विद्यालयो मे प्रवेश लेना होता है किन्तु अभी सामाजिक प्रतिबन्ध

व मान्यताओं के कारण अभिभावक इसे अच्छा नहीं मानते जिसके कारण उनकी बालिकाएँ प्रवेश लेने से वंचित रह जाती है। अतः इस समस्या के निराकरण हेतु बालिकाओं के विद्यालय आवश्यकतानुसार खोलकर अथवा समाज में सहशिक्षा के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण उत्पन्न करके किया जा सकता है। सह शिक्षा वाले विद्यालयों में कुछ शिक्षिकाओं तथा बालिकाओं के लिए एक समान कक्ष (Girls Common room) की व्यवस्था करना चाहिए।

प्रवेश सम्बन्धी विभागीय नियम

कुछ समस्याएँ प्रवेश सम्बन्धी विभागीय नियमों का ध्यान न रखने से उत्पन्न होती हैं। अतः इन नियमों को प्रवेश के समय दृष्टिगत रखना अनिवार्य है। ये नियम संक्षेप में इस प्रकार हैं —

छात्र प्रवेश—छात्रों के प्रवेश के लिए भिन्न भिन्न राज्यों में भिन्न प्रकार के नियम शिक्षा विभाग द्वारा प्रसारित किये जाते हैं। सभी विद्यालयों में उन नियमों के आधार पर काम होता है। राजस्थान में प्राथमिक विद्यालय ग्रामीण क्षेत्र में पंचायत समितियों के प्रशासन में हैं और और शहरी क्षेत्र में जिला शिक्षा अधिकारी के नियंत्रण में परन्तु पंचायत समितियों में भी शिक्षा विभाग के आदेशों का पालन किया जाता है। सामान्यतः छात्र प्रवेश का कार्य प्रत्येक सत्र के प्रथम सप्ताह में समाप्त हो जाता है। कक्षा 1 में भी ऐसा ही यत्न होता है फिर भी इस कक्षा में प्रवेश पूरे सत्र खुला रहता है। जब भी कोई बालक विद्यालय में कक्षा एक में प्रवेश लेने आता है, उसे प्रविष्ट कर लिया जाता है। जब भी कोई छात्र विद्यालय में प्रवेश के लिए आता है तो उसके पिता या अभिभावक से प्रवेश 'प्रार्थना पत्र' की पूर्ति कराई जाती है। प्रवेश प्रार्थना पत्र में कई पूर्तियाँ करनी होती हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है छात्र की जन्मतिथि। यह ईस्वी सन् में लिखाई जानी चाहिए और उसे अंकों में लिखवाकर शब्दों में भी जरूर लिखवानी चाहिए। पिता के जीवित होने की दशा में अभिभावक से इस प्रार्थना-पत्र की पूर्ति यथा सम्भव नहीं करवानी चाहिए क्योंकि ऐसा होने पर छात्र के जन्म दिनांक पर भविष्य में कभी पिता द्वारा आपत्ति उठाई जा सकती है। ऐसी समस्या के समाधान के लिए सावधानी बरतना जरूरी है। इस प्रार्थना-पत्र में एक सूचना यह भी अंकित की जाती है कि छात्र ने इस विद्यालय में प्रवेश चाहने से पूर्व राज्य द्वारा स्वीकृत किसी अन्य विद्यालय में शिक्षा नहीं पाई है। इस सूचना का ध्यान से देख लेना चाहिए, जिससे भविष्य में उस छात्र के प्रवेश से सम्बन्धित कोई आपत्ति पैदा न हो।

नामाकन (Enrolment)—छात्र प्रवेश का प्रार्थना-पत्र अभिभावक या छात्र के माता-पिता मे से किसी के हस्ताक्षर सहित पूरा और ठीक तरह भरा हुआ जैसे ही विद्यालय मे वापिस प्राप्त होता है तो उसकी जाच कर यह विश्वास किया जाता है कि इसम पूर्तिया ठीक स्थान पर अकित की गई हैं और जो भी विवरण छात्र के बारे में दिया गया है वह सही है। इस प्रार्थना पत्र की जाच के बाद प्रधानाध्यापक छात्र को विद्यालय मे प्रवेश देने की आज्ञा लिखित मे उसी प्रार्थना पत्र पर देते हैं। प्रधानाध्यापक की लिखित आज्ञा के उपरान्त उस छात्र का नामाकन विद्यालय की नामाकन पजिका मे कर लिया जाता है। इस पजिका को स्कालस रजिस्टर(Scholars Register) भी कहते हैं। इसमे छात्र के विद्यालय मे प्रवेश करते ही उसका नाम व उससे सम्बन्धित सभी सूचनाएँ उसके प्रवेश प्रार्थना पत्र मे अकित किये गये अनुसार अकित करली जाती हैं। जिस क्रमाक पर एक बार छात्र का नाम अकित हो जाता है, वह उसका उस विद्यालय मे रहने तक बना रहता है। जब वह छात्र विद्यालय छोडता है तब उसी मे कारण और दिनाक अकित कर दिये जाते है और विद्यालय छोडने का प्रमाण पत्र (T C) दिया जाता है।

छात्र उपस्थिति (हाजिरी)—प्रवेश प्रार्थना पत्र की प्राप्ति पर दूसरी पजिका जिसमे छात्र का नाम अकित किया जाता है, वह है—छात्र उपस्थिति-पजिका (Attendance Register)। ये पजिकाएँ कक्षावार होती हैं। जब किसी प्राथमिक विद्यालय म छात्रो की सख्या कम होती है तब एक रजिस्टर म ही एक से अधिक कक्षाओ के छात्रो के नाम लिखे जाकर हाजिरी ली जाती है। जब छात्र उपस्थित होता है उसे 'उ' या 'P', अनुपस्थित होता है तो 'अ' या 'A' और अवकाश पर रहता है तो 'अव' या 'L' सकेता का उपयोग उस छात्र के नाम की दाई ओर निश्चित दिनाक के नीचे किया जाता है। जब छात्र निर्धारित प्रतिशत के दिन उपस्थित रहता है तभी उसे वार्षिक परीक्षा म बैठने का अधिकार प्राप्त होता है। उपस्थिति का यह प्रतिशत राजकीय नियमानुसार बदलता भी रहता है। छात्रो की दैनिक उपस्थिति अकित कर लेने के पश्चात् प्रतिदिन उपस्थित छात्रो का योग भी उपस्थिति पजिका (रजिस्टर) म अकित किया जाता है। प्रतिदिन का उपस्थिति योग शिक्षक को यह दर्शाता रहता है कि छात्र छात्राएँ किस सीमा तक नियमित रूप से विद्यालय आ रहे हैं।

मासिक एव वार्षिक तालिकाए—छात्र उपस्थिति रजिस्टर म जब पूरे एक महीने तक एक कक्षा के सभी छात्रो की उपस्थिति अकित करली जाती है तब महीने के अन्तिम दिन प्रत्येक कक्षाध्यापक छात्रो की उपस्थिति का औसत निकालता है। यह औसत छात्रों की उपस्थिति के प्रतिदिन के योगो का जोडकर और विद्यालय उन

महीने मे जितने दिन चला— उन दिनो की सख्या से भाग देकर छात्र उपस्थित औसत निकाला जाता है। यह उपस्थिति औसत, जो कक्षावार होता है, उसे एक 'गाशवारे' मे सभी कक्षाओ के लिए अकित कर पूरे स्कूल की 'मासिक औसत तालिका बनाई जाती है। इस तालिका को भरकर उच्च अधिकारियो के कार्यालय म भेजने का नियम प्रचलित है। इस मासिक तालिका में छात्रो की जातीयगत सख्या, उन की सख्या में वृद्धि या कमी आदि का अकित करने की व्यवस्था रहती है। भिन्न-भिन्न राज्यो में इसके लिए भिन्न-भिन्न प्रारूप प्रचलित है। इस मासिक तालिका मे यह भी अकित किया जाता है कि अमुक महीने में कितने छात्रो न किस किस कक्षा म प्रवेश पाया और कितने छात्रो ने विद्यालय छोड दिया या वे अपना स्थानान्तरण प्रमाण पत्र ले गय।

जिस प्रकार स छात्रो के नामाकन, उपस्थिति औसत और पृथक्करण का मासिक विवरण तालिका म तयार किया जाता है उसी प्रकार सम्पूण विद्यालय की सभी कक्षाओ के छात्रो की उपस्थिति का वार्षिक औसत, वष–भर में जितने छात्रों ने विद्यालय में जिन जिन कक्षाओ में प्रवेश लिया उनका विवरण और जितने छात्रो न वष में विद्यालय छोडा उसका विद्यालय छोडने के कारण सहित विवरण वार्षिक तालिका में अकित किया जाता है। इन सभी सूचनाओ को अकित करन के लिए वार्षिक तालिका में खाने खिचे रहत हैं। य मासिक और वार्षिक तालिकाओ के प्रपत्र छपे हुए शिक्षा विभाग द्वारा सभी विद्यालयो में भेज दिये जात हैं। राज्य स्तर पर तो यह काय सम्भव नहीं, अत विभाग द्वारा तो मासिक और वार्षिक तालिकाओ के प्रारूप निश्चित किये जाते हैं और उनके नमूने विद्यालय निरीक्षको के पास भिजवा दिये जाते हैं। विद्यालय निरीक्षक या तो उन नमूनो को ही विद्यालयो में भेज देत हैं या फिर उनके आधार पर अपने यहा इन तालिकाओ के खाली प्रारूप छपवाकर प्रत्यक विद्यालय को भिजवा देते हैं। यदि छपे हुए प्रारूप विद्यालय मे नही हो तो भी विभाग द्वारा निश्चित किये हुए प्रारूप मे य तालिकाएँ हाथ से बनाकर प्रति माह और वष के अन्त में उच्च अधिकारियो को प्रत्येक विद्यालय द्वारा प्रधानाध्यापक के हस्ताक्षर एव मुहर सहित उच्च अधिकारियो को भिजवानी पडती है।

नाम काटना—कक्षा 1 स 11 तक के छात्रो के नाम के पृथक्करण के लिए शिक्षा विभाग समय समय पर अवधियाँ निश्चित करता रहता है। उसके अनुसार ही विद्यालयो म पालना भी होती रहती है। मोटे रूप में कक्षा छ 1 से 11 तक अगर सात दिन तक लगातार एक छात्र अनुपस्थित रहे तो उसका नाम पृथक क

दिया जाता है। कक्षा 1 से 5 तक इस नियम में थोड़ी ढील काम में लाई जाती है। बालक के अनुपस्थित रहने का क्रम प्रारम्भ होते ही अध्यापक को अभिभावक से सम्पर्क साधना आवश्यक हो जाता है। बालक विद्यालय में उपस्थित होना प्रारम्भ करदे, इसलिए प्रयत्न बराबर चलता रहता है और उसमें जब शिक्षक असफल हो जाता है तो उसके नाम को काट दिया जाता है। इस कार्य में एक महीना भी व्यतीत होना सम्भव है। प्राथमिक कक्षाओं के लिए यह छूट छात्रों को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने की दृष्टि से रखी गई है।

जब छात्र का नाम काट दिया जाता है तो उपस्थिति रजिस्टर में उस दिनांक के कोष्ठक से अगले कोष्ठक तक छात्र के नाम के सामने यह अंकित किया जाता है कि नाम काट दिया गया। इसके साथ साथ वह कारण भी लिख दिया जाता है, जिससे ऐसा अध्यापक को करना पड़ा। उपस्थिति पंजिका में यह पूर्ति कर देने के बाद छात्र नामांकन पंजिका में भी ऐसी पूर्ति करदी जाती है।

स्थानान्तरण प्रमाण-पत्र (T C) यह प्रमाण पत्र किसी भी विद्यार्थी को उस समय दिया जाता है जबकि वह किसी भी कारण से किसी दूसरे विद्यालय (उसी शहर या कस्बे के व किसी दूसरे शहर के) में प्रवेश लेना चाहता है। इसके लिए छात्र को विधिवत् प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करना होता है। इस प्रमाण पत्र में दो भाग होते हैं। एक में विद्यार्थी के विषय में सूचना संक्षिप्त रूप में अंकित की जाती है और वह विद्यालय में ही रेकार्ड के रूप में रह जाता है। दूसरे भाग में सूचना विस्तृत रूप में अंकित की जाकर, इसे छात्र या छात्रा को दिया जाता है इस प्रमाण-पत्र को सावधानी से तैयार करना जरूरी है। विशेषतः छात्र की जन्म तिथि, कक्षा जिससे उसने विद्यालय छोड़ा, और जिस दिनांक को विद्यालय छोड़ा, इन सूचनाओं को अंक और शब्द दोनों में अंकित किया जाना चाहिए। ऐसा करने से इस प्रमाण-पत्र में लिखी गई जन्म-तिथि या विद्यालय छोड़ने की कक्षा और दिनांक में से किसी में भी छात्र या उसके अभिभावक किसी भी प्रकार की अनियमितता नहीं कर सकेंगे।

इस प्रमाण पत्र को देने के साथ साथ छात्र को उसके उसी वर्ष के टैस्टों एवं अर्द्ध वार्षिक परीक्षा में (यदि इस परीक्षा के बाद विद्यालय छोड़ा हो) प्राप्त किए हुए अंकों का भी प्रमाण-पत्र दिया जाना चाहिए। छात्र ने विद्यालय छोड़ते समय तक जो भी शुल्क उस चालू वर्ष में जमा कराये हो, उनका उल्लेख भी स्थानान्तर प्रमाण-पत्र में किया जाना चाहिए। यदि इसके लिए उस प्रमाण-पत्र में खाने पहले से ही छिपे न हो तो पृथक से ही विद्यार्थी को इस सम्बन्धी प्रमाण-पत्र दे देना चाहिए जिससे छात्र का दूसरे किसी विद्यालय में विधिवत् प्रवेश सम्भव हो सके।

पुन नामांकन करना —विद्यालय छोड़कर जाने वाले छात्र को यदि उसी विद्यालय म पुन प्रवेश चाहिए तो उसके लिए वह विधिवत् पुन प्रवेश के लिए प्रार्थना पत्र विद्यालय के प्रधानाध्यापक के नाम पर देगा। जैसे ही पुन प्रवेश का प्रार्थना-पत्र विद्यालय म प्राप्त हो वैसे ही विद्यालय के रेकार्ड मे उस प्रार्थना पत्र मे लिखे विद्यालय छोड़ने की कक्षा और दिनांक की जांच की जानी चाहिए। साथ ही अभिभावक का यह बतला देना चाहिए कि उसके बालक की उपस्थिति का प्रतिशत वार्षिक परीक्षा तक अमुक रहेगा और वह वार्षिक परीक्षा मे सम्मिलित हो सकेगा या नहीं।

माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक विद्यालयो मे छात्रो के प्रवेश, पुन प्रवेश, स्थानान्तरण प्रमाण-पत्र तथा अन्य राजकीय एव छात्र निधियो के अन्तर्गत लिये जाने वाले शुल्को की तालिका निम्नांकित है जिन्हे सम्बन्धित छात्र से वसूल करना अनिवार्य होता है, अन्यथा गम्भीर अनियमितताएँ होती है जिसके लिए प्रधानाध्यापक व सम्बन्धित लिपिक या अध्यापक उत्तरदायी होता है —

(क) छात्र-निधि (Boys Fund)

शुल्क	कक्षा 6 से 8	कक्षा 9 से 11
(1) क्रीड़ा शुल्क	6 रु वार्षिक	6 रु वार्षिक
(2) पुस्तकालय शुल्क	1 ,,	1 ,,
(3) वाचनालय ,	2 ,,	2 50 ,,
(4) विद्यालय पत्रिका ,,	1 ,,	1 ,,
(5) छात्र संसद	1 ,,	1 ,,
(6) मनोरंजन	1 ,	1 ,,
(7) उद्यान ,,	50 पै प्रति माह (12 माह तक)	50 पै प्रति माह (12 माह तक)
(8) विज्ञान	1 रु वार्षिक	3 रु वार्षिक
(9) चिकित्सा ,	50 पै ,,	50 पै ,,
(10) कार्यानुभव	75 पै प्रति माह	1 रु प्रति माह
(11) गणित व विज्ञान ,	×	1 ,,
(12) परीक्षा ,	3 रु प्रति परीक्षा	4 रु प्रति परीक्षा
(13) बोर्ड मनी (बोर्ड परीक्षा वालो)	×	5 रु

(ख) राज्य-निधि (Govt Money)

(1) प्रवेश, पुन प्रवेश शुल्क	—	1 रु

(2) स्थानान्तरण प्रमाण-पत्र शुल्क	—	1 रु
(3) " (दूसरी प्रति)	—	50 पै
(4) प्रयोगशाला "	—	50 पै मासिक

(ग) शिक्षण शुल्क (Tution Fees)

माध्यमिक व उच्च माध्यमिक कक्षाओ के छात्रो से राज्य-निधि हेतु प्राप्य शुल्क

कक्षा	आयकर(Income Tax) नही देने वालो से	आयकर देने वालों से
9	1 50 रु प्रति माह	3 रु से 10 रु तक आय-वर्गानुसार
10	1 50 "	"
11	4 "	4 "

दत्त गृह-कार्य का परम्परागत एव नवीन सम्प्रत्यय
(The Traditional and New Concept of Assignment)

गृह-कार्य की उपयोगिता को अधिकाश शिक्षाविद् स्वीकार करते हैं किन्तु यह उपयोगिता तब ही सभव है जब इसे उचित अर्थ मे ग्रहण किया जाये। परम्परागत मान्यतानुसार गृह कार्य केवल विद्यार्थियो को घर पर व्यस्त रखने हेतु, निष्प्रयोजन एव पाठ्यवस्तु को रटने की दृष्टि से दिया जाता है। स्पष्ट है ऐसी मान्यता से गृह-कार्य उपयोगी होने की अपेक्षा निरर्थक एव हानिकारक सिद्ध होता है। गृह-कार्य का आधुनिक सम्प्रत्यय उसे सोद्देश्य सृजनात्मकता, स्वाध्याय, आत्मनिर्भरता व आत्मविश्वास के गुणो के विकास हेतु तथा कक्षा शिक्षण को सपुष्ट करने मे सहायक बनने हेतु दिये जाने मे विश्वास करता है। गृह-कार्य की उपयोगिता के सम्बन्ध म निम्नाकित शिक्षाविदो के मत उल्लेखनीय हैं —

पी सी रैन (P C Wren)—"जब विद्यालय मे प्रत्येक (विद्यार्थी) अपनी रुची के विषयो म गृह कार्य करता हो चाहे वे विषय नैतिक या मानसिक हो, जब वह दैनिक निर्देशन व परामर्श द्वारा अपनी अभिरूचियो व अभिवृत्तियो के विकास म सलग्न रहता है, तो गृह-कार्य एक अच्छी बात है।"[1]

(When everybody in School does homework on the subjects he enjoys be they moral or mental, when he follows his bent and persues his inclinations under the daily guidance and advice of the teachers, then homework is a good thing)

1 Wren P C Indian School Organisation

लोरेन फॉक्स (Lorene Fox) —"गृह-कार्य विद्यार्थियों को चुनौती पूर्ण होना चाहिए।"

(Homework should be challenging to the students)

गैंड एवं शर्मा —"शैक्षिक एवं नैतिक दोनों ही दृष्टियों से गृह-कार्य का बहुत महत्व है।"1

डा एस एस माथुर—"गृहकार्य को विद्यालय शिक्षण में बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। गृह-कार्य बालक अपने पाठ का पुनरावलोकन कर लेते हैं, उसे अच्छी तरह याद कर लेते हैं और इस प्रकार यह ज्ञान जो उन्होंने विद्यालय में अर्जित किया है संगठित रूप से उसके मस्तिष्क मे संचित हो जाता है।"2

उपरोक्त कथनो से गृह कार्य अथवा दत्त-कार्य की उपयोगिता प्रकट होती है तथा उसकी आधुनिक संकल्पना भी।

किन्तु कुछ शिक्षाविद् दत्त-कार्य के विरोधी भी है। जैसे 'ब्रे' (Bray) का कथन है—"विद्यालय मे लम्बे अर्से तक कार्य के उपरान्त विद्यार्थियो को गृह-कार्य देना उचित नहीं है, इससे लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है केवल सम्भवतः परीक्षा मे सफलता की दृष्टि को छोड़कर।'

(Under normal Condition, a reasonable days work for a child has been done at the close of the afternoon session and home-work as it is generarlly organised does more harm than good as rule except perhaps from the point of view of examination Success)

उपरोक्त मत दत्त कार्य की परम्परा अवधारणाओ के कारण है, नवीन संकल्प के कारण नही। जैसा कि किशन चन्द जैन ने कहा है— "गृह कार्य के उपरो लाभ और हानियो को दृष्टि मे रखते हुए यह कहा जा सकता है कि व्यवहारि जीवन में कुछ गृह-कार्य अपरिहार्य है। आवश्यकता इस बात की है कि उसे इस प्रका संतुलित किया जाये कि उसको हानियाँ कम अथवा समाप्त हो जाय और विद्यार्थि को वह लाभदायक सिद्ध हो।'3

1 गैंड एवं शर्मा शैक्षिक एवं माध्यमिक विद्यालय व्यवस्था पेज/36
2 डा एस एस माथुर विद्यालय संगठन एवं स्वास्थ्य-शिक्षा पेज/112-11
3 किशन चन्द जैन। शैक्षिक संगठन, प्रशासन एवं संगठन पेज/79

दत्त अथवा गृह-कार्य के उद्देश्य, आवश्यकता एव महत्व

निम्नांकित बिन्दुओं से स्पष्ट होते हैं—

(1) गृह काय कक्षा कार्य का पूरा पूरक होता है क्योंकि वह कक्षा मे अर्जित ज्ञान का पृष्ठ-पोषण (Reinforce) करता है।

(2) यह पठित विषय-वस्तु की पुनरावृत्ति (Revision) द्वारा हृदयंगम करने म सहायक होता है। अर्जित ज्ञान स्थायी होता है।

(3) यह विद्यार्थियो को 'करके सीखने' (Learning by doing) के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त द्वारा अधिगम मे सहायक होता है।

(4) यह विद्यार्थियो मे स्वतन्त्र रूप से स्वाध्याय करने की आदत का विकास करता है

(5) यह विद्यार्थियों की विचार, तर्क कल्पना, स्मरण व चिन्तन करने की शक्तियो का विकास करता है।

(6) यह पाठ्यपुस्तक के अतिरिक्त अन्य पुस्तको व सन्दर्भ ग्रन्थो के अध्ययन का अवसर देता है।

(7) यह छात्रो मे नियमित रूप से कार्य करने की प्रेरणा देता है।

(8) गृह-काय म छात्रो का अपनी रुचि के विषयो के अध्ययन द्वारा सृजनात्मक आनन्द देता है।

(9) यह छात्रो को अपनी गति एव योग्यता के अनुरूप काय करने मे सहायक होता है।

(10) इससे छात्रो म आत्मनिर्भरता एव आत्मविश्वास की भावना विकसित होती है।

(11) गृह कार्य से अभिभावको को छात्रो की प्रगति से अवगत होने का अवसर मिलता है।

(12) गृह काय की मात्रा व गुणवत्ता के आधार पर शिक्षक को भी अपने शिक्षण काय हेतु पृष्ठ पोषण (Feed back) मिलता है और उसमे सुधार हेतु प्रेरणा मिलती है

(13) गृह-काय विद्यार्थियों की कमजोरियों के निदान (Diagnosis) मे सहायक होकर शिक्षक को उपचारात्मक शिक्षण (Remedial teaching) की योजना बनाने की दिशा देता है।

गृह-कार्य के प्रकार :

गृह-काय के निम्नांकित प्रमुख प्रकार हो सकते हैं —

(1) लिखित काय — प्राय विद्यार्थियो का गृह-काय हेतु लिखित कार्य ही दिया जाता है जिसमे निर्धारित प्रश्नो के उत्तर, व्याख्या, साराश, पत्र, निबन्ध, कुछ विचार प्रेरक प्रश्नो के मौलिक ढग से उत्तर लिखने को कहा जाता है।

(2) स्वाध्याय कार्य अथवा मौखिक कार्य — कक्षा में पठित पाठ से सम्बन्धित

पाठ्यपुस्तक के अतिरिक्त पुस्तक, समाचार पत्र, सन्दर्भ ग्रन्थ आदि के स्वाध्याय हेतु कहा जाता है अथवा कोई याद करने हेतु काय दिया जाता है जिसे मौखिक रूप से पुनर्स्मरण कर सुनाना होता है जैसे गणित व विज्ञान के सूत्र, पद्य, ऐतिहासिक घटनाएँ व तिथियाँ आदि ।

(3) प्रायोगिक काय (Practical work)– विज्ञान, उद्योग, कार्यानुभव, समाजोपयोगी उत्पादन काय, मानचित्र, रेखाचित्र, मॉडल, समय रेखा, आदि से सम्बन्धित कोई प्रायोगिक काय जो घर पर किया जा सके, गृह काय हेतु दिया जाता है ।

उपरोक्त गृह–काय के प्रकारों का अपना महत्व एव प्रयोजन होता है । विषय व प्रकरण की प्रवृत्ति तथा उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए इन सभी प्रकारों का यथावश्यक प्रयोग किया जा सकता है तथा गृह–काय मे विविधता लाकर उसे रोचक व चुनौतीपूर्ण बनाया जा सकता है ।

गृह-कार्य के सिद्धात : निम्नांकित हैं —

(1) गृह काय को विद्यार्थियों के लिए भार स्वरूप न बनाकर उसे रोचक तथा उसके मनोरंजन के काय मे हस्तक्षेप न करने वाला बनाना चाहिए । उसकी मात्र निश्चित हो ।

(2) गृह–कार्य एक सुनियोजित समय विभाग–चक्र के अनुसार दिया जाना चाहिए ताकि प्रतिदिन का समस्त विषयो मे दिया गया काय अधिकतम 2 घण्टे का हो ।

(3) उसे इस रूप मे दिया जाये कि छात्र उसे स्वय कर सके तथा अन्य किसी की सहायता न ले अथवा पुस्तक की नकल न करे ।

(4) वह छात्रा की तर्क एवं चिन्तन शक्ति के विकास मे सहायक हो सके ।

(5) छात्रो के गृह–काय का शिक्षक द्वारा नियमित सशोधन हो व छात्रो द्वारा उसका अनुवद्ध न हो ।

(6) गृह काय मे छात्रो की व्यक्तिगत विभिन्नताओ का ध्यान रखा जाये ।

(7) वह छात्रो में स्वाध्याय की आदत का विकास करे ।

(8) गृह काय मे अभिभावको का सहयोग छात्रो को साधन–सुविधा देने में लिया जाये ।

(9) वह कक्षा कार्य के पूरक या पुनर्बलन (Reinforcement) का कार्य करे ।

(10) उसके आधार पर छात्रो की कमजोरियो का निदान हो सके व शिक्षक द्वारा उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था हो ।

गृह-कार्य सम्बन्धी समस्यायें और उनका निराकरण

गृह-कार्य सम्बन्धी समस्याओं को मुख्यत निम्नांकित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है —

(1) गृह-कार्य की मात्रा का नियमन — प्राय देखा जाता है कि छात्र को प्रतिदिन प्रत्येक विषय के अध्यापक द्वारा गृह-कार्य दे दिया जाता है जो छात्र की योग्यता, क्षमता एव समय की उपलब्धता की दृष्टि से अव्यवहार्य सिद्ध होता है। गृह-कार्य की मात्रा अनियन्त्रित व अनियोजित होती है। फलत छात्र या तो गृह-कार्य को अपने अभिभावकों की सहायता से अथवा दूसरों की नकल कर पूरा करते हैं अथवा उसे पूरा न करने की दिशा में दण्ड से बचने हेतु स्कूल या कक्षा में नहीं जाते। इससे गृह कार्य का प्रयोजन सिद्ध न होकर वह छात्रों के लिए हानिकारक बन जाता है।

अत इस समस्या के निराकरण हेतु कक्षा को पढाने वाले सभी विषयों के अध्यापकों को प्रधानाध्यापक के निर्देशन में सत्र के प्रारम्भ में ही एक सुनियोजित गृह कार्य हेतु साप्ताहिक समय विभाग-चक्र बना लेना चाहिए जिसकी प्रतियाँ प्रत्येक अध्यापक की डायरी में तथा कक्षा-कक्ष के प्रदर्शन पट्ट पर होनी चाहिए। इससे शिक्षक तथा शिक्षार्थी गृह-कार्य को एक सुनियोजित मात्रा में प्रतिदिन क्रियान्वित कर सकेंगे।

(2) गृह कार्य का संशोधन — प्राय सभी विद्यालयों में संतोषजनक विधि से नहीं किया जा रहा है। इसके अनेक कारण हैं— कक्षा में छात्र संख्या अधिक होना, शिक्षकों को गृह कार्य के संशोधन हेतु रिक्त कालांश न मिलना, अध्यापकों का अभाव होना, शिक्षक द्वारा संशोधन कार्य न केवल हस्ताक्षर कर औपचारिकता निभाना प्रधानाध्यापक का शिथिल परिवीक्षण शिक्षक अभिभावक सहयोग का अभाव आदि। अत गृह कार्य की उचित मात्रा निर्धारित की जाये, शिक्षकों उसके संशोधन हेतु पर्याप्त रिक्त कालांश दिये जावे प्रधानाध्यापक द्वारा गृह-कार्य का उचित परिवीक्षण से तथा अभिभावक का इस कार्य में सहयोग लिया जाये। इनके अतिरिक्त संशोधन की नवीन विधियाँ अपनाई जायें।

(3) गृह कार्य का अनुवर्तन — (Follow-up) भी प्राय देखने को कम मिलता है। गृह-कार्य के संशोधन के आधार पर छात्रों की त्रुटियों का उनके द्वारा शुद्ध रूप में प्रयोग कराया जाये तथा उनकी कमियों के निदान (Diagnosis) द्वारा उनके उपचारात्मक शिक्षण (Remedial Teaching) की व्यवस्था की जावे। गृह कार्य

का अनुवर्तन उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होता है। इसकी उपेक्षा करने से उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है।

इसके अतिरिक्त गृह-कार्य से सम्बन्धित अन्य गौण समस्याएँ भी हैं जैसे गृह-कार्य मे छात्रों द्वारा नकल करना, गृह-कार्य न करने पर कक्षा से भाग जाना, शिक्षकों द्वारा संशोधन कार्य की उपेक्षा करना, घर की परिस्थितियाँ गृह-कार्य के अनुकूल न होना आदि। इन समस्याओं का निराकरण पूर्व मे दिये गये सुझावों के आधार पर किया जा सकता है।

गृह कार्य का समय-विभाग-चक्र— आगे अध्याय सं 11 'समय विभाग-चक्र' के अन्तर्गत दिया गया है।

उपसंहार -

प्रवेश एवं गृह-कार्य सम्बन्धी माध्यमिक विद्यालयों की समस्याओं के निराकरण में अध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। वह प्रधानाध्यापक द्वारा आवंटित कार्य को कर्तव्यनिष्ठता एवं कुशलता से सम्पन्न कर सकता है तथा अपनी सूझ-बूझ एवं पहल शक्ति द्वारा इन समस्याओं के हल खोजने में प्रधानाध्यापक की सहायता कर सकता है। अभिभावकों एवं विद्यार्थियों से निरन्तर सम्पर्क साध कर तथा उनकी समस्याओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार अपनाकर वह उनका सहयोग प्राप्त करने मे सफल हो सकता है। बड़ी कक्षाओं मे गृह-कार्य के संशोधन की प्रभावी विधियों की खोज, प्रयोग व प्रायोजनाओं के आधार पर शिक्षकों द्वारा की जा सकती।

मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघुत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 माध्यमिक विद्यालयों मे प्रवेश सम्बन्धी किन्ही पांच समस्याओं व उनके समाधान का उल्लेख कीजिये।

2 प्राथमिक स्तर पर छात्र प्रवेश हेतु नामांकन अभियान से क्या तात्पर्य है? शिक्षक इसमें अपना योगदान किस प्रकार दे सकता है?

3 माध्यमिक स्तर पर प्रवेश सम्बन्धी कौन सी सावधानियाँ रखना आवश्यक है। संक्षेप में लिखिये।

4 गृह-कार्य देने के किन्ही पांच उद्देश्यों का वर्णन कीजिये।

5 गृह कार्य देने हेतु माध्यमिक विद्यालय की किसी एक कक्षा का साप्ताहिक समय-विभाग-चक्र बनाइये ।

6 गृह-कार्य के प्रभावी संशोधन हेतु कोई पांच सुझाव दीजिए ।

7 "शैक्षिक एवं नैतिक दोनों ही दृष्टियों से गृहकार्य का बहुत महत्व है ।" गैड एवं समर्स उपरोक्त कथन का औचित्य स्पष्ट कीजिए ।

(द) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1 निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये —

गृह-कार्य अथवा गृह-कार्य योजना का महत्व (बी एड, 1985, शिक्षा शास्त्री 1984)

2 राजस्थान में विद्यार्थियों के प्रवेश सम्बन्धी विभागीय नियमों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए ।

3 माध्यमिक विद्यालयों में प्रवेश सम्बन्धी कौन सी समस्याएँ होती हैं? इनके निराकरण के क्या उपाय हैं ?

अध्याय १०	# शैक्षिक परीक्षण एव प्रोन्नति (Academic Testing and Promotion)

[विषय-प्रवेश (क) शैक्षिक परीक्षण का अर्थ एव आधुनिक सप्रत्यय, शैक्षिक परीक्षण का नियोजन एव क्रियान्वयन, शैक्षिक परीक्षण सम्बन्धी समस्याएँ एव उनका निराकरण (ख) प्रोन्नति का अर्थ एव उद्देश्य, प्रोन्नति के सिद्धान्त, - प्रोन्नति के प्रकार, प्रोन्नति सम्बन्धी समस्याएँ एव उनका निराकरण, प्रोन्नति सम्बन्धी विभागीय नियम, उपसहार, मूल्यांकन]

विषय-प्रवेश —

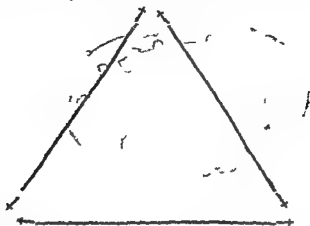
माध्यमिक विद्यालयो की प्रमुख समस्याओं में से दो समस्याओं — प्रवेश एवं गृह-कार्य का विवेचन गत अध्याय मे किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय मे अन्य दो प्रमुख समस्याओं– शैक्षिक परीक्षण तथा प्रोन्नति का अध्ययन करेंगे। यद्यपि मूल्यांकन की आधुनिक अवधारणा के अनुसार राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान (S I E R T)उदयपुर की मूल्यांकन एकक (Evaluation unit)तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एव प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) दिल्ली के निर्देशन मे राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा शैक्षिक परीक्षण को एक नई दिशा दी है तथापि अभी भी अधिकांश माध्यमिक विद्यालयो म परम्परागत परीक्षा की अवधारणा के अनुसार शैक्षिक परीक्षण उद्देश्यनिष्ठ एव वस्तुनिष्ठ नही हो पाया है। फलत प्रोन्नति की प्रक्रिया भी निष्पक्ष एव प्रभावी सिद्ध नही हो पा रही है। अत इन दो समस्याओ के सही बोध एव उनके निराकरण के उपायो से शिक्षकों का अवगत होना वाछनीय है।

शैक्षिक परीक्षण का अर्थ एव आधुनिक सप्रत्यय

शैक्षिक परीक्षण(Academic Testing) का आधुनिक संप्रत्यय नवीन मूल्यांकन प्रणाली के स्वरूप मे निहित है। मूल्यांकन की नवीन अवधारणा के अनुसार अब उद्देश्यों, शिक्षाजन्य अनुभवो तथा मूल्यांकन तकनीक मे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया है।

डा ब्लूम(Bloom) ने इस सम्बन्ध को निम्नांकित त्रिभुज के द्वारा स्पष्ट किया है।[1]

शैक्षिक उद्देश्य (Educational Objectives)



शिक्षण स्थितियाँ तथा ज्ञानार्जन अनुभव (Teaching Situations of Learning Experiences)

मूल्यांकन तकनीक (Evaluation Tachniques)

उपरोक्त रेखाचित्र मे प्रदर्शित तीन चिह्न से उद्देश्य, ज्ञानार्जन, अनुभव तथा मूल्यांकन की परस्पर अन्तर्निर्भरता तथा सहसम्बन्ध भली भांति स्पष्ट हो जाता है। ये परस्पर एक-दूसरे का निर्धारण भी करते हैं तथा एक-दूसरे से प्रभावित हो परस्पर शोधन, परिवर्तन तथा परिवर्द्धन भी करते रहते हैं। वस्तुत परीक्षा अथवा मूल्यांकन व एक अच्छे शिक्षा-कार्यक्रम का अभिन्न अंग बन गया है। इसके कारण बाह्य परीक्षाओं के साथ आन्तरिक मूल्यांकन (Internal Assessment) को भी अक भार देकर उसका महत्व स्वीकार कर लिया गया है। आंतरिक मूल्यांकन के अन्तर्गत सावधिक-जाँच तथा विषयगत विद्यार्थी का व्यक्तिगत काय तथा उसके लेखेजोखे को अक भार देकर तथा उसे बाह्य परीक्षा के अकों मे जोडकर सफलता एव असफलता का निर्धारण किया जाने लगा है। इससे परम्परागत बाह्य परीक्षा का प्रमुख कम हो गया है तथा सावधिक जाच द्वारा सत्रपर्यन्त विद्यार्थी द्वारा की गई प्रगति को भी मूल्यांकन मे समाविष्ट कर लिया गया है। यद्यपि इस नवीन अवधारणा के अनुसार मूल्यांकन की इस प्रणाली का सवत्र समान रूप से प्रचलन अभी प्रारम्भ नहीं हुआ है किन्तु इस दिशा मे काम आरम्भ हो चुका है।

मूल्यांकन के नवीन संप्रत्यय के अनुसार अब विषयगत उद्देश्य एव व्यवहारगत परिवर्तन निश्चित कर तदनुकूल शिक्षण एव ज्ञानार्जन की स्थितियों की योजना एव उसका क्रियान्वयन किया जाता है। तत्पश्चात् निर्धारित उद्देश्यों की उपलब्धि की जांच

1 ब्लूम बी एस इवेलुयेशन इन सकेण्डरी स्कूल्स, पेज/8

हेतु मूल्यांकन के लिए प्रश्नों का निर्माण किया जाता है। मूल्यांकन से प्राप्त परिणामों का विश्लेषण कर यह पता लगाया जाता है कि छात्रों की उपलब्धि में उद्देश्य, ज्ञानार्जन अनुभव एवं मूल्यांकन की त्रिकोणीय प्रक्रिया में कहां और कितनी कमी रह गई है तथा उसके आधार पर तदनुकूल परिवर्तन कर शिक्षण को और प्रभावी बनाने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार परीक्षा का परम्परागत उद्देश्य विद्यार्थियों का उत्तीर्ण और अनुत्तीर्ण घोषित करना मात्र अब रह नहीं गया है। इसके स्थान पर अब यह माना जाने लगा है कि परीक्षा विद्यार्थियों अध्यापकों प्रधानाध्यापकों तथा अभिभावकों के निर्देशन हेतु उपयोगी सूचना प्रदान करती है तथा यह विद्यार्थियों की प्रगति के माप के माध्यम से अध्यापकों द्वारा प्रस्तुत शिक्षण कार्य क्रम का भी मूल्यांकन कर सकती है।2

निबन्धात्मक परीक्षा के दोषों को दूर करने तथा उसमें निहित आत्मपरकता से उत्पन्न कमियों के निराकरण हेतु मूल्यांकन की नवीन अवधारणा एवं स्वरूप में अब काफी परिवर्तन आ गया है। राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के तत्वावधान में प्रकाशित "इतिहास की हायर सैकण्ड्री कक्षाओं के निमित्त प्रश्न-पत्र" नामक पुस्तिका में मूल्यांकन के नवीन स्वरूप की निम्नांकित विशेषताएँ स्पष्ट की है।3

(1) प्रश्न-पत्र में निर्धारित उद्देश्य तथा पाठ्यक्रम के सम्पूर्ण अंशों के आधार पर प्रश्न निर्मित किये जायें।

(2 प्रश्नों की संरचना सरल एवं सुबोध हो जिससे छात्र को अपेक्षित उत्तर के विषय में पूर्ण स्पष्टता हो।

(3) निबन्धात्मक प्रश्नों के स्थान पर अधिक संख्या में वस्तुनिष्ठ एवं लघुत्तरात्मक प्रकार के प्रश्न (Objective and Short Answer type) पूछे जाएँ जिससे कि सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को उनमें समाविष्ट किया जा सके। इससे विद्यार्थियों में पाठ्यक्रम में कुछ चुने हुए प्रकरणों को रटने की दुष्प्रवृत्ति समाप्त होगी। अभिव्यक्ति की दृष्टि से निबन्धात्मक प्रश्नों की भी आवश्यकता होती है किन्तु उनकी संख्या कम हो।

(4) प्रश्न पत्र में 'किन्हीं 5 प्रश्नों के उत्तर लिखिये' जैसे विकल्प न दिये जाएं उसके स्थान पर प्रश्न के अन्तर्गत ही विकल्प दिया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों में चुने हुए अंशों को रटने की प्रवृत्ति कम हो सके।

2 शर्मा पी डी इम्प्रूविंग एक्जामिनेशन्स (एन सी ई आर टी, न्यू देहली) पृष्ठ 3

3 बोर्ड ऑफ सैकण्ड्री एज्यूकेशन, राजस्थान, अजमेर - सैम्पल क्वेश्चन पेपर फॉर हायर सैकण्ड्री एक्जामिनेशन पृष्ठ 3।

(5) प्रश्न-पत्र की उत्तर-तालिका एव अंक विभाजन योजना परीक्षको के निर्देश हेतु बनाया जाना अपेक्षित है जिससे कि परीक्षण मे वस्तुनिष्ठता एव एकरूपता आ सके।

(6) कुछ प्रश्न कक्षा स्तर के अनुकूल ऐसे अवश्य दिये जाएँ जो विद्यार्थियो में समीक्षात्मक कुशलता को विकसित कर सके।

(7) प्रश्नो की भाषा एव निर्देश सरल, स्पष्ट तथा विशिष्ट हो जो उत्तरो के क्षेत्र एव परिणाम परिसीमित कर सकें जिससे कि छात्रो मे आत्मपरकता कम हो।

नवीन मूल्याकन प्रणाली की कसौटी निम्नाकित तीन विशेषताएँ होनी चाहिए।[4]

(1) वैधता (Validity) — मूल्यांकन तब ही वैध माना जा सकता है जबकि वह उन उद्देश्यो की उपलब्धि का मापन करे जिनका मापन करना वाछनीय है। प्रश्न-पत्र मे प्रत्येक प्रश्न किसी न किसी पूव निर्धारित उद्देश्य पर आधारित होना चाहिए तथा विभिन्न प्रश्न विभिन्न निर्धारित उद्देश्यो पर आधारित होगे। इस प्रकार प्रश्न-पत्र उन समस्त वाछनीय उद्देश्यों की उपलब्धि का मापन करेगा जो अध्यापक ने शिक्षण के पूव निर्धारित किये थे तथा जिनकी पूर्ति हेतु उसने अपने शिक्षण के माध्यम से प्रयास किया था।

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली मे वैधता की सर्वाधिक उपेक्षा की जाती है। उदाहरण के लिए इतिहास मे पानीपत के तृतीय युद्ध-प्रकरण के लिए यदि हम अवरोध उद्देश्य पर प्रश्न बनाना चाहते हैं तो यह पूछने की अपेक्षा कि "पानीपत के तृतीय युद्ध मे मराठो की पराजय के क्या कारण थे ? यह प्रश्न पूछना कि "मराठों को विजय प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए था ?' अधिक साधक होगा। पहला प्रश्न कक्षा मे बतलाये गये कारणो की आवृत्ति मात्र होकर रटने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करेगा, जबकि दूसरा प्रश्न विद्यार्थियो को नवीन परिस्थितियो मे उनकी समीक्षात्मक बुद्धि को प्रेरित करेगा। इस प्रकार वाछित उद्देश्य की उपलब्धि की जाच करना प्रत्येक प्रश्न की वैधता के लिए आवश्यक तत्व है।

(2) विश्वसनीयता (Reliability) —विश्वसनीयता से तात्पर्य मूल्यांकन द्वारा मापन की एकरूपता है। एक विश्वसनीयता प्रश्न के उत्तर पर विभिन्न समय मे अथवा विभिन्न परीक्षको द्वारा एक जसे अक प्राप्त होगे। उनमें किसी प्रकार के परिवर्तन की सम्भावना नही होगी। उदाहरण के लिए इतिहास के प्रश्न-पत्र मे निम्नाकित दो प्रश्न अकबर के शासन पर प्रबन्ध हैं —

(अ) अकबर के शासन प्रबन्ध का वर्णन करो।

4 शर्मा, पी डी इम्प्रूविंग एक्जामिनेशन्स, पृष्ठ 9।

(ब) अकबर ने भूमि प्रबन्ध तथा सैनिक संगठन के क्षेत्र में शेरशाह की व्यवस्था में क्या सुधार किए ? (उत्तर 10 पंक्तियों मे अपेक्षित है) पहला प्रश्न अस्पष्ट एवं अपरिसीमित है। अत उसके उत्तरो पर विभिन्न समय अथवा विभिन्न परीक्षको द्वारा प्रदान किए गये अको मे आत्मपरक तत्व के कारण विभिन्नता आना स्वाभाविक है और उसकी विश्वसनीयता संदिग्ध है। दूसरा प्रश्न स्पष्ट, विशिष्ट एव परिसीमित है । अत उसके उत्तर पर प्राप्त अंको मे एकरूपता आना निश्चित है। दूसरे शब्दो म यह प्रश्न विश्वसनीय कहा जा सकता है। परम्परागत परीक्षा प्रणाली का प्रमुख दोष उसकी आत्मपरकता रहा है जिसे नवीन मूल्यांकन प्रणाली में विश्वसनीयता लाकर ही दूर किया जा सकता है।

विश्वसनीयता निम्नांकित घटको(Factors) पर आधारित होती है। जिनका ध्यान प्रश्न-पत्र निमाता को सदैव रखना चाहिए—

(क) प्रश्न-पत्र की लम्बाई — छोटे प्रश्न-पत्र की अपेक्षा लम्बा प्रश्न-पत्र अधिक विश्वसनीय होता है। इसका कारण यह है कि लम्बे प्रश्न-पत्र मे अधिक प्रश्नों को समाहित कर विद्यार्थियो के पाठ्यक्रम सम्बन्धी अधिकाधिक ज्ञान का मापन किया जा सकता है। किन्तु समय की सीमा के अन्तर्गत प्रश्नो की सख्या बहुत अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। इनके लिए वस्तुनिष्ठ तथा लघुउत्तरात्मक प्रश्न निबन्धात्मक प्रश्नो की अपेक्षा उपयुक्त रहते हैं।

(ख) पुरीक्षांकन (Scoring) की वस्तुनिष्ठता — विश्वसनीयता परिणाम प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उत्तरो का परीक्षांकन भी वस्तुनिष्ठ किया जाए। इसके लिए प्रश्नो की स्पष्टता, बोधगम्यता तथा विशिष्टता वांछनीय है जिससे कि प्रत्येक प्रश्न का एकनिश्चित उत्तर ही प्रत्येक समय अथवा प्रत्येक परीक्षक के लिए अपेक्षित हो सके। परीक्षण के पूर्व प्रश्न-पत्र की उत्तर-तालिका एव अक विभाजन योजना इसम सहायक होती है।

(ग) निर्देशो की स्पष्टता — विश्वसनीयता के लिए तीसरा घटक प्रश्न-पत्र म विद्यार्थियो तथा परीक्षको के निमित उत्तर-सीमा, अक विभाजन, प्रश्न-पत्र के विभाग एव निर्धारित समय-सीमा आदि का विस्तृत उल्लेख करना है। यह वस्तुनिष्ठता ग्राह्यता एव प्रश्न पत्र के विद्यार्थियो के समक्ष सफल प्रस्तुतीकरण के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(3) व्यावहारिकता (Practicability) — नवीन मूल्यांकन की तीसरी विशेष व्यवहारिक दृष्टि से उसकी उपयोगिता एव औचित्य है। उपरोक्त विशेषताओं के होते हुए भी यदि प्रश्न-पत्र समय, साधन, एव परीक्षण की दृष्टि से अनुकूल नहीं है तो वह

उपयोगी नहीं कहा जा सकता। उसकी उपयोगिता तब ही सम्भव हो सकती है जबकि उसका निर्माण उसके विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुतीकरण, क्रियाविति, परीक्षाकन परिणामो के वर्गीकरण एव व्याख्या की दृष्टि से सरल एव सुबोध हो। इसके लिए प्रश्न पत्र निर्माता को शाला-समय मे परीक्षा हेतु उपलब्ध समयावधि को दृष्टि मे रखते हुए उपलब्ध समयावधि को दृष्टि मे रखते हुए ऐसे प्रश्नो का निर्माण करना चाहिए जिनके हल करने मे अपेक्षाकृत कम समय लगे किन्तु जिनका स्तर अन्य अपेक्षित विशेषताओं के आधार पर उच्च बना रहे।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मूल्याकन या शैक्षिक परीक्षण के नवीन सप्रत्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह परम्परागत परीक्षा-पद्धति के दोषो एव कमियो का उचित निराकरण कर मूल्याकन को व्यापक एव उपयोगी बना सके।

शैक्षिक परीक्षण का नियोजन एव क्रियान्वयन

Planning and Execution of Academic Testing)

(क) शैक्षिक परीक्षण का नियोजन (Planning) इस हेतु निम्नाकित तथ्यों एव सोपानो से अवगत होना वाछनीय है —

शैक्षिक परीक्षण के उपकरण (Tools) मूल्यांकन के स्वरूप की उपरोक्त विशेषताओं के अनुरूप मूल्याकन प्रश्नो के प्राय निम्नाकित तीन रूप प्रयुक्त होते हैं।

(1) निबन्धात्मक प्रश्न—इस प्रकार के प्रश्न विद्यार्थियो की निम्नलिखित योग्यताओं की जाच हेतु विशेष उपयोगी रहते हैं —

(क) जटिल विषय-वस्तु अथवा तथ्यो को समझकर व्यवस्थित करना,
(ख) समीक्षात्मक विवेचन करना,
(ग) कलात्मक योग्यता,
(घ) प्रभावी अभिव्यक्ति।

परम्परागत निबन्धात्मक प्रश्नो के दोषो के निराकरण हेतु यह आवश्यक है कि इन प्रश्नों को अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ बनाया जाय इसके लिए उत्तर की अधिकतम सीमा का निर्धारण तथा विवेचनीय विशिष्ट बिन्दुओ का दिया जाना अपेक्षित है। इस प्रकार के प्रश्नों मे अस्पष्टता तथा अनिश्चितता का नितांत अभाव होना चाहिए।

(2) लघूत्तरात्मक प्रश्न-इन प्रश्नों के उत्तरो की सीमा 50शब्दो तक निर्धारित होती है जो एक पराग्राफ के अन्तर्गत लिखे जा सके। ऐसे प्रश्न किसी प्रकरण के विभिन्न बिन्दुओ के मूल्याकन के लिए उपयुक्त रहते हैं। इनकी सहायता से पाठ्यक्रम का अधिकांश प्रश्न-पत्र में समाहित किया जा सकता है।

(3) वस्तुनिष्ठ प्रश्न— उपरोक्त दोनो के प्रश्नो की अपेक्षा वस्तुनिष्ठ प्रश्न परीक्षांकन की दृष्टि से पूर्णतया वस्तुनिष्ठ होते हैं तथा इनके द्वारा सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को प्रश्न पत्र मे समाहित किया जाना सम्भव हो जाता है। इनके प्रमुख रूप निम्नांकित है

(क) 'सत्य/असत्य' अथवा 'हां/ना' प्रकार के प्रश्न,— कुछ कथन दिये जाकर उनकी सत्यता अथवा असत्यता को चिह्न द्वारा विद्यार्थी प्रकट कर सकते हैं।

(ख) बहु विकल्पी (Multiple Choice) प्रश्न— इस प्रकार के प्रश्न म एक कथन प्रश्न अथवा वाक्य के रूप मे होता है जिसकी पूर्ति प्राय पांच विकल्पों म से किसी एक सही विकल्प के द्वारा की जाती है। परीक्षार्थी यह पूर्ति आगे दिये गये कोष्ठक मे सही विकल्प का अक्षर लिख कर करता है। यह रूप वस्तुनिष्ठ प्रश्नो म सर्वोत्तम माना जाता है क्योंकि इसमे विकल्पा द्वारा अनुमान लगाने का निराकरण हो जाता है।

(ग) रिक्त स्थान की पूर्ति — इस प्रकार के प्रश्नो मे किसी वाक्य मे दिये गये रिक्त स्थान की पूर्ति करना होता है।

(घ) युग्माधारित (Matching Type) प्रश्न — प्रश्नों का यह प्रकार बहु-विकल्पी प्रश्न के सिद्धान्त पर आधारित है किन्तु एक भिन्न रूप में प्रस्तुत किया जाता है जैसे 3 स्तम्भों (Columns) मे पहले स्तम्भ मे कुछ घटनाओं की सूची दी जाती है तथा दूसरे स्तम्भ मे दी गई तिथियो की सूची मे से सही तिथि को चुनकर तीसरे स्तम्भ मे लिखी जाती है।

उपरोक्त लिखित परीक्षा के अतिरिक्त विद्यार्थियों का मूल्यांकन मौखिक परीक्षा तथा आन्तरिक मूल्यांकन से भी परिपुष्ट किया जाता है।

नवीन विधि के प्रश्न-पत्र निर्माण के सिद्धांत एव सोपान

विद्यार्थियों के विषयगत अकादमिक सप्राप्ति (Academic achievements) के प्रभावी मूल्यांकन हेतु प्रश्न पत्र निर्माता को निम्नांकित सिद्धान्तो के आधार पर प्रश्न पत्र की पूर्व योजना (Plan) बना लेनी चाहिए 5

(क) रूपरेखा (Disigen) का निर्माण—

प्रश्न-पत्र के निर्माण, उसके उत्तर देने तथा परीक्षांकन करने मे आत्मपरकता के निवारण तथा सम्पूर्ण पाठ्यक्रम एव निर्धारित उद्देश्यो को समाहित करने की दृष्टि से उसकी रूपरेखा बना लेना आवश्यक होता है। मूल्यांकन एक अनवरत प्रक्रिया है। सा

6 बोर्ड ऑफ सकण्ड्री एज्यूकेशन, राजस्थान, अजमेर सैंपिल क्वेश्चन पेपर इन हिन्दी (एन सी ई आर टी —न्यू देहली) पृष्ठ 17।

मे शिक्षण की विभिन्न अवधि के अन्त में मूल्यांकन हेतु विभिन्न प्रकार के प्रश्न पत्रों की रूपरेखा बनाई जानी चाहिए जैसे प्रत्येक पाठ के अन्त मे लघु मूल्यांकन, प्रत्येक विषयगत इकाई (Unit) के अन्त मे इकाई जाच पत्र तथा अर्द्ध-वार्षिक परीक्षा हेतु सम्पूर्ण प्रश्न-पत्र। रूपरेखा के निर्माण म निम्नांकित पक्षो का ध्यान रखना चाहिए —

(1) उद्देश्यो का अक भार (Weightage) पूर्व-निर्धारित विषयगत उद्देश्यो में से उन उद्देश्यो का चुनाव किया जाना चाहिए जिनका कि मूल्यांकन करना वाछनीय है। इस प्रकार चुने हुए उद्देश्यो के प्रश्न-पत्र के निमाण मे अक भार निश्चित किये जाने चाहिए। अक-भार निश्चित करते समय इन उद्देश्यो के विशिष्ट व्यवहारगत परिवर्तनो को ध्यान में रखना आवश्यक है। ऐसा करने से विद्यार्थियो मे रटने की प्रवृत्ति कम होगी तथा निर्धारित उद्देश्यो की उपलब्धि की जाच भी सम्भव हो सकेगी।

(2) पाठ्य-वस्तु का अक-भार — उद्देश्यो के अकभार के साथ ही उनसे सम्बन्ध पाठ्य-वस्तु के विभिन्न प्रकरणो अथवा इकाइयो का अकभार निश्चित करना अपेक्षित है। पाठ्य वस्तु के ये विभिन्न अश शिक्षण एव ज्ञानाजन की उन विभिन्न स्थितियो के द्योतक है जिनका कि निर्माण अध्यापक ने कक्षा-कक्ष मे पढाते समय किया है। इसके लिए प्रश्न-पत्र निर्माता को इतिहास के उस पाठ्यक्रम का विश्लेषण कर प्रत्येक प्रकरण का अकभार निश्चित करना होता है जिनका कि मूल्यांकन करना वाछनीय है।

(3) विभिन्न प्रश्न रूपो का अकभार (Forms of Questions) — प्रत्येक प्रकरण तथा उद्देश्य की जाच हेतु उसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त प्रश्न के प्रकार को प्राथमिकता देकर उसका अक भार निश्चित करना चाहिए। मूल्यांकन हेतु प्रश्नो के अनेक रूप होते है जैसे वस्तुनिष्ठ, लघुत्तरात्मक एव निबधात्मक तथा वस्तुनिष्ठ प्रकार के प्रश्नो के भी अनेक रूप हो सकते हैं जैसे बहुविकल्पी, हा ना के प्रश्न रिक्त स्थानो की पूर्ति, युग्माधारित आदि। उदाहरण के लिए कम समय मे अधिकतम पाठ्यक्रम तथा उद्देश्यो को समाहित करने के लिए वस्तुनिष्ठ प्रश्न उपयुक्त रहते है, इतिहास मे समय ज्ञान, की जाच के लिए युग्माधारित प्रश्न ठीक रहते, घटनाओ के कार्य-कारण सम्बन्धो की लघुत्तरात्मक प्रश्नों द्वारा ठीक जाच की जा सकती है तथा अभिव्यक्ति की जाच निबधात्मक प्रश्नों द्वारा ही सम्भव है।

कुछ प्रश्न रूपो के उदाहरण अधोलिखित हैं —

(अ) वस्तुनिष्ठ प्रश्न — (Objective type questions)

(1) सत्य/असत्य अथवा हा/नही के प्रश्न —

निम्नांकित कथनों के समक्ष सत्य/असत्य अथवा हाँ/ना अंकित कीजिए—
अशोक का एक शिलालेख राजस्थान में बैराठ नामक स्थान पर है।—सत्य/असत्य
फीरोज तुगलक की सांकेतिक मुद्रा चलाने की योजना विफल रही। —हाँ/नहीं

(2) रिक्त स्थानों की पूर्ति के प्रश्न—
निम्नांकित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए —
चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में नामक यूनानी राजदूत ने पाटलिपुत्र का विवरण लिखा है। (मेगस्थनीज)
हुमायूँ को शेरशाह से के युद्ध में पराजित हो भारत से भागना पड़ा (कन्नौज)

(3) बहुविकल्पी प्रश्न—
निम्नांकित कथन के सही विकल्प का क्रमाक्षर सामने दिये कोष्ठक में लिखिए—
शिवाजी के मन्त्रिमण्डल में विदेश मन्त्री का नाम था—
(क) अमात्य (ख) सुमन्त
(ग) मन्त्री (घ) सचिव (ङ) पेशवा
[ख]

(4) युग्माधारित (Matching type) प्रश्न
निम्नांकित घटनाओं के समक्ष दी गई तिथियों में से सही तिथि के अक्षर सामने दिये कोष्ठक में लिखिए —

1 कन्नौज की बौद्ध-सभा	(क) 633 ई०	[घ]
2 हर्ष का राज्यारोहण	(ख) 619 ई०	[च]
3 वल्लभी पर विजय	(ग) 647 ई०	[क]
4 ह्वेनसांग का भारत आगमन	(घ) 643 ई०	[छ]
	(च) 606 ई०	
	(छ) 630 ई०	

(ब) लघुत्तरात्मक प्रश्न—
निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर 50 शब्दों में अन्दर दीजिए —
बहमनी राज्य की उत्पत्ति कैसे हुई ?
शिवाजी की धार्मिक नीति औरंगजेब से किस प्रकार भिन्न थी और क्यों ?

(स) निबंधात्मक प्रश्न—
अकबर के शासन प्रबन्ध का विवरण निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत लिखिए (उत्तर 300 शब्दों से अधिक न हो) —
(क) प्रान्तीय शासन

(ख) भूमि-सुधार
(ग) सैनिक-संगठन

यह प्रश्न पत्र निर्माता के विवेक पर निर्भर है कि वह किस प्रकार उपयुक्त प्रश्न-रूपों का निर्धारण कर अंक-भार निश्चित करता है।

(4) विकल्प (Options) की योजना —प्रश्न-पत्र की रूप रेखा बनाते समय इस बात का भी निर्धारण कर लेना आवश्यक है कि प्रश्न-पत्र मे विद्यार्थियो को प्रश्नो के उत्तर देने मे क्या विकल्प प्रस्तुत करने है। नवीन मूल्यांकन प्रणाली मे प्रश्नो का परस्पर विकल्प देना उचित नही है। विकल्प केवल प्रश्नान्तर्गत ही देना चाहिए और वह भी ऐसे प्रश्नो के अन्तर्गत जिसके दोनो प्रश्न रूप उद्देश्य, पाठ्यवस्तु कठिनाई एवं स्तर मे अनुरूप हो।

(5) प्रश्न पत्र के अनुभाग (Sections)—वस्तुनिष्ठ प्रश्नो को प्रश्न-पत्र मे समाविष्ट करने के कारण उसका कुछ विभागो मे विभाजन आवश्यक हो जाता है। एक से प्रश्न रूपो को एक विभाग मे रखना तथा उनके लिये समुचित समय निर्धारित करना चाहिए। विभिन्न विभागो की समयावधि इसी आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए। प्राय सम्पूर्ण प्रश्न-पत्र को दो विभागो मे विभाजित किया जाता है। प्रथम विभाग म वस्तुनिष्ठ एवं अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न रखे जाते है तथा उसका समय 30 मिनट निर्धारित किया जाता है जो निश्चित अवधि के पश्चात् विद्यार्थियो से ले लिया जाता है। दूसरे विभाग मे लघुत्तरात्मक तथा निबन्धात्मक प्रश्न होते हैं तथा उसका समय ढाई घंटा निश्चित होता है।

(क) आधार-पत्रक (Blue Print) का निर्माण

उपरोक्त रूप-रेखा तैयार कर लेने के पश्चात् प्रश्न पत्र के लिये एक आधार पत्रक बनाया जाना चाहिए। आधार-पत्रक एक ऐसा अभिलेख है जो प्रत्येक प्रश्न की उपरोक्त रूपरेखा के अनुसार स्थिति प्रकट करते हुए प्रश्न-पत्र का समग्र क्रियात्मक चित्र प्रस्तुत करता है[6] यह आधार-पत्रक एक त्रिपार्श्वी रेखा चित्र (Three Dimensional Chart) होता है जो विभिन्न प्रश्नो की निम्नांकित सन्दर्भ मे स्थिति प्रकट करता है —

(1) प्रत्येक प्रश्न द्वारा जांच किया जाने वाला उद्देश्य,

---

6 बोर्ड आफ सैकण्ड्री एज्यूकेशन, राजस्थान, अजमेर यूनिट टैस्टस इन हिस्ट्री (एन सी ई आर टी — न्यू देहली) पृष्ठ 2।

(2) प्रत्येक प्रश्न द्वारा जाँच किया जाने वाला पाठय–वस्तु प्रकरण,

(3) प्रश्न का रूप जो उपरोक्त 1 तथा 2 की जांच हेतु अत्यन्त उपयुक्त है।

इसके अतिरिक्त आधार पत्रक द्वारा निम्नांकित तथ्य भी प्रकट होते हैं —

(1) प्रत्येक प्रश्न का अंकभार, तथा (2) प्रश्नान्तर्गत विकल्प की योजना। "इस आधार–पत्रक प्रश्न पत्र निर्माण की रूपरेखा पर आधारित एक विस्तृत योजना है।"7

(ख) आधार पत्रक के अनुरूप प्रश्नों का निर्माण

प्रश्न पत्र की रूपरेखा एवं आधार–पत्रक के बना लेने के पश्चात् तीसरा सोपान विभिन्न प्रश्नों का निर्माण है जो निर्धारित योजनानुसार होने चाहिए। प्रश्नों के निर्माण के लिए विषयगत उद्देश्य व तदनुरूप व्यवहारगत परिवर्तनों का ज्ञान, विषय वस्तु पर अधिकार तथा विभिन्न प्रश्न रूपों के बनाने की कुशलता आवश्यक है। अत प्रत्येक प्रश्न का निर्माण करते समय प्रश्न पत्र निर्माता को निम्नांकित तथ्य दृष्टिगत रखने चाहिए कि वह *

(1) शिक्षण के पूर्व निर्धारित विशिष्ट उद्देश्य पर आधारित है,

(2) विशिष्ट पाठय–वस्तु प्रकरण से सम्बन्धित है,

(3) अपने स्वरूप मे लिये अपेक्षित नियमों के अनुरूप है,

(4) वांछित कठिनाई स्तर का व्यक्त करता है

(5) भाषा–शैली की दृष्टि से विद्यार्थियो के लिए बोधगम्य एवं स्पष्ट है।

(ग) प्रश्न पत्र का संपादन (Editing) :—

उपरोक्त सोपानों के पश्चात प्रश्न–पत्र के निर्माता द्वारा संपादन हेतु निम्नांकित प्रक्रिया अपनानी चाहिए —

(1) प्रश्नो का व्यवस्थापन —प्रश्न पत्र के विभिन्न विभागो के अन्तर्गत प्रश्नों का विभाजन कर उन्हें कठिनाई स्तर के क्रम मे व्यवस्थित करना चाहिए। यह क्रम सरल से कठिनतर होना चाहिए।

(2) परीक्षार्थियो के लिए निर्देश — परीक्षार्थियों से प्रश्न पत्र के उत्तर के सम्बन्ध मे जो अपेक्षा की जाती है उसे सामान्य तथा विशिष्ट निर्देशों मे विभक्त कर लिखा जाना चाहिए। ये निर्देश प्रश्न–पत्र के प्रत्येक विभाग के प्रारम्भ में अंकित होने चाहिए।

7 बोर्ड आफ सैकण्ड्री एज्यूकेशन, राजस्थान, अजमेर सैम्पल क्वेश्चन पेपर इन हिस्ट्री सैकण्ड्री एक्जामिनेशन पृष्ठ 9।

(ड) क्रियान्वयन (Administration or Execution) हेतु निर्देश — प्रश्न पत्र के विभिन्न विभागो की समयावधि का निर्धारण कर देना उसके प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से उपयोगी रहता है। यह विद्यार्थियो मे अनुचित साधनो के उपयोग को रोकने मे भी सहायक होता है।

(घ) उत्तर-तालिका (Scoring Key) तथा अंकयोजना का निर्माण — वस्तु-निष्ठ प्रश्नो की उत्तर तालिका तथा लघुत्तरात्मक एव निबन्धात्मक प्रश्नो के सभावित उत्तर-सकेतो की अंक-योजना बनाई जानी चाहिए जिससे परीक्षको के काम म वस्तुनिष्ठता एव एकरूपता लाई जा सके।

(च) प्रश्नानुक्रम से प्रश्न पत्र का विश्लेषण — प्रश्न-पत्र की कमियो तथा उसके प्रभावी रूप का जानने के लिए यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण प्रश्न पत्र का प्रश्नानुक्रम स एक तालिका मे विश्लेषण कर लिया जाए। इन तालिका द्वारा प्रत्यक प्रश्न का सम्बद्ध उद्देश्य प्रकरण प्रश्न-रूप, कठिनाई स्तर समयावधि एव अंक भार स्पष्ट हो जाता है। परीक्षाकन के पश्चात् इस तालिका के आधार पर परीक्षा-परिणाम का विश्लेषण एव व्याख्या करना सरल हो जाता है। इस प्रकार मूल्याकन उद्देश्यो एव शिक्षण-पद्धति मे वांछित परिवर्तन करने मे सहायक होता है।

शिक्षण मे इकाई जाच-पत्र तथा अर्द्धवार्षिक अथवा वार्षिक परीक्षा के लिए सम्पूर्ण प्रश्न पत्रो का निर्माण करना पडता है। दोनो प्रकार के प्रश्न पत्रो के सामान्य सिद्धान्त एक जैसे होते हैं जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। यहा हम उच्च माध्यमिक कक्षा के प्रथम प्रश्न-पत्र के अन्तर्गत मध्यकालीन भारत के इतिहास का प्रश्न पत्र नमूने के रूप मे लेंगे तथा उसके माध्यम से उपरोक्त सोपानो का अध्ययन करेंगे।

इतिहास के नवीन विधि के प्रश्न-पत्र का निर्माण — मध्यकालीन भारत के इतिहास की कक्षा 9 के निमित प्रश्न पत्र के निर्माण मे उपरोक्त सोपानो का निम्नांकित तालिकाओ मे समायोजन किया जा सकता है यद्यपि इसमे आवश्यकतानुकूल परिवर्तन किये जा सकते हैं।[8]

---

8 वही – पृष्ठ 19।

(क) प्रश्न पत्र की रूपरेखा (Design)—

(1) उद्देश्यों का अंक भार (Weightage)—

तालिका 1 प्रश्न-पत्र प्रथम (मध्यकालीन भारत)

क्रम संख्या	अपेक्षित उद्देश्य	निर्धारित अंक	प्रतिशत
1	ज्ञान	25	50%
2	अवबोधन	15	30 ,,
3	उपयोजन	8	16 ,,
4	कौशल	2	4 ,,
	योग	50	100

(2) पाठ्य-वस्तु की इकाइयों का अंक-भार-तालिका 2

तालिका 2-प्रथम प्रश्न-पत्र (मध्यकालीन भारत)

क्रम संख्या	पाठ्य वस्तु के प्रमुख क्षेत्र	निर्धारित अंक	प्रतिशत
1	दिल्ली सल्तनत	20	40%
2	मुगलकाल	30	60 ,,
		योग 50	100

(3) प्रश्न रूपों का अंकभार—तालिका 3

अनुभाग	प्रश्न-रूप	प्रश्नों की संख्या	निर्धारित अंक	प्रतिशत
(अ)	वस्तुनिष्ठ	20	10	20%
	अति लघुरात्मक	5	5	10 ,,
(ब) भाग(1)	लघुत्तरात्मक	5	10	20 ,,
	निबन्धात्मक	1	5	10 ,,
भाग(2)	लघुत्तरात्मक	4	8	16 ,,
भाग(3)	निबन्धात्मक	2	12	24 ,,
		योग 37	50	100

प्रश्न पत्र में प्रश्नों कठिनाई स्तर, विकल्प, विभाग तथा प्रस्तुतीकरण के आधार पर प्रश्नों की समयावधि का निर्धारण जैसे कि अगले पृष्ठ दिया है किया जाना चाहिए-

(4) समय निर्धारण तालिका 4

विभाग	प्रश्न-रूप	कुल अंक	प्रश्न संख्या	सभावित समय (मिनटों मे)
(अ)	(क) वस्तुनिष्ठ	10	20	20
	(ख) अतिलघुत्तरात्मक	5	5	5
	अतिरिक्त समय	—	—	6
(ब)	(क) लघुत्तरात्मक	17	9	75
	(ख) निबन्धात्मक	17	3	75
	योग	50	36	180

(ख) आधार पत्रक (ब्लू प्रिन्ट)

मध्यकालीन भारत

क्रम संख्या	उद्देश्य प्रश्न रूप	ज्ञान				अवबोध				उपयोजन				कुशलता				योग
		नि	ल	[illegible]	व	नि	ल	अ	व	नि	ल	अ	व	नि	ल	अ	व	
	पाठ्यवस्तु प्रकरण																	
1	मुस्लिम आक्रमणकारी	—	2(1)	—		—	—	—		—	—	—		—	—	—		2
2	गुलाम वंश	—				6(1)												6
3	अलाउद्दीन खिलजी				1/2 (1)			1/2 (1)			2 (1)				2 (1)			6
4	तुगलक वंश			1(2)			2(1)	1/2 (1)			1/2(1)							4
5	भक्ति आंदोलन व दक्षिण के राज्य						1(1)				2 (1)							3
6	मुगल साम्राज्य की स्थापना (बाबर व हुमायूँ तथा शेरशाह)	2(1)	2(2)				1/2 (1)	1(1) (1)			2(1)							3
7	अकबर	6(1)																
8	जहांगीर, शाहजहां व औरंगजेब	5(1)	1(1)			1(2)			1/2 (1)			1/2 (1)						8
9	मराठों का उत्थान व मुगलों का पतन		1(2)			1(1)			½(1)			½(1)						4
10	भारत में मुगल शासन का पुनरावलोकन	2(1)	1(2)						½(1)			½(1)						4
	योग	11(2)	6 (3)	3(3)	5(10)	6(1)	4(2)	2(2)	3 (6)	6(3)	2 (4)			2 (1)				
			25					15			8				2			50

पीछे की तालिका मे अक्षर नि, ल, अ तथा व क्रमशः निबंधात्मक, लघुत्तरात्मक' अतिलघुरात्मक तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्न रूपो के सकेत चिह्न हैं। कोष्ठक के अतंगत प्रश्नो की सख्या तथा उनके बाहर प्रश्नो के निर्धारित अक है। आधार पत्रक म निर्दिष्ट प्रश्नो का उद्देश्य, पाठयवस्तु तथा प्रश्न रूप के आधार पर अक भार पूव तालिकाओं के अनुरूप है।

प्रश्न पत्र का कक्षा मे प्रस्तुति (Administration) तथा परीक्षाकन (Scoring)

प्रश्न-पत्र की कक्षा मे समुचित प्रस्तुति की दृष्टि से यह आवश्यक है कि परीक्षार्थियो को वाछित उत्तर देने मे सहायक निर्देश स्पष्ट एव बोधगम्य हो। इनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। मूल्याकन की वैधता, विश्वसनीयता एव वस्तुनिष्ठता की रक्षाय यह आवश्यक है कि प्रश्न पत्र की प्रस्तुति अनुकूल परिस्थितियो तथा समुचित वीक्षण(Invigialation)से अतर्गत की जाए।

प्रश्न-पत्र के परीक्षाकन के लिए परीक्षको के मार्गदर्शन हेतु विस्तृत उत्तर-तालिका एव अक विभाजन योजना पहले से तैयार कर उन्हे उपलब्ध कराई जाय। यह परीक्षाकन की वस्तुनिष्ठता एव एकरूपता की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है।

इस प्रकार समग्र रूप से प्रश्न पत्र वास्तविक शक्षणिक का आधार बन सकता है। शिक्षण एव परीक्षण मे इसी नवीन दृष्टिकोण का अनुसरण करना वाछनीय है।

शैक्षिक परीक्षण सम्बन्धी समस्यायें एव उनका निराकरण

शैक्षिक परीक्षण सम्बन्धी प्रमुख समस्याएँ निम्नाकित है —

(1) शिक्षको का नवीन मूल्याकन प्रणाली मे प्रशिक्षित न होना —

शक्षिक परीक्षण के विभिन्न प्रकारो पाठोपरान्त परीक्षण, इकाई परीक्षण (Unit test),सावधिक परीक्षण(Periodical Tests) अद्धवार्षिक एव वार्षिक परीक्षाओ के प्रश्न-पत्रो निर्माण एव क्रियान्वयन। शिक्षको का ही करना होता है जो विभागीय एव माध्यमिक शिक्षा बोड के नियमानुसार नवीन मूल्याकन प्रणाली के अनुकूल होना चाहिए किन्तु सभी शिक्षक इस प्रणाली मे प्रशिक्षित न होने के कारण प्रश्नो व प्रश्न पत्रो का निर्माण समुचित रूप से नही कर पाते। फलत परीक्षण का उद्देश्य पूरा नही होता। इस समस्या का निराकरण सभी शिक्षको को इस दिशा मे अल्पकालीन प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। वतमान मे राज्य मूल्याकन एकक(SCERT Evaluation Unit) माध्यमिक शिक्षा बोड द्वारा आयोजित अल्पकालीन प्रशिक्षण शिविर अपर्याप्त हैं, इनका विस्तार अपेक्षित है।

(2) प्रश्नो व प्रश्न पत्र के निर्माण मे असावधानियो के कारण अनक समस्याएँ उत्पन्न होती है जैसे प्रश्नो मे वैधता(Validity) विश्वसनीयता(Reliabilty),

के उचित सधारण एव उनकी गोपनीयता न रखने से अनेक अनियमिताऐं उत्पन्न होती है। अत सस्था प्रधान द्वारा इन अभिलेखा के समुचित सधारण की व्यवस्था करनी चाहिए।

प्रोन्नति (Promotion)

प्रोन्नति का अर्थ एव उद्देश्य—

अर्थ—प्रोन्नति अथवा कक्षोन्नति का अर्थ शैक्षिक परीक्षण के आधार पर विद्यार्थी को परीक्षा म उत्तीर्ण होने पर अगली कक्षा मे प्रोन्नत (Promotion) करना है। यह प्रोन्नति विभागीय नियमो के अनुसार (जो प्राय दिये गये है) सावधिक परीक्षणो (Partical Tests) लिखित कार्य की जाच अर्ध वार्षिक परीक्षा तथा वार्षिक परीक्षा म प्राप्त अको के योग आधार पर होती है। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड क नियमो के अनुसार केवल बोर्ड द्वारा आयोजित परीक्षा के आधार पर ही कक्षा 10 व 11 के विद्यार्थियो की प्रोन्नति होती है।

किशनचन्द जैन के अनुसार—"छात्रो की कक्षोन्नति शिक्षका तथा प्रशासको के लिए एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या है। कक्षोन्नति बालक के जीवन को अत्याधिक प्रभावित करती है। परीक्षा म असफलता कभी-कभी बालक के जीवन को अच्छा या बुरा एक नया मोड देती है। इसके परिणाम स्वरूप वह अधिक परिश्रम एव उत्साह स काय करने लगता है, अथवा वह निराश होकर औपचारिक शिक्षा से विमुख हो जाता है। परीक्षा मे असफल छात्रो की अत्यधिक सख्या के कारण वतमान परीक्षा तथा कक्षोन्नति की प्रणाली तीव्र आलोचना का विषय बनी हुई है।'[1] अत प्रोन्नति के उद्देश्यो पर आधारित यदि उसकी नीति एव नियम प्रत्यक विद्यालय मे स्पष्ट एव निश्चित है तो प्रोन्नति उपयोगी होती है अन्यथा वह आलोचना का कारण बनती है।

प्रोन्नति के प्रमुख उद्देश्य निम्नाकित होते हैं—2

(1) प्रोन्नति सम्बन्धी निर्णय छात्र के हित मे होना चाहिए। यदि वह अगली कक्षा के पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने की क्षमता रखता है तो उसे प्रोन्नत करना वाछनीय है।

1 किशनचन्द जैन शैक्षिक सगठन, प्रशासन एव पयवेक्षण (पृष्ठ 115)
2 पूर्वोद्धत (115–116)

(2) प्रोन्नति केवल शैक्षिक परिक्षण की लिखित प्रविधि के आधार पर किया जाना अनुचित है क्योंकि उसके द्वारा छात्र के सर्वांगीण विकास का मूल्यांकन नहीं हो पाता। इसके लिये अन्य प्रविधियों का भी अपनाना चाहिए।

(3) प्रोन्नति सम्बन्धी नियम सभी कक्षाओं व छात्रों के लिये समान होने चाहिए।

(4) प्रोन्नति सतत एव नियमित सावधिक परीक्षणों के योग के आधार पर की जानी चाहिए ताकि सत्रपर्यन्त किये गये कार्य व प्रदर्शित आचरण का मूल्यांकन हो सके। इसके संचित अभिलेखों का विश्लेषण किया जाना आवश्यक है।

(5) सत्र के अंतर्गत प्रत्येक सावधिक परीक्षण से प्रकट छात्रों की कमियों के निदान के आधार पर उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि छात्र का प्रोन्नति के इस उद्देश्य की पूर्ति हो सके कि उसे अपने प्रदर्शन को सुधारने का अवसर दिया जाता रहा है।

(6) केवल एक दो विषयों मे अनुत्तीर्ण होने पर ही उसे असफल न घोषित किया जावे बल्कि उसे पूरक परीक्षाओं द्वारा इन विषयो मे अच्छा प्रदर्शन कर दिखाने का अवसर दिया जाये।

(7) प्रोन्नति का उद्देश्य केवल छात्र को सफल घोषित करना ही नहीं होना चाहिए, बल्कि कक्षा में उसके स्थान (Rank) प्रतिशत प्राप्तांकों के आधार पर श्रेणी तथा मापीकृत मानदण्डो (Standardized Norms) के आधार पर उसकी उपलब्धियो गुणवत्ता का निर्धारण भी होना चाहिए। इससे प्रोन्नति छात्र की भावी उपलब्धियो का स्तरों नमन करने मे सहायक हो सकती है।

(8) प्रोन्नति के आधार पर अगली कक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां, शैक्षिक क्रियाकलाप व गत कक्षा की कमियों हेतु उपचारात्मक शिक्षण का निर्धारण किया जाना चाहिए। इस प्रकार प्रोन्नति आगामी शिक्षा-क्रम का आधार बननी चाहिए।

प्रोन्नति के प्रकार

विशनचन्द जैन के अनुसार कक्षोन्नति अथवा प्रोन्नति के प्रकार निम्नांकित हैं—

(1) वार्षिक प्रोन्नति -जिसमे केवल वर्ष (सत्र) हेतु निर्धारित पाठ्यक्रम मे छात्र की सम्प्राप्तियों का मूल्यांकन सत्र के अन्त मे एक परीक्षा द्वारा होता है। यह विधि दोष पूर्ण है। सत्र पर्यन्त नियमित कार्य के मूल्यांकन का लेखा जोखा सावधिक रूप से रखा जाना तथा प्राप्तांको के योग के आधार पर प्रोन्नति होनी चाहिए

(2) अर्द्धवार्षिक प्रोन्नति—जिसे उप सत्र उपरान्त (Semister) प्रोन्नति भी कहते हैं

पूर्वोद्धत (पृ0 116 118)

इसका उद्देश्य अंतिम सत्रांत में ली जाने वाली परीक्षा में असफल विद्यार्थियों की संख्या कम करना होता है।

(3) शत-प्रतिशत प्रोन्नति – जिसमें छात्रों के पाठ्यक्रम पूर्ण करने के अनुभवों के आधार पर ही सभी को प्रोन्नत कर दिया जाता है जैसा कि अमेरिका के कुछ विद्यालयों में होता है।

(4) सम्मिलित वार्षिक एवं उपसत्रीय प्रोन्नति (Combind Annual and Terminal Promotion) इसमें औसत स्तर के छात्रों को वर्ष के अंत में प्रोन्नत किया जाता है तथा कुशाग्र बुद्धि के छात्रों को सत्र के मध्य में ही प्रोन्नत कर दिया जाता है।

(5) विषयवार प्रोन्नति (Subjectswise Promotion) इसमें यदि कोई छात्र किसी एक या अधिक विषयों का पाठ्यक्रम अल्प समय में पूर्ण कर लेता है। तो उसे उन विषयों का अध्ययन वह अगली कक्षा में करता है किन्तु अन्य विषयों का उसी कक्षा में।

(6) परीक्षण आधारित प्रोन्नति (Trail Promotion) — इसमें उन छात्रों को जिनकी सफलता या असफलता संदिग्ध हो उन्हें अगली कक्षा में इस शर्त पर प्रोन्नत कर दिया जाता है कि यदि उनकी प्रगति प्रथम उपसत्र में संतोषजनक नहीं रही तो उन्हें निचली कक्षा में अवनत कर दिया जायेगा।

स्पष्ट है कि उपरोक्त प्रोन्नति सम्बन्धी प्रकारों में कुछ न कुछ दोष विद्यमान है। सर्वोत्तम विधि वही है जिसमें सत्रपर्यन्त सावधिक परीक्षणों में प्राप्तांकों के योग पर छात्र को प्रोन्नत किया जाता है।

प्रोन्नति सम्बन्धी समस्याएं और उनका निराकरण

प्रोन्नति सम्बन्धी समस्याएँ प्रायः प्रोन्नति नियमों के अभाव में अथवा निर्धारित प्रोन्नति नियमों के अनुपालन न करने से उत्पन्न होती हैं। अतः विभागीय एवं माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा प्रोन्नति नियम निश्चित होने चाहिए जो प्रदेश के सभी विद्यालयों व छात्रों पर समान रूप से लागू होने चाहिए। राजस्थान में माध्यमिक विद्यालयों हेतु ऐसे नियम निर्धारित हैं। प्रत्येक शिक्षक तथा छात्र को उनसे अवगत होना अपरिहार्य है। प्रोन्नति शैक्षिक परीक्षण का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है। शैक्षिक परीक्षण यदि पूर्वोल्लिखित विधि से समुचित रूप से किया जाये तो प्रोन्नति का

पूर्वोद्धृत (पृष्ठ 116 118)

आधार सुदृढ़ तथा निष्पक्ष होता है। इसी प्रकार प्रोन्नति नियमों के समुचित अनुपालन से शैक्षिक परीक्षण का उद्देश्य भी पूरा होता है अन्यथा प्रोन्नति एवं शैक्षिक परीक्षण दोनो ही असफल होते है। इसका प्रभाव आज असफल छात्रों की एक बडी संख्या तथा उनमे व्याप्त असंतोष एवं निराशा मे परिलक्षित होता है।

शैक्षिक परीक्षण की जो समस्याएँ हैं वे प्रोन्नति की समस्याओं से सम्बद्ध हैं। अत जो निराकरण पूर्व मे सुझाये गये हैं उनका पालन किया जाना वांछनीय है। इसके अतिरिक्त विभाग द्वारा परीक्षा एवं प्रोन्नति के नियमों का पालन किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इन नियमों को यहां उद्धृत किया जा रहा है[1]

परीक्षा एवं कक्षोन्नति नियम।

[1] क्षेत्र— ये नियम परीक्षा एवं कक्षोन्नति नियम कहलाएंगे तथा राजस्थान के सभी राजकीय एवं मान्यता प्राप्त विद्यालयों के कक्षा 1 से नौ तक समस्त छात्रों पर लागू होंगे।

[2] सामान्य नियम—

(1) परीक्षा प्रवेश योग्यता (1)कक्षा तीन से कक्षा नौ तक की वार्षिक परीक्षाओं में केवल वे ही छात्र प्रविष्ट हो सकेंगे जिन्होंने किसी राजकीय अथवा मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्था मे नियमित छात्र के रूप मे सत्र पर्यन्त अध्ययन किया है अथवा जिन्हें स्वयं पाठी परीक्षार्थी के रूप मे बैठने की आज्ञा दे दी गई है।
(2)यदि कोई छात्र या छात्रा बोर्ड की परीक्षा मे लगातार दो वर्ष तक असफल रहे तो उसे विद्यालय मे प्रवेश नहीं दिया जाए। यह नियम कक्षा 1 से 9 तक पढने वाले छात्रों पर लागू नहीं होगा।

(2) छात्रों की उपस्थिति—(1) नियमित छात्रों की उपस्थिति विद्यालय आरम्भ होने के दिन एवं पूरक परीक्षा मे बैठने वाले छात्रों की उपस्थिति पूरक परीक्षा परिणाम घोषित होने के दिन से गिनी जाएगी।
(2) छात्रों को सत्र की कुल उपस्थिति का 60 प्रतिशत प्राथमिक कक्षाओं में, 70 प्रतिशत माध्यमिक कक्षाओं में उपस्थित रहना अनिवार्य है।

1 विभागीय सदर्शिका शिक्षा विभाग, राजस्थान, बीकानेर (पृ 164-169)

/ ₁₃

(3) स्वल्प उपस्थिति से मुक्ति—

यदि प्रधानाध्यापक संतुष्ट हो कि रुग्णावस्था व अन्य उचित कारण से अनुपस्थित अथवा अवकाश पर रहा है तो वे विद्यालय के कुल दिवसों की प्रतिशत उपस्थिति न्यूनता के आधार पर छात्रों को निम्न प्रकार मुक्त करके वार्षिक परीक्षा में बैठने की आज्ञा दे सकते हैं।

(1) कक्षा 3, 4 व 5	15 प्रतिशत
(2) कक्षा 6, 7 व 8	10 "
(3) कक्षा 9	20 "

परीक्षा तैयारी अवकाश—

(1) प्रधाध्यापक कक्षा 3 से 11 तक के छात्रों को अर्द्ध वार्षिक परीक्षा हेतु एक दिन तथा वार्षिक परीक्षा हेतु 3 से 9 तक के छात्रों को दो दिन का तैयारी अवकाश, राजपत्रित एवं रविवार की छुट्टियों के अतिरिक्त दे सकते हैं।

(2) कक्षा 10 तथा 11 के छात्रों का परीक्षा तैयारी अवकाश अर्द्ध वार्षिक परीक्षा हेतु उपरोक्त प्रकार ही रहेगा तथा बोर्ड की वार्षिक परीक्षा हेतु बोर्ड के नियमानुसार अवकाश रहेगा।

.न पत्र व्यवस्था—

(1) सभी कक्षाओं में परीक्षार्थियों की संख्या 10 से अधिक होने की दशा में प्रश्न-पत्र मुद्रित/चक्र लेखांकित तथा इससे कम संख्या होने पर चक्र लेखांकित अथवा कार्बन पेपर से हस्तलिखित होंगे।

(2) परखों में प्रश्न-पत्रों को लिख कर या श्याम-पट्ट पर लिख कर लिखाया जाए।

परीक्षाएँ—

(1) कक्षा 3 से 11 तक प्रतिवर्ष नियमित अन्तर के साथ प्रत्येक कक्षा के प्रत्येक विषय की दो आवधिक परखें होंगी।

(2) कक्षा 9 की तीसरी आवधिक परख होगी और कक्षा 3 से आठ तक तीसरी आवधिक परख के स्थान पर लिखित कार्य का सत्र में दो बार (नवम्बर व मार्च में) मूल्यांकन किया जाएगा जो 5 5 अंकों का होगा। अर्थात् दोनों मूल्यांकनों का योग 10 अंक होगा।

) बोर्ड की परीक्षा में बैठने वाले छात्रों की तृतीय परख नहीं होगी। इसलिए उनके लिए तृतीय परख के पूर्णांक पहली दो परखों में ही वितरित कर दिये जाएँ।

(4) सत्र में दो परीक्षाएँ होंगी। पहली (अर्द्धवार्षिक) किसी भी समय दिसम्बर मास

में तथा दूसरी (वार्षिक) 15 अप्रैल के पश्चात।

(6) वार्षिक परीक्षा परिणाम ग्रीष्मवकाश के लिए शालाओं के बन्द होने से पूव घोषित कर दिया जायेगा।

(7) वार्षिक परीक्षा मे वही छात्र सम्मिलित किया जायगा जिसने कम से कम दो आवधिक परखें दी हो या एक परख और अर्द्ध वार्षिक परीक्षा दी हो और जिस में वह नही बठा हो उनके कारणो की प्रामाणिकता से संस्था प्रधान का पूर्णतया से सतुष्ट कर दिया हो।

(8) अर्द्ध वार्षिक परीक्षा तथा वार्षिक परीक्षा क्रमश अधिक से अधिक 10 दिन व 14 दिन में समाप्त कर ली जाए।

(9) विभिन्न परीक्षाओं में पूर्णांक निम्नलिखित सारणी के अनुसार होंगे।

परीक्षा	अविभक्त इकाई कक्षा 1–2	कक्षा 3 से 8 प्रत्येक विषय में	कक्षा 9 से 11					
			अनिवार्य विषय		ऐच्छिक विषय			
			हिन्दी व अंग्रेजी को छोड़ कर शेष में	हिन्दी व अंग्रेजी	वे विषय जिनमें केवल सै परीक्षा होती है।	वे विषय जिनमें सैद्धांतिक व प्रायोगिक दोनों परीक्षाएं होती है		
						स	प्रा	योग
प्रथम परख	—	10	5	10	15	—	—	15
द्वितीय परख	—	10	5	10	15	—	—	15
तृतीय परख	—	—	5	10	15	—	—	15
लिखित काय का दो बार मूल्यांकन	—	प्रत्येक लिखित काय का मूल्यांकन 5×2(10)						
अर्द्ध वार्षिक परीक्षा	—	70	35	70	105	70	35	10
वार्षिक परीक्षा	100 इकाई वार सातत्यिक मूल्यांकन का योग	100	50	100	150	100	50	150
योग	100	200	100	200	300	170	85	300

/

[3] उत्तीर्णता नियम –(1) छात्रो को उनकी आवधिक परख, अर्द्ध वार्षिक व वार्षिक परीक्षाओ के परिणाम को मिलाकर नियमानुसार उत्तीर्ण किया जायेगा।

(2) (i) वही छात्र कक्षोन्नति/उत्तीर्णता का अधिकारी माना जायेगा जो उपरोक्त सारणी के पूर्णांक के न्यूनतम 36% अक प्रत्येक विषय मे प्राप्त करेगा।

(ii) इसके साथ ही वार्षिक परीक्षा मे 20% न्यूनतम अक प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

(3) (i) यदि वार्षिक परीक्षा मे कोई छात्र रुग्णता प्रमाण पत्र देता है, तो उसको उन सब विषयो मे जिसके लिए रुग्णता प्रमाण–पत्र दिया गया है। पुन परीक्षा (रिएक्जामिनेशन) मे बैठना पड़ेगा।

(ii) यह पुन परीक्षा उन्ही दिनो म जिन दिनो मे पूरक परीक्षा होगी

(iii) पुन परीक्षा के लिए वार्षिक परीक्षा शुल्क लिया जाय तथा परिणाम घोषित करते समय परख एव अर्द्ध वार्षिक के अको को जोडकर बिना कृपाक दिये हुए परीक्षाफल घोषित किया जाय।

(4) माध्यमिक कक्षाओ के जिन विषयों म सैद्धांतिक व प्रायोगिक परीक्षा होती है, उन मे अलग–अलग उत्तीर्ण होना आवश्यक नही है।

(5) (i) यदि कोई छात्र अपनी गम्भीर रुग्णता के कारण अपनी किसी आवधिक परख या अर्द्ध वार्षिक परीक्षा मे सम्मिलित होने की स्थिति मे नही रहा हो तो उसके द्वारा उस परीक्षा समाप्ति के एक सप्ताह के अन्दर रुग्णता प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने पर केवल उन्ही परीक्षाओ के आधार पर जिसम वह सम्मिलित हुआ है, उसका परीक्षाफल घोषित किया जा सकेगा।

(ii) लेकिन ऐसी स्थिति में उसका कम से कम दो परख तथा एक परीक्षा अथवा एक परख और दो परीक्षाओ में बैठना आवश्यक है।

(iii) ऐसे छात्र कृपाक के अधिकारी नही होंगे।

(6) कक्षा 9 तक निम्नलिखित अनिवार्य विषयो में न्यूनतम 36 प्रतिशत अक प्राप्त करने पर छात्र उत्तीर्णता के योग्य होगा। मगर इनमे वार्षिक परीक्षा में पृथक से न्यूनतम 20 / अक प्राप्त करना अनिवाय नही है —

(i) तृतीय भाषा सस्कृत/उर्दू/सिंधी/पजाबी/गुजराती

(ii) सगीत (iii) ड्राइग उद्योग

(7) किसी भी परख या परीक्षा के प्राप्ताक यदि भिन्न (सही बटे) मे हो तो उन्हे अगले पूर्णांक मे परिवर्तित कर दिया जाए।

[4] श्रेणी निर्धारण—

(1) (i) 60 प्रतिशत या अधिक प्राप्तांक होने पर प्रथम श्रेणी।

(ii) 48 प्रतिशत व उससे अधिक परन्तु 60 प्रतिशत से कम प्राप्तांक होने पर द्वितीय श्रेणी।

(iii) 36 प्रतिशत या उससे अधिक परन्तु 48 प्रतिशत से कम प्राप्तांक होने पर तृतीय श्रेणी।

(iv) किसी विषय मे 75 प्रतिशत अंक प्राप्त करने पर उस विषय मे विशेष योग्यता मानी जाएगी।

(2) कक्षा 9 तृतीय भाषा व उद्योग के प्राप्तांक श्रेणी निर्धारण हेतु बृहद् योगांक में सम्मिलित नहीं किया जाए।

(3) श्रेणी निर्धारण कृपांक रहित प्राप्तांको के बृहद योगांक के आधार पर ही होगा। अर्थात् श्रेणी निर्धारित करते समय कृपांक ना जोडें।

(4) कक्षा 1 से 2 अविभक्त इकाई मानी गई है। इसके लिए अविभक्त कक्षा इकाई सदर्शिका देखें (जो कि राजस्थान राज्य पाठ्य पुस्तक मंडल द्वारा प्रकाशित है)

[5] कृपांक—

(i) यदि छात्र किसी एक अथवा दो विषयो मे उत्तीर्ण अंक प्राप्त करने म असफल रहता है तो उसे प्रधानाध्यापक निम्न प्रकार से कृपांक देकर कक्षोन्नति दे सकते है

(ii) कृपांक पाने के लिए छात्र का आचरण तथा व्यवहार उस सत्र म उत्तम होना आवश्यक है।

(iii) प्रति एक कृपांक प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक होगा कि छात्र जिन विषयो म उत्तीर्ण है। उनमे न्यूनतम से 5 अंक अधिक प्राप्त करे। जब यदि कोई परीक्षार्थी अंग्रेजी मे असफल है। और परीक्षार्थी अंग्रेजी को छोड़कर अन्य विषयो मे कुल मिलाकर 36 / अंको से 30 अंक अधिक प्राप्त कर लिए है तो उसे 6 कृपांक दिए जा सकते हैं।

(iii) यदि छात्र एक ही विषय मे असफल है तो उसे अधिकतम 8 प्रतिशत कृपांक उसमें दिये जा सकते हैं।

(iv) यदि छात्र दो विषयो मे असफल है तो उसे अधिक से अधिक 12 कृपांक दोनो विषयो में मिलाकर दिये जा सकते हैं। किन्तु दोनों में से एक विषय में 7 से अधिक न दिये जायें (अर्थात् उन 12 अंको का अधिकतम वितरण 7+5 ही हो सकता है, 8+4 या 9+3 आदि नहीं हो सकता)।

[6] पूरकपरीक्षाएं –

(1) जो छात्र एक अथवा दो विषयो में अनुत्तीर्ण घोषित हो वह उसी वर्ष जुलाई के प्रथम सप्ताह में होने वाली पूरकपरीक्षा में सम्मिलित होने के अधिकारी होंगेयदि

(क) एक विषय में

(i) एक विषय में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्र को उस विषय में समस्त आवधिक परखो व परीक्षाओ को मिलाकर न्यूनतम 20 / अंक प्राप्त हो।

(ii) यदि छात्र को सभी विषयो म उत्तीर्णांक 36 / अंक अथवा अधिक प्राप्त हो, परन्तु किसी एक विषय में वार्षिक परीक्षा म न्यूनतम15 / अंक प्राप्त हो।

(ख) दो विषय मे

(i) दो विषयो म अनुत्तीर्ण होने वाले छात्र को यदि उन दोनो विषयो म पृथक-पृथक समस्त आवधिक परखो व परीक्षाओ को मिलाकर 22 / से कम अंक प्राप्त न हो।

(2) पूरक परीक्षा पूर्णांक वही होंगे जो उस विषय की वार्षिक परीक्षा में हैं।

(3) पूरक परीक्षा में वही छात्र सफल घोषित किया जाएगा जो उक्त विषय/विषयो में (प्रत्येक मे) न्यूनतम 36 / उत्तीर्णांक प्राप्त कर।

(4) पूरक परीक्षा में उतीर्ण होने के लिए कृपांक नहीं दिए जायेंगे।

(5) पूरक परीक्षा के परिणाम 15 जुलाई तक घोषित कर दिये जायेंगे।

(6) पूरक परीक्षा का शुल्क वही होगा जो वार्षिक परीक्षा के लिए है।

विभागीय नियमो मे उपरोक्त बिन्दुओ के अतिरिक्त उत्तर पुस्तको की सुरक्षा, स्वयपाठी छात्रो की परीक्षा, परीक्षा में अनुचित साधनो के प्रयोग एव दण्ड सम्बन्धी नियम भी दिय गये हैं। इन नियमो के अनुपालन से शक्षिक परीक्षण एव प्रोन्नति की प्रक्रिया को राज्य के सभी विद्यालयो में समान रूप से क्रियान्वित करना अभिप्रेत है। अधिकांश समस्याओ का निराकरण भी इन नियमो के अनुपालन से स्वत ही हो जाता है।

उपसहार –

प्रस्तुत अध्याय म शक्षिक परीक्षण एव प्रोन्नति सम्बन्धी समस्याओ के विवेचन से यह भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनो प्रक्रियाएँ माध्यमिक विद्यालयों हेतु विशेष रूप में महत्वपूर्ण हैं। इस सन्दर्भ में यह भी ध्यातव्य है कि शक्षिक परीक्षण एव प्रोन्नति की परम्परागत सप्रत्यय में शैक्षिक अनुसधान एव प्रयोगो–प्रायोजनाओ के आधार पर एक क्रान्तिकारी परिवतन आया है तथा इनकी नवीन अवधारणाएँ अब पूर्णतया वैज्ञानिक, शक्षिक दृष्टिकोण से उपयोगी एव उद्देश्यनिष्ठ हो गई हैं। यद्यपि इनस सम्बन्धित विभागीय नियमो के निर्धारण से ये प्रक्रिया सभी विद्यालयो म समान रूप से सचालित होन लगी है तथापि इन नियमो में नवीन परिस्थितिया एव आवश्यकताओ के अनुरूप निरन्तर सशोधन, परिवतन तथा परिवर्द्धन की अपेक्षा है।



मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघुत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 'शैक्षिक परीक्षण' से आप क्या समझते है ? सक्षेप में लिखिये।

2 शैक्षिक परीक्षण का क्या महत्व है ?

3 शैक्षिक परीक्षण सम्बन्धी किन्हीं पाच समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

4 किसी विद्यार्थी के वार्षिक परीक्षा म बैठने हेतु अनुमति देन के क्या नियम हैं ?

5 परीक्षा मे कृपांक के क्या नियम हैं ?

6 परीक्षा प्रश्नप त्र निर्मित करने हेतु आधार-पत्र (Blue Print) का प्रारूप कैसा होना चाहिए ?

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1 निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—
(अ) शैक्षिक परीक्षण (शिक्षा शास्त्री 1984)

2 राजस्थान के माध्यमिक विद्यालयों में परीक्षा एव प्रोन्नति नियम कौन से हैं ? सक्षेप में व्याख्या कीजिए।

3 'शैक्षिक परीक्षण' का नियोजन एव क्रियान्वयन किस प्रकार किया जाना चाहिए ? विस्तार से समझाइये।

अध्याय
११

समय-विभाग-चक्र
(The Time Table)

[विषय प्रवेश— समय विभाग चक्र का अर्थ, समय विभाग चक्र की आवश्यकता एव महत्व, समय विभाग चक्र के निर्माण के सिद्धान्त, समय विभाग चक्र के प्रकार, समय विभाग चक्र के उदाहरण, समय-विभाग चक्र तथा विकासमान शिक्षण-पद्धतियाँ, समय विभाग चक्र की परिसीमाएँ तथा सावधानियाँ, उपसहार, परीक्षोपयोगी प्रश्न]

विषय-प्रवेश —

शिक्षा के लक्ष्यो एव उद्देश्यो की प्रभावी रुप से उपलब्धि ही विद्यालय-सगठन का मापदण्ड होता है। यह उपलब्धि विद्यार्थियो के सर्वांगीण विकास हेतु विद्यालय म प्रायोजनीय विभिन्न बौद्धिक शारीरिक, भावात्मक एव सास्कृतिक क्रियाकलापो की सुनियोजित नियाविति पर निर्भर होती है। विद्यालय की दैनिक समयावधि की एक निश्चित सीमा होती है जिसके अन्तर्गत ही ये समस्त क्रियाकलाप पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार प्रायोजित किये जाने चाहिए। समय विभाग चक्र (Time Table) विद्यालय की इसी अपरिहार्य आवश्यकता की पूर्ति करता है। समय विभाग चक्र का क्या तात्पर्य है, इसकी आवश्यकता एव महत्व क्या है इसके निर्माणगत सिद्धान्त क्या होने चाहिए, यह कितनी प्रकार का हो सकता है तथा इसकी क्या परिसीमाएँ हैं व उनके निराकरण हेतु कौनसी सावधानियाँ रखनी वाछनीय हैं— ये प्रश्न इस सदर्भ म उभर कर आते हैं। इनकी व्याख्या प्रस्तुत अध्याय मे की जायेगी।

समय विभाग चक्र का अर्थ —

समय विभाग चक्र का अभिप्राय अथवा अर्थ विभिन्न शिक्षाविदो ने भिन्न भिन्न प्रकार से स्पष्ट किया किन्तु प्रकारान्त से उन सब का तात्पर्य समान है। डा एस एस माथुर के अनुसार—'समय विभाग चक्र साधारण रुप से एक लेखा होता है जो विद्यालय के समय और कार्य के विवरण प्रस्तुत करता है। यह बहुधा एक सप्ताह म किस कक्षा को क्या क्या विभिन्न विषय पढाये जाते हैं तथा किस किस घटे म और कौन-कौन से अध्यापको द्वारा पढाये जाने का विवरण प्रदर्शित करता है। इस प्रकार समय विभाग-

चक्र विद्यालय की समस्त क्रियाओं पर नियंत्रण रखते हुए उनका विवरण प्रस्तुत करता है।"1

आत्माराम शर्मा के शब्दों मे—"विद्यालय म पढाये जाने वाले विभि न विषय तथा अन्य क्रियाएँ किस किस समय और कितनी-कितनी देर तक पढाये अथवा कराई जाती है, इस बात का विवरण इसी समय-विभाग-चक्र म होता है।"2 किशन चन्द जन का कथन है कि—' विद्यालय की समय-तालिका विद्यालय के समय का विभिन्न विषयो एव प्रवृतियो मे आवटन का एक मानचित्र है। विद्यालय समय-तालिका विषयाध्ययन और प्रवृतियो को विधियुक्त एव पूव व्यस्थित योजना है जिसके अन्तर्गत विभिन्न विषयो प्रवृतियो और कक्षाओ के मध्य दैनिक विद्यालय समय का आवटन दिखाया जाता है।3

उपरोक्त परिभाषाओ से प्रकट होता है कि समय विभाग-चक्र या समय-तालिका के दैनिक उपलब्ध समय का पांच आयामीय वर्गीकरण चाट (Five dimensional classifiction chart) है जिसम सप्ताह के प्रत्येक वार को प्रत्येक कालाश (Period) म आयोजनीय विषय-शिक्षण अथवा क्रियाकलाप का सम्बन्धित कक्षा और अध्यापक या प्रभारी व्यक्ति के साथ वर्गीकृत आलेख रहता है। समय विभाग चक्र के पांच आयाम सप्ताह के दिन, विषय या अन्य क्रियाकलाप जो पाठ्यक्रम सहगामी हो, कक्षा, प्रभारी अध्यापक और कालाश हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य आयाम भी होते हैं जो इसम व्यक्त किये जाते हैं जैसे कालाशो की अवधि घण्टों अथवा मिनटो म, अतरालो (Interval or Reecess) की अवधि, कक्षा-कक्ष या क्रियाकलाप के स्थान का उल्लेख तथा पारी (Shift) का निर्देश यदि विद्यालय दो या अधिक पारियो मे लता हो। इस प्रकार समय-विभाग चक्र विद्यालय की प्रत्येक गतिविधि की सम्पूर्ण एव स्पष्ट तालिका होती है जिसके कारण इसे विद्यालय की दूसरी घडी' (Second Watch of the School) भी कहा जाता है। समय-विभाग-चक्र का नमूना आगे दिया जा रहा है।

समय-विभाग-चक्र की आवश्यकता एव महत्व-

समय विभाग चक्र की उपरोक्त परिभाषा से उसकी उपयोगिता और महत्व स्पष्ट हो जाता है। पारस नाथराय के शब्दो म-"समय-तालिका विद्यालय का वह महत्वपूर्ण प्रपत्र है जिसके द्वारा विद्यालय की जटिल व्यवस्था का सुचालन सभव होता है। इसे विद्यालय की दूसरी घडी कहते हैं जिसके ऊपर स्पष्ट रुप मे अकित होता है कि विद्यालय की कौन सी क्रिया किस समय, किस कक्षा द्वारा किस शिक्षक के निर्देशन म कहां

1 एस एस माथुर विद्यालय सगठन एव स्वास्थ्य शिक्षा (पृष्ठ 101)
2 आत्माराम शर्मा विद्यालय सगठन (पृष्ठ 106)
3 किशन चन्द जन शैक्षिक सगठन, प्रशासन एव पयवरण (68)

पर होगी। अच्छी समय तालिका विद्यालय के सुसचालन और सुव्यवस्था को प्रकट करती है तथा इससे लक्ष्य-प्राप्ति म सहायता मिलती है।"4 निरजन कुमार सिंह ने इस महत्व को दूसरे शब्दो मे व्यक्त करते हुए कहा है कि—' इससे सभी कार्यों मे व्यवस्था रहती है और प्रत्येक कार्य स्वाभाविक और नियमित रूप से ठीक समय पर सुगमता-पूर्वक सम्पन्न होता रहता है। समय-विभाग मे कार्यों मे सतुलन बना रहता है और जिस काय के लिए जितना समय वाछित और अपेक्षित होता है, उतना ही समय लगता है। अध्यापको का समय व्यर्थ नही जाता, शक्ति और श्रम की बचत होती है और किसी विषय अथवा काय की उपेक्षा नही हो पाती।'5

समय विभाग चक्र की आवश्यकता एव महत्व को प्रकट करने वाले बिंदु निम्नांकित हैं'-

(1) विद्यालय का सुव्यस्थित सचालन —समय-विभाग-चक्र द्वारा विद्यालय काय का सुव्यवस्थित रुप से सचालन सम्भव होता है क्योंकि "समय तालिका म प्रत्येक वस्तु का पहले से ही नियोजन किया जाता है। अत प्रत्येक शिक्षक तथा विद्यार्थी को यह ज्ञात होता है कि किस समय मे उसे क्या काय करना है। समय तालिका के अतर्गत उपयुक्त व्यक्तियो को उपयुक्त समय पर उपयुक्त काय, उपयुक्त प्रकार से दिया जाता है।' 6

(2) समय और शक्ति का सदुपयोग पूव नियोजित विधि से समय-तालिका के निर्मित होने के कारण प्रत्येक विषय एव क्रियाकलाप को उपयुक्त समय मे सम्पन्न किये जाने से अध्यापक और विद्यार्थी दोनों के समय एव शक्ति का अपव्यय न होकर उसका सदुपयोग होता है। किसी भी वाछित काय की अनावश्यक पुनरावृति एव उपेक्षा नही हो पाती।

(3) शिक्षको को काय का समुचित आवटन — सुनिर्मित समय तालिका मे शिक्षको की व्यक्तिगत योग्यता, कार्य क्षमता और रुचि की दृष्टि से उन्हें काय का आवटन किया जाता है जिससे प्रत्येक काय प्रभावी रुप से सम्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त काय भार (Work load) का शिक्षको म समुचित विभाजन व समान वितरण भी किया जाता है,। उन्हें विभागीय या माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा निर्धारित कालाशो के काय भार के अनुरुप काय देकर कुछ अवकाश के कालाश भी दिये जाते हैं

4 पारस नाथ शक्षिक प्रशासन एव विद्यालय सगठन (पृष्ठ 63)
5 निरजन कुमार सिंह शिक्षालय सगठन (,, 218)
6 किशन चन्द जन शक्षिक सगठन, प्रशासन एव पयवेक्षण (,, 70)

5. जिससे वे अपनी थकान दूर कर सकें तथा छात्रों के लिखित कार्य का संशोधन व अन्य विद्यालय कार्य(जैसे उपस्थिति रजिस्टरों की पूर्ति पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलापों के आयोजन व आलेखन कार्य, अवकटित परीक्षण आदि आदि) कर सकें। समय-तालिका से अध्यापकों मे कार्यभार का समान एवं यथोचित विभाजन किया जाना भी सम्भव होता है जिससे कि परिश्रमी शिक्षकों पर अत्यधिक कार्यभार न पड़ सकें तथा कार्य से जी चुराने वाले एवं कुटिल मनोवृत्ति के अध्यापकों को व्यस्त रख उन्हें असामाजिक कार्यों द्वारा विद्यालय वातावरण को दूषित करने का अवसर भी न दिया जाये। कार्यभार का सतुलित विभाजन शिक्षक वर्ग में अनावश्यक असंतोष के निवारण हेतु वाछनीय है।

(4) अनुशासन स्थापित करने मे सहायक —समय-विभाग-चक्र के अभाव में शिक्षकों और विद्यार्थियो को अनियन्त्रित और मनमाने कार्य करने की छूट मिल जाती है जिससे विद्यालय वातावरण में अराजकता और अनुशासनहीनता व्याप्त हो जाती है। ऐसे दूषित वातावरण मे कोई भी कार्य कर पाना असम्भव हो जाता है। अतः समय विभाग-चक्र द्वारा, विद्यालय वातावरण अनुशासन, सामंजस्य और सोद्देश्य नियोजित कार्य करने की भावना से विद्यार्थियो के सर्वांगीण विकास के अनुकूल बन पाता है।

(5) नैतिक विकास मे सहायक — सुनियोजित समय-विभाग-चक्र द्वारा शिक्षकों एवं विद्यार्थियो मे अनेक चारित्रिक और नैतिक गुणों का विकास होना सम्भव होता है जैसे समय की पाबन्दी, कर्तव्यपरायणता, क्रमबद्धता, निर्धारित कार्य को समय पर पूरा करने की आदत,परिश्रमशीलता,तत्परता, सलग्नशीलता आदि।

(6) विद्यार्थियो की क्षमता एवं आवश्यकता से समंजन —उद्देश्याधारित शिक्षा का आधार विद्यार्थियो की क्षमता,रुचि व योग्यता के अनुकूल विभिन्न क्रियाकलापो के आयोजन का आयोजन कर उनका सर्वांगीण विकास करना है। समय विभाग चक्र इस आधार के लिए अनुकूल अवसर प्रदान करता है। मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक दृष्टि से इसके द्वारा विभिन्न आयुवर्ग के विद्यार्थियो की क्षमता एवं आवश्यकता से उचित समंजन किया जाना सम्भव होता है।

(7) पर्यवेक्षण मे सहायक — समय विभाग चक्र के आधार पर प्रधानाध्यापक या शैक्षिक अधिकारियो द्वारा शिक्षक एवं विद्यार्थी के कार्य और क्रियाकलापों का प्रभावी पर्यवेक्षण(Supervision) किया जाना भी सम्भव होता है। पर्यवेक्षकों को अपने कार्य मे इससे सुगमता,सुविधा एवं प्रेरणा प्राप्त होती है।

उपरोक्त प्रमुख घटकों के कारण ही समय-विभाग-चक्र को शिक्षाविद् डॉ. डी. जीवनायकम् ने 'विद्यालय की दूसरी घड़ी'[7] कहा है। डी एन गेड तथा आर पी शर्मा ने समय विभाग चक्र के महत्व का समाहार करते हुए कहा है—"संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि अच्छी समय-तालिका बन जाने से समय नष्ट होने से बचता है, स्कूल का कार्य सफलता और सुगमतापूर्वक चलता है, शिक्षक और विद्यार्थियों को काय करने के लिए उचित प्रोत्साहन मिलता है, स्कूल के अनुशासन का स्तर ऊँचा होता है और विद्यार्थियों को नियमपूर्वक समय की पाबन्दी एव सकल्प के साथ कार्य करने की आदत पड़ती है।'[8]

समय-विभाग-चक्र के निर्माण के सिद्धांत

समय विभाग चक्र बनाते समय कुछ मूलभूत सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखना होता है। ये निम्नांकित हैं—

(1) शिक्षा विभाग तथा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा निर्धारित नियम — प्राथमिक एव उच्च प्राथमिक कक्षाओं के लिए शिक्षा विभाग द्वारा तथा माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक कक्षाओं हेतु माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा समय विभाग चक्र के निर्माण हेतु विभिन्न कक्षाओं उनके लिए निर्धारित विषयों के शिक्षण हेतु प्रति सप्ताह कालांश निर्धारित किये जाते हैं। समय-तालिका के निर्माण मे इन नियमों का पालन किया जाना वांछनीय होता है। राजस्थान राज्य के शिक्षा विभाग

---

7 Dr D Jivnayakam—"It is second clock, on the face of which are shown at intervals, the hour of theday,the kind of lesson in progress in every class,the veceration interval and moments for assembly and the dismissal"

8 डी एन गैड एव आर पी शर्मा शैक्षिक एव माध्यमिक विद्यालय व्यवस्था (पृ/336)

9 शिविरा-पत्र कक्षा 1 से 5 तथा 6 से 8 (शिक्षा विभाग राजस्थान पृष्ठ 7 व 8, 4)

द्वारा यह प्रावधान निम्नांकित है —

विषय एव क्रियाकलाप	प्रति सप्ताह कालाश एव दैनिक समयावधि कक्षा 1 व 2	कक्षा 3 से 5	कक्षा 6 से 8	विशेष
1 प्रारंभिक काम (सफाई, प्रार्थना सूचना, समाचार, प्रवचन आदि)	25 मिनिट	25 मिनिट	30 मिनिट	कालाश की अवधि ऋतु के अनुसार 30 से 35 मिनिट होगी तथा विद्यालय समय 4½ से 5 घटा होगा
2 प्रथम/द्वितीय अवकाश	10/25 "	10/25 "	10/20 "	
3 हिन्दी	12 कालाश	12 कालाश	9 कालाश	
4 गणित	6 "	9 "	9 "	
5 सामान्य विज्ञान	3 "	3 "	6 "	
6 सामाजिक ज्ञान	3 "	3 "	6 "	
7 क्रियात्मक प्रवृत्तिया (1) ललितकला (2) सगीत (3) चित्रकला (4) हाथ के काम	6	9	×	
8 शारीरिक शिक्षा	6 "	6 "	3 "	
9 तृतीय भाषा	×	×	3 "	
10 कार्यानुभव एव समाज सेवा	×	×	3 "	
11 अंग्रेजी	×	×	6 "	
कुल कालाश	36 "	42 "	48 "	

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक कक्षाओं हेतु निम्नांकित प्रावधान है —10

विषय	कालाश प्रति सप्ताह माध्यमिक कक्षा 9 व 10	उच्च माध्यमिक कक्षा 11
1 प्रथम भाषा (हिन्दी)	6 कालाश	9 कालाश
2 द्वितीय भाषा (अंग्रेजी)	9 "	9 "
3 तृतीय भाषा	3	×
4 सामान्य विज्ञान	5	×
5 सामाजिक ज्ञान	5	×
6 उद्योग	3	×
7 वैकल्पिक विषय (कोई तीन) प्रत्येक विषय	5×3=15	9×3=27
8 स्वास्थ्य शिक्षा	2	3
कुल कालाश	48 "	48 "

10 माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान निर्देशिका

नवीन शिक्षा योजना के अन्तर्गत विभिन्न कक्षाओं के लिए विषयवार समय निम्नांकित निर्धारित किया गया है —11

शाला समय का प्रतिशत कालांश/प्रति सप्ताह(प्रति कालांश 30-40 मिनिट) विषय	कक्षा 1 व 2	कक्षा 3 से 5	कक्षा 6 से 8	कक्षा 9 व 10
1 प्रथम भाषा	25 /	25 /	8 कालांश	6 कालांश
2 द्वितीय भाषा	—	—	5 ,,	5 ,,
3 तृतीय भाषा	—	—	— ,,	2 ,,
4 गणित	10 /	15 /	7 ,,	7 ,,
5 पर्यावरण अध्ययन (सामाजिक अध्ययन व सामान्य विज्ञान)	15 /	20 /	—	—
6 विज्ञान	—	—	7 ,,	7 ,,
7 सामाजिक विज्ञान (इतिहास,भूगोल,नागरिक शास्त्र व अर्थशास्त्र)	—	—	6 ,,	7 ,,
8 कार्यानुभव व कलाएँ	25 /	20 /	—	—
9 कार्यानुभव	—	—	5 ,,	5 ,,
10 कलाएँ	—	—	4 ,,	3 ,,
11 शारीरिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा व खेल	25 /	20 /	6 ,,	6 ,,
कुल समय	100 /	100 /	48 कालांश	48 कालांश

शिक्षा विभाग तथा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा विभिन्न कक्षाओं के विभिन्न विषयों के महत्व की दृष्टि से उनके अध्ययन का समय निर्धारित किया जाता है, अन्य नियमों का समय-तालिका के निर्माण में ध्यान रखा जाना आवश्यक है।

(1) अध्यापकों को कार्य का उचित आवंटन—शिक्षा के विभिन्न स्तरों के शिक्षकों की न्यूनतम योग्यताएँ एवं उनके कार्य भार(Work load) की मात्रा भी विभाग या बोर्ड द्वारा निर्धारित होती है। शिक्षण का उच्च स्तर बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक कक्षा एवं विषय का अध्यापन उचित योग्यता के धारक शिक्षक को ही दिया जाये तथा उसका कार्यभार (जिसमे कक्षा अध्यापन के

11 The curricularm for the ten year School (NCERT P / 29&30)

कालांश तथा पाठयक्रम सहगामी क्रियाकलापों या आवंटित कार्य भी सम्मिलित है) उचित मात्रा मे हो ताकि उसे रिक्त कालाशो मे अपने शिक्षण काय की तैयारी करने अथवा अपनी थकान दूर करने का समय मिल सके। विद्यालय के समस्त अध्यापको का काय भार सतुलित रखा जाना भी अपेक्षित है ताकि न्यूनाधिक काय-भार से अध्यापको मे असतोष उत्पन्न न हो। न्यूनतम योग्यता के अतिरिक्त प्रत्येक शिक्षक की व्यक्तिगत काय क्षमता अभिरूचि, एव अभिवृत्ति का ध्यान भी काय आवटन करते समय रखा जाना चाहिए। प्रत्येक काय को उचित योग्यता क्षमता एव अभिरूचि वाला अध्यापक ही कुशलता से सपादित कर सकता है। सस्था-प्रधान को शाला व्यवस्था के अतिरिक्त अध्यापन-कार्य हेतु निर्धारित कालाशों में कार्य करना चाहिए तथा अपनी काय क्षमता का आदर्श सभी अध्यापको के समक्ष रखना चाहिए।

(3) **थकान से बचाव**— समय-विभाग चक्र के निर्माण में विद्यार्थियों एव शिक्षकों की थकान का विशेष ध्यान रखा जाना आवश्यक होता है। अधिगम प्रक्रिया (Learning process) मे मन और शरीर दोनो ही कार्य करते हैं, अत: मानसिक एव शारीरिक दानों प्रकार की थकान होती है। थकान को ड्रेवर ने परिभाषित करते हुए कहा है कि—"शक्ति व्यय होने के बाद कार्य करने की कुशलता या योग्यता मे कमी को थकान कहते हैं।" 12 शारीरिक थकान फ्रीमैन के शब्दों में- "एक ऐसी अवस्था है जिसमे शरीर के तन्तु प्रतिक्रिया नहीं करते और शरीर शिथिल पड जाता है।"13 शारीरिक थकान में आलस्य का अनुभव होता है जिसका कारण ऑक्सीजन की खपत, रक्तचाप, मांसपेशियो का तनाव तथा शरीर मे हानिकारक (Toxic) रसायनों की उत्पत्ति होना है। सीखने की प्रक्रिया में शारीरिक थकान की अपेक्षा मानसिक थकान का प्रभाव शीघ्र दिखलाई देने लगता है। मानसिक थकान का सम्बन्ध काय मे रूचि (Interest) से होता है। वेलन्टाइन के अनुसार — 'मानसिक थकान साधारणत केवल ऊबना अर्थात् बोरियत (Boredom) होती है। जब तक व्यक्ति मे रुचि बनी रहती है तब तक उसे थकान का अनुभव नही होता है।' 14 अत विद्यार्थियो तथा शिक्षको की अधिगम प्रक्रिया मे सहभागिता को प्रभावी बनाये रखने हेतु समय तालिका के निर्माण मे शारीरिक तथा मानसिक थकान का ध्यान रखा जाना अपेक्षित है इस दृष्टि से निम्नांकित बिन्दु द्रष्टव्य है —

12 Drever A Dictionary of Psychology (P/94)
13 Freemen Theory & Practice of Psychological Testing (P/238)
14 Valentine : Educational Psychology

(i) शाला-समय एवं कालांशो की अवधि—शिक्षा विभाग तथा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा शाला–समय तथा कालांशो की अवधि विभिन्न आयु वर्ग के बालकों की अवधान (attention) क्षमता के अनुसार निर्धारित की जाती है। प्राथमिक कक्षाओं के छोटी आयु के विद्यार्थी अधिगम प्रक्रिया में अपने पाठ में अधिक देर तक ध्यान नहीं दे पाते, अतः उनके लिए शाला–समय व कालांश–अवधि कम रखे जाने चाहिए जबकि उच्च प्राथमिक माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियो में आयु परिपक्वता के कारण उनका अवधान अधिक समय तक टिक पाता है अतः उनके लिए शाला–समय व कालांश अवधि भी अपेक्षाकृत अधिक अवधि के हो सकते है। इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए।

(ii) ऋतु का प्रभाव–ऋतु अथवा मौसम का प्रभाव कार्य क्षमता पर पड़ता है। शरद ऋतु में ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा बालक शीघ्र नहीं थकते तथा वे अधिक देर तक कार्य कर सकते हैं। इसीलिए शरद ऋतु में ग्रीष्म की अपेक्षा शाला-समय अपेक्षाकृत अधिक अवधि का रखा जाता है तथा ग्रीष्म ऋतु में शाला–समय प्रातःकाल का होता है। ग्रीष्मावकाश भी इसी सिद्धान्त के अनुरूप किया जाता है। कुछ राज्यों में स्थान-विशेष के मौसम के अनुसार भी शाला–समय निर्धारित होना चाहिए जैसे राजस्थान में उच्च पर्वतों पर स्थित नगर आबू के विद्यालयों में ग्रीष्म की बजाय शरद ऋतु में लम्बा अवकाश रखा जा सकता है।

(iii) विषय क्रम थकान के निराकरण हेतु समय–तालिका में विषयों का क्रम भी विभिन्न कालांशों के लिए निर्धारित किया जाना चाहिए। प्रायः देखा गया है कि समय-तालिका में कठिन विषयों (जैसे गणित, अंग्रेजी भौतिक शास्त्र आदि) का लगातार कालांशो में रखा जाना बालकों की थकान में वृद्धि करता है। इसी प्रकार शारीरिक या प्रायोगिक कार्य से सम्बन्धी विषयो (जैसे पी टी, चित्रकला, उद्योग, कार्यानुभव, वैज्ञानिक विषयो का प्रायोगिक कार्य आदि) अथवा सैद्धांतिक विषयों को भी निरन्तर कालांशो में रखना थकान का कारण बनता है। अतः कठिन व सरल विषयों, सैद्धांतिक व प्रायोगिक या शारीरिक श्रम के विषयो तथा रुचिकर व अरुचिकर विषयों को निरन्तर कालांशो में न रखकर एकान्तर कालांशों में इस प्रकार रखा जाये कि बालक के अवधान पर अनावश्यक दबाव न पड़े और वह बोरियत के कारण थकान महसूस न करे। इस सिद्धान्त को परिवर्तन का सिद्धान्त (The Principle of change) भी कहा जा सकता है क्योंकि कार्य की एकरसता द्वारा उत्पन्न ऊब के निराकरण हेतु समय–तालिका में भिन्न प्रवृति के विषयो के

एकान्तर प्रावधान से काय में परिवतन या विभिन्नता उत्पन्न कर बालकों की रुचि एव अवधान को बनाये रखने की चेष्टा की जाती है। श्री निरजन कुमार ने इस तथ्य को इस प्रकार प्रकट किया है — 'हमें यह याद रखना चाहिए कि परिवतन भी विश्राम है। अत विषयों मे परिवतन बच्चो के लिए रुचि और विश्रामदायक होता है। इससे उन्हे विविधता का आनन्द मिलता है।'15 अत विषय एव पाठो मे परिवतन आवश्यक है।

(iv) सप्ताह के दिन— रविवार का दिन प्राय शालाओं मे अवकाश का दिन होता है। अत इस अवकाश के तुरन्त बाद वाला दिन सोमवार तथा इस अवकाश से पूव वाला दिन शनिवार क्रमश अवकाश भोगने के बाद की मन स्थिति एव आने वाले अवकाश के दिन की तीव्र आकाक्षा के कारण इन दिनों में बालको मे काय करने के लिए अधिक उत्साह एव स्फूर्ति नही होती अतः इन दिनो यथासभव ऐसे विषय न रखे जाये जो अधिक श्रमसाध्य हों अथवा कठिन विषयो का यदि इन दिनों प्रावधान भी हो तो ऐसे विषयों के सरल और रोचक अशो का ही अध्ययन किया जाय। सप्ताह के दिनो के समय-तालिका मे प्रभावी प्रावधान हेतु डा एस एम माथुर के विचार हैं कि—"समय विभाग-चक्र बनाने मे इस बात को ध्यान म रखना चाहिए कि किसी विषय के सबसे कठिन भागो को मगलवार एव बुधवार का पढाया जाय और सबसे सरल शनिवार को। इसके अतिरिक्त शनिवार को अधिक समय विषय की शिक्षा की ओर न देकर सहगामी क्रियाओ की ओर लगा देना चाहिए।"16

(v) अन्तरालो का प्रावधान शाला की दनिक समय–तालिका में बालकों की थकान के निराकरण और अन्य अनिवाय आवश्यकताओ (जैसे पानी पीने व लघु शका करने) के लिए अन्तरालों का प्रावधान किया जाता है। प्राय समय-तालिका 8 कालाशो मे विभक्त होती है जिसमें एक अन्तराल मध्य म चौथे कालांश के बाद किया जाता है जो 30 मिनिट की अवधि का होता है। किन्तु उपरोक्त कारणो से समय–तालिका में दो अन्तराल (Intervals) का प्राव धान किया जाना उचित रहता है — पहला अन्तराल दूसरे कालाश के बाद 10 मिनिट की अवधि का हो जिसमे बालक पानी पीने व लघुशका आदि से निवृत्त हो सकते हैं तथा दूसरा अन्तराल पाचवे कालाश के बाद लम्बी अवधि (लगभग 20 25 मिनिट) का होना चाहिए जिसमे बालक मध्यान्ह भोजन (Midday meals)

15 निरजन कुमार सिंह शिक्षालय सगठन (पृष्ठ 224)
16 डा एस एस माथुर विद्यालय सगठन एव स्वास्थ्य शिक्षा („ 106)

कर पुन स्फूर्ति भी अर्जित कर सकें तथा कुछ देर विश्राम कर सकें। इनके अतिरिक्त प्रत्येक कक्षा के लिए उनके विषय से सम्बद्ध आकाशवाणी प्रसारण (School Broad cast) के लिए भी सप्ताह मे एक दिन कार्यक्रम के अनुसार अंतराल किया जाना चाहिए जो विविधता एव रोचकता के साथ उपयोगिता की दृष्टि से आवश्यक है। इन अंतरालो के पश्चात् कालाशो मे बालको की स्फूर्ति के अनुरूप कठिन विषयो का अध्ययन किया जा सकता है।

इस प्रकार समय-तालिका मे थकान के निराकरण हेतु उचित प्रावधान कर विद्यार्थियो की रुचि एव अवधान को बनाये रख कर अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाना चाहिए। शिक्षको की थकान के निराकरण हेतु उनके लिए समय तालिका मे रिक्त कालाशो की चर्चा पहले की जा चुकी है।

(4) शिक्षको तथा छात्रो में सम्पर्क — समय-तालिका मे सभी शिक्षको का अधिकाधिक विद्यार्थियो के सम्पर्क में आने का अवसर प्रदान करने का भी प्रावधान यथासभव किया जाना चाहिये। इससे अनेक लाभ हैं— शाला परिवार एव अनुशासन की दृष्टि से सभी शिक्षको और विद्यार्थियो में आत्मीयता की भावना विकसित होती है, योग्य एव कुशल शिक्षको का लाभ अधिकाधिक छात्रो को मिलता है विद्यार्थियो की व्यक्तिगत, शैक्षिक एव व्यवसायिक समस्याओ के निराकरण हेतु उन्हे शिक्षको से मार्गदर्शन और परामर्श मिलता है तथा छात्र की अभोन्नति के साथ शिक्षको से उसका निरन्तर सपर्क बना रहता है। शिक्षक छात्र सपर्क हेतु प्रत्येक शिक्षक को यथासभव शाला की छोटी तथा बडी दोनो स्तर की कक्षाओ का शिक्षण कार्य देना चाहिए तथा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओ के माध्यम से उसे अधिकाधिक विद्यार्थियो के सम्पर्क मे आने का अवसर देना चाहिए।

(5) स्पष्टता एव पूर्णता — समय-तालिका की स्पष्टता से तात्पर्य यह है कि यह इतनी जटिल व पेचीदी न बनाई जाय। शिक्षक और विद्यार्थी उसे समझने व याद रखने में कठिनाई का अनुभव न करे और उन्हे प्रतिदिन एव प्रत्येक कालाश के पूर्व समय-तालिका देखना पडे कि उन्ह क्या पढना या पढाना है। जटिल समय-तालिका से एक ही कालाश मे एक से अधिक शिक्षको का एक ही कक्षा में आ जाने की आशका रहना, विषयो व स्थान परिवर्तन के कारण विद्यार्थियो का प्रत्येक कालाश के बाद इधर से उधर दौडना तथा कक्षा मे विद्यार्थियो द्वारा वाछित पाठ्य-सामग्री न ला सकना आदि कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं। अत समय तालिका यथा सभव सरल, स्पष्ट एव बोधगम्य होनी चाहिए

जिससे शिक्षक एव विद्यार्थियों मे कोई भ्रम उत्पन्न न हो । विषयो का कालाशा मे उल्लेख कर देना पर्याप्त है, विषय-शिक्षण सबन्धी विस्तृत विवरण देन की आवश्यकता नही है जो शिक्षक के विवेक पर छोड देना चाहिए । समय-तालिका का पूर्णता का अर्थ यह है कि उसमे प्रत्येक कक्षा के पाठयक्रम के अनुसार समस्त विषयो के शिक्षण तथा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलापो का उल्लेख सक्षेप मे उचित कालाशो प्रभारी अध्यापक एव स्थान विशेष के साथ किया जाये। क्रियाकलापो (activities) की विस्तृत समय-तालिका पृथक से बनाई जाये । इस प्रकार समय-तालिका मे स्पष्टता एव पूर्णता होनी चाहिए ।

(6) स्थिरता एव नमनीयता—समय तालिका की स्थिरता से यह अभिप्राय है कि उसमे समय-समय पर अनावश्यक परिवर्तन कर उसे अस्थिर न बनाया जाय अन्यथा उससे शिक्षको एव विद्यार्थियो मे असतोष उत्पन्न हो सकता है तथा शाला कार्य मे अनिश्चितता व्याप्त हो जाती है । नमनीयता से तात्पर्य यह है कि समय-तालिका इतनी कठोर भी न हो कि छात्र हित एव किसी विषय के पाठ की प्रकृति के अनुकूल उसमे परिवर्तन व सशोधन करना असम्भव हो । किशनचन्द जैन के शब्दो मे—"समय तालिका विद्यालय कार्य को सरलता से एव निर्विघ्न सम्पन्न करने का एक साधन है । अत उसका कठोर तथा सदा के लिए एक रूप मे निश्चित होना वाछनीय नही है । विद्यालय मे छात्र तथा शिक्षक की आवश्यकतानुसार उसमे परिवर्तन करना सभव होना आवश्यक है 17 किन्तु नमनीयता का अर्थ यह नही कि समय तालिका मे बार-बार अनावश्यक परिवर्तन कर उसे अस्थिर एव अनिश्चित बना दिया जाये । उदाहरण के लिये यदि किसी विषय के अमुक पाठ को प्रायोजना विधि से पढाने हेतु उसके लिय समय तालिका मे दिये एक कालाश के स्थान पर दो या तीन कालाशो का समय अपेक्षित है तो ऐसा परिवर्तन किया जाना अपेक्षित है । इस प्रकार के परिवर्तन पूर्व नियोजित तथा सबद्ध अध्यापको एव प्रधानाध्यापक की सहमति से किये जाने चाहिए ।

(7) शोर अथवा कोलाहल का वितरण —जिन विषयो के शिक्षण मे शोर या कोलाहल होने की सभावना रहती है उन्हे समय और स्थान दोनो ही दृष्टियों से क्रमश भिन्न कालांशो मे तथा दूर स्थित कक्षो मे रखना चाहिए ताकि शोर का वितरण हो सके । समय-तालिका मे इस बात का यथा सभव ध्यान रखा जाय कि शोर वाले विषय विभिन्न कालांशों में पढाये जायें तथा अधिक शोर वाले विषयो को कक्षा के मध्य शांति पूर्वक पढे जाने वाले विषय का कक्ष रखा जाये।

17 किशनचन्द जैन शैक्षिक सगठन, प्रशासन एव पर्यवेक्षण (पृ 70)

अधिक शोर उत्पन्न करने वाले विषय हैं—भाषा, व्याकरण मौखिक पाठ, इतिहास आदि तथा शोर न करने वाले विषय हैं—सुलेख, चित्रकला, गणित आदि।

(8) विद्यार्थियों को वैकल्पिक विषयों के चुनाव की सुविधा— वतमान शिक्षा क्रम के अनुसार अनिवाय विषयों के अतिरिक्त कुछ वैकल्पिक विषयों का चुनाव विद्यार्थियों को करना पडता है। प्राथमिक एव उच्च प्राथमिक कक्षाओं मे वैक-ल्पिक विषयों के चुनाव मे कोई कठिनाई नहीं आती क्योंकि केवल एक वैकल्पिक विषय चुनना होता है जैसे कोई एक उद्योग तथा चित्रकला एव वाणिज्य मे से कोई एक विषय और इनका कालाश भी एक ही रहता है। वैकल्पिक विषयों के चुनाव मे कठिनाई माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक कक्षाओं मे जब आती है जब कि उन्हें किसी एक सकाय(Faculty)के कोई तीन वैकल्पिक विषयों का चुनाव करना होता है और समय तालिका के किसी एक कालाश मे दो या दो से अधिक विषयों का प्रावधान होता है। ऐसी स्थिति मे विद्यार्थी एक ही कालांश मे पढाये जाने वाले विषयों का चुनाव नही कर सकता। अत यथासभव समय-तालिका मे प्रत्येक वैकल्पिक विषय को पृथक कालांश देना चाहिए ताकि विद्यार्थी को उसकी रूचि के अनुसार शाला मे पढ़ाये जा रहे उसे अधिक विषयो मे से किन्ही 3 का चुनाव करने की स्वतन्त्रता हो।

(9) उपलब्ध साधन सुविधाएँ— समय-तालिका के निर्माण म विद्यालय मे उप-लब्ध साधन-सुविधाओं (शिक्षण सहायक उपकरण,कक्ष, प्रयोगशाला, उद्योग व कार्यानुभव की काय-शालाएँ आदि) का ध्यान रखा जाना चाहिये। उदाहरण के लिए उपलब्ध कक्षो के अनुसार ही शिक्षण काय की व्यवस्था एव कक्ष के आकार के अनुरूप ही कक्षा मे छात्रो की सख्या का ध्यान रखना पडेगा इसी प्रकार प्रयोग शाला और कायशाला की सख्या, आकार एव उपकरणों के अनुरूप कालांशो का वितरण करना होगा, खेल के उपलब्ध मैदानो के अनुसार ही खेलो के लिये विद्या थियो के वर्ग बनाने होगे व उनका दिन व समय निश्चित किया जायेगा। विद्या-लय ससाधनो (Resources) को दृष्टिगत रखते हुए समय तालिका का निर्माण किया जाना चाहिए।

(10) गृह-कार्य का उचित आवटन—प्राय सामान्य समय विभाग चक्र मे विद्या-र्थियो को विभिन्न विषयो मे दिये जाने वाले गृह कार्य का उल्लेख नही होता तथा कुछ विद्यालयो मे गृह काय की पृथक समय तालिका बनाई जाती है। किन्तु गृह काय की दृष्टि से आजकल विद्यालयों मे व्याप्त अनेक अनियमितताओ के निराकरण हेतु यदि समय-विभाग चक्र मे ही गृह कार्य के विषयवार दिवस एव उसकी मात्रा

निर्धारित कर दी जाये तो वांछनीय होगा। कक्षा कार्य एवं गृह-कार्य एक दूसरे के पूरक होते हैं तथा विद्यार्थी की अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाते हैं अतः गृह कार्य की उपेक्षा करना वांछनीय नहीं है। प्रत्येक कक्षा के विद्यार्थियों के आयु वर्ग की योग्यता एवं क्षमता के अनुकूल उचित मात्रा में गृह कार्य दिया जाना चाहिए प्रतिदिन 2 या 3 विषयों में ही उचित मात्रा में यह गृह कार्य आवंटित किया जावे ताकि वह विद्यार्थी के लिये भार स्वरूप सिद्ध न हो तथा उसका उचित संशोधन भी शिक्षक द्वारा किया जा सके। समय-तालिका में पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार गृह कार्य के आवंटन हेतु दिशा-निर्देश दिया जाना चाहिए।

समय-विभाग-चक्र के प्रकार

विद्यालय स्तर के अनुसार तो समय-विभाग-चक्र नियमानुसार बनाये ही जाते हैं किन्तु एक ही विद्यालय की समय-तालिका को विभिन्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है जिससे अभीष्ट पक्ष स्पष्ट हो सकते हैं। ये प्रकार निम्नांकित हो सकते हैं —

(1) सामान्य समय-विभाग-चक्र (Ceneral Time table) - इस प्रकार का समय विभाग चक्र बनाया जाना प्रत्येक विद्यालय के लिए नितान्त आवश्यक है जिसकी एक एक प्रतियाँ प्रधानाध्यापक कक्ष, शिक्षक कक्ष तथा शाला के नोटिस बोर्ड पर प्रदर्शित करना चाहिये। इस तालिका में प्रत्येक शिक्षक, कक्षा, क्रिया-कलाप तथा कक्ष या स्थान का कालांश क्रम से अंकन किया जाता है।

(2) शिक्षक-क्रम समय तालिका (Teacherwise Time Table) – इस तालिका में प्रत्येक शिक्षक क्रम से उनसे संबंधित कार्य दिवस, कक्षा एवं विषय के रूप में प्रदर्शित होता है तथा उनके रिक्त कालांश भी होते हैं जिसके आधार पर किसी अन्य शिक्षक की अनुपस्थिति में उसके कार्य को सम्पन्न करने हेतु अथवा अपने ही विषय के शिक्षण हेतु रिक्त कालांश वाले शिक्षकों को प्रतिनियुक्त किया जा सकता है। यदि इस तालिका में अनुपस्थित रहने वाले प्रत्येक शिक्षक के कालांशों के स्थानापन्न शिक्षक (Substitut Teacher) का उल्लेख किया जाये तो विद्यार्थियों व शिक्षकों दोनों को ही आवश्यक सूचना नियोजित रूप से मिल सकती है तथा शाला व्यवस्था में कोई व्यवधान भी नहीं आ पाता। इस तालिका से प्रत्येक शिक्षक का कार्य भार (Work Load) भी ज्ञात हो जाता है।

(2) कक्षाक्रम समय तालिका (Classwise Time Table)-इसमें प्रत्येक कक्षा के समक्ष कालांशक्रम से सम्बन्धित शिक्षक का नाम एवं करणीय कार्य को दर्शाया

जाता है। इससे प्रधानाध्यापक को हर समय यह ज्ञात रहता है कि अमुक कालाश मे अमुक काय हो रहा है ।

(4) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलापो की समय तालिका (Co Curricular Activiting Time Table)—विद्यार्थियो के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से तालिका आवश्यक है । इसम शाला मे चल रही समस्त क्रियाकलापो (साहित्यिक सामाजिक, सास्कृतिक, खेलकूद, स्काउटिंग, एन सी सी समाज-सेवा आदि) का सप्ताह के एक दिन (प्राय शनिवार) तथा प्रतिदिन अतिम कालाश में सचालन के प्रभारी एव सहायक अध्यापको एव सभागी विद्यार्थियो के वग (Group) व उस वग के केप्टेन, मानीटर, दल नायक आदि का अकन किया जाता है। माध्यमिक शिक्षा बोड, राजस्थान द्वारा माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक शालाओ मे पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलापो मे प्रत्येक विद्यार्थी का सभागत्व (Particippation) तथा उसका सत्र मे दो बार मूल्याकन अनिवार्य कर दिया है। अत प्रत्येक क्रियाकलाप तथा प्रत्येक विद्यार्थी के अभिलेख (Record) रखने व उसका मूल्याकन करने हेतु इस प्रकार की तालिका आवश्यक है।

(5) विद्यालय की पारीक्रम से समय-तालिका—(Shiftwise Time Table)—केवल उन बड़े विद्यालयो मे विशेषकर नगरो मे जहा छात्र सख्या अधिक होती है तथा स्थानाभाव होता है, विद्यालय दो या अधिक पारियो (Shifts) मे चलाये जाते हैं। प्रथम पारी मे प्राय उच्च प्राथमिक या छोटी कक्षाए होती है तथा दूसरी पारी मे बडी कक्षाएँ होती है। तीन पारियो का चलना शाला-भवन एव शिक्षक सख्या पर निभर होता है। ऐसे विद्यालयो म कालाशो की अवधि कुछ कम होती है। प्रत्येक पारी की सामान्य समय तालिका तथा अन्य उपरोक्त प्रकार की तालिकाएँ बनाई जा सकती है।

(6) गृह काय समय तालिका—(Home assignment Time Table)—यद्यपि पूर्व म सामान्य समय तालिका मे ही गृह काय को सुनियोजित सतुलित रूप से प्रदर्शित करने का सुझाव दिया गया है किन्तु यदि ऐसा सभव न हो तो पथक से विषय एव कक्षा क्रम से गृह काय की समय तालिका बनाया जाना वांछनीय होगा। इस तालिका से गृह काय विद्यार्थियो व शिक्षको पर भार स्वरूप न बन कर सतुलित मात्रा म हो सकेगा तथा उसका समुचित सशोधन (Correction) किया जाकर उसकी गुणवत्ता (quality) का स्तरोन्नयन भी हो सकता है।

समय-विभाग-चक्र का उदाहरण

उपरोक्त वर्णित तथ्यो के आधार पर समय तालिका के प्रत्येक प्रकार का निमाण किया जा सकता है। समय तालिका के निमाण मे प्रयत्न दूरदर्शिता, अनुभव एव परिश्रम की अपेक्षा होती है। अत यह काय विद्यालय के प्रधान या उसके वरिष्ठ सहयोगी अध्यापको द्वारा सम्पन्न किया जाना चाहिए जिससे किसी को अनावश्यक असन्तोष न हो। स्थानाभाव के कारण यहा केवल एक अध्यापकीय शाला की समय तालिका का नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है —

कक्षा कालाश	1	2	3	4		5	6	7	8
I	हिन्दी❁	हिन्दी (नकल करना)	कला	गणित❁		हिन्दी पहाडे लिखना	उद्योग	गिनती बोलना	खेल
II	हिन्दी❁	कला	गणित❁	सामाजिक ज्ञान❁		उद्योग	सामान्य विज्ञान❁	पहाडे बोलना	खेल
III	उद्योग व कार्यानुभव	उद्योग व कार्यानुभव	गणित❁	कला	अन्तराल (Recess)	खेल	हिन्दी❁	सामान्य विज्ञान❁	सामाजिक ज्ञान❁
IV	उद्योग व कार्यानुभव	गणित❁	उद्योग व कार्यानुभव	कला		हिन्दी❁	सामान्य विज्ञान❁	खेल	सामाजिक ज्ञान❁
V	उद्योग	गणित❁	उद्योग व कार्यानुभव	सामाजिक ज्ञान❁		हिन्दी❁	कला	अंग्रेजी❁	सामान्य विज्ञान❁

नोट — (1) शिक्षक प्रत्यक कालाश मे जिन कक्षाओ मे काय करेगा वहा (❁) चिह्न अंकित किया गया है।

(2) समय विभाग चक्र मे कक्षाएँ पृथक दर्शायी गई है। यह केवल समझाने की दृष्टि से किया गया है किन्तु एक अध्यापकीय शाला मे सभी कक्षाओ के बालक एक साथ ही बैठते हैं। अत बालको पर शिक्षक का सीधा नियन्त्रण बना रहता है।

18 डॉ शिवकुमार व रमेश चन्द्र शर्मा, नवीन शिक्षा सिद्धान्त, शिक्षण पद्धतियाँ एव विद्यालय व्यवस्था (पृष्ठ 249)

समय-विभाग-चक्र तथा विकासमान शिक्षण-पद्धतियां

पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि समय-विभाग-चक्र में अधिक स्थिरता नहीं होनी चाहिए तथा इसमें आवश्यकतानुसार नमनीयता (Flexibility) होनी चाहिए। आधुनिक शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के फलस्वरूप नवीन विकासमान शिक्षण पद्धतियों को प्राथमिकता दी जा रही है जिनके लिए रूढ़िवादी स्थिर समय विभाग-चक्र को निरर्थक एवं अनावश्यक बतलाया जा रहा है। प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री जॉन डिवी (John Dewey) इस नवीन विचारधारा के प्रवर्तक हैं। उनका कथन है कि—"समय विभाग-चक्र की बात कोरी कल्पना है। समय-विभाग विषयों की दृष्टि से नहीं, बल्कि क्रियाकलापों (Activities) की दृष्टि से निर्धारित करने के प्रयत्न होने चाहिए। किसी उपयोगी कार्य को ही केन्द्र मानकर उसी के आधार पर अन्य विषयों की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।"19 डॉ० एस.एस. माथुर के शब्दों में—"नवीन शिक्षा पद्धतियों में विषय का शिक्षण क्रियाओं के चारों ओर केन्द्रित होता है अतएव अब जिन विद्यालयों में नवीन शिक्षा पद्धतियों के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाती है वहां पर समय विभाग चक्र को कोई महत्व नहीं दिया जाता।"20 डाल्टन प्लान (Dalton plan) तथा प्रायोजना विधि (Project method) इसी प्रकार की विकासमान शिक्षण विधियां हैं।

इस नवीन विचारधारा के मूल में तीन बिन्दु प्रमुख हैं—(1) बालक को अधिगम (Learning) की स्वतन्त्रता होनी चाहिए न कि कालांशों में विषयों को पढ़ने की विवशता हो, (2) ऐसे बालकों में वैयक्तिक विभिन्नताएँ (Individual Differences) होती हैं अतः उन्हें अपनी गति से सीखने का अवसर दिया जाना चाहिए, तथा (3) ज्ञान अखण्ड तथा अविभाज्य होता है, अतः विषयों को कालांशों के कटघरे में बन्द कर नहीं पढ़ाया जाना चाहिए। किन्तु इस नवीन विचार धारा के अनुकूल नई शिक्षण विधियों के प्रयोग हेतु न तो हमारा देश इतना साधन सम्पन्न है, और न उसके अनुकूल परिस्थितियां ही हैं। अतः किशनचन्द जैन का यह मत उपयुक्त जान पड़ता है कि—"इस प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों की संख्या हमारे देश में नगण्य है परन्तु प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय के कार्यक्रमों में नवीन पद्धतियों का आंशिक समावेश किया जा सकता है। और यह समय तालिका में भी तदनुसार प्रावधान किया जाना अपेक्षित है। 21 कथन सभी स्तर के विद्यालयों के लिए उपयुक्त प्रतीत होता है। समय-विभाग-चक्र में नवीन शिक्षण-विधियों के अनुकूल यदाकदा परिवर्तन किया जाना चाहिए। यह परिवर्तन पूर्व नियोजित होना चाहिए।

19 निरंजन कुमार सिंह शिक्षालय-संगठन (पृष्ठ 229
20 डा० एस.एस. माथुर विद्यालय संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (,, 1
21 किशनचन्द जैन, शैक्षिक संगठन, प्रशासन एवं पर्यवेक्षण (,,

समय विभाग-चक्र की परिसीमाएँ तथा सावधानियाँ

समय-विभाग चक्र से सबंधित उपरोक्त विवेचन म प्रसगानुकूल इसकी परिसीमाओं एव उनके निराकरण की चर्चा की जा चुकी हैं। फिर भी इनका सक्षेप म यहा उल्लेख कर देना उचित रहेगा। विभागीय एव बोर्ड के नियमो के अनुपालन मे समय-तालिका के निर्माण मे कुछ कठिनाईया आना स्वाभाविक है किंतु विवेकपूर्वक उनका निराकरण भी अध्यापक एव प्रधानाध्यापक मिल कर कर सकते हैं। प्रथम कठिनाई शिक्षकों म कार्य का सतुलित आवटन करने म होती है। कुछ अधिक योग्य एव कुशल अध्यापको को कार्य भार अपेक्षाकृत अधिक ही दिया जाता है जिससे उनम असतोष उत्पन्न हो सकता है। इसका निराकरण समय तालिका बनाने समय यथा सम्भव शिक्षकों से परामर्श करना चाहिए तथा उनकी योग्यता एव रुचि के अनुकूल उन्हें कार्य सौंपा जाना चाहिए। दूसरी कठिनाई यह होती है कि कुछ कठिन विषयो को समय कम मिल पाता है जिससे सत्र मे पाठ्यक्रम समाप्त नही हो पाता। इसका निराकरण अन्य विषयों के अध्यापको के सहयोग से किया जा सकता है। तीसरी कठिनाई को कालांशो मे विभाजित कर पढाने से उत्पन्न होती है। कुछ विकासमान शिक्षण विधियो के लिये निर्धारित कालाशों से अधिक समय की अपेक्षा होती है अथवा किसी रोचक पाठ का कालांश समाप्त होते ही अपूर्ण छोडना पडता है। इसका समाधान भी शिक्षकों के परस्पर सहयोग से किया जा सकता है। चौथी समस्या कक्षा-अध्यापन के समय वैयक्तिक विभिन्नताओं की दृष्टि से मेधावी एव मद बुद्धि छात्रो पर ध्यान नही दिया जा सकता। इसके लिये शाला-समय के अतिरिक्त सबधित कार्यक्रमो (Enrichment programs) व उपचारात्मक शिक्षण (Remedial Teaching) की व्यवस्था करनी चाहिए। पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलापो के लिये आवश्यक समय न निकल पाना पाँचवी कठिनाई होती है। शनिवारीय कार्यक्रमो के लिये पढाई के कालाशो को छोटा कर अथवा एकातर शनिवारों का प्रथम चार व अतिम चार कालाशो का शिक्षण-कार्य कर समय निकाला जा सकता है। छठी कठिनाई किसी दिन अधिक अध्यापको के अनुपस्थित रहने से स्थानापन्न-शिक्षकों (Substitute Teachers) की व्यवस्था न हो पाने से उत्पन्न होती है। ऐसे अवसरो पर उपलब्ध अध्यापको से ही शिक्षण-कार्य की समय तालिका सजाकर अथवा किसी क्रिया-कलाप मे विद्यार्थियो को व्यस्त रखकर शाला व्यवस्था बनाये रखना चाहिए। समय-विभाग-चक्र-की परिसीमाओं को दृष्टिगत रख कर विवेक से शाला-कार्य की व्यवस्था की जानी वाछनीय है।

उपसहार —

वतमान परिस्थितियो मे शाला-व्यवस्था की दृष्टि से समय विभाग चक्र एक अत्यन्त उपयोगी एव अपरिहार्य उपकरण है जिसकी धुरी पर विद्यालय के समस्त क्रियाकलाप परिभ्रमण करते हैं तथा इस के आधार पर उपलब्ध मानवीय एव भौतिक ससाधनो का समुचित उपयोग किया जा सकता है। किन्तु इसका प्रतिबन्ध कठोर नही होना चाहिए। आवश्यकतानुसार इसमे परिवतन परिवद्धन एव सशोधन यदा कदा होते रहना शक्षिक एव मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वाछनीय हैं।

मूल्याकन (Evaluation)

(अ) लघुत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 एक माध्यमिक विद्यालय के एक सौ छात्रो को, तीन प्रमुख खेलों मे समाहित करते हुए, एक व्यवहारिक साप्ताहिक समय विभाग चक्र बनाइये। (बी एड 1985) (बी एड पत्राचार 1984)

2 विद्यालय की समय सारिणी बनात समय हमे किन पाच मुख्य बातो का ध्यान रखना चाहिए ? (बी एड पत्राचार 1985)

3 कायशील विद्यालयी समय-विभाग चक्र की पाच विशेषताएँ लिखिये। (बी एड 1985)

4 विद्यालय समय विभाग चक्र बनाते समय हमे कौन-कौन सी सावधानिया अपनानी चाहिए ? (बी एड 1984)

5 विद्यालय की समय-सारिणी के माध्यम से थकान के तत्व को न्यूनतम करने के लिए पाच सुझाव दीजिये। (बी एड पत्राचार 1984)

6 विद्यालय के लिए एक समय-विभाग-चक्र का निर्माण करने म आप किन दो सिद्धान्तो को ध्यान मे रखेगे ? (बी एड 1979)

7 थकान का असर कम करने की दृष्टि से आप माध्यमिक कक्षा के समय-विभाग चक्र मे क्या क्या परिवतन करना चाहेंगे ? (बी एड 1978)

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1 विद्यालय के प्रधानाध्यापक को समय सारिणी से सम्बन्धित किन कठिनाईयो तथा समस्याओ का सामना करना पडता है ? इन्हें सुलझाने के लिए उसे क्या उपाय करने चाहिए ? (बी एड पत्राचार 1985)

2 विद्यालय समय सारिणी बनाते समय किन किन आधारभूत सिद्धान्तो को ध्यान में रखना चाहिए ? (बी एड 1981)

3 समय सारिणी बनाते समय आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों का विवेचन कीजिए और बताइये कि उसे कस दूर किया जाय ?

4 विद्यालय समय सारिणी की आवश्यकता एव महत्व की विवेचना करें।

अध्याय
१२

विद्यालय-अभिलेख सधारण
(School Records)

[विषय प्रवेश– विद्यालय अभिलेख सधारण (रख रखाव) का महत्व, विद्यालय अभिलेखो के प्रकार एव सधारण नियम (क) छात्र सम्बधी अभिलेख, (ख) लेखा सम्बधी अभिलेख, (ग) सस्थापन (सेवा) अभिलेख, (घ) परीक्षा अभिलेख, (ङ) अध्यापक दैनन्दिनी (डायरी)—उपसहार परीक्षापयोगी प्रश्न]

विषय-प्रवेश –

विद्यालय एक सामाजिक सस्था है। विद्यालय-सगठन एव प्रशासन हेतु प्रधानाध्यापक को विद्यालय से सबद्ध अनेक घटको— शिक्षक, विद्यार्थी, अभिभावक अन्य कर्मचारी, शिक्षाधिकारी आदि से अनवरत सम्पर्क बनाये रखना होता है तथा भौतिक साधना व विद्यालय की प्रगति का लेखा-जोखा अकित करना होता है। इसके लिए विभिन्न प्रकार के अभिलेखो (Records) की आवश्यकता होती है जो विद्यालय कार्यालय मे रखे जाते हैं। यद्यपि प्राथमिक एव उच्च प्राथमिक विद्यालयो मे अभिलेखो के सधारण (रख रखाव) हेतु लिपिक का प्रावधान नही होता किन्तु प्रधानाध्यापक अध्यापको के सहयोग से यह कार्य सम्पन्न करता है। विद्यालय के विभिन्न पक्षो— छात्र, सस्थापन, लेखा, परीक्षा, शैक्षिक, पुस्तकालय, सह शैक्षिक प्रवृत्तियो आदि से सबद्ध पक्षो—की प्रगति का नियमित लेखा जोखा रखने हेतु कुछ आवश्यक पजिकाओं (Registers) तथा पत्रावलिया (Files) के रूप मे अभिलेखो का सधारण करना आवश्यक है। इन अभिलेखो के सधारण-नियमो से अवगत होना भी वाछनीय है। प्रस्तुत अध्याय मे प्राथमिक एव उच्चप्राथमिक विद्यालयो में प्रयुक्त अभिलेखो एव उनके सधारण नियमो का परिचय दिया जा रहा है।

विद्यालय अभिलेखो का महत्व —

विद्यालय अभिलेखो का महत्व प्रकट करते हुए आत्माराम शर्मा ने कहा है कि— "पाठशाला समाज द्वारा सस्थापित एक स्थायी सस्था है और स्थायी सस्था के लिए आवश्यक है कि उसका कोई इतिहास भी हो, उसमें अपनी परम्पराएँ हो। इन सब का

स्थायी रूप से बना रहना तब सम्भव है जबकि उसका लेखा नियमित रखा जाये।' 1 विद्यालय के अभिलेखो की सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे महत्ता को किशन चन्द जैन ना भी इन शब्दो मे प्रकट किया है—"विद्यालय एक सामाजिक सस्था है जो अभिभावको, छात्रो, सरकार तथा समाज के प्रति उत्तरदायी होती है। इसलिये प्रत्यक सरकारी एव मान्यता प्राप्त विद्यालय के लिए कुछ अभिलेख, प्रतिवेदन एव रजिस्टर रखने आवश्यक होते हैं, जिससे उसके विकास उसकी भूतकालीन तथा वतमान दशा उसके उद्देश्यो, उसकी आकाक्षाओ एव उपलब्धियो तथा उसकी काय दक्षता एव उपयोगिता का स्पष्ट ज्ञान हो सके।"2 विद्यालय-अभिलेखो का समुचित सधारण निम्नाकित उद्देश्यो की पूर्ति करने के कारण महत्वपूर्ण होते हैं -

(1) राज्य सरकार के नियमो के अनुकूल काय करने हेतु (2) शैक्षिक कायक्रम की प्रभावोत्पादकता के मूल्याकन हेतु, (3) अभिभावको के विद्यालय स निकट सम्बन्धो के विकास हेतु, (4) शैक्षिक नियोजन हेतु, (5) विद्यालय की वित्तीय एव सम्पत्ति सम्बन्धी लेखा जोखा रखने हेतु, (6) विद्यालय के प्रभावी सगठन हेतु, (7) विद्यालय कर्मचारियो का सेवा लेखा रखने हेतु (8) शिक्षाधिकारियो से सम्पक बनाये रखने हेतु (9) विद्यार्थियो की प्रगति से उन्हे तथा अन्य सबद्ध व्यक्तियो को अवगत कराने हेतु, (10) विद्यार्थियो के मूल्याकन एव क्रमोन्नति हेतु।

विद्यालय-अभिलेखो के प्रकार एव सधारण (रख-रखाव) के नियम

प्राथमिक एव उच्च प्राथमिक विद्यालयो मे शिक्षा विभाग, राजस्थान द्वारा निर्धारित निम्नाकित अभिलेखो का सधारण आवश्यक है—

[क] सामान्य अभिलेख (छात्र प्रवेश उपस्थिति एव परीक्षा सहित)

(1) पत्र प्राप्ति रजिस्टर, (2) पत्र प्रेषण पुस्तिका, सा प्र 1, (3) पत्रवाहक पुस्तिका—सा प्र 2 (3) अभिदशक पुस्तिका (Visitors Book), (5) निरीक्षण पुस्तिका (Log Book) (6) अध्यापक डायरी, (7) प्रधानाध्यापक द्वारा परिवीक्षण पुस्तिका (8) आदेश/सूचना रजिस्टर (Order Book), (9) पत्रावली पुस्तिका सा प्र 3 (10) परीक्षा परिणाम पुस्तिका, (11) स्कालर रजिस्टर (12) छात्र उपस्थिति रजिस्टर (कक्षावार) (13) स्थानान्तरण

1 आत्माराम शर्मा विद्यालय सगठन (पृष्ट 287)

2 किशनचन्द जैन शैक्षिक सगठन, प्रशासन एव पयवेक्षण („ 178)

3 'शिक्षा-सहिता' प्रस्तावित प्रारुप— 1978 (शिक्षा विभाग, राजस्थान, बीकानेर (अध्याय-16)

प्रमाण-पत्र पुस्तिका (T C Book), (14) छात्र प्रगति पुस्तिका (Progress Report), (15) छात्र दण्ड पुस्तिका, (16) शुल्क मुक्ति पुस्तिका।

[ख] वित्तीय एव लेखा सम्बन्धी अभिलेख—

(1) रोकड बही (राजकीय) (2) रोकड बही (छात्र कोष), (3) डाक टिकट का रजिस्टर, (4) स्टॉक (स्थायी भण्डार) रजिस्टर, (5) स्थायी तथा उपयोज्य सामान का अवदान (Issue) रजिस्टर, (5) लेखन सामग्री (Stationary) रजिस्टर, (6) त्योहार अग्रिम का वसूली रजिस्टर–जी ए 185 एव (7) शुल्क प्राप्ति रजिस्टर, (8) छात्रवृत्ति रजिस्टर, (9) रसीद बुके जारी करने का रजिस्टर, (10) प्राथमिक एव उ प्रा विद्यालयों द्वारा जिला शिक्षाधिकारी को भेजे गये एव प्राप्त बिलो का विवरण।

[ग] सस्थापन सम्बन्धी अभिलेख—

(1) उपस्थिति (कर्मचारी) रजिस्टर जी ए 159 (2) आकस्मिक अवकाश रजिस्टर, (3) वार्षिक कार्य मूल्याकन प्रतिवेदन प्रेषण रजिस्टर।

उपरोक्त अभिलेखों के अतिरिक्त पुस्तकालय, छात्रावास आदि से सम्बन्धित अभिलेखों का उल्लेख यथास्थान पूर्व मे किया गया है। इन सभी अभिलेखों में से जो अत्यन्त आवश्यक हैं तथा जिनसे अध्यापकों को कार्यालय या परीक्षा प्रभारी अथवा कक्षाध्यापक के रूप में अवगत होना वांछनीय है, उनका विवरण निम्नांकित है —

[क] छात्र सम्बन्धी अभिलेख—

(1) प्रवेश पंजिका (Admission Register)—इस पंजिका में विद्यार्थी के प्रवेश हेतु प्रधानाध्यापक के आदेश होते ही नामांकन किया जाता है जिसमें विद्यार्थी का नाम, पिता का नाम, जन्मतिथि, कक्षा जिसमे प्रवेश हुआ, पूर्व पाठशाला का नाम, प्रवेश दिनांक आदि अंकित होता है।

(2) स्कॉलर रजिस्टर (Scholar Register)—यह अभिलेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमे उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त विद्यालय मे विद्यार्थी के अध्ययन पर्यन्त उसकी कक्षोन्नति का वर्ष वार विवरण भी होता है तथा चरित्र व व्यवहार सबंधी उल्लेख भी। इसमे अंकित विद्यार्थी का क्रमांक प्रवेश-पंजिका, उपस्थिति-रजिस्टर एव स्थानान्तरण प्रमाण पत्र मे लिखा जाता है। जन्मतिथि शब्दों व अंकों दोनों में अंकित की जाती है।

(3) छात्र उपस्थिति रजिस्टर–प्रवेश के पश्चात् कक्षाध्यापक द्वारा विद्यार्थी का

नाम व स्कॉलर रजिस्टर सख्या इस रजिस्टर मे लिखी जाती है। यह कक्षा वार व वर्ग वार होता है जिसमे प्रतिदिन दोनो मीटिंग की उपस्थिति, अनुपस्थिति या अवकाश अंकित किया जाता है। इसी के आधार पर माह के अंत मे कक्षा की औसत उपस्थिति व मासिक मानचित्र (गोशवारा) मे उपस्थिति सम्बन्धी तथ्य अंकित कर उच्चाधिकारियो को भेजे जाते हैं। गोशवारे का प्रपत्र इस अध्याय के अन्त मे सलग्न है।

(4) स्थानान्तरण प्रमाण पत्र पुस्तिका– (*Transfer Certificate Book*) विद्यार्थी द्वारा किसी कारणवश विद्यालय छोडने पर जो स्थानान्तरण प्रमाण पत्र उसे दिया जाता है, उसका विवरण इस पुस्तिका मे रखा जाता है। इस प्रमाण-पत्र मे (इस अध्याय के अन्त मे सलग्न प्रपत्र) विद्यार्थी का पूर्ण विवरण चरित्र प्रमाण पत्र तथा वसूल किये गये शुल्क का उल्लेख किया जाता है।

छात्रो के प्रवेश, नाम पृथक्करण, पुन प्रवेश एव स्थानान्तरण सम्बन्धी नियम निम्नाकित है जिनके आधार पर उपरोक्त अभिलेखो का सधारण किया जाता है।—

विद्यार्थियो के प्रवेश एव अभिलेख सधारण सम्बन्धी नियम एव प्रपत्र

शिक्षा विभाग के आदेशानुसार ग्रीष्मावकाश के जून माह के अन्तिम सप्ताह से यह कार्य प्रारम्भ किया जाकर एक जुलाई से शैक्षणिक कार्य प्रारम्भ कर दिया जाना आवश्यक है किन्तु विशेष परिस्थितियो मे प्रवेश कार्य जुलाई मास के प्रथम सप्ताह तक निरन्तर चल सकता है। इसके बाद सत्रावधि मे कुछ मान्य कारणो के उपस्थित होने पर भी छात्रों को प्रवेश दिया जा सकता है।

छात्र-प्रवेश से सबधित शिक्षक का यह प्रथम दायित्व है कि वह छात्र के अभिभावक से "पाठशाला प्रवेश प्रार्थना पत्र" की पूर्ति कराए। इस प्रार्थना-पत्र के खण्ड (अ) के अन्तर्गत 17 बिंदु दिये गये है। इनमे जो बिन्दु छात्र से सम्बन्धित हों, उनकी पूर्ति अभिभावक से कराई जानी चाहिए। इस खण्ड मे बिंदु क्रमांक (4) जन्मतिथि की पूर्ति विशेष सावधानी से कराई जानी चाहिए। जन्म तिथि ईसवी सन् की तिथि मे अकों तथा शब्दो दोनो मे की जानी चाहिए ताकि उसम परिवर्तन की आशंका न रहे। प्रार्थना पत्र के खण्ड (आ) म तीन बिंदु प्रमाणीकरण और प्रतिज्ञा से सबधित होते हैं। इनमे प्रमाणीकरण 2 (क)—"छात्र/छात्रा न

पाठशाला में प्रवेश से पूर्व किसी भी राज्य द्वारा प्रमाणित पाठशाला में शिक्षा नहीं पाई हैं"— पर विशेष बल देना चाहिए क्योंकि भविष्य में इस बिंदु को लेकर अनेक आपत्तियां होने की आशंका रहती है।

नामांकन— बालक के प्रवेश प्रार्थना पत्र को अभिभावक द्वारा पूर्ति कर दिये जाने पर प्रार्थना-पत्र में अंकित बिंदु "पाठशालाधिकारियों द्वारा पूर्ति निमित्त' की सम्बंधित आवश्यक पूर्ति (यदि छात्र/छात्रा की परीक्षा ली जानी है) प्रधानाध्यापक/प्रधानाध्यापिका द्वारा की जानी चाहिए यदि परीक्षा ली जानी है तो सम्बंधित अध्यापक द्वारा परीक्षा ली जाकर विभिन्न विषयों में छात्र की योग्यता एवं अयोग्यता की सूचना (रिपोर्ट) इसी प्रपत्र में प्रधानाध्यापक को दी जाती है। प्रधानाध्यापक छात्र/छात्रा को योग्य पाकर सम्बंधित कक्षा में शुल्क लेकर प्रविष्ट करने का आदेश देगा। शुल्क प्राप्त कर प्रवेशांक Scholar's Register Number। अंकित कर प्रधानाध्यापक को अवलोकनार्थ प्रस्तुत करेगा। शुल्क दर विभाग द्वारा निर्धारित है।

उपरोक्त कार्यवाही हो जाने के बाद सम्बंधित कक्षा में छात्र का प्रवेश-पंजिका (Attendance Register) में कक्षाध्यापक नामांकन (प्रवेशांक सहित) कर लेगा। प्रवेशांक सहित नामांकन पंजिका (Scholar s Registers) में छात्र/छात्रा से सम्बंधित प्रविष्टियां कर प्रवेश प्रार्थना पत्र को सबंधित पंजिका में पंजीकृत file)कर लिया जाता है। इस नामांकन पंजिका में छात्र/छात्रा से सम्बंधित आगामी प्रविष्टियां (जो इस विद्यालय में आगामी कक्षाओं में प्रत्येक सत्र की उपस्थिति संख्या, उत्तीर्ण/अनुत्तीर्ण होने का उल्लेख तथा चरित्र व व्यवहार सम्बन्धी टिप्पणी की जाती है। शाला त्यागने या अन्य शाला में स्थानान्तरण के समय में प्रविष्टियां स्थानान्तरण प्रमाण पत्र (Transfer Certificate) में अंकित की जाती है।

उपस्थिति विवरण विद्यार्थियों की उपस्थिति का विवरण सम्बंधित कक्षा की उपस्थिति पंजिका में होता है। इस अभिलेख का काफी महत्व है क्योंकि इसी के आधार पर विद्यार्थी को वार्षिकपरीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाती है तथा इसी के आधारपर शिक्षक अभिभावकों को उनके बालकों की विद्यालय में नियमित उपस्थिति के संबंध में अवगत करा सकता है। परीक्षा में प्रवेश हेतु कक्षा 3 से 5 तक 60% उच्च कक्षाओं (कक्षा 6 से 8 तक) में 70% तथा माध्यमिक कक्षाओं (कक्षा9 से 11-तक) में 75%उपस्थिति होना प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अनिवार्य है। यदि प्रधानाध्यापक किसी छात्र/छात्रा के लम्बे समय तक अनुपस्थित या अवकाश पर रहने के कारणों से सन्तुष्ट हो जाये तो वह विद्यालय खुलने के कुल दिवसों की प्रतिशत न्यूनता के आधार पर छात्रों को इस प्रकार मुक्त कर वार्षिक परीक्षा में बैठने की अनुमति दे सकता है—

(1) कक्षा 3 से 5 तक 5 से 15%, (2) कक्षा 6 से 8 तक 8 से 10% तक।
(3) कक्षा 9 को 20% तक। अत छात्रो की उपस्थिति नियमानुसार बनाये रखने के लिए शिक्षक छात्र व अभिभावका का विशेष रूप से सतर्क व सावधान रहना चाहिए।

उपस्थिति पंजिका (Attendance Register) – उपस्थिति पंजिका मे क्रमाक के बाद प्रवेशाक प्रत्येक छात्र/छात्रा का अंकित किया जाना आवश्यक है जिसके आधार पर प्रवेशाक पंजिका द्वारा विद्यार्थी की वार्षिक प्रगति का अवलोकन किया जाता है। पंजिका मे प्रवेश का दिनाक अंकित किया जाना चाहिए। उपस्थिति लेते समय उपस्थिति के लिये संकेत चिन्ह 'उ', अवकाश के लिये 'अ' तथा अनुपस्थिति के लिये 'अनु' अंकित किया जाना चाहिए। प्रत्येक कक्षा की उपस्थिति प्रतिदिन प्रार्थना-सभा के पश्चात् अंकित कर उसका कक्षावार योग लगाया जाये जिसके आधार पर शाला के उपस्थिति पट्ट पर समस्त कक्षाओ का उपस्थिति योग अंकित किया जाये। प्रत्येक मास के अंतिम दिवस की पूर्तियां करने के बाद उपस्थिति पंजिका की सभी पूर्तियाँ, जैसे प्रत्यक विद्यार्थी की कुल उपस्थिति, कुल अवकाश कुल अनुपस्थिति कक्षा की औसत उपस्थिति, अनुपस्थिति शास्ति या जुर्माने की राशि आदि कर लेनी चाहिए। यह कार्य कक्षाध्यापक द्वारा किया जाना वाछनीय है। कक्षा के छात्रो की औसत उपस्थिति छात्रो की उपस्थिति के प्रतिदिन के योगों को जोडकर उसमे विद्यालय के उस मास मे कार्य दिवसो के योग से भाग देकर निकाली जाती है। छात्र छात्राओ के प्रगति पत्र Progress Reports) में अभिभावको की सूचनार्थ आवश्यक सूचनाएँ इसी अभिलेख के आधार पर नियमित रूप से प्रेषित की जानी चाहिए।

मासिक गोशवारा मानचित्र –

मासिक मानचित्र शाला की दैनिक उपस्थिति पंजिका के आधार पर तैयार किया जाता है। मासिक गोशवारा (मानचित्र) के प्रपत्र म निम्नांकित विवरण अंकित किये जाते हैं –

प्रपत्र के शीर्ष पर विद्यालय का नाम नगर/ग्राम वेतन चुकारा केन्द्र (Pay center) जिला व माह की परिचयात्मक सूचनाएँ देनी होती है। प्रपत्र के प्रथम विवरण (अ) में जातिगत छात्रो की सख्या एव दैनिक तथा प्रतिशत औसत उपस्थिति दिखानी पडती है। इसके अतिरिक्त इसमें माह मे हुए प्रवेश की कुल सख्या अकेक्षण आपत्तियां (Audit Objections) तथा छात्र सख्या म एकदम कमी व वेशी का कारण व अन्य विवरण भी लिखने होते ह।

प्रपत्र (ब) म विद्यार्थियो की सख्या का विवरण कक्षावार व अनुभाग (Section) वार प्रस्तुत माह तथा पिछले माह का देते हुए छात्रों की कमी वेशी लाल स्याही मे अंकित की जाती है। इसमें किसी कक्षा मे इस माह में खोले गये नये अनुभाग का विवरण

भी देना होता है। प्रपत्र पर प्रधानाध्यापक के हस्ताक्षर कर उसकी एक प्रति उच्च शिक्षा अधिकारी का समय पर प्रेषित की जाती है।

नाम काटना (नाम पृथक करण प्रणाली)—

निम्नांकित अवस्थाओं में विद्यार्थियों के नाम प्रवेश पंजिका एवं उपस्थिति पंजिका से पृथक किये जा सकते हैं—(अविभक्त इकाई अर्थात् कक्षा 1 व 2 हेतु कोई विशेष नियम नहीं हैं।)

(1) यदि विद्यार्थी नियमित रूप से शाला में उपस्थित नहीं रहता किन्तु अध्यापक सम्बन्धित अभिभावक से इस सम्बन्ध में सम्पर्क कर जानकारी प्राप्त करेगा।

(2) यदि विद्यार्थी अपने अभिभावक के स्थानान्तरण के कारण अन्यत्र प्रवेश लेने हेतु प्रयत्नशील है।

(3) यदि अविभक्त इकाई की कक्षाओं में विद्यार्थी लगातार पूरे माह अनुपस्थित रहता है।

(4) यदि कक्षा 3 से 8 तक की कक्षाओं में विद्यार्थी 10 दिन तक लगातार अनुपस्थित रहता है।

विद्यार्थी का नाम प्रवेश एवं उपस्थिति पंजिका में 'शाला–परित्याग' कालम में काटने का दिनांक व पृथक्करण का कारण अंकित किया जाना है।

पुनः नामांकन या प्रवेश कार्य—

शाला से नाम पृथक होने के बाद यदि उसी शाला में किसी विद्यार्थी को प्रवेश दिया जाता है तो वह पुनः नामांकन या प्रवेश कहलायेगा। इसके लिए अभिभावक को 'पाठशाला प्रवेश–प्रार्थना–पत्र' की पुनः पूर्ति कर प्रधानाध्यापक के समक्ष प्रस्तुत करना होता है। इस अवसर पर इस प्रार्थना पत्र के कालम संख्या 15 की पूर्ति पर बल दिया जाना चाहिए जिसमें पूर्व में छोड़ी जाने वाली कक्षा एवं छोड़ने का दिनांक अंकित किया जाना आवश्यक है इस प्रवृत्ति से यह पता लग सकता है कि कक्षा छोड़े हुए इतना अधिक समय तो नहीं हुआ जिसका वार्षिक परीक्षा में बैठने हेतु उपस्थिति प्रतिशत की न्यूनता के आधार पर प्रभाव पड़े। पुनः प्रवेश हेतु राज्य सरकार ने शुल्क निर्धारित किया है — कक्षा 3 से 5 तक यह शुल्क 25 पैसे, कक्षा 6 से 8 तक 50 पैसे तथा कक्षा 9 से 11 तक एक रुपया निर्धारित है। यह शुल्क वसूल कर प्रवेश शुल्क की भांति राजकीय कोष में जमा किया जाता है।

छात्र के पुनः प्रवेश करने पर नवीन प्रवेशांक अंकित किया जायेगा किन्तु पूर्व प्रवेशांक भी सम्बन्धित कालम में प्रविष्ट किया जायेगा। प्राप्त शुल्क राशि भी उसके कॉलम में अंकित की जायगी।

छात्रों का स्थानान्तरण (Transfer)—

विद्यार्थियो के किसी विद्यालय से स्थानान्तरण की दो स्थितियाँ होती है —

(1) नगर की एक शाला से उसी सत्र म वहा की अन्य शाला मे स्थानान्तरण इस स्थिति म विद्यार्थी जिस विद्यालय मे प्रवेश चाहता है, उसके अभिभावक को प्रवेश प्रार्थना पत्र के साथ वर्तमान विद्यालय (जिसे छोडा गया) से प्राप्त निम्नांकित प्रमाण-पत्र विशेष रूप से प्रस्तुत करने होंगे —

1 ट्रांसफर सर्टिफिकेट (T C) 2 टेस्ट (Tests) व परीक्षाओ की अंक सूची 3 विद्यालय मे जमा की गई राजकीय एवं छात्र कोष (Boys Fund) से सम्बन्धित राशि के विवरण का प्रमाण पत्र।

(2) अन्यत्र किसी स्थान पर राजकीय विद्यालय मे प्रवेश हेतु भी उपरोक्त प्रक्रिया अपनानी होगी।

स्थानान्तर प्रमाण पत्र (Transfer Certificate) — इसे संक्षेप म (T C) कहते हैं। अभिभावक के प्रार्थना-पत्र के आधार पर विद्यार्थी को टी सी दिया जाता है। प्राथमिक कक्षाओ (कक्षा 1 से 5 तक) के लिए कोई टी सी शुल्क निर्धारित नही है तथा कक्षा 6 से 8 तक की कक्षाओ के लिए 50 पैसे शुल्क है। यह शुल्क राजकीय कोष मे जमा होता है।

टी सी के दो अंग होते हैं — (1) प्रमाण-पत्र जिसमे विद्यार्थी का नाम, पिता का नाम, निवास स्थान व जिला, जन्मतिथि, विद्यालय मे प्रवेश की कक्षा व दिनांक, छोडी जाने वाली कक्षा व छोडने का दिनांक छोडने का कारण, आचरण सम्बन्धी टिप्पणी प्रमाणित कर प्रधानाध्यापक हस्ताक्षर करता है। (2) छात्र के सम्बन्ध मे विवरण प्रधानाध्यापक द्वारा हस्ताक्षरित होता है। इस टी सी की एक प्रति विद्यालय मे रहती है।

टी सी मे जिन बिन्दुओ की प्रविष्टियो की पूर्ति पर विशेष ध्यान देना चाहिए वे हैं — (1) जन्मतिथि सम्बन्धी टी सी के दूसरे अंग के चौथे कालम की पूर्ति सावधानी से अंको व शब्दो मे की जानी चाहिए (2) कक्षा जिससे स्कूल छोडा (3) दिनांक कक्षा छोडने का आदि। यदि कोई छात्र सत्र के मध्य मे टी सी लेना चाहे तो टी सी देते समय उसके पृष्ठ भाग पर राजकीय छात्र कोष की वसूल की गई फीस (शुल्क) का विवरण मय रसीद न व दिनांक के प्रधानाध्यापक द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए। इसके आधार पर विभागीय आदेशानुसार दूसरे विद्यालय म यह शुल्क छात्र से वसूल नहीं किया जायेगा। टेस्ट व परीक्षा अंक सूची भी टी सी के साथ दिया जाना आवश्यक है क्योंकि इसके आधार पर दूसरे विद्यालय मे इसका समावेश उस विद्यालय म लिये गये टेस्ट एव परीक्षा के प्राप्तांको मे किया जाकर परीक्षाफल बनाया जाता है।

विभाग द्वारा निर्धारित प्रपत्र

राजस्थान शिक्षा विभाग

पाठशाला प्रवेश प्रार्थना-पत्र

(प्रवेशार्थी/प्रवेशार्थिनी के पिता या संरक्षक द्वारा पूर्ति निमित्त)

क्र पाठशाला का नाम स्थान

1 प्रार्थना-पत्र अर्पण करने की तिथि
2 छात्र/छात्रा का पूरा नाम
3 (अ) धर्म (ब) क्या परिगणित या पिछड़ी जाति से है? उस जाति का नाम
4 जन्मतिथि (ईस्वी सन् में)
5 प्रवेश के समय आयु
6 छात्र/छात्रा के पिता का नाम पूरा पता नाम आजीविका एवं स्थायी पता ग्राम, तहसील तथा जिला सहित
7 संरक्षक का पूरा नाम आजीविका एवं स्थायी पता (यदि पिता जीवित न हो)
8 छात्र/छात्रा और संरक्षक का सम्बन्ध
9 छात्र/छात्रा का स्थायी निवास स्थान
ग्राम तहसील जिला
10 राजस्थान की निवास की अवधि
11 पिता या पति न हो तो संरक्षक की मासिक आय
12 प्रवेश से पूर्व जिस पाठशाला से अध्ययन किया हो उसका नाम स्थान, प्रमाण पत्र तथा प्राप्तांक सूची सहित
13 कक्षा जिसमे छात्र/छात्रा प्रवेश चाहता/चाहती है
14 अभिष्ट ऐच्छिक विषय (1) (2) (3)
15 यदि छात्र/छात्रा पुन इसी शाला में प्रविष्ट हो रहा/रही हो तो कक्षा का नाम जिससे पढना छोडा और कब छोडा
16 छात्र/छात्रा कौनसी अन्य भाषा लेना चाहता/चाहती है
17 छात्र/छात्रा कौनसा उद्योग लेना चाहता/चाहती है

हस्ताक्षर पिता या संरक्षक

आ पिता या सरक्षक द्वारा प्रमाणीकरण और प्रतिज्ञा

1 म प्रमाणित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण ठीक है।

2 मैं प्रमाणित करता हूँ कि छात्र/छात्रा का नाम •

(क ने पाठशाला के प्रवेश से पूव किसी राज्य द्वारा प्रमाणित पाठशाला में शिक्षा नही पाई है।

(ख) इस प्राथना-पत्र मे अंकित छात्र की जन्मतिथि सही है।

3 मैं प्रतिज्ञा करता हू कि –

(क) जब तक उक्त छात्र/छात्रा इस सस्था में शिक्षा प्राप्त करता रहेगा/रहेगी मैं सस्था के नियमो उपनियमो से आबद्ध रहूँगा।

(ख) छात्र/छात्रा की उल्लिखित जन्मतिथि मे परिवतन करने के लिए अनुरोध नही किया जायगा।

(ग) पाठशाला का नियमित शुल्क दूगा।

पिता या सरक्षक के हस्ताक्षर

पाठशालाधिकारियो के द्वारा पूर्ति निमित्त

कक्षा में प्रविष्ट करने के लिए छात्र/छात्रा की परीक्षा ली जावे।

प्रधानाध्यापक/प्रधानाध्यापिका

विषय		सम्बन्धित अध्यापक के हस्ताक्षर
1	विषय म योग्य/अयोग्य पाया गया	
2	,, ,,	
3	, ,,	
4	,, ,,	
5	,, ,	
6	,, ,,	
7	,, ,	
8	,, ,,	
9	कक्षा में फीस प्राप्त करके प्रविष्ट किया जावे।	

तिथि प्रधानाध्यापक/प्रधानाध्यापिका

यह प्रमाणीकरण तब करने की आवश्यकता है जब नम्बर 12 की पूर्ति न की गई हो

प्रवेशाक पर आवश्यक फीस प्राप्त करके प्रविष्ट किया गया (फीस का विवरण)

तिथि पाठशाला कर्मचारी अवलोकित

तिथि प्रधानाध्याध्यापक/प्रधानाध्यापिका

(II) स्थानान्तरण प्रमाण-पत्र (T C)

शिक्षा विभाग, राजस्थान राज्य

1 नाम छात्र
2 पिता का नाम
3 निवासी
4 जन्मतिथि
5 प्रवेश तारीख
6 प्रवेश नम्बर
7 कक्षा जिसमे पहले भर्ती हुआ
8 कक्षा जिसमे स्कूल छोड़ी
9 तारीख छोड़ने की
10 कारण छोड़ने का
11. तारीख सर्टिफिकेट देने का

मुख्याध्यापक/अध्यापिका
पाठशाला

शिक्षा विभाग, राजस्थान राज्य

पाठशालान्तर प्रवेशानुज्ञा

प्रमाणित किया जाता है कि ... पुत्र/पुत्री निवासी ... जिला ... जन्मतिथि ... प्रविष्ट किया गया था कक्षा ... में ता ... को प्रवेश नम्बर ... और छोड़ा कक्षा ... में से ता ... कारण ...
उसका आचरण जहाँ तक विदित है ... रहा उसने स्कूल की सब बाकियात भर दी है।

तारीख सर्टिफिकेट देने की ...

मुख्याध्यापक/अध्यापिका
पाठशाला ...

विवरण 'स'

नोट — यदि सब अध्यापकों के नाम इस स्थान में न आवे तो एक दूसरे कागज पर लिख दिये जावें।

क्रम संख्या	नाम अध्यापक मय पद, निवास स्थान गांव, तहसील, डाकखाना, जिला	अध्यापक की योग्यता	प्रशिक्षण जो प्राप्त किया है	वेतन श्रृंखला	दिनांक जब से इस श्रृंखला में वेतन मिल रहा है	अन्तिम वेतन वृद्धि का दिनांक	इस शाला में आने का दिनांक	इस माह का अवैतनिक अवकाश	अन्य विवरण

अन्य विशेष विवरण —

नोट—विवरण 'स' केवल तीन बार भेजना है—यह जुलाई, नवम्बर व अप्रेल।

[ख] लेखा सम्बन्धी अभिलेख—

(1) रोकड— लेखा सम्बन्धी अभिलेखों में रोकड (राजकीय एवं छात्र कोष) तथा स्टॉक रजिस्टर प्रमुख होते हैं। रोकड में आय व्यय का काय लिखित मे तत्काल होना चाहिए। राजकीय रोकड मे आय विद्यार्थियों से प्राप्त प्रवेश,पुन प्रवेश, स्थानान्तरण प्रमाण-पत्र शुल्क तथा अनुपस्थित दण्ड की राशि होती है। वेतन तथा कन्टिंजेंट बिलो की राशि भी आय के अन्तर्गत होती है। विद्यार्थियों से प्राप्त धनराशि की छपी हुई क्रमांकित रसीद की प्रति दी जानी है। रसीदों पर प्रधानाध्यापक के हस्ताक्षर होते हैं। रोकड मे दो पृष्ठ होते हैं - बाया तथा दाया। बाये पृष्ठ पर निर्धारित स्थान व स्तम्भों (Columens) मे आय तथा दाये पृष्ठ पर इसी प्रकार व्यय की राशियाँ विवरण एवं दिनाक सहित अंकित की जाती है। प्रतिदिन लेन देन के अन्त म समस्त आय-व्यय के आकडों का योग दोनों ओर लगाकर शेष राशि अंकित कर उसका मिलान विद्यालय मे रखी शेष राशि से कर लेना चाहिए ताकि कोई भूल न रह। रोकड म प्रतिदिन प्रधानाध्यापक के हस्ताक्षर होने चाहिए।

छात्र कोष सम्बन्धी रोकड मे प्रविष्टियो की प्रक्रिया भी इसी प्रकार की होती है। इस रोकड में स्तम्भो के शीर्षक छात्र कोष से सम्बन्धित मदो के अनुसार होते हैं जिनमे छात्रो से प्राप्त धनराशि विवरण सहित अंकित की जाती है। प्राप्त धनराशि की पृथक रसीदें देने की प्रक्रिया भी यही है। इस रोकड से छात्र-कोष की विभिन्न मदो मे आय व्यय एव शेष राशि की स्थिति का पता चलता है। लेखा सम्बन्धी अभिलेखो का संधारण सामान्य वित्तीय व लेखा नियमो (G F & A R) के अनुसार किया जाना चाहिए।

निम्नांकित उदाहरण से खेल-कूद निधि के रोकड स्तम्भ की अंकन विधि स्पष्ट हो सकेगी —

बायां पृष्ठ संख्या-12			दाया पृष्ठ-12		
जमा (आय)			खर्च (व्यय)		
दिनांक	विवरण	रु प	दिनांक	विवरण	रु प
8 4 84	गत शेष	200 00	8 4 84	फुटबाल खरीदा (वाऊचर स 15)	15 50
	कक्षा 4 से प्राप्त शुल्क (रसीद स 100 से 140)	25 00			
				योग	15 50
				शेष	209 50
	योग	225 00		योग	225 00
				गत शेष	209 50

दोनों रोकड़ों की रसीदें क्रमवार सुरक्षित रखना आवश्यक है ताकि उनका अंकेक्षण किया जा सके। राजकीय रोकड़ की राशि राज-कोष में ट्रेजरी-चालान द्वारा जमा की जाती है तथा छात्र-कोष की राशि राज कोष के पी डी खाते अथवा बैंक में जमा की जानी चाहिए जिसकी पास-बुक तथा चालान की प्रतियां संभाल कर रखनी चाहिए। दैनिक उपयोग में आने वाली शुद्ध राशि विद्यालय के डबल लॉक में रखी जानी चाहिए। सर्विस पोस्टेज के आय व्यय का हिसाब G A प्रपत्र 114 के रजिस्टर में रखा जाता है। राजकीय रोकड़ व रसीदें के प्रपत्र क्रमशः G A 48 तथा G A 55 में रखा जाते हैं।

(2) स्टॉक रजिस्टर—स्थायी भण्डार (Permanent Articles)—रजिस्टर G A 162, तथा उपभोज्य सामान (Consumable Articles) रजिस्टर G A 161 निर्धारित प्रपत्रों में होते हैं। वस्तुओं को क्रय करने अथवा विभाग से प्राप्त होने के तुरन्त बाद उनकी प्रविष्टियां मय विवरण के संबंधित स्टॉक रजिस्टरों में की जानी चाहिए तथा उपभोज्य सामान के प्रदान (Issue) रजिस्टर में अंकित कर वस्तुओं का उपयोग हेतु दिया जाना चाहिए। सत्र के अंत में स्थायी सामान का भौतिक सत्यापन (Physical Verification) करना होता है। तथा अनुपयोगी सामान (Unserviceable Articles) की सूची तैयार कर उन्हें सक्षम अधिकारी द्वारा निरस्त (Write off) करने व नीलाम करने की कार्यवाही की जाती है। नष्ट करने योग्य वस्तुओं को सक्षम अधिकारी से आदेश प्राप्त कर नष्ट किया जाता है।

[ग] सत्यापन अभिलेख—

(1) सेवा सत्यापन रजिस्टर—प्रत्येक विद्यालय में एक सेवा रजिस्टर राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत प्रारूप में रखा जाना आवश्यक है इस रजिस्टर में प्रत्येक वेतन शृंखला (Grade) में स्वीकृत पदों का इन्द्राज तथा उन पदों पर कार्यरत व्यक्तियों का विवरण होना चाहिए। प्रत्येक पद के बाद इतना स्थान छोड़ा जाये कि उसमें 2 3 नाम समय समय पर स्थानान्तरण होने के कारण लिखे जा सकें। इस रजिस्टर से रिक्त स्थान (Vacant post) ज्ञात हो सकेगी तथा कार्यरत व्यक्तियों का पूर्ण विवरण - नाम, पिता का नाम जन्म तिथि, विद्यालय में कार्यरत होने की तिथि, शैक्षिक व प्रशिक्षण योग्यताएं वेतन शृंखला, वर्तमान वेतन विदित होती है। जब कभी कोई कर्मचारी अतिरिक्त योग्यता अर्जित करता है तो उसकी प्रविष्ठि इस रजिस्टर में की जानी चाहिए। इस रजिस्टर के आधार पर मासिक मानचित्र (गोशवारा) के विवरण 'स' की पूर्ति की जाती है।

(2) अध्यापक की उपस्थिति पंजिका—अध्यापक उपस्थित पंजिका में वेतन-शृंखला तथा वरिष्ठता क्रम से अध्यापकों के नाम प्रत्येक माह में अंकित किये जाते हैं। इसमें तिथि के खाने में प्रत्येक अध्यापक को विद्यालय में अपने आगमन तथा गमन का समय नोट कर हस्ताक्षर करने होते हैं। विद्यालय समय से 5 मिनिट पूर्व उपस्थित होना वांछनीय है। विलम्ब से आने पर अपना स्पष्टीकरण देकर प्रधानाध्यापक के आदेश से ही हस्ताक्षर करना चाहिए। प्रधानाध्यापक द्वारा इस पंजिका का प्रति दिन अवलोकन कर हस्ताक्षर करना चाहिए। अनुपस्थित अध्यापकों के अवकाश प्रार्थना पत्र पर उचित आदेश देकर इस पंजिका में अवकाश की प्रविष्टि प्रधानाध्यापक द्वारा की जाती है तथा सम्बन्धित अध्यापक की कक्षाओं की व्यवस्था की जाती है। अवकाश स्वीकृति हेतु प्रधानाध्यापक को अवकाश नियमों से अवगत होना आवश्यक है।

अवकाश नियम —

किसी भी आवश्यक या बीमारी की दशा में प्रार्थना पत्र देकर अवकाश प्राप्त किया जाता है यह तो सब जानते हैं, पर अवकाश कितने प्रकार के होते हैं और उनके नियम क्या हैं, यह ज्ञात होने से उन्हें प्राप्त करने और अधिकार होने की दशा में किसी को देने में सुविधा रहती है। अवकाश के बारे में कुछ मूलभूत बातें तो आप सदैव याद रखें (1) अवकाश कोई अधिकार नहीं है। यह केवल एक सुविधा है जिसे स्वीकार करने वाला अधिकारी राज्य कार्य की आवश्यकता का ध्यान रखते हुए स्वीकार करता है। (2) अवकाश के लिए केवल प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर देने से ही उसकी स्वीकृति नहीं हो सकती अर्थात उसका उपयोग स्वीकृति के पश्चात् ही किया जा सकता है। (3) आवश्यकता होने पर स्वीकृति भी पूर्णतया या आंशिक रूप से निरस्त कर कर्मचारी को कार्य पर उपस्थित होने के आदेश दिये जा सकते हैं। (4) किसी भी प्रकार का अवकाश (अलावा आकस्मिक के) किसी दूसरे प्रकार के अवकाश के साथ मिलाया जा सकता है। अब देखिए अवकाश कितने प्रकार के हैं —

1 आकस्मिक अवकाश – यह अवकाश कर्मचारी को आकस्मिक कार्यों के लिए वर्ष भर में 15 दिन प्रदान किया जा सकता है। पर एक बार में यह अवकाश साथ में पड़ने वाले राजपत्रित अवकाशों के अतिरिक्त अधिक से अधिक 10 दिन का लिया जा सकता है यह एकत्रित नहीं होता। अस्थायी व्यक्तियों को प्रथम 3 माह में 5 दिन 6 माह में 10 दिन तथा इससे अधिक काल के लिए 15 देय होंगे। वैसे यह सुविधा अवकाश की परिभाषा में नहीं आती।

3 सवेतन अवकाश (Privilege leave) यह अवकाश उन कर्मचारियों को मिलता है जो उन विभागों में है जहां शिक्षण संस्थाओं के ग्रीष्मावकाश की तरह

नियमित अवकाश नही होते । पर किसी भी कर्मचारी को अवकाश कितना प्राप्त हो सकता हैं ? इस बारे मे सामान्य नियम यह है कि स्थायी कर्मचारी अपनी ड्यूटी पर अपनी उपस्थिति पर अपनी उपस्थिति के दिनो की सख्या का1/11भाग सवेतन अवकाश ले सकता है । उपभोग न करने पर यह अवकाश 180 दिन तक एकत्रित रहता है । चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के लिए यह अवधि सेवाकाल पर निभर करती है । हा, आकस्मिक अवकाश की तरह इसे साधारण तथा तत्काल प्राप्त नही कर सकते । इसके लिए तीन सप्ताह पूव प्रार्थना पत्र देना चाहिए । ग्रीष्मा वकाश का उपयोग करने वाले अध्यापको को वर्ष मे 3 दिन तक सवैतनिक अवकाश देय है । पर किसी ग्रीष्म अवकाश म आदेश द्वारा सरकारी कार्य हेतु रोके जाने से आप उसका उपयोग न कर सके तो उसके स्थान पर आपको सवेतन अवकाश का लाभ होगा । यह लाभ एक विशेष अनुपात से दिया जाता है । उपयुक्त दशा क अतिरिक्त साधारणतया हमे सवेतन अवकाश प्राप्त नहीं हो सकता ।

3 अर्द्धवेतन अवकाश — अर्द्धवेतन अवकाश का नियम यह हैं कि कोई भी स्थायी या अस्थायी कर्मचारी अपने सेवाकाल के प्रत्येक समाप्त हुए वर्ष के लिए 20 दिन का अवकाश ले सकता है । बीमारी की दशा मे चिकित्सक के प्रमाण पत्र पर अर्द्ध वेतन अवकाश के दुगुने के बदले आप सवेतन अवकाश ले सकते हैं । लेकिन स्वय रुग्ण होने और पुन स्वस्थ्य होने पर प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना आवश्यक है। यह अवकाश परिवर्तित अवकाश या Commuted Leave कहलाता है और समस्त सेवाकाल में किसी भी कर्मचारी के लिए इसकी सीमा 180 दिन है ।

4 विशेष या असाधारण अवकाश (Extraordinary leave) —कभी कभी हमारे पास किसी भी प्रकार का अर्जित अवकाश शेष नही होता और हम अवकाश लेना आवश्यक होता है । बताइए ऐसी दशा में क्या होगा ? ऐसी दशा में हमें अवैतनिक अवकाश या जिसे असाधारण अवकाश कहते हैं प्राप्त हो सकता है । इसके अतिरिक्त विशेष परिस्थितियों में ड्यूटी पर चोट लगने या अपग हो जाने के कारण भी अवकाश मिल सकता है ।

5 अध्ययन अवकाश — स्थायी राज्य कर्मचारी यदि शैक्षिक योग्यता बढ़ाना या प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहे तो अध्ययन अवकाश प्राप्त कर सकते हैं । लेकिन इसके लिए लिखित प्रतिज्ञा-पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है कि अध्ययन या प्रशिक्षण के पश्चात अवकाश की अवधि के अनुसार कुछ समय तक राज्य सेवा अवश्य की जायेगी । यह अवधि एक वर्ष के अवकाश के लिए तीन वर्ष और इससे अधिक के लिए अधिक होती है ।

6 प्रसूति अवकाश – महिला कर्मचारियो को प्रसूति काल या गर्भपात इत्यादि की दिशा मे प्रसूति अवकाश की सुविधा और है। यह अवकाश अधिक से अधिक एक माह या प्रसव की तिथि से छ सप्ताह जो भी पहले समाप्त हो स्थायी और अस्थायी दोनो प्रकार के कर्मचारियो को डाक्टर के प्रमाण-पत्र पर प्रदान किया जा सकता है। यह सुविधा सेवाकाल मे सिर्फ 3 बार ही दी जाती है।

[ग] परीक्षा-अभिलेख—परीक्षा-अभिलेखो में प्रमुख परीक्षा पजिका (Examination Register) होती है। जिसम प्रत्येक कक्षा की परखो, अर्ध वार्षिक परीक्षा तथा वार्षिक परीक्षा के अ को का अकन किया जाता है । परीक्षा प्रभारी अध्यापक की देख रेख में इस पजिका की पूर्ति कक्षाध्यापको द्वारा समय समय पर की जाती है। सत्र के अत मे सभी अ को के योग के आधार पर विद्यार्थियो का परिणाम घोषित किया जाता है । परीक्षा अभिलेख की पूर्ति हेतु परीक्षा नियमो की प्रमुख जानकारी होना आवश्यक है।

प्राथमिक एव उच्च-प्राथमिक कक्षाओ के लिये परीक्षा एव कक्षोन्नति नियम

विभागीय आदेश शिविरा/प्रा0/अ/19746/286/67/70 दि 21-11 72 तथा शिविरा/प्रा /अ/19746/41/74–75 दि 1-4 75 द्वारा प्रसारित परीक्षा एव कक्षोन्नति नियमो के प्रमुख बिन्दु निम्नाकित है—

(1) छात्रो की उपस्थिति—परीक्षा प्रवेश योग्यता हेतु विद्यार्थियो को सत्र की कुल उपस्थिति का 60 / प्राथमिक कक्षाओ में तथा 70 / कक्षा 6 से 8 तक उपस्थित रहना अनिवाय हैं ।

(2) स्वल्प उपस्थिति से मुक्ति—विद्यार्थी की रुग्णावस्था या अन्य उचित कारण से सतुष्ठ होकर प्रधानाध्यापक विद्यालय के कुल दिवसो की प्रतिशत उपस्थिति न्यूनता के आधार पर निम्न प्रकार मुक्त करके वार्षिक परीक्षा में बैठने की आज्ञा दे सकता है।

(i) कक्षा 3, 4 व 5 में 15 / ; तथा (ii) कक्षा 6, 7 व 8 में 10 /

(3) परीक्षा की तैयारी अवकाश—कक्षा 3 से 8 तक के विद्यार्थियो को प्रधानाध्यापक अर्धवार्षिक परीक्षा हेतु एक दिन का तथा वार्षिक परीक्षा हेतु दो दिन का परीक्षा तैयारी अवकाश (रविवार व राजपत्रित अवकाश के अतिरिक्त) दे सकता हैं।

---

4 विभागीय सदर्शिका—1977 (शिक्षा विभाग राजस्थान, बीकानेर। पृष्ठ 164–169

(4) प्रश्न-पत्र की व्यवस्था-सभी कक्षाओ में परीक्षार्थियो की सख्या 10 से अधिक होने की दशा में प्रश्न पत्र मुद्रित तथा कम होने पर चक्रलेखांकित या हस्त लिखित (कार्बन-प्रति) होंगे । परखो (Tests) में प्रश्न पत्र श्यामपट्ट पर लिखे जायें ।

(5) परीक्षाएँ- कक्षा 3 से 8 तक प्रति वर्ष नियमित अ तर के साथ प्रत्येक कक्षा के प्रत्येक विषय की दो आवधिक परखे (Periodical Tests) होगी तीसरी आवधिक परख के स्थान पर लिखित काय का सत्र मे दो बार (नवम्बर तथा माच मे) मूल्यांकन किया जायेगा जो 5-5 अ को का होगा अथात् दोनो मूल्याकनो का योग 10 अ क होगा । सत्र मे दो परीक्षाएँ होगी-अध वार्षिक दिसम्बर मास मे तथा वार्षिक15 अप्रेल के पश्चात् वार्षिक परीक्षा मे व ी छात्र सम्मिलित किया जायेगा जिसने कम से कम दो वार्षिक आवधिक परखे दी हो या एक परख और अधवार्षिक परीक्षा दी हो और जिसमे वह नह बठा हो उनके कारणो की प्रमाणिकता से सस्था प्रधान सतुष्ठ हो । अधवार्षिक परीक्षाऐ क्रमश 10 व 14 दिन मे समाप्त कर ली जाये ।

(6) विभिन्न परीक्षाओ के पूर्णांक —निम्नाकित सारिणी के अनुसार होग ।

परीक्षा	अविभक्त इकाई कक्षा 1-2	कक्षा 3 से 8 तक परयक विषय में
प्रथम परख	—	10
द्वितीय ,,	—	10
लिखित काय का दो बार मूल्याकन	—	5×2=10
अद्ध वार्षिक परीक्षा	—	70
वार्षिक परीक्षा	100 (इकाई वार सात्रिक मूल्यांकन का योग	100
योग पूर्णांक	100	200

(7) उत्तीणता एव श्रेणी निर्धारण नियम—उपरोक्त सारिणी के प्राप्ताक योग के आधार पर वही छात्र उत्तीण एव कक्षोन्नति का अधिकारी होगा जो प्रत्येक विषय म न्यूनतम 36% अ क प्राप्त करेगा । इसके साथ ही प्रत्येक विषय मे

20 / न्यूनतम अंक प्राप्त करना अनिवार्य है। 36 / 48 / तथा 60 / प्राप्तांक होने पर क्रमश तृतीय, द्वितीय व प्रथम श्रेणी और 75 / प्राप्तांक पर विशेष योग्यता प्रदान की जायेगी। यदि रूग्णता प्रमाण पत्र के आधार पर कोई छात्र वार्षिक परीक्षा मे नही बैठता तो उसे शुल्क देने पर पुन पूरक परीक्षा के साथ देने की अनुमति दी जायेगी। किंतु उसे कृपांक नही मिलेंग।

(7) कृपांक – यदि विद्यार्थी एक अथवा दो विषयो मे अनुत्तीर्ण रहता है तो प्रधानाध्यापक कृपांक देकर उसे कक्षोन्नति दे सकता है किन्तु इसके लिये विद्यार्थी को उत्तीर्ण रहे विषयो में न्यूनतम से 5 अंक अधिक प्राप्त करना अनिवार्य है। यदि वह एक ही विषय मे अनुत्तीर्ण है तो उसे 8 / कृपांक दिये जा सकते हैं और यदि दो विषयो मे असफल है, तो उसे अधिकतम 12 कृपांक दोनो विषयो में मिलाकर दिये जा सकते हैं किंतु दोनो मे से एक विषय म 7 से अधिक कृपांक न दिये जायें।

[ड] अध्यापक दैनन्दिनी (Teachers' Daily Diary)—

अध्यापक दैनन्दिनी का महत्व—अध्यापक की अपने कार्य–शिक्षण योजना, शिक्षण प्रक्रिया, शिक्षण–विधि, विद्यार्थियो के मूल्यांकन उनकी उपस्थिति गणना, प्रधानाध्यापक के अनुदेश, उपचारात्मक शिक्षण आदि की पूर्व–योजना के संक्षिप्त अभिलेख रखने की जो स्वीकृत प्रारूप मे पुस्तिका होती है, उसे अध्यापकीय दैनन्दिनी के नाम से पुकारा जाता है। दैनन्दिनी उसलिये रखी जाती है इसका उपयोग अध्यापक अपने दैनिक-कार्य के संपादन हेतु कर सके। अध्यापक दैनन्दिनी अध्यापक के लिये व्यवस्थित योजनाबद्ध कार्य करने हेतु एक निर्देश–पुस्तिका (Guide Book) है।

अध्यापक दैनन्दिनी की आवश्यकता एव महत्व

जैसा कि अध्यापक दैनन्दिनी के अर्थ मे ही निहित है। यह अध्यापक के नित्य प्रतिदिन के कार्य मे पूर्व योजनानुसार उसे निर्देश देने हेतु एक आवश्यक अभिलेख है। अध्यापक के कार्य को योजनाबद्ध, क्रमबद्ध एव प्रभावी बनाने मे इसका अत्यन्त महत्व है। अध्यापक दैनन्दिनी की आवश्यकता एव महत्व उसके निम्नांकित उद्देश्यों से प्रकट होता है।

(1) दैनिक शिक्षण–कार्य को पूर्व निर्धारित योजनानुसार प्रभावी रूप से सम्पन्न करने मे अध्यापक की सहायता करना, (2) शिक्षण–कार्य को एक समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार निर्धारित समय मे समाप्त करने हेतु (3) अध्यापक को दैनिक करणीय कार्य का स्मरण दिलाने एव उसकी पूर्व तैयारी कर कक्षा मे जाने हेतु, (4) स्वय को भाव

टित कक्षाओं एव प्रवतियो (क्रियाकलापो) के समय विभाग चक्र एव प्रधानाध्यापक के निर्देशों के तत्काल सदभ (Ready Reference) हेतु (5) विद्यार्थियो की उपस्थिति गणना द्वारा उनकी नियमितता पर दृष्टि रखने हेतु (6) मूल्यांकन-अभिलेख द्वारा मन्द एव तीव्र गति से सीखने वाले विद्यार्थियों का वर्गीकरण कर क्रमश उनके उपचारात्मक शिक्षण (Remedial Teaching) तथा उन्नत शिक्षण की व्यवस्था करने हेतु (7) अभिभावकों को विद्यार्थियों की प्रगति से अवगत कराने हेतु, (8) विद्यार्थियों को गृह कार्य के आवटन एव उसके सशोधन हेतु (9, विद्यालय के क्रियाकलापो मे शिक्षक को स्वय के एव विद्यार्थियों के सहभागत्व का अभिलेख रखने हेतु,(10) प्रधानाध्यापक एवं शिक्षाधिकारियों को अपने कार्य से अवगत कराने हेतु, (11) अध्यापक द्वारा व्यावसायिक अभिवृद्धि (Professional growth) हेतु किए गये प्रयासो को दर्शाने के लिए, (12) दनिक कार्य के सपादन के आधार पर पूर्व निर्धारित योजना मे परिवर्तन,सशोधन एव परिवर्धन करने हेतु प्रतिपुष्टि (Feed back) करने के लिए ।

उपरोक्त उद्देश्यो की पूर्ति अध्यापक दैनंदिनी म निर्धारित प्रपत्रों के माध्यम से की जाती है । यद्यपि अध्यापकीय दैनंदिनी के स्वरूप मे भिन्नता पाई जाती है किन्तु इन उद्देश्यो की पूर्ति हेतु उसम प्रावधान किया जाना वाछनीय होता है जिससे कि वह अध्यापक के लिए उपयोगी हो सके तथा उसके कार्य म उत्कृष्टता आ सके।

अध्यापक दैनन्दिनी का स्वरूप —

जैसा कि पूर्व म कहा जा चुका है अध्यापक दैनंदिनी के स्वरूप विभिन्न राज्यो तथा एक ही राज्य के राजकीय एव निजी विद्यालयो म भिन्न भिन्न प्रकार के पाये जाते हैं । राजस्थान के शिक्षा विभाग ने एकरूपता लाने की दृष्टि से सभी राजकीय विद्यालयो म प्रयुक्त होने के लिए इसका प्रारूप निर्धारित किया है तथा इसे प्रकाशित कर जिला शिक्षाधिकारियो के माध्यम से विद्यालयो मे उनकी आवश्यकतानुसार वितरित भी किया जाता है । प्रधानाध्यापक द्वारा अध्यापकीय दैनंदिनियां विद्यालय के सभी शिक्षकों को उनको आवटित कक्षा एव विषयो के अनुसार सत्र के प्रारंभ में ही नि शुल्क दे दी जाती है । इनके प्रचलित स्वरूप म निम्नांकित प्रपत्रों के प्रारूप पाये जाते हैं —

(1) अध्यापक की वार्षिक शिक्षण योजना — इसका प्रारूप निम्नांकित हैं —

कक्षा एव वर्ग — विषय

क्रमांक	अध्यापन इकाई	अपेक्षित अध्यापन कालांश	माह	उद्देश्य	प्रधानाध्यापक द्वारा टिप्पणी

उद्देश्यों के लघु रूप जो अध्यापक द्वारा अपेक्षित हैं — ज्ञ=ज्ञान, अव=अवबोध

ज्ञानो=ज्ञानोपयोग, कौ=कौशल, रु=रुचि, अभि=अभिवृत्ति, रस=रस ग्रहण।

(2) इकाई एव दैनिक पाठ-योजना (उपइकाइयो सहित)—इसका प्रारूप निम्नांकित है।

विषय　　इकाई का नाम　　दिनांक　　से　　तक

कक्षा एव वर्ग　　"　　घोषित अवकाश　　"

अपेक्षित कालांश

विषय-वस्तु (पाठ-बिन्दु सहित)	विशिष्ठ उद्देश्य एव अपेक्षित व्यवहारिक परिवर्तन	अध्यापन प्रणाली (छात्र अध्यापक क्रियाऐं)	विशिष्ट प्रकरण	सहायक सामग्री	गृह कार्य	मूल्याकन का प्रकार
1	2	3	4	5	6	7

संस्था प्रधान द्वारा टिप्पणी　　अध्यापक के हस्ताक्षर

(3) अवकाश दिवस, उत्सव व अन्य निर्धारित दिवसो की सूची-इसका प्रारूप है-

माह	अवकाश दिवस, उत्सव व निर्धारित दिवसो के नाम	दिनांक	कुल दिवस	विशेष विवरण

(4) संस्था प्रधान के अनुदेश विद्यालय कार्य सम्बन्धी संस्था प्रधान से प्राप्त अनुदेश सन्दर्भ हेतु नीचे लिखे जावें —

दिनांक	अनुदेश

(5) अंको का अभिलेख—निम्नांकित प्रारूप में है —

कक्षा　　वर्ग

क्रमांक	छात्र का नाम ↓	पूर्णांक → प्राप्तांक → श्रेणी सीमाऐं → दिनांक →		विशेष विवरण

उपरोक्त प्रारूपो के अतिरिक्त कुछ अन्य सूचनाओ सम्बन्धी पृष्ठ भी अध्यापकीय दैनन्दिनी मे निर्धारित रहते हैं — (1) कक्षा एव विषय का पाठ्यक्रम, (2) शिक्षण विधि, (3) मन्द एव तीव्र बुद्धि बालकों का वर्गीकरण एव उनके लिए करणीय कार्य का विवरण, (4) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाकलापो हेतु आवटित छात्रो का विवरण, (5) विषय एव कक्षा का समय-विभाग-चक्र (6) अध्यापक-अभिभावक सपर्क का

का विवरण, (7) अध्यापक द्वारा व्यावसायिक अभिवृद्धि हेतु किये गये प्रयासों का विवरण, तथा (8) विद्यार्थियों के उपस्थिति गणना प्रपत्र आदि।

अध्यापकीय दैनन्दिनी कैसे रखी जाये? (उसमें प्रविष्टियों की विधि) —

अध्यापकीय दैनन्दिनी को उपयोगी एवं प्रभावी बनाने हेतु अध्यापकों को इसके प्रपत्रों की पूर्ति के सन्दर्भ में निम्नांकित बिन्दु ध्यातव्य हैं —

(1) इसे सत्रारम्भ में दिये जाने का उद्देश्य यही है कि शिक्षण कार्य आरम्भ करने के पूर्व इसके सम्बन्धित प्रपत्रों की पूर्ति विधिवत् कर ली जाये। कुछ प्रपत्र जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है तथा जिनकी पूर्ति शिक्षण-कार्य के पूर्व ही की जानी है, उन्हें अविलम्ब किन्तु सावधानी से पूर्ण कर लिया जाये।

(2) अध्यापकीय दैनन्दिनी की पूर्तियाँ स्वयं के कार्य को प्रभावी बनाने एवं भावी निर्देशन हेतु की जाती है। अतः उन्हें पूर्ण रूचि, दायित्व एवं कर्तव्यनिष्ठा से पूरा किया जाये। प्रायः देखा जाता है कि कुछ अध्यापक पढाने के पूर्व पूर्तियाँ न कर उसके बाद करते हैं अथवा दीर्घ समय तक उपेक्षा एवं आलस्यवश इस कार्य को अधूरा छोड़ कर जब कभी निरीक्षण होता है तो उसे पूरा करते हैं। यह प्रवृति दैनन्दिनी के उद्देश्यों के विपरीत है। समय पर पूर्तियाँ करना वाछनीय है।

(3) शिक्षण कार्य अध्यापक का प्रमुख कार्य होता है। अतः इसका पूर्व नियोजन वार्षिक, मासिक, साप्ताहिक, इकाई एवं पाठ योजनाओं में विभक्त कर विधिवत् किया जाना चाहिए तथा उनकी प्रविष्टियाँ दैनन्दिनी में यथास्थान सत्रारम्भ में ही कर लेनी चाहिए। केवल साप्ताहिक एवं दैनिक पाठ योजनाएँ उनकी नियार्विति के कुछ समय पूर्व भी अंकित की जा सकती हैं।

(4) प्रधानाध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह अध्यापकों द्वारा दैनन्दिनी की नियमित एवं समुचित पूर्तियों का समय-समय पर अवलोकन करे तथा शिक्षकों को यथावश्यकता परामर्श दे।

(5) दैनिन्दनी की पूर्तियाँ यद्यपि संक्षेप में की जाये ताकि यह कार्य शिक्षकों को भार-स्वरुप न बन जाये तथापि जो पूर्तियाँ की जायें वे स्पष्ट, स्वच्छ एवं दैनिक कार्य को प्रभावी बनाने हेतु हो।

(6) दैनन्दिनी की पूर्तियाँ केवल खाना पूर्ति के लिए नहीं की जायें बल्कि कार्य की प्रगति के आधार पर अध्यापन कार्य के नियोजन को प्रतिपुष्ट(Feed back)भी किया जाये तथा उसमे परिस्थिति एवं साधन-सुविधाओं की दृष्टि से आवश्यक संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्धन किये जाये। दैनन्दिनी उद्देश्यनिष्ठ शिक्षण की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में इस प्रकार सहायक हो सकती है।

(7) शिक्षण कार्य के पूर्व उसका अवलोकन अवश्य किया जाये ताकि पूर्व योजनानुसार आवश्यक तैयारी के साथ कक्षा में प्रवेश किया जाये जिससे कि विद्यार्थियों एवं

विषय के प्रति न्याय किया जा सके ।

(8) दैनन्दिनी की पूर्तियां विद्यार्थियों के विकास एवं अभिभावकों को उनकी प्रगति से अवगत कराते रहने के उद्देश्य से की जाय ।

(9) विद्यार्थियों की टेस्ट (Tests) एवं परीक्षाओं में उपलब्धि का मूल्यांकन कर उनका वर्गीकरण किया जाय तथा मन्द गति से सीखने वाले बालकों के लिये उपचारात्मक शिक्षण एवं मेधावी छात्रों हेतु अतिरिक्त कार्य का विवरण दैनन्दिनी में किया जाय।

(10) अध्यापकों का दैनन्दिनी की उपयोगिता में पूर्ण निष्ठा रख कर उसकी पूर्तियाँ अपने कार्य को प्रभावी बनाने की दृष्टि से करना वांछनीय है।

अध्यापकीय दैनन्दिनी अध्यापक के कार्य की निर्देश पुस्तिका है, उसमें कार्य की प्रभावोत्पादकता में वृद्धि करने की पूर्व तैयारी है तथा अपने दैनिक अनुभव के आधार पर शिक्षण प्रक्रिया में निरन्तर सुधार करते रहने का एक सशक्त माध्यम है। अतः इस की पूर्ति में अध्यापक की पूर्ण निष्ठा एवं आस्था का होना नितान्त आवश्यक है जिससे कि वांछित उद्देश्यों की उपलब्धि हो सके ।

उपसंहार — अन्त में आत्माराम शर्मा के शब्दों में विद्यालय अभिलेखों का महत्व इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है— "पाठशाला समाज द्वारा संस्थापित एक स्थायी संस्था है और स्थायी संस्था के लिए आवश्यक है कि उसका अपना कोई इतिहास भी हो, उसमें अपनी परम्पराएँ हों। इन सब का स्थायी रूप से बने रहना तभी सम्भव है जबकि उसका नियमित रूप से रखा जाय।" 

मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघुत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. विद्यालय अभिलेखों का क्या महत्व है?
2. विद्यालयों में अभिलेख कितने प्रकार के होते हैं ? उनके रख रखाव के क्या नियम हैं?
3. लेखा सम्बन्धी अभिलेख कौन-कौन से होते हैं जिनकी माध्यमिक शालाओं में आवश्यकता है ?
4. परीक्षा सम्बन्धी अभिलेख कौन-कौन से होते हैं ?
5. अध्यापकीय दैनन्दिनी की क्या महत्व है ? उसे कैसे रखी जाये ?

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. सकलित मूल्यांकन आलेख पत्र पर टिप्पणी कीजिये । (बी एड पत्राचार 1985)
2. विद्यालय अभिलेख से आपका क्या तात्पर्य है ? विद्यालय में इसकी क्या उपयोगिता है ? सामान्यतः विद्यालय में कौन कौन से अभिलेख तैयार किये जाते हैं ?
3. विद्यालय अभिलेखों व रजिस्टर के महत्व, प्रकारों व निर्माण पर संक्षेप प्रकाश डालें।
4. विद्यालयों में छात्रों की आपेक्षिक प्रगति का विवरण आप कैसे रखेंगे? प्रत्येक छात्र की प्रगति निश्चित करते समय आप इसका किस प्रकार उपयोग करेंगे ?

इकाई-तृतीय

अध्याय १३ संवैधानिक शैक्षिक प्रावधानों के क्रियान्वयन में अध्यापक की भूमिका

(The Role of Teachers in Implementing The Constitutional Provisions on Education)

(प्रस्तावना-भारतीय संविधान और शिक्षा-प्राथमिकशिक्षा निशुल्क व अनिवार्य अल्पसंख्यकों की शिक्षा धार्मिक शिक्षा स्त्री शिक्षा मातभाषा प्रादेशिकभाषाओं सम्बन्धी प्रावधान राष्ट्रीयभाषा शिक्षा में अवसर की समानता स्मारकों के संरक्षण सम्बन्धी प्रावधान संघ व राज्य-सरकार के दायित्व सम्बन्धी प्रावधान (संघ सूची राज्य सूची एवं समवर्ती सूची) संवैधानिक प्रावधानों के क्रियान्वयन में अध्यापक की भूमिका उपसंहार-मूल्यांकन)

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के लगभग १ माह बाद १६ सितम्बर, १६४५ घोषणा की कि 'यथासम्भव शीघ्र" एक संविधान निर्मात्री निकाय का आयोजन किया जाएगा और आम चुनावों के बाद निर्वाचित सदस्यों के प्रतिनिधियों एवं देशी रियासतों के प्रतिनिधियों के साथ प्रस्तावित संविधान निर्माता निकाय के आकार-प्रकार, उसकी सामर्थ्य व अधिकारों और कार्य विधि सम्बन्धी विचार-विमर्श किया जायेगा ।' १ इसी घोषणा की अनुपालनार्थ संविधान सभा का गठन हुआ जिसमे देश के सबसे अधिक योग्य व्यक्ति व स्त्रीयां सभी धर्मों, सम्प्रदाय, प्रान्तों, अल्पसंख्यकों तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया । उस सभा का प्रथम अधिवेशन ६ दिसम्बर १६४६ को हुआ था । संविधान सभा के सम्मुख पं० नेहरु ने संविधान सभा के कार्यों के बारे में प्रकाश डालते हुए कहा- 'सर्व प्रथम इस संविधान सभा का कार्य नये संविधान द्वारा देश को स्वतन्त्र करवाना, गरीब जनता को भोजन, नंगों को कपड़े तथा प्रत्येक भारतीय को अपनी योग्यता के अनुरूप विकास हेतु अवसर प्रदान करना है ।"

१ वैवल प्लान १४ जून १९४५ को प्रकाशित किया गया । देखिये मोतीराम की पुस्तक *Guide to Constituent Assembly P 190*

सौभाग्य से १५ अगस्त १९४७ को हम स्वतंत्र हुए । १४-१५ अगस्त की मध्य रात्रि को संविधान सभा का विशेष अधिवेशन सत्ता के हस्तान्तरण तथा स्वतंत्र भारत के श्रीगणेश के लिए हुआ और उक्त अवसर पर भारत के प्रथम प्रधानमंत्री ने सम्बोधित किया कि–' बहुत वर्षों पूर्व देश के भाग्य निर्माण हेतु निश्चय किया, अब समय आ गया है जब हम अपनी पूर्व निश्चित प्रण से मुक्त हो गये हैं, केवल पूर्णरुप से ही नहीं बल्कि सभी क्षेत्रों में सम्पूर्ण रुप से । अर्द्ध रात्रि के वक्त जब विश्व निन्द्रा में सो रहा है, भारत जीवन व स्वतन्त्रता का नया जीवन प्राप्त करेगा । आज हम उपलब्धियों का उत्सव मना रहे हैं वह तो एक पग है, महान् उपलब्धियों जिनकी प्रतीक्षा है उसका।"

लगभग ३ वर्ष बाद २६ नवम्बर को स्वीकार तथा २६ जनवरी १९५० को संविधान लागू किया गया । संविधान की प्रस्तावना

'हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को

सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए,

दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख २६ नवम्बर १९४९ ईस्वी को इतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित एवं आत्मसमर्पित करते है ।"

संविधान २६ जनवरी १९५० को लागू किया गया उसी रोज से भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न प्रजातान्त्रिक गणराज्य हुआ। संविधान की प्रस्तावना में सम्पूर्ण प्रभुत्वगणराज्य, न्याय, सामाजिक, आर्थिक, व राजनतिक, दृष्टि बगर भेद भाव, जाति धर्म, रंग, धन से सभी समान होंगे । देश के संविधान की आकांक्षाओं की पूर्ति शिक्षा–दर्शन के माध्यम से उद्देश्य सम्मुख रखकर पूरे किए जाने चाहिए । स्वतन्त्र भारत के उद्देश्य संविधान के अनुसार ही पूरा कर सकते हैं । शिक्षा के नये उद्देश्यों से अपरिचित है और इन नये उद्देश्यों का सम्पूर्ण विचार तभी आसकेगा जबकि हम समाज का नव निर्माण भारतीय संविधान के आधार पर करने का प्रयास करेंगे । संविधान के आदर्शों और मूल्यों का शिक्षा द्वारा ही सचार करना होगा ।

सविधान द्वारा शिक्षा सचालन :–

प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में सविधान ही राष्ट्र का मार्ग दर्शक होता है। राष्ट्रीय जीवन के सभी पहलुओ पर उल्लेख होता है जिसकी अनुपालना राष्ट्र सरकार व समाज का पुनीत कर्त्तव्य है। यदि उनकी प्रभावशाली ढग से उद्देश्या के अनुरुप क्रियान्विति नही हो पाती है तो दोष समाज व व्यवस्था का ही समझा जाएगा, नाकि सविधान का।

शिक्षा के सगठन व सचालन सम्बन्धी सविधान मे प्रावधान निहित किए है जिससे राष्ट्रीय आकांक्षाओ की पूर्ति हो सके। सविधान की प्रस्तावना मे सभी नागरिको को सभी प्रकार का न्याय, विचार एव अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातत्व की भावना। मौलिक अधिकारो के अध्याय मे सास्कृतिक तथा शैक्षिक विकास की स्वतन्त्रता एव राज्य के नीति निर्देशन तत्वो म १४ वर्ष की आयु तक सभी बालको को नि शुल्क एव अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध।

लेकिन हम देखते है कि अभी तक इन आधारभूत प्रावधानो की सही ढग से क्रियान्विति नही हो पाई है। सस्थाओ मे कार्यरत अध्यापको का उत्तरदायित्व है कि वे सविधान की प्रस्तावना को दृष्टि मे रखकर विद्यार्थियो का चरित्र निर्माण करें। राज्यो मे शिक्षा के अवसर बगर लिग जाति भेद के प्रदान करने हेतु तत्पर रहना है और निर्देशन तत्वो के आधार पर अनिवार्य शिक्षा जो राष्ट्रीय अभियान की सफलता मे सहयोग दिया जाय। शिक्षा का सामान्यत उत्तरदायित्व राज्य सरकारो के कन्धो पर ही है। सघ सरकार कुछ एक विषयो पर माय सचालन करता है। सामान्यत देश के लिए राष्ट्रीय आकाक्षाओ के अनुरूप शिक्षा नीति का प्रतिपादन करता है।

सविधान मे शिक्षा–सूत्र एव राष्ट्र निर्माण :–

भारतीय सविधान के द्वारा आदर्श व उद्देश्य शिक्षा द्वारा पूरे करते हुए प्रजातन्त्र–व्यवस्था का स्वरूप ही नही जीवन बन सके। शिक्षा–जगत मे सविधान की अपेक्षानुसार प्रगतिशील राष्ट्र के रूप मे खडा हो सकेगा। भारतीय सविधान निमात्री सभा ने बहुत ही महत्वपूर्ण ढग से भारतीय–भविष्य शिक्षा पर आधारित समझते हुए कुछ महत्वपूर्ण सूत्रो को रखा है जसे–

(१) सर्वसाधारण के लिए शिक्षा (Education for all) –

बालको के लिए नि शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबन्ध अनु०

४५ के अन्तर्गत अशिक्षा को दूर करने के उद्देश्य से राज्य को १४ वर्ष की आयु तक के सभी बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए उपबन्ध करने का निर्देश देता हैं।

अध्यापक की भूमिका (Role of Teachers) –

शिक्षा प्राप्त करना प्रजातांत्रिक भारत मे किसी वर्ग विशेष का अधिकार नहीं है। राज्य सरकारो द्वारा पर्याप्त मात्रा मे प्राथमिक शालाए द्रुत गति से स्थापित की जा रही है जिसका उद्देश्य सामान्य कार्यकर्ता की क्षमता एव योग्यता म वृद्धि करके राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि करना है। अत भिन्न भिन्न सामाजिक स्तरो से आए हुए बालक शिक्षा का पूरा लाभ ले सकें और उत्तरदायी नागरिक बन सकें।

अध्यापक शाला मे विभिन्न प्रकार की आने वाली समस्याओ की पूर्ति हेतु अपना कर्तव्य समझकर निम्न काम प्रभावशाली ढग से करेगा तो निश्चय ही धारा ४५ के प्रावधान की पूर्ति हो सकेगी–

१ अध्यापक को चाहिए कि वे आर्थिक साधन, भौतिक सुविधाओ को उपलब्ध करवाने हेतु जुटावे।

२ 'स्कूल चलो अभियान' की प्रभातफेरी निकालकर अभिभावको से जनसम्पर्क करके छात्रो को शाला मे प्रवश हेतु उत्प्रेरित करे।

३ आर्थिक कमजोरी के कारण अभिभावक छात्रो को नहीं भेजते उन्हें 'सीखो कमाओ' योजना को प्रारम्भ कर देना चाहिए।

४ जनता मे राष्ट्रीय चेतना के लिए शिक्षा के महत्व पर प्रकाश अध्यापक द्वारा डालते रह।

५ पिछड़े वर्गों मे राष्ट्रीय धारा से जोड़ने हेतु समाज कल्याण विभाग के माध्यम से विभिन्न सुविधाए प्रदान करवाते हुए छात्रो की आवश्यक आवश्यकताओ की पूर्ति करवाये।

६ शाला यदि दूर है तो अध्यापक जी को छात्रा के लाने–लेजाने हेतु समाज के सहयोग से समुचित प्रबन्ध करना चाहिए।

७ प्राथमिक स्तर पर अध्यापक इतना अधिक सचेत रहे कि बालक की एक रोज की अनुपस्थिति को गम्भीरता स लें, और मॉनिटर–छात्रा द्वारा बालक को शाला म बुलवाने की व्यवस्था की जाय।

८ अपव्यय एवं अवरोधन, के प्रति अध्यापक अधिक सचेत रहे।

९ १४ वर्ष की अवस्था के बालिकाओं को जो रूढ़िवादी व अशिक्षित अभिभावक नहीं भेजते हो उन्हें राष्ट्रीय चेतना के आधार पर उत्प्रेरित करने हेतु व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित कर शालाओं में लाने का सफल प्रयास अपेक्षित है।

१० प्राथमिक स्तर पर राज्य सरकार, केन्द्रीय सरकार, यूनेस्को अथवा अन्य किसी भी संस्था द्वारा मिलने वाली अधिकतम सुविधाएं छात्रों को ही प्रदान करवाई जाय।

(२) सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से शिक्षा के अवसरों की समानता हेतु अल्पसंख्यकों की संस्था की स्थापना व प्रशासन सम्बन्धी प्रावधान –

(Equality of Educational Opportunity as Social Justice)

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में इस बात का विश्वास दिलाया गया है कि प्रत्येक नागरिक को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय प्रदान किया जायेगा। संविधान ने दुर्बल तथा पिछड़े वर्गों की शिक्षा के लिए विशेष ध्यान रखा है। संविधान में कहा गया है– "अनुच्छेद २९ के खण्ड (२) की किसी बात में राज्य को सामाजिक और शिक्षात्मक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिक वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिए कोई विशेष उपबन्ध करने में बाधा न होगी।"

अनुच्छेद २९ (१) भारत-क्षेत्र में रहने वाले नागरिकों के किसी भी वर्ग को जिनकी अपनी विशेष भाषा, लिपि, या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार प्रदान करता है। इस अनुच्छेद का उद्देश्य अल्प संख्यकों के हितों को सुरक्षित करना है। ऐसा वे अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को अपनी रुचि की संस्थाओं को स्थापित करके ही सुरक्षित रख सकते हैं।

अनुच्छेद ३० (१) "सभी अल्पसंख्यकों को चाहे वे भाषा के आधार पर हों अथवा धर्म के आधार पर, अपनी रुचि की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना व प्रशासन का अधिकार होगा।"

अनुच्छेद ३० द्वारा प्रदत्त अधिकार 'नागरिकों' और 'अनागरिकों' दोनों को प्राप्त है। परन्तु अनुच्छेद २९ द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल 'नागरिक' को ही प्राप्त है।

अनुच्छेद ३० (२) के अनुसार 'राज्य शिक्षा–संस्थाओं को सहायता

देने मे किसी विद्यालय के विरुद्ध इस आधार पर विभेद न करेगा कि वह धर्म व भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक के प्रबन्ध मे है।

अनुच्छेद २९ (२) के अनुसार "राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य निधि से सहायता पाने वाले किसी शिक्षा-संस्था मे प्रवेश पाने मे किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा अथवा इनमे से किसी भी आधार पर वंचित न किया जायेगा।"

अनुच्छेद २९ (२) द्वारा "शिक्षा-संस्थाओ मे प्रवेश पाने का अधिकार व्यक्ति को एक नागरिक के रूप मे प्राप्त है न कि समुदाय के सदस्य के रूप मे"।२ उदाहरणार्थ, यदि कोई स्कूल, जो अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित किया जा रहा है राज्य निधि से सहायता प्राप्त करता है तो उसमे अन्य समुदाय के बच्चो को प्रवेश देने से इन्कार नही किया जा सकता है। न राज्य ही ऐसे स्कूलो को अपने ही समुदाय के लोगो के लिए प्रवेश को सीमित रखने के निर्देश दे सकता है, क्योकि ऐसा अनु० २९ (२) के विरुद्ध है।

राज्य द्वारा अल्प-संख्यक शिक्षा-संस्थाओ का अधिकार विनियमन से मुक्त नही है। जिस प्रकार अल्प-संख्यक संस्थाओ के शैक्षणिक स्वरूप को बनाये रखने के लिए विनियमन करने वाले उपाय जरूरी है, उसी प्रकार व्यवस्थित दशा तथा स्वस्थ्य प्रशासन / प्रशासन के अधिकार म कुप्रशासन का अधिकार नही है"।३ ठीक इसी प्रकार अल्प संख्यक संस्थाओ को शिक्षा बोर्ड, या विश्वविद्यालय से सम्बन्धन (Affiliation) का मूल अधिकार नही है। संस्था को सम्बन्धन प्रदान करने वाले बोर्ड व विश्वविद्यालय की शर्तों के लिए रजामन्द होना पड़ेगा।"४

अध्यापक की भूमिका (Teacher's Role)

(i) छात्रो के साथ समान व्यवहार किया जाय, चाहे वे किसी भी जाति के क्यो न हो।

(ii) अल्पसंख्यक छात्रो के प्रति अपेक्षाकृत अधिक मृदु व्यवहार करें।

(iii) बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक छात्रों के बीच भ्रातृत्व भावना का विकास करें।

२ पाडे जयनारायण भारत का संविधान प्र २८८ (जोसेफ पोमस बनाम केरल राज्य ए आई आर १९५३ केरल ३३ मद्रास बनाम चम्पाकम दौरै राजन ए आई आर १९५१ सु० को० २२६

३ लिली कुरीयन बनाम सीनियर लेविना ए आई आर १९७९ सु० को० ५२

४ ए आई आर (१९७३) ३ उम नि प ३५५

(iv) शाला में कक्षा शिक्षण व सहगामी प्रवृतियो मे अल्पसंख्यकों के छात्रों को उत्तरदायित्व प्रदान करना चाहिए।

(v) छात्रों को छात्र वृतियो को निष्पक्ष रूप से प्रदान किया जाय।

(vi) अल्पसंख्यक छात्र को केवल अहृता न रखने के कारण ही प्रवेश देने से इंकार किया जाय।

(vii) अल्पसंख्यक संस्था में कायरत अध्यापक, अन्य समुदाय के लोगो को प्रवेश से इंकार नही करें।

(३) अनुसूचित जातियो, आदिम जातियो तथा पिछड़े लोगो हेतु शिक्षा (Education of s c, s T and Backward Classes)

अनुच्छेद ४६ इस बात का आह्वान करता है कि राज्य जनता के दुर्बल वर्गों के, विशेषतया अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित आदिम जातिया की शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों को विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा करेगा।

अध्यापक की भूमिका (Teacher Role) –

(i) अध्यापक को चाहिए कि अनुसूचित जाति व जनजाति के छात्रों को शाला के कार्यक्रम में विशिष्ट स्थान प्रदान किया जाय।

(ii) कक्षा मॉनिटर, खेलकूद आयोजन मे कप्तान बनाना, एन सी सी स्काउट आदि कार्यक्रमो में अहम स्थान केवल योग्यता एवं क्षमता के आधार पर ही प्रदान करे।

(iii) अनुसूचित जाति के बालको को मिलने वाली सभी सुविधाएँ उपलब्ध करवाने का सफल प्रयास करें।

(iv) सहभोज आदि की व्यवस्था की जाय जिसमे सभी जाति के साथ समान रूप से भागीदार रहे।

(v) छात्रावास में मानवीय व भौतिक सुविधा सभी को समान आधार पर प्रदान की जाय।

(४) राज्य पोषित शिक्षण–संस्थाओ मे धार्मिक शिक्षा या उपासना का प्रतिषेध –

(Secularisum in Govt Institutions)

अनुच्छेद २८ चार प्रकार की शैक्षिक संस्थाओ का उल्लेख करता है

(i) राज्य द्वारा पूरी तरह पोषित संस्थाएँ,

(ii) राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त सस्था,

(iii) राज्यनिधि से सहायता पाने वाली सस्थाए,

(iv) राज्य-प्रशासित किन्तु किसी धमस्व या न्यास के अधीन स्थापित सस्थाए।

न (१) की श्रेणी म आने वाली सस्थाओं म किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नही दी जा सकती। न (२) और (३) की श्रेणी म आने वाली सस्थाओ म धार्मिक शिक्षाएँ दी जा सकती ह बशर्त कि इसके लिए लोगों ने अपनी सम्मति द दी हो। न (४) की श्रेणी म आने वाली सस्थाओं म धार्मिक शिक्षा दन के बारे म कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

अध्यापक की भूमिका (Role of The Teachers) –

(i) छात्रो का सभी धर्मों क प्रति सम्मान की भावना को विकसित कर धार्मिक सहिष्णुता विकसित करनी चाहिए।

(ii) अध्यापक का चाहिए कि वह छात्रो को सभी प्रमुख धर्मों में पाई जाने वाली समानता के बारे में बताए।

(iii) विभिन्न धर्मों व अनुयायियो के पूजास्थल जाने हेतु उत्प्रेरित करें।

(iv) धर्म को सदव कर्त्तव्य से जोडने का प्रयत्न करें।

(v) विभिन्न धर्मो की सुक्तिया तथा एक दूसरे में पाई जाने वाली समानता की ओर इंगित करें।

(vi) धर्म का व्यक्तिगत समझ एक दूसरे पर लादने का प्रयत्न न करें।

(vii) अध्यापक किसी भी धर्म विशेष का अनुयायी हो सकता है। परन्तु छात्रो पर अपने धार्मिक विचारो को नही थोपे।

(५) स्त्री-शिक्षा – (Women Education)

अस्तित्व के सघर्ष म स्त्रियो की शारीरिक बनावट तथा उनके स्त्री जन्म कार्य उन्हे दुखद स्थिति में कर देते हैं। अतः उनकी शारीरिक कुशलता का सरक्षण जनहित का उद्देश्य हो जाता है जिससे जाति, शक्ति और निपुणता को सुरक्षित रखा जा सके। अनुच्छेद १५ (३) में इस प्रकार विचार प्रस्तुत किया है– "स्त्रियो एव बालको के लिए विशेष प्रावधान रखा हैं, राज्य सरकारो का इस पर नियम बनाने का अधिकार है।"

अध्यापक की भूमिका – (Role of the teachers) –

(i) अध्यापक व अध्यापिकाओ को चाहिए कि, छात्राओ को अध्ययन हेतु प्रवेश लेने के लिए उत्प्रेरित करें।

(ii) छात्राओं के साथ सहानुभूति रखे ।
(iii) छात्राओं में मुफ्त शिक्षा व्यवस्था के बारे में प्रचार करे ।
(iv) छात्राओं के अध्ययन के बारे में फैले हुए अन्धविश्वास को दूर करने का सफल प्रयास करें ।
(v) छात्राओं को मर्दों के समान गुणों, क्षमताओं, लगन आदि के बारे में ज्ञान कराते रहना चाहिए ।

(६) भाषा संरक्षण सम्बन्धी प्रावधान :—
(Provision for Linguistic Safegard)

भारत विभिन्न भाषाओं वाला राष्ट्र है जो सबमें विवाद का विषय है । भारतीय संविधान की अनुच्छेद ३५० में कहा गया है– 'किसी व्यवस्था के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी पदाधिकारी को यथा स्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में प्रतिवेदन देने का प्रत्येक व्यक्ति का हक होगा ।'

अनुच्छेद ३५० (क) के अनुसार, 'संविधान प्रत्येक राज्य पर यह कर्त्तव्य आरोपित करता है कि वह भाषा जाति अल्पसंख्यक वर्ग के बालकों को शिक्षा की प्राथमिक अवस्था में मातृभाषा में शिक्षा देने के लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध करे ।'

अनुच्छेद ३५० (ख) के अनुसार– भाषा जात अल्पसंख्यक वर्गों के लिए राष्ट्रपति एक पदाधिकारी नियुक्त करेगा जो भाषाजात अल्पसंख्यकों को दिये गये संरक्षणों से सम्बन्ध सब विषयों का अनुसंधान करेगा और उन विषयों के सम्बन्ध में, जैसा कि राष्ट्रपति निर्दिष्ट करे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देगा ।"

अध्यापक की भूमिका (Role of The Teacher) –

(i) अध्यापक को चाहिए कि वे राष्ट्रभाषा के महत्व पर प्रकाश डाले ।
(ii) राष्ट्रभाषा के बारे में उचित दृष्टिकोण का विकास करने हेतु मार्गदर्शन प्रदान करें ।
(iii) भाषा के आधार पर अलगाववादी लोगों से सचेत रहते हुए राष्ट्रभाषा की आवश्यकता तथा महत्व के बारे में बताये ।
(iv) संस्था में अल्पसंख्यक बालक शाला में बीस व कक्षा में पांच छात्र अध्ययनरत है तो उनकी भाषा में अध्यापन की व्यवस्था करे ।

(७) राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास हेतु प्रावधान —
(Provision For Development Of National Education)

संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी, किन्तु संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तराष्ट्रीय रूप होगा। खण्ड (१) में किसी बात के होते हुए भी संविधान के प्रारम्भ से १५ वर्ष की अवधि तक संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा। परन्तु उक्त कालावधि में भी राष्ट्रपति आदेश द्वारा संघ के राजकीय कार्यों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अन्तराष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप के प्रयोग को प्राधिकृत कर सकेगा। इस अवधि के पश्चात भी संसद विधि द्वारा अंग्रेजी भाषा का ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग कर सकेगी कि ऐसी विधि में उल्लखित हो।"[५]

अनुच्छेद ३५१ के अनुसार हिन्दी भाषा की वृद्धि (प्रसार) करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी मौलिकता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहाँ-तहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ तक उसके शब्द-भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृति से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्त्तव्य होगा।

अध्यापक की भूमिका (Teacher's Role) —

(i) हिन्दी दिवस शाला में प्रतिवर्ष धूमधाम से मनाया जाय।
(ii) हिन्दी का प्रचार व प्रसार करना तथा हिन्दी साहित्य की प्रदर्शनी लगायी जाय।
(iii) हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवि, नाटककार, लेखकों के चित्र शाला की दिवारों पर लगाये जाय।
(iv) हिन्दी भाषा में वाद-विवाद, निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया जाय।
(v) भाषा अध्ययन में आने वाली समस्याओं के लिए क्रियात्मक अनुशासन करना चाहिए और उपचार भी ढूंढते रहना चाहिए।

---

४ अनुच्छेद भारतीय संविधान ३४३ (१)
५ अनुच्छेद भारतीय संविधान ३४३ (३)

अध्यापक की भूमिका (Role of Teacher) –

(i) प्राथमिक स्तर की शालाओं में सभी कार्य प्रादेशिक भाषाओं में सम्पन्न हो।
(ii) पत्र-व्यवहार हिन्दी में किए जाय।
(iii) हिन्दी भाषा का जनसमुदाय की भाषा में प्रतिष्ठित करने हेतु अभिभावकों व सामाजिक संस्थाओं को विश्वास में लें।

(९) राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों के संरक्षण सम्बन्धी प्रावधान –

अनु० ४९ यह उपबन्धित करता है कि राज्य कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले प्रत्येक स्मारक या स्थान या वस्तु की यथा स्थिति लुंठन (Spoilation), विरूपण (Disfigurement), विनाश, अपसारण (Removal), व्ययन अथवा निर्यात से रक्षा करना राज्य का आभार होगा।

अध्यापक की भूमिका (Role of The Teacher) –

राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों का संरक्षण प्रदान करने हेतु छात्रों को प्रशिक्षित किया जाय कि जब भी वे व्यावहारिक जीवन में प्रवेश करें तो इनके प्रति आदर भाव बनाये रखें उसके लिए अध्यापक को बहुत ही तत्परता से भूमिका अदा करनी है –

१ देश के भवनों के निर्माण व कलात्मक ढंग की प्रशंसा की जाये जैसे ताजमहल, लालकिला, जामा मस्जिद, आदि।

२ ऐसे प्राचीन स्मारक, किला आदि के बारे में छात्रों को ज्ञान दिया जाय।

३ ऐतिहासिक भवनो का अवलोकन करने हेतु उत्प्रेरित करे।

४ शाला भवन में ऐसी इमारतों के रेखाचित्र व छाया चित्रों का प्रदर्शन छात्रों के सम्मुख किया जाय।

५ ऐसे ऐतिहासिक-भवन जो लुढक रहे हो, तो सम्बन्धित विभाग को सूचित करे।

६ देश की दुर्लभ वस्तु यदि निर्यात की जाती है तो उसके लिए सरकार के सम्मुख विरोध प्रदर्शन किया जाय।

केंद्रिय व राज्य सरकारें व संविधान संघ, राज्य व समवर्ती सूची — (Centre, State & Constitution)

भारतीय संविधान ने संघीय शासन व्यवस्था को अपनाया है, जिसमें तीन सूचियां तयार की गई है। यह सूचियां तीन प्रकार की है संघ, राज्य एवं समवर्ती सूचियां हैं। यह सूचियां भारतीय संविधान के ७ वे परिशिष्ट [अनुच्छेद २४६] के अंतर्गत दर्शायी गई है।"६ संघ सूची पर केंद्र सरकार को, राज्य सूची में प्रश्न विषयो पर राज्य सरकारों को तथा समवर्ती-सूची पर दोनों केंद्र और राज्य सरकारों को कानून निर्माण का अधिकार है परन्तु केंद्र सरकार के द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होंगे। इन सूचियों में प्रश्न सूचि के विषय जम्मू व कश्मीर पर लागु नहीं होंगे।

(अ) संघ सूची (Union List)—

संघ सूची पर केंद्रिय संसद कानून बना सकती है परन्तु १३, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६ विषय शिक्षा से सम्बंधित है। शिक्षा के ये छ विषयो को केंद्र सरकार अपने अधीन रख सकती है। ये है—

प्रविष्ट संख्या १३—अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों, संस्थाओं तथा निकायों में भाग लेना तथा उनमे लिए गए निश्चयों की पूर्ती।

प्रविष्ट ६२—इस संविधान के प्रारम्भ पर राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, साम्राज्यिक युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया स्मारक, भारतीय युद्ध स्मारक नामो से ज्ञात संस्थायें तथा भारत सरकार द्वारा पूर्णत या अंशतः वित्तपोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैसी कोई अन्य तद्रूप संस्था।

प्रविष्ट ६३—इस संविधान के प्रारम्भ पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली वि० वि० नामो से ज्ञात संस्थाये तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था।

प्रविष्ट संख्या ६४—भारत सरकार द्वारा पूर्णत या अंशतः वित्त पोषित तथा संसद से विधि द्वारा घोषित राष्ट्रीय महत्व की संस्थाए जो वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा से सम्बन्धित है।

६ दिवान पारस व पेम राजपूत भारत का संविधान अंग्रेजी संस्करण पृ ४५७

प्रविष्ट ६५—मघ अभिकरण की सस्थायें मे जो (क) वृत्तिक, व्यवसायिक या शिल्प प्रशिक्षण, जिनके अन्तगत आरक्षी पदाधिकारियों का प्रशिक्षण भी है के लिए है अथवा [ग] विशेष अध्ययनों या गवेषण की उन्नति के लिए है अथवा (ग) अपराध के अनुसधान या पता चलाने में वैज्ञानिक या शिल्पक सहायता के लिए है।

प्रविष्ट सख्या ६६—उच्च शिक्षा या गवेषण की सस्थाओं में वैज्ञानिक और शिल्पक सस्थाओं में वैज्ञानिक और शिल्पिक सस्थाओं म एक सूत्रता लाना और मानो का निर्धारण।

(ब) राज्य सूची (State List)—

इस सूची में ६६ विषयो पर राज्य सरकारो को कानून बनाने का अधिकार है लेकिन जम्मू व कश्मीर पर लागू नही है। इसमें सघ सूची की प्रविष्ट ६३, ६४ ६५, ६६ तथा समवर्ती सूची की २५वीं प्रविष्ट-२५ के उपबन्ध के अधीन रहते हुए शिक्षा, जिसके अन्तगत विश्वविद्यालय भी है।

प्रविष्ट १२—राज्य के नियन्त्रित या वित्तपोषित पुस्तकालय, सग्रहालय या अन्य समतुल्य सस्थाए (ससद द्वारा निर्मित विधि के द्वारा या अधीन राष्ट्रीय महत्त्व की घोषित)७ से भिन्न प्राचीन और ऐतिहासिक इमारत और अभिलेख।

(स) समवर्ती सूची (Concurrent List)—

समवर्ती सूची मे 47 विषयो पर कानून बनाने की व्यवस्था की गई है। शिक्षा से सम्बन्धित दो प्रविष्टियां इसी सूची मे है—

(i) आर्थिक और सामाजिक योजना।

(ii) श्रमिको का व्यवसायिक और शिल्पी प्रशिक्षण।

शिक्षा मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका "दी रोल ऑफ गवनमण्ट आफ इण्डिया इन एजूकेशन" म शिक्षाविद् श्री जे पी नायक ने, शिक्षा के इन कार्यों को दो भागो मे विभक्त किया है—(१)प्रमुख (२) समवर्ती

(१) प्रमुख कार्य—इनके अन्तगत (i)शैक्षणिक और सास्कृतिक (ii) शिक्षा सबधी विचार और जानकारिया प्राप्त करना, (iii) सघ तथा राज्य के शिक्षा कार्यों मे सहयोग स्थापित करना, (iv) राज्य क्षेत्र मे शिक्षा।

(२) समवर्ती काय—इसमे (i) वैज्ञानिक गवेषण (ii) शिल्पिक शिक्षा, (iii) हिन्दी भाषा को समुन्नत बनाना और प्रचार करना, (iv) राष्ट्रीय

---

७ सविधान सशोधन (६ वा) एक्ट १९५६ एस २७ ससद द्वारा विधि के द्वारा घोषित

कला सहित राष्ट्रीय संस्कृति को बनाए रखना, (v) भाषा संरक्षण, (vi) विकलांगों की शिक्षा, (vii) शैक्षिक अनुसंधान तथा सहयोग, (viii) अल्प संख्यकों के सांस्कृतिक हितों की रक्षा, (ix) अनुसूचित व आदिम जाति के हितों की रक्षा, (x) राष्ट्रीय एकता, (xi) योग्य छात्रों को छात्र वृत्तियां, (xii) उच्चतर व्यावसायिक प्रशिक्षण, (xiii) केन्द्रीय शिक्षा संस्थाओं को चलाना, (xiv) चौदह वर्ष की आयु तक के बालकों के लिये निःशुल्क एवं सार्वभौम शिक्षा की व्यवस्था करना शामिल है।

शिक्षा का केन्द्रीयकरण हो या विकेन्द्रीकरण ?

(Centralization or Decentralization of Education)

शिक्षा प्रणाली विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की अपनाई गई है। रूस ने केन्द्रीकरण तो अमेरिका ने विकेन्द्रीकरण की प्रणाली को अपनाया है। साधारणतः संसद और विधान मंडलों को संवैधानिक शक्तियों के वितरण के दो ढंग हैं प्रथम केन्द्रीय शासन को निश्चित शक्तियां देकर शेष राज्यों को। अमेरिका और आस्ट्रेलिया पहले प्रकार के उदाहरण है। दूसरी प्रणाली में राज्यों को निश्चित शक्तियां देकर शेष केन्द्रीय संसद को छोड़ दी जाती है, जिसका उदाहरण कनाडा है। केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीकरण के मध्य एक सामंजस्य की स्थापना की जानी चाहिए। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली इन दोनों का सुन्दर योग है। भारत जैसे राष्ट्र के लिए विकेन्द्रीकरण प्रणाली को अपनाने के पक्ष में भारतीय संविधान सभा भी रही है और व्यक्ति एवं समष्टि को शिक्षा के क्षेत्र में काम करने का अवसर प्रदान करता है। योजना आयोग भी शिक्षा के प्रसंग में केन्द्रीय सरकार केवल चयनात्मक कार्य सम्पन्न करवाने का पक्षधारी है। कोठारी कमीशन भी "वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था में भी शिक्षा क्षेत्र में केन्द्र-राज्य साझेदारी की पर्याप्त संभावना है।" भारतीय संविधान में भी शिक्षा में विकेन्द्रीकरण का आदर्श रखता है। सप्रू समिति ने १९५४ में प्रदत्त प्रतिवेदन में केवल उच्च शिक्षा को समवर्ती सूची में रखने की सिफारिश की थी। शिक्षाविद् सर्व श्री मौलाना आजाद, श्रीमाली, प्रो० हुमायूं कबिर, आदि सभी राज्य को शिक्षा सौंपने के पक्ष में रहे हैं लेकिन नजर रखने के पक्ष में रहे हैं। शिक्षा आयोग (कोठारी) शिक्षा को केन्द्र और राज्यों की साझेदारी के पक्षधारी भी रहा है क्योंकि भारत जैसे संघीय लोकतान्त्रिक देश में कुछ उपयुक्त क्षेत्रों में तो केन्द्रीकरण करना ठीक है और अन्य क्षेत्रों में, विकेन्द्रीकरण करना होगा।

लेकिन देश में निरन्तर "शिक्षा में केन्द्रीकरण" "राष्ट्रीय नीति"

की माग जोर पकडती जा रही है। विधिवेत्ता श्री एल एम सिघवी एव चागला, डा० कुरेना आदि शिक्षा के केन्द्रीकरण में विश्वास करते है। श्री चागला न तो यहा तक कह डाला कि "सविधान बनाते समय शिक्षा को राज्य का विषय बनाने की गलती की गई है।"

शिक्षा काग्रेसी सरकार न समवर्ती-सूची म रखा लेकिन जनता सरकार ने इसे पुन राज्य सूची मे डाल दिया। निष्पक्षरूप से निणय लेने स पूव केन्द्रीकरण व विकेन्द्रीकरण का शिक्षा प्रक्रिया को अपनाने में क्या-क्या लाभ हानिया है उसके बारे में अध्ययन कर लिया जाना वाछित होगा–

शैक्षिक क्षेत्र मे केन्द्रीकरण को अपनाये जाने वाले पक्षधरो का तर्क —

१ शिक्षा प्रणाली म एकरूपता लाने हेतु

२ सारे राष्ट्र का दृष्टि म रखकर योजना बनाया जा सके,

३ केन्द्री सरकार साधन सम्पन्नता के फलस्वरूप परियोजनाए व प्रयोग आदि में सरलता।

४ शैक्षिक प्रयत्नो एव प्रयोग म अधिक समन्वय लाया जा सकता है और विभिन्न क्षेत्रो म एक प्रकार प्रयोगो को होने स रोका जा सकता है।

शैक्षिक क्षेत्र मे केन्द्रीकरण न अपनाये जाने के पक्ष मे तर्क —

१ केन्द्रीकरण स छोटे छोटे वर्गों को भाग लेने का अवसर नही मिलता।

२ दूर स्थित क्षेत्रो की ओर किसी का ध्यान ही नही जायगा।

३ विकेन्द्रीकरण स ही व्यक्तित्व का विकास।

४ काय करने का अवसर सभी क्षेत्र के लोगो को नही मिलता आदि।

शिक्षा के विकेन्द्रीकरण के पक्षधारियो का तर्क —

१ विकेन्द्रीकरण स्वय ही प्रजातन्त्र का आधार है।

२ राष्ट्रीय व सामाजिक चेतना सभी क्षेत्रो विकेन्द्रीकरण से सम्भव।

३ शिक्षा के प्रति रूझान स्वेच्छा से पैदा होगा।

४ स्थानीय लोगो द्वारा स्थानीय आवश्यकता अनुसार शिक्षा-प्रबन्ध सम्भव।

५ विभिन्न क्षेत्रो के मूल्य व सस्कृति की रक्षा सम्भव।

शिक्षा के विकेन्द्रीकरण के विपक्ष में तर्क –

१ विकेन्द्रीकरण होने से विभिन्न शैक्षिक इकाइयों को अधिकार प्रदान करने पर प्रबन्ध ठीक होने के फलस्वरूप शैक्षिक प्रगति में बाधा पड़ सकती है।

२ एक समान शिक्षा नीति सम्भव।

३ जातीयता, भाषावाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रीयता एवं संकुचित मनोवृत्ति जो देश के अहित मे हो सकती है, बढ़ावा देता है।

उपसंहार (Conculusion)–

शिक्षा से सम्बन्धित प्रावधान को राजनैतिक व शिक्षाविद् दोनों ने ही गम्भीरता से नही लिया है जिसका उदाहरण है कि ३५ वर्ष संविधान को लागू हो जाने के उपरान्त भी अनिवार्य शिक्षा के लक्ष्य पूरा नही कर पाये तो राष्ट्रभाषा का प्रतिष्ठित न होना। स्वतन्त्रता भारत मे अब भी समय रहते हुए शिक्षा का नियोजन तथा प्रशासन संविधान के आधार पर नही किया जायेगा तो संविधान निरर्थक और निष्फल सिद्ध होगा। आज स्वतन्त्रता के ३६ वर्षों के उपरान्त भी प्रभावशाली शिक्षा व्यवस्था मे परिवर्तन नही हुआ जिससे सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास भी नगण्य सा हुआ है।

मुदालियर कमीशन (१९५३) कोठारी कमीशन (१९६४–६६) ने संविधान के प्रावधान के अनुरूप सजनात्मक सुझाव सरकार को प्रस्तुत किए, परन्तु उनकी क्रियान्विति नही हो पायी और शिक्षा द्वारा देश की प्रगति की ओर बढ़ने की गति भी धीमी रही है जिसके फलस्वरूप विभिन्न राष्ट्रीय व सामाजिक समस्याओं से पूरे राष्ट्र को जूझना पड़ रहा है। यदि शालाओं का संगठन व प्रबन्ध देश के नये मूल्यों व आशाओं के अनुरूप, संविधान के सूत्रों से भली भांति परिचित बने रहे तो शिक्षा–क्षेत्र मे आन्दोलन आ सकता है प्रतिफल सुयोग्य एवं शिक्षित नागरिक प्राप्त होंगे। भारत का आधार प्रजातन्त्र है–तो प्रजातन्त्र की सफलता प्रभावशाली ढंग से संविधान की क्रियान्विति पर निर्भर करती है, जो सामाजिक व राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत है। शिक्षा के क्षेत्र में तो संविधान के सिद्धान्तों का विशिष्ट स्थान है, क्योंकि संविधान ही शिक्षा प्रणाली का जन्मदाता है और उपयुक्त शिक्षा प्रणाली संविधान व उसकी आशाओं को सबल करती है। इस महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वाह करना बहुत कुछ हमारे राष्ट्र निर्माता शिक्षक पर निर्भर करेगा जिससे निरन्तर भावी पीढ़ी के साथ क्रियाशील रहने की आशा की जाती है।

मूल्यांकन (Evaluation)

[अ] लघूत्तरात्मक प्रश्न –

१ समुदाय के कमजोर वर्गों के लिए भारतीय सविधान म शिक्षा सम्बन्धी प्रावधान लिखिये ? [राज० १९८५]

२ प्राथमिक शिक्षा के सावजनीकरण के सन्दर्भ म औपचारिक शिक्षा की तुलना मे अनौपचारिक शिक्षा पद्धति की श्रेष्ठता सिद्ध करन के उद्देश्य से पाच तक प्रस्तुत कीजिय ? [राज० पत्राचार १९८४]

३ शिक्षा को राज्य सूची की बजाय समवर्ती सूची म रखे जान के लिए अपने तर्क दीजिए ?

४ अल्प सख्यको के बार मे सविधान में क्या प्रावधान रक्खा है ?

५ "सविधान म शिक्षा सम्बन्धी प्रावधान सघीय शासन प्रणाली की दृष्टि से ठीक हैं।" स्पष्ट करें ?

६ भारतीय सविधान में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के बारे म क्या प्रावधान रक्खा है ?

(ब) निबन्धनात्मक प्रश्न –

१ शिक्षा के लिए भारतीय सविधान में क्या प्रावधान है ? समुदाय क कमजोर-वर्गों की शिक्षा की प्रगति के लिए क्या सावधानियाँ है ? [राज० १९८४]

२ हम जनतान्त्रिक समाजवाद' के प्रति समर्पित होने तथा शिक्षा सुविधाओं के व्यापक फलाव क उपरान्त भी अमीरो व गरीबो की शिक्षा में भारी अन्तर देखते है। विवेचन कीजिए । [राज० पत्राचार १९८४]

३ "अनिवाय शिक्षा के प्रसार की समस्या अब मुख्यतया पिछड़े वर्गों की शिक्षा की समस्या है ।" इस कथन की विवेचना कीजिए । इन वर्गों में शिक्षा प्रसार के लिए उपाय सुझाइये । [राज० १९८३]

४ वतमान सवधानिक प्रावधानो के अन्तगत केंद्रीय व राज्य सरकारो ने विविध स्तरो पर शक्षिक अवसरो की समानता लाने के लिये अब तक क्या कदम उठाय हैं ? उन कदमो की ओर सकेत कीजिये जो समुदाय के कमजोर वर्गों के लाभ के लिये विशेष रूप से उठाये गये हैं।

५ क्या आप शिक्षा के केन्द्रीयकरण के पक्ष में है या विकेन्द्रीकरण के ? विवेचन करे ।

अध्याय १४ | राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता

(National & Emotional Integration)

(रूपरेखा–प्रस्तावना राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता राष्ट्रीय एकता के विघटनकारी कारक एकता बनाये रखने के कारक राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता की आवश्कता राष्ट्रीय एकता का सम्प्रत्य भावात्मक एकता का सम्प्रत्य शिक्षा व राष्ट्रीय एकता अध्यापक का उत्तरदायित्व अभिभावकों का उत्तरदायित्व विभिन्न समितियों की सिफारिशें विशेष सुझाव छात्रों में राष्ट्रीय व भावात्मक एकता के विकास हेतु अध्यापक की भूमिका उपसहार मूल्याकन)

प्रस्तावना

राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता का शिक्षा मे गहरा सम्बन्ध है–इसके विकास की दिशा मे शिक्षा का सर्वोत्तम योग होता है। चाहे कितना ही अच्छा पाठ्यक्रम हो, चाहे कितनी ही अधिक सुविधाए उपलब्ध करवाई जाय परन्तु यदि अध्यापक इस ओर उदासीन रहता है तो सारा प्रयास व्यर्थ हो जायेगा। अत अध्यापक को विद्यार्थियो के समक्ष किसी भी तथ्य को बगर किसी पूर्वाग्रह के छात्रो के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहिए ताकि छात्र स्वय के विवेक व वज्ञानिक दृष्टिकोण से अपनी राय स्थापित करने का सफल प्रयास कर सके। अध्यापक के आचरण और शिक्षण व्यवस्था का छात्रो पर परोक्ष व अपरोक्ष रूप से गहरा प्रभाव पडता है। अत उन्हे सकीर्ण मनोवृति की भावना से दूर रखकर ऐसे काय करने चाहिए जिससे इस दिशा म सुधार हो सके सम्पूर्ण देश के प्रति अपनत्व की भावना का विकास विद्यार्थियो मे होना आवश्यक है, जो केवल अध्यापक द्वारा ही सम्भव है। उनमे एसी भावना भरी जावे कि वे समूचे देश को ही अपनी थाती या निधि समझ। देश के किसी भी एक भाग या प्रात पर आई हुइ कठिनाई या विपति को वे अपनी कठिनाई या विपति अनुभव करे। रवीन्द्रनाथ टेगोर ने ठीक ही विचार रखे हैं–

"सबसे प्रथम देश के व्यक्तियों में मातृभूमि के लिये भक्ति की भावना उत्पन्न करना चाहिये। शेष काय तो इसके उपरांत भी किये जा सकते हैं।' अथ ववेद मे–"ग्रहमस्मि सहमान उत्तरोनाम् भूम्याम्। अभीषा डस्मि विश्वाषाड शायाशा विषमहि।"१ अर्थात् मैं अपनी मातृभूमि के लिए और उसके दुख को दूर करने के लिए सब प्रकार के कष्ट सहने को तैयार हू। वे कष्ट चाहे जिस ओर से और चाहे जिस समय मे आयें, चिंता नहीं।

गत दो दशकों मे चीन व पाकिस्तान के द्वारा भारत पर आक्रमण हुए, उस वक्त सारे देशवासी भावात्मक एव राष्ट्रीय रूप मे एक हो गये चाहे वे किसी भी जाति, धम, सम्प्रदाय व प्रांत के क्यो न थे। केवल इतने मात्र से ही हमारा काय समाप्त नही हो जाता, क्योंकि जहा चीन और पाकिस्तान के आक्रमणो के समय की बात हम करते हैं वह हम हाल ही मे प्रांतो, भाषा आदि विषयक विघटनकारी शक्तियो के क्रियाशीलता की बात की उपेक्षा भी नहीं कर सकते। वतमान मे भी असम, पजाब का उग्रवादी आन्दोलन, महा राष्ट्र के साम्प्रदायिक दगा एव गुजरात का आरक्षण आन्दोलन भावात्मक एकता के लिए गम्भीर चुनौति राष्ट्र के सामने है। जगह जगह तोड़-फोड़, राष्ट्रीय सम्पत्ति की क्षति, बम्ब विस्फोटक प्रवृत्तिया, एक धम व जाति के लोग दूसरे धम व जाति के निर्दोष लोगो को मौत के घाट उतारना, विदेशी राष्ट्रो के लिए जासूसी करना आदि भावात्मक एकता के लिये राष्ट्रीय चिन्ता का गम्भीर मामला है। डा० सम्पूर्णानन्द के विचार भी है कि "देश में एकता और यह एकीकृत रहेगा भी चाहे इसके निवासियो मे कितनी ही विभिन्नताये क्यो न पाई जाये।' यद्यपि भारतीय सस्कृति की प्रमुख विशेषता 'विभिन्नताओ में एकता', सविधान मे समानता, स्वत त्रता, भ्रातृत्व की भावना धम निरपेक्षता, मूलभूत आधार है फिर भी देश राष्ट्रीय एकता एव भावा- त्मक समस्याओ से ग्रसित है। अत शिक्षा सस्थाओ म शिक्षको का पुनीत कर्त्तव्य है कि वे देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता की बात को अपनी दृष्टि से ओझल न होने दे। "हमारा इतिहास प्रमाण है कि अपनी बुरी शिक्षा पद्धति से किसी राष्ट्र का कितना भला और बुरा हुआ है। गलत शिक्षा पद्धति का दुस्परिणाम ही आज हम लोग भोग रहे हैं।"२ अत देश की विकट परिस्थिति को दृष्टि मे रखते हुए शिक्षण

१ अथववेद १२ १ ५४

२ रामेश्वरदत्त दुवे भावात्मक एकता के लिए शिक्षा –साहित्य परिचय शिक्षा और राष्ट्रीय एकता विशेषांक पृ १७७।

संस्थाओं मे अध्ययनरत भावी नागरिकों मे अध्ययन-अध्यापन के माध्यम से राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकता के संस्कार डाले जाये, जिसकी अत्यन्त आवश्यकता अनुभव होने लगी है ताकि राष्ट्रीय सामाजिक, आर्थिक उन्नति, संस्कृति का विकास करते हुए एकता स्थापित की जा सके। "यह तभी सम्भव है जब शिक्षक और शिक्षा वस्तु दोनो का उद्देश्य एक ही हो—देश की भावात्मक और राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति।"३

राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता की आवश्यकता — (Need of National & Emotional Integration) भारत एक विशाल देश है। यहाँ विभिन्न जातियाँ, भाषा, बोलियाँ सम्प्रदाय व धर्म के लोग निवास करते हैं भारत का केन्द्र बिन्दु 'धर्म' है। धर्म और सम्प्रदाय को आधार बनाकर यहाँ कहीं भी और कभी भी अशान्ति पैदा की जाकर देश की एकता को खतरा पैदा किया जा सकता है। देश को विदेशी ताकतों से जितना खतरा हो सकता है उतना ही आन्तरिक शक्तियाँ देश को विघटित करने में कमी नहीं रखते, जिसके लिये हमे अत्यधिक सचेत रहने की आवश्यकता है अत राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता हेतु लोगों को विस्तृत व वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास वांछित है।

इसी प्रसग मे प० नेहरू ने कहा—'हमे सीमित सकीर्ण प्रान्तीय, साम्प्रदायिक एव जातिगत भावना मन मे नहीं रखनी है क्योंकि हमे बहुत बडे उद्देश्य को प्राप्त करना है। हमे भारतीय गणतन्त्र के नागरिक होने के नाते खडे होना है, आकाश को आगे पीछे देखना है, हमे अपने कदमों को धरती पर मजबूती से जमाना है एव एकता को भारतीय जनता मे उत्पन्न करना है। राजनैतिक एकता तो किसी सीमा तक प्राप्त हो चुकी है, परन्तु मैं जिस तथ्य के पीछे हू, वह इससे कुछ अधिक गहरा है अर्थात् वह है देश के लोगों का भावात्मक रूप से एक होना।"४

हम देश के सभी वर्गों म एकता व भावात्मक सहसम्बन्ध स्थापित करने के पीछे उद्देश्य है — (i) भारत को एक सशक्त राष्ट्र के रूप मे उभरना। (ii) सविधान, राष्ट्रीय झण्डे व राष्ट्रीय प्रतीक के प्रति प्रेम पैदा करना। (iii) देश मे शान्ति प्रेम, बन्धुत्व व सहयोग की भावना का विकास। (iv) प्रजातन्त्रात्मक जीवन दर्शन और प्रशासन प्रवृत्तियों के विकास हेतु। (v) विज्ञान व तकनीकी प्रगति हेतु सभी भारतीय एक जुट होकर

३ प्रभाकरसिंह भावात्मक और राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा वही पृ ८१।
४ जवाहर लाल नेहरू भाषण भाग ३ पृ ३५।

विकास मे सभागी बन सके। (vi) राष्ट्रीय भाषा, साहित्य, संस्कृति व परम्पराओ का विकास। (vii) स्वतन्त्रता को आंच न आने देना। (viii) आन्तरिक व बाहरी शक्तिया जो देश का विघटन चाहती है उनसे रक्षा करना। (ix) विश्व बन्धुत्व की भावना पैदाकर विश्व-समाज मे योगदान देना। (x) धर्म, सम्प्रदाय के आधार पर होने वाले द्वन्द को समाप्त करना।

राष्ट्रीय एकता के विघटनकारी कारक (Disintegrating Factors of National Integration) राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता के मार्ग मे अनेक बाधाये है। कुछ तत्व समय-समय पर हिंसा भडकाते हैं, राष्ट्रीय सम्पत्ति और राष्ट्रीय हित को नुक्सान पहुचाने मे कोई सकोच नही करते, जिससे राष्ट्रीय एकता को निरन्तर गम्भीर खतरा उत्पन्न हो जाता है तथा राष्ट्रीय प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। प्रमुख विघटनकारी कारक निम्नलिखित है -

(१) साम्प्रदायिकता—सदियो से एक साथ रहने वाले विभिन्न धर्मों के लोग प्राय एक दूसरे के त्योहारो व उत्सवो मे भाग लेते हैं परन्तु कभी कभी कुछ सकीर्ण व चतुर लोग अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए साम्प्रदायिक तनाव उत्पन्न कर झगडे करा देते हैं। परिणाम होता है हिंसा, आगजनी और कर्फ्यू आदि। राजनीतिक लाभ के दृष्टिकोण से ही प्राय ये झगडे होते है। १९४७ मे हमारे देश का विभाजन भी साम्प्रदायिक आधार पर हुआ और जिसके पीछे अग्रेजो की कुटनीति का सफल प्रयास था।

(२) जातिवाद—जातिवाद आजकल हर जगह दृष्टिगोचर होता है, चाहे विद्यालय हो, कार्यालय अथवा राजनीतिक रगमच। वोट की राजनीति मे जाति प्रमुख आधार भारतीय राजनीति मे रही है। प्रवेश, नौकरी, पदोन्नति एव राजनीतिक अधिकार सभी मे जातीय पक्षपात होता है इससे लोगों मे घृणा और मनमुटाव के भाव जन्म लेते हैं। अनुसूचित जातिया, जनजातिया तथा आदिवासियो के लिए शिक्षा और रोजगार के अवसरो मे आरक्षण से उन्हे लाभ हुआ है परन्तु अन्य वर्गों मे इनके विरुद्ध प्रतिक्रिया से हुई है जिसका ज्वलन्त उदाहरण—"आरक्षण आन्दोलन"। अहमदाबाद व गुजरात के दगे है। व्यक्तियो को जातिवाद से ऊपर उठाकर कर्तव्य परायण बनाने पर बल दिया जाना चाहिये।

(३) प्रान्तीयता—भारत में अधिकाश लोग अपने को बगाली, गुजराती, राजस्थानी आदि मानते हैं, भारतीय नहीं जबकि सविधान म एकहरी नागरिकता की व्यवस्था है। प्रत्येक अपने प्रदेश को सुविधाए अधिक देना चाहते हैं। चाहे शिक्षण सस्थाओ का या उद्योग धन्धों की स्थापना का प्रश्न

हो। अन्य प्रान्त के लोगों को प्रवेश व सेवा हेतु प्रतिबन्धित कर रखा है। यह राष्ट्रीय एकता के लिए बड़ा ही घातक है। आज प्रान्तीय स्वायत्तता की माग होने लगी है अत केन्द्र राज्य सम्बन्धो को पुन परिमार्जित करने के लिए आयोग गठित किया गया है।

(४) क्षेत्रीयता—क्षेत्रीयता की भावना एवं अन्य बडी समस्या है। क्षेत्रीयता की भावना के पीछे भाषा का प्रयोग और क्षेत्र के प्रदेश का आर्थिक विकास है। यह कभी प्रदेश की सीमा निर्धारण, कभी स्वतन्त्र राज्य की माग, कभी जल विवाद, कभी उत्तर दक्षिण विवाद के रूप मे सामने आते है। बगाल, बिहार, मसूर, महाराष्ट्र, प्रथक मेघालय, पजाब हरियाणा विभाजन और वर्तमान मे अकाली आन्दोलन, चण्डीगढ विवाद इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

(५) भाषावाद,—सविधान की धारा ३४३ म हिन्दी को राष्ट्र-भाषा तथा देवनागरी लिपि को लिपि के रूप मे मान्यता दी गई परन्तु दक्षिण भारत म अब तक भी हिन्दी का विरोध प्रर्याप्त रूप में विद्यमान है। हमारे राष्ट्र की कोई भारतीय भाषा राष्ट्र भाषा न हो तथा भाषा के आधार पर प्रान्तो का पुनर्गठित हो तथा वे पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त हो, राष्ट्रीय एकता के दृष्टिकोण से सर्वथा अनुचित है। रैमजे म्योर का कथन है कि "किसी राष्ट्र को बनाने में जाति की अपक्षा भाषा का अधिक प्रभाव होता है। सर्व साधारण के लिए एक भाषा का होना एकता का प्रबल तत्व है, किन्तु विभिन्न भाषाएं हुई तो विभाजन की स्थितिया उत्पन्न हो सकती है।" अत हिन्दी सम्पर्क भाषा होनी चाहिय।

(६) आर्थिक स्थिति एव युवको का निराशपूर्ण दृष्टिकोण—देशवासियो की आर्थिक दशा भी राष्ट्रीय एकता को प्रभावित करती है। अधिकांश विद्यार्थी अध्ययन समाप्त करने के उपरान्त नौकरी चाहते है और कोई रोजगार सुलभ न होने की स्थिति में निराश होकर अनुशासनहीनता की ओर अग्रसर होत हैं। ऐसे निराश युवक समाज विरोधी एव राष्ट्र विरोधी तत्वों के चगुल में सरलता से आ जाते हैं। कुछ प्रतिभाएं विदेशों को पलायन करती जा रही है। अत देश की आवश्यकताओ और प्रशिक्षित व्यक्तियों की सख्या में सन्तुलन स्थापित किया जावे, सभी को उनकी योग्यता व क्षमता के अनुसार उपयुक्त कार्य के सुअवसर प्रदान करने से युवकों का व्यक्तित्व सन्तुलित रहेगा और राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ हो सकेगी।

(७) दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली—हमारी मौलिक आवश्यकताओं में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् परिवर्तन हुआ है अतः शिक्षा नीति में भी उन्हीं के अनुरूप परिवर्तन होना चाहिए था, परन्तु हमारा शक्षिक-ढांचा जैसा स्वतन्त्रता से पूर्व था, लगभग वैसा ही आज है। हमारी शिक्षा पद्धति हमारे व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं करती, योग्य नागरिक एवं राष्ट्रीय एकता के भाव उत्पन्न नहीं करती, परिणामतः राष्ट्रीय समृद्धि, एकता और उपयोगी नागरिक उत्पन्न नहीं हो रहे हैं।

(८) आदर्श विहीनता—आज राष्ट्र के युवकों के सम्मुख कोई आदर्श नहीं है। वे हर क्षेत्र में व्यक्तिगत लाभ को प्रमुखता व राष्ट्रीय हित की उपेक्षा होते देखते हैं। आदर्श के नाम पर उनके समक्ष राजनेता या अभिनेता हैं जिनकी करनी व कथनी में अन्तर है, तथा जो सन्मार्ग दिखाने में सर्वथा अक्षम हैं। कांग्रेस समाज सेवा अपना ध्येय मानती थी। ऐसे वर्ग को गांधीजी ने स्वयं सेवक नाम रक्खा। समूचे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने और इसके अच्छी दशा में देखने के आदर्श की आवश्यकता है।

(९) विदेश भक्ति एवं विदेशी धन—कुछ निहित स्वार्थी व्यक्ति, संस्थाएं एवं देश भारत की समृद्धि नहीं चाहते हैं। अतः वे अनुचित तरीकों से विदेशी धन भारत में लाकर कुछ समाज विरोधी एवं राष्ट्र विरोधी तत्वों के माध्यम से देश में उथल पुथल कराने का सफल प्रयास करते हैं। यह धन धर्म परिवर्तन, साम्प्रदायिक झगड़ों, जासूसी कार्यों आदि में काम लिया जाता है। वर्तमान में जासूसी काण्ड का जो भण्डा फोड़ हुआ है वह हमारी आंखें खोल देने वाला है।

(१०) भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम का अभाव—हम अपनी संस्कृति से कोई लगाव नहीं है क्योंकि शासन में नियुक्ति उच्च पदों व सरकारी नौकरियों में कहीं भी संस्कृति से प्रेम की कोई आवश्यकता नहीं, न ही संस्कृति का ज्ञान हमारे लिए कहीं अनिवार्य है। हम सारी नैतिकता, मानवता एवं शिष्टाचारों को तिलाञ्जलि देकर भौतिकता के पीछे भाग रहे हैं जो राष्ट्रीय एकता में बाधक सिद्ध हो रही है।

(१०) राजनैतिक स्वार्थपरता—देश में अनेक राजनैतिक दल हैं। उनमें कुर्सी के लिए द्वन्द्व रहता है न की राष्ट्रीय सेवा। पद प्राप्ति के लिए दल बदलते हैं, यद्यपि (अब दलबदल पर पाबन्दी है) जिससे जनता जनार्दन का राजनेताओं से विश्वास उठता जा रहा है और निरन्तर असंतोषी बनते जा रहे हैं जो देश के अहित में है।

एकता बनाये रखने के कारक (Unifying Factors)—

सब विदित है भारत विभिन्नताओं को लिए हुए राष्ट्र है परन्तु सामान्यत 'भारतीयता' को महसूस करते है । भारतीय संस्कृति को विश्वकवि टैगोर ने स्पष्ट किया—" भारतीय संस्कृति पूर्ण विकसित कमल है जिसकी प्रत्येक पखुड़ी में विविध गंध प्रवाहित होती है, यदि एक पखुड़ी नष्ट कर दी जाती है या अविकसित रह जाती है तो पुष्प का समग्र सौन्दर्य पूर्णत, प्रकाशित नहीं हो पाता ।"

यद्यपि एकता में बाधा डालने वाले तत्व प्रचुर मात्रा में हैं फिर भी कुछ ऐसे तत्व हैं जो हमें भारत को एकता में बांधकर एक राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करता है । डा० एल डी शुक्ला ने कुछ ऐसे तत्वों का वर्णन किया है, जो निम्न है—

१ गौरवमय इतिहास, संस्कृति और उभरती हुई 'मूल्य-व्यवस्था' ।
२ देश का द्रुत गति से आर्थिक विकास ।
३ देश का उद्योगिक विकास ।
४ शिक्षा तथा बोध का विकास ।
५ विज्ञान व तकनीक का प्रभाव ।
६ नागरिकों में बढती हुई परिवर्तनशीलता (Mobility)
७ सामाजिक व क्षेत्रीयता में असमानता को समाप्त करने के प्रयास।
८ योजना व विकासदृष्टि अखिल भारतीय स्तर पर उपागम ।

राष्ट्रीय एकता (National Integration)—सभी प्रकार के लोगों को ऐसे ढंग से एकीकृत कर के यह विचार हृदयगम करवाया जाय कि वे एक ही राष्ट्र के अपने आपको समझें । "जब किसी भी राष्ट्र के निवासी भावात्मक रूप से एक हो जाते हैं तब उनमें राष्ट्रीय प्रगति के लिए संकुचित हितों एवं निजी स्वार्थों को त्यागने की वृत्ति का विकास होता है । राष्ट्र की समस्त भूमि से प्रेम होता है । अर्थात समूचे राष्ट्र के हित का ध्यान में रखना ही राष्ट्रीय एकता है ।' १ दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय एकता एक ऐसा विचार है जो यह इंगित करता है कि एक राष्ट्र अथवा देश के रहने वाले परस्पर सद्भावना रखते हैं चाहे वे भिन्न भिन्न जाति, धर्म, प्रान्त, सम्प्रदाय

१ Education Commission, Education & National Development Delhi 1966

(७) दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली—हमारी मौलिक आवश्यकताओं में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् परिवर्तन हुआ है अत शिक्षा नीति मे भी उन्ही के अनुरूप परिवर्तन होना चाहिए था, परन्तु हमारा शक्षिक-ढाचा जसा स्वतन्त्रता से पूर्व था, लगभग वसा ही आज है। हमारी शिक्षा पद्धति हमारे व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नही करती, योग्य नागरिक एव राष्ट्रीय एकता के भाव उत्पन्न नही करती, परिणामत राष्ट्रीय समृद्धि, एकता और उपयोगी नागरिक उत्पन्न नही हो रहे हैं।

(८) आदर्श विहीनता—आज राष्ट्र के युवको के सम्मुख कोई आदर्श नही है। वे हर क्षेत्र मे व्यक्तिगत लाभ को प्रमुखता व राष्ट्रीय हित की उपेक्षा होते देखते हैं। आदर्श के नाम पर उनके समक्ष राजनेता या अभिनेता है जिनकी करनी व कथनी मे अन्तर है, तथा जो सन्मार्ग दिखाने म सर्वथा अक्षम है। काग्रेस समाज सेवा अपना ध्येय मानती थी। ऐसे वर्ग को गाधीजी ने स्वय सेवक नाम रक्खा। समूचे राष्ट्र को एक सूत्र मे बाधने और इसके अच्छी दशा म देखने के आदर्श की आवश्यकता है।

(९) विदेश भक्ति एव विदेशी धन—कुछ निहित स्वार्थी व्यक्ति, सस्थाए एव देश भारत की समृद्धि नही चाहते हैं। अत वे अनुचित तरीकों से विदेशी धन भारत मे लाकर कुछ समाज विरोधी एव राष्ट्र विरोधी तत्वों के माध्यम से देश म उथल पुथल कराने का सफल प्रयास करते हैं। यह धन धर्म परिवर्तन, साम्प्रदायिक झगडो, जासूसी कार्यों आदि म काम लिया जाता है। वर्तमान म जासूसी काण्ड का जो भण्डा फोड हुआ है वह हमारी आखे खोल देने वाला है।

(१०) भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम का अभाव—हम अपनी संस्कृति से कोई लगाव नही है क्योकि शासन मे नियुक्ति उच्च पदो व सरकारी नौकरियो मे कही भी संस्कृति से प्रेम की कोई आवश्यकता नही, न ही संस्कृति का ज्ञान हमारे लिए कही अनिवार्य है। हम सारी नतिकता, मानवता एव शिष्टाचारो को तिलाञ्जलि देकर भौतिकता के पीछे भाग रहे हैं जो राष्ट्रीय एकता मे बाधक सिद्ध हो रही है।

(१०) राजनैतिक स्वार्थपरता—देश मे अनेक राजनैतिक दल है। उनम कुर्सी के लिए द्वन्द रहता है न की राष्ट्रीय सेवा। पद प्राप्ति के लिए दल बदलते हैं, यद्यपि (अब दलबदल पर पाबन्दि है) जिससे जनता जनार्दन का राजनेताओ से विश्वास उठता जा रहा है और निरन्तर असतोषी बनते जा रहे हैं जो देश के अहित मे है।

एकता बनाये रखने के कारक (Unifying Factors)–

सर्व विदित है भारत विभिन्नताओं को लिए हुए राष्ट्र है परन्तु सामान्यतः 'भारतीयता' को महसूस करते है। भारतीय संस्कृति को विश्वकवि टैगोर ने स्पष्ट किया–" भारतीय संस्कृति पूर्ण विकसित कमल है जिसकी प्रत्येक पखुड़ी में विविध गंध प्रवाहित होती है, यदि एक पखुड़ी नष्ट कर दी जाती है या अविकसित रह जाती है तो पुष्प का समग्र सौन्दर्य पूर्णतः प्रकाशित नहीं हो पाता।"

यद्यपि एकता में बाधा डालने वाले तत्व प्रचुर मात्रा में हैं फिर भी कुछ ऐसे तत्व हैं जो हमें भारत को एकता में बांधकर एक राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करता है। डा० एस डी शुक्ला ने कुछ ऐसे तत्वों का वर्णन किया है, जो निम्न है–

१ गौरवमय इतिहास, संस्कृति और उभरती हुई 'मूल्य व्यवस्था'।
२ देश का द्रुत गति से आर्थिक विकास।
३ देश का उद्योगिक विकास।
४ शिक्षा तथा बोध का विकास।
५ विज्ञान व तकनीक का प्रभाव।
६ नागरिकों में बढती हुई परिवर्तनशीलता (Mobility)
७ सामाजिक व क्षेत्रीयता में असमानता को समाप्त करने के प्रयास।
८ योजना व विकासोदृष्टि-अखिल भारतीय स्तर पर उपागम।

राष्ट्रीय एकता (National Integration)– सभी प्रकार के लोगों को ऐसे ढंग से एकीकृत कर के यह विचार हृदयगम करवाया जाय कि वे एक ही राष्ट्र के अपने आपको समझे। "जब किसी भी राष्ट्र के निवासी भावात्मक रूप से एक हो जाते हैं तब उनमें राष्ट्रीय प्रगति के लिए संकुचित हितों एवं निजी स्वार्थों को त्यागने की वृत्ति का विकास होता है। राष्ट्र की समस्त भूमि से प्रेम होता है। अर्थात समूचे राष्ट्र के हितों का ध्यान में रखना ही राष्ट्रीय एकता है।"१ दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय एकता एक ऐसा विचार है जो यह इंगित करता है कि एक राष्ट्र अथवा देश के रहने वाले परस्पर सद्भावना रखते हैं चाहे ये भिन्न भिन्न जाति, धर्म, प्रान्त, सम्प्रदाय

१ Education Commission, Education & National Development Delhi 1966

य लिंग के क्यों न हो। ये सभी मिल जुल कर देश की उन्नति, सुरक्षा एव कल्याण के लिए सक्रिय रहते हैं। उनमें देश प्रेम का स्तर ऊंचा होता है उनमे एकीकरण होता है। ब्रुबेकर (Brubacher) के अनुसार—"राष्ट्रवाद एक ऐसा शब्द है जो पुनरुत्थान काल और विशेषत फ्रांसीसी क्रांति के बाद प्रयोग म आने लगा है। यह सामान्यत देशभक्ति की अपेक्षा निष्ठा के एक व्यापक क्षेत्र की ओर सकेत करता है। राष्ट्रवाद स्थानगत सम्बन्धो के अतिरिक्त प्रजाति, भाषा, इतिहास, संस्कृति और परम्परा जैसे सम्बन्धो के द्वारा प्रदर्शित होता है।'२ सगठित होने का आशय कठोरता से नही बल्कि राष्ट्रीय हित म विश्वास म सगठित होने से है। यह अस्तित्व, सहनशीलता, सहयोग व एकीकरण आदि राष्ट्रीय एकता के मूलभूत आधार हैं। भावात्मक एकता राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है ही। अन्तागत्वा जिसका उद्देश्य –

१ एकता को कायम करना, २ राष्ट्र की सामाजिक एव आर्थिक उन्नति म सहायक होना, ३ विभिन्न वर्गों की सस्कृति का विकास करते हुए राष्ट्रीय जीवन को समृद्ध बनाना, ४ विभिन्न वर्गों की छिन्न भिन्न होने की वृत्ति को रोकना।"३

राष्ट्रीय व भावात्मक एकता का सम्प्रत्यय–(Concaft of National & Emotional Intengration)–भावात्मक एकता का तात्पर्य है कि दिल और दिमाग को इस ढग से प्रशिक्षित किया जाय जिसके फलस्वरूप सारे देशवासी बिना लिंग जाति व सम्प्रदाय सभी एक समझने हेतु उत्प्रेरित किए जाय। जब भी राष्ट्रीय हित के प्रकरण को उठाया जाय उस वक्त अपने व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक साम्प्रदायिक मत भेद को भुलाकर राष्ट्रीय हित की सम्पूर्ति हेतु सवत्र समर्पित की भावना बन सके। अर्थात् "सभी समूहो म समस्त मतभेद भुलाकर, जाति, धम भाषायी समुदायो एव" सघन समूहो मे एकता का निर्माण करती है।"

इस प्रसग मे प० नेहरू जी ने अपने भाषण म कहा–"हमे सकुचित दृष्टिकोण प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता तथा जातीयता आदि सकुचित दृष्टिकोण को त्यागना होगा क्योकि हम महान् उद्देश्य को प्राप्त करना है। हम सीधे खडा होना है, पीछे स सीध रहना है तथा आकाश की ओर देखना है पैरो को मजबूती से जमीन पर जमाने हैं Bring about this Synthesis, यह

२ J B Brubacher A History of the problem of Edu P/52
३ भटनागर सुरेश आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याऐ पृ ५८५
१ सुरेश भटनागर आधुनिक भारतीय शिक्षा और उनकी समस्याए पृ ५८५

भारतीय जनता का एकीकरण है।" आगे नेहरू जी ने कहा—"भावात्मक एकता से मेरा तात्पर्य अपने मस्तिष्क और हृदय के समन्वय से है इसमें अलगाव की प्रवृत्ति का दमन सम्मिलित है।"[2]

राष्ट्रीय एकता की समस्या राजनैतिक या आर्थिक प्रकृति से अपेक्षा कृत मनोवैज्ञानिक अधिक है। यह जनता के दृष्टिकोण व (attitudes) पर निर्भर करता है। इसलिए राष्ट्रीय एकता का आधार भावात्मक एकता ही है।

राष्ट्रीय एकता का उद्देश्य मोटे तौर पर दो है– १ प्रतिक्रिया एक दूसरे को नीचा दिखाकर प्रमुत्व को प्राप्त करने की प्रवृत्ति राष्ट्रीय एकता को समाप्त करती है। २ सवेगात्मक, विचार तथा भावनाओ मे एकरूपता लाते हुए राष्ट्रीयता की भावनाओ का विकास किया जा सकता है।

हमारे सविधान मे प्रजातान्त्रिक, धर्मनिरपेक्षता, न्याय, स्वतन्त्रता, समानता भ्रातत्व की भावनाओ का प्रावधान रखा है उन्हे राष्ट्रीय एकता से मूलरूप सहज ही मिलेगा।

राष्ट्रीय एकता व भावात्मक एकता मे सह सम्बन्ध –

(Inter relationsihp of National Integration & Emotional Integrant ion)–राष्ट्रीय स्तर पर विविधता मे एकता का प्रदर्शन ही राष्ट्रीय एकता का मानदण्ड है तथा भावात्मक एकता इसे प्राप्त करने का साधन है। प्रत्येक नागरिक स्वय को राष्ट्र का अभिन्न अ ग एव महत्वपूर्ण इकाई समझे, इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्तियो के सवेग पूर्णतया नियन्त्रित, प्रशिक्षित एव सन्मार्गी किये जावे।

भावात्मक एकता द्वारा ही हमारी बहुमूल्य विविधता सुरक्षित रह सकती है। डा० राधाकृष्णन् के अनुसार–"राष्ट्रीय एकता ईट गारे तथा छैनी हथौडे से नही निर्मित की जा सकती, इसे शान्तिपूर्वक व्यक्तियो के हृदय और मस्तिष्क मे विकसित करना होगा। तथा शिक्षण प्रक्रिया से उपलब्धि हो सकेगा।"[1]

---

१ देरासरी एस डी सभापति भाषण-राजस्थान विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय अध्यापक परिषद अलवर १९६७

'National integration cannot be built by brick & mortar or with chisel and hammer It has to grow silently in the minds & hearts of men and the process by which it could be achieved was by Education

२ हुमायु कबीर स्वतन्त्र भारत में शिक्षा पृ २४९

हमारे सविधान के प्रसानुर धम निरपेक्षता व सभी भारतीयों को अवसरो की समानता प्रदान कर आत्म विकास के साधन उपलब्ध कराना राष्ट्रीय दायित्व है । यह तभी सम्भव हो सकता है, जब देशवासी परस्पर प्रेम और सहिष्णुता से रहकर राष्ट्र निर्माण के कार्यों मे लग जाय । अत राष्ट्रीय एकता भावात्मक एकता पर आधारित है ।

राष्ट्रीय एकता के लिए किये गये प्रयास (Efforts made for National & Emotional Integration) –स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता की आवश्यकता अनुभव करके अनेक प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर किये गये हैं जिसमे महत्वपूण प्रयास निम्न लिखित हैं –

१ राष्ट्रीय एकता समिति १९५८ (National Integration Committee)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित राष्ट्रीय एकता समिति के महत्वपूण सुझाव –

१ भारतीय इतिहास मे से साम्प्रदायिकता की भावना विकसित करन वाले अशो को हटा दिया जाए।
२ शिक्षण सस्थाओ मे महत्वपूण राष्ट्रीय एव धार्मिक, सामाजिक उत्सव मनाये जाये ।
३ धर्म व जाति के आधार पर छात्रवृत्तियाँ न दी जाये ।
४ साम्प्रदायिक आधार पर छात्रावास न बनाये जावे ।

२ उपकुलपति सम्मेलन–१९६१ (Vice chancellor Conference)

इस सम्मेलन मे निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किये गये –

१ राष्ट्रीय दृष्टिकोण पदा करने हेतु विश्वविद्यालय अपने यहा देश के विभिन्न भागो के विद्यार्थियों के लिए कुछ प्रतिशत स्थान सुरक्षित कर, छात्रावास सुविधा उपलब्ध कराये ।
२ सामाजिक विषयो की पाठय पुस्तको के माध्यम से छात्रों में प्रेम की भावना का विकास करे ।
३ छात्र-सघो को समाप्त कर दिया जाय ।
४ केन्द्रीय विश्वविद्यालय खोले जाय जिसमें नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर हो । शिक्षा का माध्यम अग्रेजी या हिन्दी हो ।
५ छात्रो में धार्मिक सहिष्णुता का गुण विकसित किया जाय ।

(५) भारतीय शिक्षा आयोग—
(Kothari Commission 1964-66)

कोठारी आयोग ने शिक्षा द्वारा अपने महत्वपूर्ण दायित्व को पूरा किये जाने हेतु कुछ सुझाव दिये हैं, जो निम्न हैं,–

१ सामान्य विद्यालय प्रणाली प्रारम्भ की जाय।
२ राष्ट्रीय एकता के लिये सुविचारित भाषा नीति की आवश्यकता पर बल दिया।
३ सामाजिक एवं राष्ट्रीय-सेवकों को शिक्षा अंग बनाया जावे।
४ देश की सांस्कृतिक विरासत से भली भांति परिचित करवाकर उनमें राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्र प्रेम विकसित किया जाना चाहिए।

इसी प्रकार १९७६ में राष्ट्रीय एकता परिषद् की विशेष समिति की बैठक में सात सूत्रीय–छात्र हिंसा को कम करना, उद्योगिक क्षेत्रों में हड़ताल और तालाबन्दी रोकना, उग्रवादियों पर नियंत्रण, अल्प संख्यकों को संरक्षण हरिजनों की स्थिति में सुधार, अनुसूचित जन जातियों का विकास एवं क्षेत्रीय समता कायक्रम प्रस्तुत किया गया। १९८२ में पुन श्रीमती गांधी ने राष्ट्रीय एकता परिषद् का पुनर्गठन किया। इसमें सभी विपक्षी राजनैतिक दलों को भी आमन्त्रित किया गया। असम, पंजाब में अकाली आन्दोलन के उचित समाधान न निकलने तथा उग्रवादियों द्वारा नृशंस घृणात्मक कार्यवाहियों को देखते हुए इसका महत्व और भी बढ़ जाता है।

श्री जे पी नायक के राष्ट्रीय एकता सम्बन्धी सुझाव इस प्रकार हैं–
१ शिक्षा द्वारा युवा पीढ़ी को भारत मां की कल्याणकारी तथा पोषक वृत्ति से परिचित कराकर उनमे प्रेम उत्पन्न कराया जाए।
२ विद्यार्थियों के मन में विभिन्न कवियों और लेखकों द्वारा खींचे गए भारत मां के चित्र को बढ़ाया जाए।
३- आर्थिक समानता और राष्ट्रीय एकत्व का भाव पुष्ट किया जाए।
४ सभी सम्प्रदायों से एक ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग तैयार करना जो हिन्दी का प्रयोग करे और राष्ट्र भाषा के प्रचार प्रसार में योगदान करे।
५ अखिल भारतीय शिक्षा सेवाएं चालू की जाएं।

विभिन्न समितियां एवं शिक्षा आयोग की सिफारिशों के आधार पर यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता को सुदृढ़ करने में शिक्षा

प्रणाली एवं शैक्षिक कार्यक्रमों में सुधार की आवश्यकता है। लेकिन जब तक सुधार होते हैं, हमें राष्ट्रीय एकता हेतु निम्न उपाय काम में लेने चाहिए।

वर्तमान परिस्थितियों में राष्ट्रीय एकता हेतु महत्वपूर्ण सुझाव —
(Important Suggestions in Present time for National Integration)

१ कौमी एकता उत्पन्न करना, २ आर्थिक असमानता दूर करना, ३ सभी भारतीय भाषाओं का अधिकतम परिचय देना, ४ सभी प्रान्तीय लोगों को समझाकर एक राज्य भाषा हेतु तैयार करना, ५ प्रगतिशील एवं राष्ट्रीय भावनाओं के लोगों द्वारा शोषण, साम्प्रदायिकता का विरोध करें, ६ युवाशक्ति को विघटनकारी शक्तियों का विरोध करने हेतु उत्प्रेरित करना, ७ धर्म को व्यक्तिगत जीवन तक सीमित रखें, ८ देश की परम्परा, सभ्यता एवं संस्कृति के प्रचार द्वारा राष्ट्रीय एकता दृढ करें, ९ राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता के अनुरूप पाठ्यक्रम का निर्माण हो, १० शिक्षा प्रक्रिया व प्रशासन में राष्ट्रीय एकता के अनुरूप प्रभावशाली व अनुकरण आचरण वांछित है।

शिक्षा एवं राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकता
(Education & National and Emotional Integration)

राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकता के भाव पैदा करने के लिए शिक्षा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण माध्यम है। असामाजिक व राष्ट्र का विघटन के कगार पर ले जाने वाले विघटन शक्ति के लिए शिक्षा ही प्रभावशाली हथियार है। शिक्षा को ही राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि शिक्षा ही एकमात्र शक्तिशाली एवं प्रभावशाली साधन है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने का सफल साधन सिद्ध हो सकता है। शिक्षा बालकों की आदतों, दृष्टिकोण तथा मानसिक नजरिया आवश्यकता के अनुरूप ढाल सकती है। हमारी शिक्षण व्यवस्था इस ढंग से हो, कि हमारे बालक जातीयता, क्षेत्रीयता, भाषा एवं सम्प्रदायवाद के संकुचित एवं लुभावने नारों के वशीभूत न होकर राष्ट्रीयता की भावनाओं से ओत-प्रोत हो सकें। राष्ट्रीय एकता के लिए भावात्मक रूप से उनके दिल और दिमाग को धीरे-धीरे तैयार करने से ही सफलता सिद्ध हो सकती है, जिसके लिए शिक्षा के अलावा अन्य कोई साधन नहीं हो सकता।

अतः शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता लाना चाहते हैं तो शिक्षा-व्यवस्था का इस ढंग से परिवर्तन अविलम्ब किया जाय

जिससे राष्ट्रीय चेतना तथा भ्रातृत्व भावना का उदय हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति–हेतु निम्नलिखित आधारभूत बिन्दुओं को दृष्टि में रखना आवश्यक है–

१ संवेगों को इस ढंग से प्रशिक्षित करते हुए विकास किया जाय कि वे भावात्मक रूप से व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो सके।

२ ऐसे दृष्टिकोण का विकास हो कि आधारभूत मूल्यों व सहन शक्ति जीवन का आधार हो।

३ राष्ट्र के विभिन्न भागों के बारे में विस्तृत ज्ञान दिया जाय तथा स्वतन्त्रता संग्राम के महत्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किए जाय।

४ ऐसी विभिन्न प्रवृतियों के आयोजन को प्रोत्साहित किया जाय जिससे जातीयता व प्रान्तों के सही तथ्यों को समझ सके।

५ राष्ट्र के सदस्यों का नागरिक होने के नाते प्राप्त करने के मूल अधिकार है ठीक उसी प्रकार कर्त्तव्य भी उसके साथ जुड़े हुए हैं ऐसी भावनाओं का विकसित किया जाय।

राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता के लिए शिक्षा का उत्तरदायित्व

The role of education in bringing National & Emotional Integration

शिक्षण संस्थाएं अध्ययन स्थल हैं जिनका मुख्य कार्य समाज की आकांक्षाओं के अनुरूप छात्र तयार करना। शालाओं के दो प्रमुख कार्य हैं–प्रथम परिवर्तन के उपरान्त भी समाज के ढाँचे को बनाये रखना तथा द्वितीय छात्रों को समाज के अनुकूल कौशल युक्त बनाना। प्रथम के लिए छात्र राष्ट्रीय परम्पराओं को समझते हुए और अधिक राष्ट्र उपयोगी बनाने में तत्पर हो सके। यह अच्छी शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। इस सन्दर्भ में शाला–स्तर पर अत्यधिक सचेत रहने की आवश्यकता है।

इस संदर्भ में गजेन्द्र गडकर उपसमिति (१९६८) में राष्ट्रीय एकता समिति ने निष्कर्ष निकाला कि प्राथमिक से विश्वविद्यालय स्तर तक पुनर्गठन हो जिसमे निम्न महत्वपूर्ण बातों का समावेश हो–

१ भारतीयता की एकता व प्रभुत्व सम्पन्नता की भावनाओं का विकास किया जाय।
२ प्रजातन्त्र व्यवस्था में विश्वास करना।
३ परम्परागत भारत को आधुनिक भारत बनाने में राष्ट्र को हर सम्भव मदद करना।

अत निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है शिक्षा ही एकमात्र शक्तिशाली साधन है जो ज्ञान प्रदान कर मूल्यो के आधार पर उपयुक्त दृष्टिकोण का विकास कर सकता है । छात्रो से समाज की आकाक्षाओ के अनुरूप सामाजिक आधार का निर्माण करने हेतु हृदय से रुचि ले सके ।

शालाओ म देश के भावी-भावी कर्णधार तयार हो रहे है । वे शिक्षा द्वारा समाज मे परिवर्तन लाने मे सफल हो सकते हैं । अत शालाओ का प्रमुख उत्तरादायित्व है कि वे राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता की भावनाओ का विकास करने हेतु सहयोग प्रदान करे । इस प्रसग मे माध्यमिक शिक्षा आयोग ने भी कहा है—"हमारी शिक्षा को ऐसी आदतो तथा दृष्टिकाणो एव गुणो का विकास करना चाहिए जो नागरिको को इस योग्य बनादें कि वे जन-तन्त्रीय नागरिकता के उत्तरदायित्वो को वहन करके उन विघटनकारी प्रवृतियो का विरोध कर सके जो व्यापक, राष्ट्रीय तथा धम-निरपेक्ष दृष्टिकोण के विकास म बाधा डालती है ।"[१]

छात्रो मे राष्ट्रीय वभावात्मक एकता के विकास हेतु शिक्षक की भूमिका

(Role of Teachers in the dovelopment of National & Emotional Integration)

राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता को विकसित करने के लिय अध्यापक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । केवल ऐसे शिक्षक ही बालको म ऐसी भावनाओ का विकास कर सकता है जो स्वय जातीयता, प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता, धम और भाषा आदि दूषित एव सकुचित प्रवृतियो से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता की भावना से ओत-प्रोत हो । वह सुयोग्य नागरिक, देश, व सस्कृति की सेवा करन वाले हो । राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता अध्यापक द्वारा प्रदत भाषण से नही बल्कि अध्यापन के विभिन्न सामाजिक विधियो को काम में लेने स, जैसे सेमिनार, सम्पोजियम, कान्फ्रे स, समूह-विचार-विमर्श, पनल-डिसकसन आदि, इससे छात्रों म प्रजातान्त्रिक, सहयोगी, समानता, सामाजिकता, सहनशीलता आदि गुणो का विकास हो सके । भारतीय सस्कृति देश के विभिन्न भागो के तानो (Theads) को एक साथ बुनने से ही (Weave) भारतीय सस्कृति बनी है-ऐसे विचारो को हृदयगम करवाने का अध्यापक द्वारा सफल प्रयत्न करना चाहिए ।

अध्यापक धर्म निरपेक्षता के सम्प्रत्यय का स्पष्ट करे और अपने धम

१ सेकेन्डरी एज्युकेशन कमीशन रिपोर्ट पृ० २३

के बारे म ही नही बल्कि अन्य धर्मों की जानकारी होने से ही तुलनात्मक ज्ञान छात्रो को दे सकेगा । अध्यापक समान तत्वो एव घटनाओ द्वारा सामूहिकता की भावना का विकास करे । छात्रो को महान् भारत के छात्र होने का गर्व उत्पन्न करना चाहिए । समय समय पर छात्रो द्वारा एकता का सकल्प करवाये । सामूहिक काय करने की प्रवृत्ति का विकास करे । अपने आप को जनतान्त्रीय मान्यताओ के अनुरूप ढालने का सफल प्रयास कर जनता की भाषा म अध्ययन अध्यापन प्रक्रिया सम्पन्न हो जो सारे देश म बोली जाती है । -

अत कतिपय कठिनाइयो और असुविधाओ के उपरान्त भी राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता की वचारिक क्रान्ति का द्रुतगति से स्थाई रूप म प्रसार हो सकता है तो एक मात्र शिक्षक के द्वारा ही ।

छात्रों मे राष्ट्रीय व भावात्मक एकता के विकास हेतु अभिभावक व समाज की भूमिका

(Role of Parents and Society in the dovelopment of National & Emotional Integration) —

बालक शाला म प्रवेश लेने से पूव पूणतया अपने अभिभावको, सम्बन्धियो, पास-पडोसियो व समाज के प्रभाव म रहता है । उस उम्र के बालको के दिमाग म राष्ट्रीयता एव देश प्रेम जसी भावनाए अभिभावक सहज ही भर सकते हैं । यदि बालक ऐसे तत्वो के सम्पर्क व प्रभाव मे हो जाता है जो देश को विघटन करवाने म रुचि रखते हैं तो शाला के लिए अत्यधिक मुश्किल हो जाता है कि ऐसे छात्रो म 'सब भारतीय एक हैं' की बात हृदयगम करवाना । शिक्षण सस्थाए अत्यधिक ऐसे अवसर प्रदान कर सकती है, भारतीय सस्कृति विभिन्नता मे एकता का गुण लिए हुए है । भारत के विभिन्न प्रान्तो म रहने वाले लोगो के प्रति आदर, सहनशीलता, अपने राष्ट्र के लोगो के प्रति सवेदनशीलता की भावनाओ का विकास कर सकती है लेकिन शालाओं के साथ-साथ अभिभावको व सामाजिक सस्थाओ द्वारा समय-समय पर भारत की विभिन्न सामाजिक, विभिन्न-धर्मों, विभिन्न भाषाओ का होना हमारे देश की विशिष्ट विशेषता है और उनका आदर किया जाय । अभिभावको व सामाजिक सस्थाओ का प्रमुख उत्तरदायित्व है कि वे अपने धर्म' सम्प्रदाय व सामाजिक परम्पराओ के अतिरिक्त अन्य लोगो के विश्वास, परम्पराओ, रीतिरिवाज, व्यवहार, तथा सभी धर्म, क्षेत्र व भाषा के लोगो की प्रशसा करते हुए सकरात्मक दृष्टिकोण का विकास करने हेतु बालको को

उत्प्रेरित करे। शिक्षण-संस्थाएं वर्तमान परिस्थितियों में परिवार, समाज, प्रचार एवं संचार माध्यम, सांस्कृतिक व राजनैतिक संस्थाओं के बीच समन्वय (Coordinator) का कार्य ही राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता हेतु कर सकती है। अतः प्रजातान्त्रिक भारत के नागरिकों अभिभावकों व सभी सामाजिक संस्थाओं का उत्तरदायित्व है कि वे इस अभियान में मुस्तैदी के साथ अपनी भूमिका का निर्वाह करें।

राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता की प्रगति हेतु निर्धारित शैक्षिक कार्यक्रम। Specific Educational Programme for Promoting National & Emotional Integration)–

शिक्षण संस्थाओं को राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता के लिए सभागी होना चाहिए। शिक्षण संस्था का सम्पूर्ण पर्यावरण ऐसा हो जिससे इसकी **अभिवृद्धि** (growth) में पर्याप्त मात्रा में सहयोग प्राप्त हो सके। छात्रों के वांछित व्यवहार इस ढंग से विकसित हों कि वे भारत की एकता पर गर्व करने लगें।

१ पाठ्यक्रम का पुनर्गठन – (Curriculum Re-orientation)

पाठ्यक्रम राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता की भावनाओं को जाग्रत करने हेतु अत्यधिक महत्वपूर्ण साधन है। इसके द्वारा छात्रों को पढ़ने के लिए विषय वस्तु तथा व्यवहारिक अभ्यास करने हेतु पर्याप्त साधन प्रदान किए जाते हैं। विषय वस्तु को कक्षा कक्ष में अध्यापन किया जाता है तथा व्यावहारिक अभ्यास के लिए सहगामी प्रवृतियों का संगठन व संचालन द्वारा उद्देश्य पूर्ति सम्भव है।

"स्थानीय प्रादेशिक भाषायी, धार्मिक और अन्य वर्गगत या संकुचित निष्ठाओं के प्रभाव में राष्ट्रीय एकता की जो भावना सामान्यतः कमजोर होती जा रही है, उसमें ये प्रतिबिम्बित होती है। इन खतरनाक खाइयों को पाटने तथा राष्ट्रीय चेतना (National consciousness) एवं एकता को मजबूत बनाने के लिए प्रभावकारी कदम उठाए जाने चाहिए।"[१] इसके लिए आवश्यक है कि वर्तमान पाठ्यक्रम, सहगामी प्रवृतियों के संगठन एवं संचालन का पुनर्गठन

---

१ कोठारी डी एस शिक्षा आयोग की रिपोर्ट पृ ११

होना चाहिए तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारम्भ होना आवश्यक है–

विषय शिक्षण (Subject Taught)

(अ) भाषा का शिक्षण (Teaching of Language) भाषा पर अधिकार होने की स्थिति म हो वह दूसरो को अपने विचार प्रभावशाली ढग स अभिव्यक्त करने मे सफल हो सकता है। अत भाषा अध्यापन क माध्यम से राष्ट्रीय एकता के विचारा म विकास करवाने हेतु पर्याप्त आधार उपलब्ध हो जाता है। प्रारम्भिक स्तर पर भारत की महान् विभूतियों जैसे अशोक, चन्द्रगुप्त मौर्य, आदि जस देशभक्तों की कहानियां नाट्य-रूप मे छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐतिहासिक साहित्य प्रभावशाली अध्यापन हेतु उद्देश्य पूर्ति-हेतु सहायक हो सकता है जस –पत्र लिखना, अनुवाद करवाना, व्याकरण, दोहा-अन्तराक्षरी, कविता पढ़ना, नाटक आदि।

अध्यापक को बहुत ही सचेष्ट होकर ऐसे विषय वस्तु का चयन करना चाहिए, जिसस राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता की भावनाए बन सके। एक भाषा से दूसरी भाषा म किसी गद्य का अनुवाद करवाने हेतु चयन करने मे सकारात्मक दृष्टिकोण का राष्ट्रीय एकता हेतु विकास होना है। राष्ट्रीय नेता व स्मारक के बारे म गद्य का चयन वांछित है। भारत के विभिन्न भागों के त्यौहार, परम्पराए, आदि पर लेख लिखवाना लाभप्रद सिद्ध होगा। अध्यापक को चाहिए कि वे कभी भी ऐस अवसरो को हाथ से न गवाने दे, जब भी अवसर प्राप्त हो राष्ट्रीयता की भावनाओं म ओत प्रोत करत रहे और उन्हें ऐसी कविताए, कहानियां, गद्य अनुवाद क लिए चयन करना चाहिए जिससे उक्त उद्देश्य की पूर्ति हो सके। अध्यापक को पुस्तकालय की ओर इगित करना चाहिए जहां से राष्ट्रीय एव भावात्मक साहित्य का अध्ययन कर सके।

(ब) सामाजिक ज्ञान का शिक्षण (Teaching of Social Studies) सामाजिक विषयो की विषय वस्तु को लेकर सामाजिक ज्ञान शिक्षण किया जाता है। इस विषय को पढ़ाने का प्रमुख उद्देश्य छात्रो म सामाजिकता के दृष्टिकोण का विकास कर अच्छे नागरिक का निर्माण करना। अत सामाजिक ज्ञान अध्यापन के माध्यम से राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता के दृष्टिकोण का विकास सरल हो जाता है।

(स) इतिहास शिक्षण (Teaching of History) इतिहास अध्यापक को अनेकता म एकता भारतीय इतिहास की विशिष्ट विशेषता पर जोर देकर पढाना चाहिए। जिसस विभिन्नताओं में एकता सम्भव हो। भार

तीय इतिहास का अध्यापन करवाते वक्त ऐसे स्थलो और घटनाओं पर जोर दिया जाए जिनसे राष्ट्रीय एकता को बल मिला हो। ऐतिहासिक घटनाओ की व्याख्या राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य मे की जानी चाहिए। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को प्रमुख स्थान दिया जाय।

(द) नागरिक शास्त्र शिक्षण , (Teaching of Civics) — भारतीय सविधान पढाते वक्त धर्म निरपेक्षता पर जोर दे ताकि छात्र समझ जाय कि भारतीय सविधान मे जाति, सम्प्रदाय, धर्म व वर्ग विशेष का कोई महत्व नही है। समानता की सकल्पना पर भी जोर दे, ताकि समझे कानून के समक्ष सभी समान है–भारत मे सभी को समान अवसर उपलब्ध होगे। नागरिक शास्त्र अध्यापक राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता के अध्याय को गम्भीरता से पढाते हुए सस्कार डालने की कोई कोर–कसर नही छोडे। नागरिको के अधिकार व कर्त्तव्य का बोध कराकर अच्छे नागरिक के रूप मे उपयोगी नागरिक तयार कर सकता है।

(न) भूगोल शिक्षण (Teaching of Geography) भूगोल अध्यापक राष्ट्रीय एकता के विकास करने का दृष्टिकोण के ध्यान मे रखते हुए देश की भूमि, भौतिक व प्राकृतिक साधनो के बारे म ज्ञान। किसी एक भाग की उपज एव खनिज किस प्रकार अन्य भागो के लिए उपादेय सिद्ध हो रहे हैं। जीवन–स्तर मे यह कसे सह सम्बन्धी है।

(च) अर्थशास्त्र शिक्षा (Teaching of Eco) अर्थशास्त्र समूचे राष्ट्र के आर्थिक विकास को विभिन्न क्षेत्रो व प्रदेशो के विकास से सम्बद्ध करके पढ़ाना चाहिए।

(म) ललित कलाए (Teaching of fine Arts) सगीत, साहित्य एव अन्य ललित कलाए व्यक्ति के सवेगो को सीधे प्रभावित करती हैं। अत ललित कलाओ को पाठ्यक्रम मे महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाना चाहिए।

२ सहगामी प्रवृत्तियो का आयोजन (Org of Co Curricularactivities)

सहगामी प्रवृत्तियो का शाला सगठन व सचालन से छात्रो को हृदय से छात्रो के बीच एकता की भावनाओ की वृत्ति के विकास हेतु अत्यधिक अवसर प्राप्त होते है। शिक्षण-व्यवस्था का यह अभिन्न अग के रूप म बन जाता है राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता के उद्देश्य को दृष्टि म रखकर इन प्रवृत्तियो का नियोजन बहुत ही दक्षता के साथ किया जाना चाहिए। नियोजित प्रवृत्तियां निम्न उद्देश्यो की पूर्ति कर सके —

१ एक महान् राष्ट्र की विचार धारा का विकास हो

२ भारतीय संस्कृति, सामाजिक जीवन तथा आर्थिक विकास जो देश के विभिन्न भागो म विद्यमान है उसकी प्रशसा करना और हृदय से इज्जत करना।

३ सहनशीलता एव परस्पर विश्वास की भावनाओ का विकास कर परस्पर द्वेष व हानि पहुचाने वाले विचारों को दिल और दिमाग से हटाना।

राष्ट्रीय एकता हेतु सहगामी प्रवृत्तियों का सगठन एव सचालन—

उपरोक्त उद्देश्या की प्राप्ति हेतु एन सी आर टी नई देहली कुछ सहगामी प्रवत्तियो के शाला मे सुझाव के रूप म सगठित व सचालित करन से छात्रा म राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता स्थापित होने की प्रबल सम्भावनाए बन जायेगी, वे निम्न है—

राष्ट्रीय-गान का गाना (Singing of National Anthem)

राष्ट्रीय गान की तरह विशिष्ट ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, बालक उपयुक्त ढग से, अनुशासनमय ढग से तथा निर्धारित तरीके से गाये। बालको को राष्ट्रीय गान का तात्पय व भावाथ खूब अच्छी तरह सम झाया जाना चाहिए।

२ राष्ट्रीय ध्वज का आदर (Reverance of National Flage)

बालको को राष्ट्रीय ध्वज के इतिहास व महत्व के बारे मे ज्ञान प्रदान किया जाय। उन्ह राष्ट्रीय ध्वज को प्रत्येक अवस्था में तथा प्रत्येक स्थान पर श्रद्धा प्रदान करना चाहिए।

३ राष्ट्रीय पर्वों को मनाया जाना (Celebration of National Festivals)

स्वतन्त्रता दिवस व गणराज्य दिवस प्रत्येक शाला में बडे धूम-धाम व उल्लास के साथ मनाया जाय। शालाओ सामायिक राष्ट्रीय समस्याओ के बारे में विचार-विमश व वार्ताए आदि का कायक्रम समय-समय पर सगठित किया जाय। स्वतन्त्रता के उपरान्त प्रगति के बारे में भी वार्ता आयोजित की जाय।

(५) राष्ट्रीय नेताओ के जन्म दिवस मनाया जाना (Celebration of Birth Days of National Leaders)

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता विकास व उन्नति के लिए जिन महान् राष्ट्र

नेताओ ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है उनके जन्म-दिवस मनाये जाय, जो छात्रो के लिए उत्प्रेरणादायक सिद्ध हो सके । ऐसे महान् देशभक्त जैसे महात्मा गांधी, प० नेहरू, सुभाषचन्द बोस, तिलक, मौलाना आजाद, टगोर, सरोजनी नायडू, इकबाल, ज पी बास, भामा, लाजपतराय आदि । अध्यापक को इन महान् सपूतो की राष्ट्र को देन रही उस पर प्रकाश डालते हुए राष्ट्रीय एकता कायम करन म उनकी भूमिका पर प्रकाश डाले ।

(५) राष्ट्रीय एव स्वदेशाभिमान प्रेरित गीत — (National and Patriotic Song)

राष्ट्रीय-गीत जसे, "सारे जहा स अच्छा हिन्दुस्तान हमारा" समूह गान के रूप म शालाओ में नित्य प्रति गाय जावे । विभिन्न भाषाओ म स्वदेशाभिमान प्रेरित गीतों का सग्रह करते हुए उचित ढग स गाने का प्रशिक्षण प्रदान किया जाय । छात्रो को उक्त गीतो के भावाथ, शब्दाथ व उद्देश्यो को स्पष्ट किए जाय ।

(६) भाषा क्लब (Language Clubs) —

भाषा क्लब विभिन्न भाषाओ के जो उत्प्रेरणादायक गीत, नाटक, लोक गीत आदि का सग्रह करते हुए उद्देश्य पूर्ति-हेतु गाये जाय, विचार विमश करवाय और नाटक खेले जाय ।

(७) पैन-फ्रैन्डशिप क्लब (Pen Friendship Clubs) —

छात्रों के विभिन्न अन्य राज्यो के छात्रो स पत्र-व्यवहार द्वारा सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक, लोक कथाओ, दार्शनिक स्थल, राष्ट्रीय स्मारक आदि के बारे मे जो परस्पर वितरण आदान प्रदान करने से भारत के अलग-अलग भागो में रहने वाले छात्रा म घनिष्ट मित्रभाव के साथ साथ भारत की विभिन्न बातो मे जो विभिन्नता है उसका ज्ञान प्राप्त करने म सफल होकर देश के बारे में ज्ञान हो सकेगा ।

(८) साहित्य क्लब (Literary Clubs) —

शाला पत्रिका का प्रकाशन सम्पन्न हो । पत्रिका मे देश के विभिन्न भागो म रहने वाले लोगो की वशभूषा, रहन-सहन, भोजन, परम्पराए विभिन्न सामाजिक सस्थाए, सस्कार आदि का समावेश किया जाय जिससे उन लोगो के बारे मे ज्ञान छात्रो को हो सके ।

(९) छात्रों का आदान-प्रदान व शैक्षिक भ्रमण (Exchange of Students and Educational Tours) –

छात्र अन्य प्रान्त की शालाओं का भ्रमण हेतु जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। उक्त कम समय के ठहरने के काल में वे वहां की भाषा, वेशभूषा, रहन सहन व तौर-तरीके, भोजन, कला तथा साहित्य आदि के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

शैक्षिक भ्रमण से भी विभिन्न भारतीय प्रान्तों के रहन-सहन के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के अवसर मिलते हैं।

(१०) धार्मिक-सहिष्णुता के विकास हेतु क्रिया-कलाप (Activities to promote religious tolerance) –

छात्रों को सभी प्रमुख धर्मों में पाई जाने वाली समानता के बारे में ज्ञान देना। विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के पूजा स्थल पर जाने हेतु उत्प्रेरित करना। इससे अन्य धर्मों के पूजा पाठ के तौर-तरीकों के बारे में अनभिज्ञ है, उसका ज्ञान प्राप्त करने में सफल हो सकेंगे और अपने धर्म के साथ अन्य धर्मों के प्रति आदर भाव बढ़ेगा।

(११) सांस्कृतिक कार्यक्रम (Cultural Programmes) –

विभिन्न प्रान्तों के लोक गीत तथा लोक-नृत्य, लोक-कथाओं आदि कार्यक्रमों का सफल आयोजन किया जाना चाहिए। जिससे अन्य प्रान्तों की संस्कृति का ज्ञान होगा।

डा० सम्पूर्णानन्द समिति ने विभिन्न सहगामी प्रवृत्तियों के संगठन व संचालन हेतु सुझाव दिए हैं जैसे– १ शाला यूनिफार्म, २ प्रतिदिन सभा का आयोजन, ३ गगन तले नाटक, ४ छात्रों का आदान प्रदान व शैक्षिक भ्रमण, ५ शाला-सुधार कार्यक्रम आदि की अभिशंसा की है। इन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त निम्न सहगामी प्रवृत्तियों के आयोजन से भी छात्रों में राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास हो सकेगा। वे प्रवृत्तियां निम्न हैं–

१ सम्भावित विपत्तियों व मृत्यु हेतु धन इकट्ठा करना,
२ शोभामय ड्रेस
३ अन्तर शाला वाद विवाद प्रतियोगिता एवं युवक कार्यक्रम
४ स्काउटिंग व गर्ल गाइड कार्यक्रम
५ एन सी सी प्रशिक्षण

६ खेलकूद व स्पोट्र्स
७ अध्यापको का आदान प्रदान
८ सामुदायिक भोज व रात्रि भोज
९ सचार साधनो का प्रचुर उपयोग।
१० प्रोजेक्ट्स–राष्ट्रीय।

प्रदर्शन के माध्यम से राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता स्थापित करने हेतु एन सी आर टी का सुझाव:–

१ सभी राज्यों क नक्शे
२ सभी धर्मो के रीति रिवाज ३ सभी राज्या के निवासियो के रीति रिवाज व तौर तरीको के बारे में चित्र।
४ *विभिन्न राज्यो क लोक नृत्य के चित्र एव माडल।*
५ राष्ट्र के विभिन्न भागो मे विचित्र ग्रह का काड बोड मॉडल।
६ विभिन्न राज्यो की पदावार।
७ विभिन्न राज्यो के कवि, पेंटस, राष्ट्रीय नेता, समाज-सुधारक, वज्ञानिको क चित्र।
८ सभी राज्या के खनिज पदाथ।
९ प्रत्येक क्षेत्र के जानवरा व पक्षियो के चित्र।
१० विभिन्न राज्यो में निर्मित बहुउद्देश्यीय योजनाओ के चित्र।
११ रगमच नाटक की सुन्दरता के चित्र।
१२ महत्वपूण इमारतो व ऐतिहासिक भवनो के चित्र।
१३ राष्ट्रीय महत्व के कल–कारखानो के चित्र।
१४ भारत का नक्शा जिसमें ऐतिहासिक, सास्कृतिक, इण्डस्ट्रीज, धार्मिक महत्व के स्थल प्रदर्शित हो।
१५ देश के महत्वपूण मन्दिर, गिरजाघर, मस्जिद जो विभिन्न स्थानो पर स्थित है उसका चित्र।
१६ प्रत्येक राज्य द्वारा आयात–निर्यात वस्तुओ की सूची।
१७ भारत की विभिन्न भाषाओ के अक्षरा का चाट (अलग अलग भी और सग्रम रूप में भी)
१८ विभिन्न धर्मो की सुयुक्तियाँ तथा एक दूसरे म पाई जाने वाली समानता की ओर इगित करना।
१९ विभिन्न भाषाओ मे लिखित लब्ध प्रतिष्ठ प्राचीन व आधुनिक पुस्तको तथा लेखका की लिस्ट।

सब मिलाकर मुख्य उद्देश्य है कि विभिन्न प्रवृत्तिया, क्रिया कलापों के माध्यम से विभिन्न जाति के लोगो, प्रान्तीय समूह में परस्पर सद्भाव, इज्जत करने व सहनशील तथा सम्वेदनशील बनाने का सफल प्रयास किया जाय। जो सभी राष्ट्रीय हित में रहेग।

कोठारी कमीशन न इस प्रसग में कहा है—"सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण एक ऐसी समस्या है जिससे कई मोर्चों पर जूझना पडेगा। जिनमे स एक शिक्षा भी है। हमारी राय में शिक्षा उसमें निम्नलिखित द्वारा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है और उसे ऐसा करना भी चाहिए —

१ लोक शिक्षा की एक समान स्कूल प्रणाली आरम्भ कर।
२ सभी स्तरो पर, सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा को शिक्षा का एक अभिन्न अ ग बनाकर।
३ सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ का विकास कर तथा यथा-सभव शीघ्र हिन्दी को समृद्ध बनाने के लिए आवश्यक कदम उठाकर ताकि वह सघ की राजभाषा का काम प्रभावशाली ढग से करने म समथ हो सके, तथा
४ राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहन देकर।"१

मूल्यांकन

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न —

१ हमारे देश में सामाजिक एकता को सबल करने क पाँच सुझाव दीजिये। (राज० १९८५)
२ "राष्ट्रीय एकता का सर्वाधिक प्रभावी सामाजिक साधन है, अन्तर्जातीय विवाह।' स्पष्ट कीजिए। (राज० १९८२)
३ आज कोई सस्कृति शुद्ध नहीं है, प्रत्येक सस्कृति सामयिक (सश्लिष्ट है। टिप्पणी कीजिए। (राज० पत्राचार १९८१)
४ 'राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता की समस्या के दो प्रमुख कारणो तथा उपायो का उल्लेख कीजिए। (राज० १९७९)
५ राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता के सम्बन्ध म कोठारी आयोग द्वारा सुझाई गई पाँच प्रमुख सस्तुतियो का उल्लेख कीजिये। (राज० १९७८)

१ कोठारी डी एस शिक्षा आयोग रिर्पोट प्र ११

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न —

१ राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता से क्या समझते हैं ? उन कारणो की व्याख्या कीजिये जो राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता में बाधक हैं ? [राज० १९८५]

२ राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता में बाधक कौन से विघटनकारी कारक हैं ? राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता बढाने में शिक्षा किस प्रकार सहायक हो सकती है ? [राज १९८५]

३ " उचित शिक्षा द्वारा राष्ट्रीय एकता सभव है ।" व्याख्या कीजिये । [राज १९८४]

४ हमारे सामाजिक व राष्ट्रीय एकता के अवरोधक कारक कौन-कौन से हैं तथा शिक्षा राष्ट्रीय एकता की लक्ष्य-प्राप्ति में किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकती है? [राज पत्राचार १९८४]

५ भावात्मक एव राष्ट्रीय एकता से आप क्या समझते है ? त्रिभाषी सूत्र विद्यार्थियो में भावात्मक एव राष्ट्रीय एकता के भावो को उत्पन्न करने मे किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकता है ? [राज १९८३]

६ राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता के विकास के माग मे बाधक निम्न लिखित कारको की विवेचना कीजिए और देश में एकता करने के उपाय सुझाइए-(क) प्रचलित भ्रष्टाचार, ख) बढती बेरोजगारी, (ग) धन का विषम वितरण, (घ) जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विदेशी भाषा का प्रभुत्व । [राज १९८२]

७ देशभक्ति राष्ट्रीय एकता, धर्मनिरपेक्षता, नागरिकता तथा भारतीयकरण के लिए भारतीय शिक्षा के उद्देश्यो के सन्दर्भ में इस शब्दावली की व्याख्या करें और बताए कि किन किन कठिनाइयो के कारण हमें इससे किसी भी उद्देश्य मे सफलता नही मिली है । उपचार सुझाइए । (राज १९८०)

८ राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकता की सकल्पनाओ को समझाइए। राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने के उद्देश्य से स्वतन्त्रता के बाद पाठ्यक्रम के क्षेत्र में क्या ठोस उपाय किए गये हैं । (राज० १९७५)

अध्याय १५ भाषा विवाद–सम्भाव्य समाधान

(The Language Controversy-possible Solutions)

(रूपरेखा–प्रस्तावना प्रस्तावना भाषा विवाद भाषा विवाद के कारक क्षेत्रीय भाषाओं का स्थान अल्प सख्यकों की भाषा का स्थान अग्रेजी का स्थान आधुनिक भारतीय भाषाए व उनका स्थान भाषा विवाद की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि-स्वतन्त्रता से पूव व स्वतन्त्रता के बाद विभिन्न आयोगों के सुझाव राधाकृष्ण आयोग मुदालियर शिक्षा आयोग भाषा आयोग, केन्द्रिय शिक्षा सलाहकार परिषद व कोठारी आयोग तथा उसका व्यवहारिक त्रिभाषा–सूत्र त्रिभाषा–सूत्र की राजस्थान में क्रियान्विती उपसहार–मूल्याकन)

प्रस्तावना —

प्रत्येक राष्ट्र के प्रमुख तीन मूलभूत उपागम भाषा जाति एव सस्कृति होते है। इन तीनो के बीच गहरे सह–सम्बन्ध वांछित है चाहे तीनो के उद्देश्य भिन्न–भिन्न क्यो न हो। भाषा के माध्यम से ही विचारो का आदान–प्रदान सम्भव हो पाता है।

भाषा को शिक्षा में दो प्रकार की भूमिका का निर्वाह करना पडता है–वह शिक्षा का विषय है और माध्यम भी। भाषा वस्तुत माध्यम के रूप में ही रही है विषय के रूप में कम। इसका कारण है कि भाषा के नाम से या तो भाषा विषय में अवतार वाला का पढाया जाता रहा है या उसके माध्यम से साहित्य एव सस्कृति आदि की जानकारी दी जाती रही है। शिक्षा के माध्यम के रूप मे भाषा के प्रयोग की वास्तव में कोई मूलरूप से विवाद नही है क्योकि भाषा केवल साधन है, साध्य है विभिन्न विषय जिनकी जानकारी भाषा के द्वारा दी जाती है। किन्तु 'माध्यम भाषा' का प्रश्न वस्तुत भाषा शिक्षण से भी अधिक विचार का रूप धारण करता जा रहा है क्योंकि बहुतो के खासतौर से दक्षिणी भारतीयो के मन में यह बात घर कर गई है कि भाषा विवाद को जिस ढग से सुलझाया गया है वह यथोचित न होकर एक

भाषा के समूह के लोग दूसरी भाषाओ के लोगो पर प्रभुत्व जमाना चाहते हैं। डा० सुनीत कुमार चटर्जी ने तो अपने पश्चिमी बंग हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, कलकत्ता के अध्यक्षीय भाषण [१६५१] में स्वीकारा है कि-आधुनिक भारत में हिन्दी के प्रमुख स्थान के विषय पर पहले पहल हुए अहिन्दी प्रान्तोके लोग" (पृ १२) इसी प्रकार राजाजी ने "हिन्दी को राष्ट्र भाषा माना"१ लेकिन दुर्भाग्य रहा कि राजाजी व डॉ० चटर्जी जैसे विद्वान स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी के विरोधी हो गये। अर्थात् भाषा के विवाद में पूर्वाग्रह, एक दूसरे पर अविश्वास है व राजनतिक स्वार्थवश उलझा रह हैं। जबकि मनुष्य समाज में समान मूल्यो व भाषा के आधार पर एक साथ रहते हैं। सामाजिक जीवन विचारो के आदान-प्रदान के साथ प्रत्येक क्षेत्र में समानता व सौहार्द लाना ही शिक्षा और भाषा का उद्देश्य है न कि विवाद। व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के विकास करने का प्रयास असफल रहना है बगर भाषा के। जब भाषा विवाद अविवेकीय दृढनिष्ट रूप मे किसी भाषा विशेष के प्रति भावात्मक सम्बन्ध हृदय से स्थापित हो जाने पर अन्य भाषाओ के प्रतिग्रहण व विवाद होता है और वह विवाद जो सामाजिक विकृतम रूप में सक्रामण रोग की भांति। यही स्थिति हमारे देश में है और भविष्य में विशेष आशाजनक स्थिति का भान नही हो रहा है।

भाषा विवाद जो देश के लिए स्थाई दीमक बन गया है उसे स्थिर बुद्धि, स्वास्थ्य चिन्तन-से दिल और दिमाग से सभी क्षेत्रो के लोगो के सोचने मे समाधान सम्भव है। अविश्वास की जड तब ही समाप्त हो सकेगी जब सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ के अध्ययन-अध्यापन तथा माध्यम के रूप मे प्रचुर व्यवस्था स्थापित की जाय तथा सभी भाषाओ के विकास करने की सुविधाए प्रदान की जाय। भाषा विवाद के समाधान कानून, डर भय लोभ लालच, पूर्वाग्रह से सम्भव नही है, यह तो शान्तिपूर्ण एव सौहार्द पूर्ण वातावरण में ही सम्भव है। भाषाई विवाद केवल व्यक्तिगत या समूह विशेष के लिए ही हानिकारक नहीं बल्कि राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता के लिए अनिवार्य है।

---

१ Hindi or Hindusatani is inquestionably the most Important Language of India and the only speech which can be said to be realy National for all India

भाषा-विवाद के विविध कारक (Defferent factors of the Language Controversy)

रूस मे १५ स्वतंत्र गणराज्य हैं जहा ५० भाषाए है लेकिन वहा तब भी एकीकरण है जबकि दूसरी तरफ भारत मे २२ भाषायी राज्य हैं और भाषा विवाद इस प्रकार खडा है कि राष्ट्र की एकता को चुनौती बना हुआ है। जब रूस राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने मे सफल हो सकता है फिर भारत के सम्मुख इस विवाद का समाधान क्यों नही ? इसी प्रकार स्विट्जरलण्ड, कनाडा और बेल्जियम जैसे देश जहा अनेक भाषाओ के उपरान्त भी भाषा का विवाद नही, जसाकि हिन्दुस्तान म है। जब तक सद्भावना पूर्ण ढग से सभी भारतीय हृदय से समाधान हेतु विश्वास की भावना से इस ओर उन्मुख न होंगे तब तक राष्ट्रीय सामाजिक चेतना, भावात्मक एकता, सास्कृतिक व शक्षिक प्रगति सम्भव नही है। अत इन कारको की ओर दृष्टिपात करना होगा। समीचीन होगा जो इस विवाद की जड मे है। इह निम्नांकित शीषको म वर्गीकृत किया जा सकता है—

१ प्रादेशिक भाषा या मातृभाषा का विवाद
२ अल्प सख्यको की भाषा का विवाद
३ अंग्रेजी भाषा का विवाद
४ शिक्षण के माध्यम का विवाद
५ राष्ट्र भाषा का विवाद

मुख्य रूप से हमारी समस्या है–सारे राष्ट्र हेतु आदर प्रदान माध्यम की। इस कमी के कई कारण हो सकते हैं।

प्रमुख रूप से हमारे राष्ट्र की लिंक लेग्वेज' का अभाव है। एक 'समान-भाषा' को एक समान सस्कृति एक से विचार तथा एक प्रकार के उद्देश्य, एक समान विश्वास व प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। राजभाषा के विवाद से हमारे राष्ट्रीय नेता राष्ट्रीय स्वतन्त्रता सग्राम काल से चिन्तित रहे हैं। भारतीय सविधान म विभिन्न भाषाओ को प्रतिष्ठित करने हेतु प्रस्तुत दावे स्वीकार किए गये। हिन्दी भारत की राजभाषा के रूप म भी।

भारतीय सविधान अनुच्छेद ३४३ (१) के अनुसार सघ की राज भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। अनुच्छेद ३५१ के अन्तगत हिन्दी भाषा की प्रचार-वृद्धि करना उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक सस्कृति के तत्वो की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा

आत्मीयता मे हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची मे उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओ के रूप, शली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहा आवश्यक या वाछनीय हो वहा उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यत, सस्कृत से तथा गौणत अन्य भाषाओ से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना सघ का कर्तव्य होगा ।

हिन्दी सम्पर्क भाषा का स्थान दबाव तथा राजनतिक प्रभाव से नही ले सकती, यद्यपि मुदालिय आयोग ने सविधान का सहारा लेकर इसे राष्ट्र की सम्पर्क भाषा के रूप मे महत्व दिया है । यह जनता-जनार्दन द्वारा स्वय को हृदय से स्वीकार करना है । दबाव व प्रभाव से और अधिक भडकाने वाले दृष्टिकोण का विकास होगा । अत हिन्दी भाषी लोगो को शान्ति व सहनशीलता प्रकट करने की आवश्यकता है । हिन्दी को अहिन्दी भाषी क्षेत्रो म लोकप्रिय बनाने हेतु अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्यो म प्रयोग की जाय, जसे-अन्त राज्यीय पत्र व्यवहार, अन्तविश्वविद्यालय, अखिल भारतीय कार्यालय भाषा के रूप म, प्रभावशाली ढग से कदम उठाने चाहिए । बगर अहिन्दी भाषी क्षेत्र के समथन के उपरान्त भी १९६५ से हिन्दी को कार्यालय भाषा (Official Language) के रूप मे मान्यता स्थापित की गई है । प० नहरू द्वारा प्रदत्त आश्वासन कि अग्रेजी सम्बन्ध भाषा (Assoiate Language) के रूप म रहेगी, समय की माग है कि इसे उसी प्रकार का दर्जा कुछ वर्ष और चालू रक्खा जाय ।

बहुभाषा सामाजिक घृणा नही है जब उचित दृष्टिकोण का विकास होकर इसके बारे म अभ्यस्त हो जाते है । अपनी भाषा के प्रति गलत ढग से लगाव व अन्य भाषाओ के प्रति घृणा रखने के बारे मे अशिक्षित लोगो से असतुलित, भाषाओ के पूर्वाग्रह आदि से देश के विकास मे अवरूद्ध पैदा होगा बहुभाषीय राष्ट्रीय एकता का विघटन करने के लिए साधन के रूप में नही लिया जाय अन्यथा यह देश के लोगो का उन्माद ही समझा जावेगा ।

भारत के सभी भाषाई लोगो को शिक्षित किया जाय कि वे स्पष्ट व वज्ञानिक दृष्टिकोण से चिन्तन करे । राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा के लिए एकजुट होकर देश की जनता, शिक्षाविद्, राष्ट्रीय नेताओ तथा नीति-निर्धारको को इस सम्बन्ध में सयुक्त सफल प्रयत्न करना चाहिए । व्यक्तिगत, लोक प्रशासको व समाज के सभी लोगो को व्यक्तिगत भेद भूलकर एकजुट होकर काय करने से राष्ट्रीय उद्देश्यो को प्राप्त करने में सफल हो पायेगे ।

फलस्वरूप हिन्दी को सम्पर्क भाषा का दर्जा प्राप्त होगा और यह स्तर प्रतिस भारतीय स्तर पर एसे सिक्के के सामना होगा जो वतमान म ही नहीं बल्कि भावी जीवन म उपादेय सिद्ध होगा ।

हिन्दी को लोक-प्रिय बनाने हेतु रेडियो व टलीविजन जसे सचार साधन प्रभावशाली व शक्तिशाली साबित हो सकते है । शिक्षा भी हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में लोकप्रिय बनाने हेतु कारगार साधन है । हिन्दी को राष्ट्र की सम्पर्क भाषा को स्वीकार कर लेने स राष्ट्रीय एकता म सहायक होगा ।

हिन्दी को राष्ट्र की सम्पर्क भाषा के रूप-विकास हेतु किए गये प्रयत्न

(*Steps to dovelop Hindi as the Link Language of the Nation*)

१ अनक अहिन्दी भाषी राज्यो म प्रचार व प्रसार के साथ ही हिन्दी के विकसित भाषा क रूप म स्वीकार किया है ।

२ हिन्दी भाषा की शिक्षा देने के लिये हिन्दी के २००० अध्यापको स अधिक हिन्दी भाषी क्षेत्रो म कायरत है ।

३ विभिन्न राज्यो म १६ हिन्दी अध्यापक प्रशिक्षण कॉलेज काम कर रहे हैं । एसे दो नवीन कालेज मणिपुर एव मिजोरम म स्थापित किय गये है ।

४ गर हिन्दी राज्यो म छात्रो को मट्रिक शिक्षा के बाद हिन्दी का अध्ययन करने हेतु छात्र वृतियां दी जाती हैं ।

५ स्वेच्छिक सस्थाओ को हिन्दी कक्षाओ के आयोजन तथा पुस्तकालय की स्थापना हेतु अनुदान दिया जाता है ।

६ हिन्दी की शिक्षा पत्राचार पाठ्यक्रम द्वारा अहिन्दी भाषी एव विदेशी लोगो के लिए चलाई जाती है ।

७ विभिन्न राज्यो मे सम्पर्क-कायक्रम की व्यवस्था ।

८ अहिन्दी भाषी केन्द्रीय सरकार के कमचारियो के लिए प्रबोध, प्रवीण और प्रज्ञा पाठ्यक्रम का आयोजन ।

६ केन्द्रीय हिन्दी सस्थान, आगरा देश के विभिन्न क्षेत्रो के छात्रों क लिये वैज्ञानिक विधि द्वारा हिन्दी शिक्षण सामग्री एव सहायक सामग्री के निर्माण काय म रत है ।

१० हिन्दी शिक्षा क लिए साधन प्रशिक्षण कायक्रम का आयोजन

११ गर हिन्दी प्रदेशो के हिन्दी लेखको का प्रोत्साहन देने के लिये पुरस्कार देने की योजना ।

१२, वैज्ञानिक एव तकनीकी विषयो मे हिन्दी शब्दावली व पुस्तको के प्रकाशन की योजना ।

१३ हिन्दी म सव प्रिय पुस्तका के निर्माण, हिन्दी के विद्वाना के व्याख्यानो का आयोजन एव विदेशो मे हिन्दी के प्रसार आदि कायक्रम को भी बढावा दिया जा रहा है ।

१४ अहिन्दी भाषी क्षेत्रो म माध्यमिक स्तर तक हिन्दी द्वितीय भाषा के रूप मे पढाई जाती है ।

१५ हमारे राष्ट्र के लब्धप्रतिष्ठ लोगो द्वारा सभी भाषाओ की एक समन्वित माला का विकास करना ।

भाषा विवाद के सम्बन्ध मे विभिन्न विद्वानो के विचार।—

१ महात्मा गाधी– 'शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो । छात्रो पर अग्रेजी नही लादनी चाहिए । जब रूस मातृभाषा मे ही अपने देश का विकास कर सकता है तो हम क्यो नही कर सकते ।"

२ स्व० डा राजेन्द्र प्रसाद न सव प्रथम सुझाव दिया कि हम सामान्य वणमाला (Common Script) को लागू करनी चाहिए । जिसे कालान्तर म मुख्यमन्त्रियो के सम्मलन (१९६१) मे उक्त विचारो को जोरदार शब्दो में समथन दिया ।

३ प नेहरू ने कहा—"वतमान में देश की एकता एव अखण्डता के लिए हमे 'कामन-स्क्रिपट्' को प्रयोग मे लाने से मूल रूप में साहित्यिक एकता हमारी परम्परा रही है ।

४, श्री एम सी छागल,—सामान्य वणमाला (Common Script) से विभिन्न प्रान्तो के लोगो म घनिष्ठता पदा होगी । विभिन्न भाषाओ मे बहुत ज्यादा भेद नही है । सस्कृत सव साधारण की भाषा थी । यदि सामान्य-वणमाला को क्रियान्वित रूप दे दिया जाता है तो, बहुत जल्दी ही राष्ट्रीय एकता स्थापित होगी ।

५ डा वी के आर वी–हिन्दी, प्रान्तो के अक्षर-ज्ञान की भाषा मे पढाया जाय ।

६ हुमायू कबीर—हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओ मे रोमन वणमाला का प्रयोग हो उसके टकण व मुद्रण हेतु सुविधाए दी जाय ।

(७) डॉ० जाकिर हुसैन—मुझे इसमे शक नही कि युवको को पूर्णरूपेण कुशल बनाने के लिए मातृभाषा आवश्यक है। मातृभाषा मानव मस्तिष्क के लिए उतनी ही आवश्यक है जितना बालक के शारीरिक विकास के लिए माँ का दूध आवश्यक है।"

(८) चक्रवती राजगोपालाचार्य—यदि भारतीय लोग राजनीति, व्यापार या कला म एक रहना चाहते है तो हिन्दी ही वह भाषा है जो समस्त भारतीयो का ध्यान आकर्षित कर सकती है, चाहे वे लोग अपने देश म कोई भी भाषा बोलते हो परन्तु हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करना भारत के सभी लोगो के लिए शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

(९) डॉ० सुनीत कुमार चटर्जी—'संस्कृत के राजभाषा के पक्ष म न होकर हिन्दी के पक्षधर रहे है। अंग्रेजी के पक्ष म नही है।"[1] अभी तक एक समान वर्णमाला (Common Script) के बारे मे कोई निर्णय नहीं लिया गया है। विवाद के समाधान हेतु वैज्ञानिको, व्यावहारिक तथा निरपेक्ष उपागम वांछित है। भावुकता, काल्पनिकता, असत्य एव स्वय की अभिलाषाओ के आधार पर काम न कर, हमे सर्वत्र ठोस तर्क म ही निर्देशित होना चाहिए।

प्रादेशिक भाषा का स्थान (The place of Regional Languages) —

क्षेत्रीय व भारतीय भाषाओ के बारे मे विवाद है। क्षेत्रीय भाषा का राष्ट्रीय जीवन मे क्या स्थान है। अखिल भारतीय भाषाए अब राष्ट्रीय भाषाओ क लिया जाता है। लोकतान्त्रिक-सरकार को चाहिए कि वह जनता-जनार्दन की भाषा को कार्यालय कार्य हेतु प्रतिष्ठित करनी चाहिए।

"भारतीय सविधान का अनुच्छेद ३४५ म प्रादेशिक भाषाओ के बारे म—"३४६ और ३४७ के उपबधो के अधीन रहते हुए, राज्य का विधान मण्डल, विधि द्वारा उस राज्य के राजकीय प्रयोजनो म से सब या किसी के लिए प्रयोग के अर्थ उस राज्य म प्रयुक्त होने वाली भाषाओ मे से किसी एक या अनेक को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा।

परन्तु जब तक राज्य का विधान-मण्डल विधि द्वारा इससे अन्यथा उपबध न करे तब तक राज्य के भीतर उन राजकीय प्रयोजनो के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिए इस सविधान के प्रारम्भ से ठीक

---

१ डॉ० चटर्जी भारत की भाषा-सबधी समस्याए (प्रथम संस्करण पृ ६० ५४)

पहले वह प्रयोग की जाती थी।"

प्रादेशिक भाषा को राज्य मे प्रशासनिक भाषा के रूप मे काम में लेने से पूर्व इसका पूर्णरूपेण विकास किया जाय। ठीक इसी प्रकार उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप म काम में लेने से पूर्व भी सम्पूर्ण रूप से इसका विकास वांछित है। यह प्रजातांत्रिक-व्यवस्था का मूलभूत आधार है। सभी प्रकार की आधुनिक व प्रामाणिक शब्दों का प्रयोग किया जाय, अंग्रेजी को अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से तथा संस्कृत, पर्सियन, अरबीयन भारतीय दृष्टि से। प्रशासनिक व वैज्ञानिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एक समान शब्दावली का प्रयोग किया जाना चाहिए। इस प्रकार की व्यवस्था से सामान्य सम्पर्क भाषा सारे राष्ट्र के लिए बन सकेगी।

अगर एक से अधिक आधुनिक भारतीय भाषा प्रान्त में बहुसंख्यकों द्वारा बोली जाती है तो उन्हें सामान्तर ढंग से शैक्षिक व प्रशासनिक भाषा के रूप में जिला स्तर पर प्रयोग में लाई जावे। प्रान्तीय प्रशासन में अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है उसे ही राज्य के विधान-मण्डल को मान्यता देनी चाहिए।

(३) अल्प संख्यकों की भाषा का विवाद (Controversy on Linguistic minorities) —

प्रत्येक प्रदेश में कुछ न कुछ जन समूह अल्प संख्यक रूप में इस प्रकार के पाये जाते है कि किन्ही कारणों से अपना प्रदेश छोडकर उस प्रदेश मे बस जाते है अथवा सरकारी सेवा में होने के कारण अन्य प्रदेशों में पहुंच जाते है जिससे शिक्षा ग्रहण करने मे कठिनाई होती है। भारत में यह समस्या अधिक गम्भीरता के साथ उभरी है। आदिवासी एवं अल्प संख्यक वर्गों ने अपनी कठिनाइयों को प्रस्तुत किया है।

अल्प भाषी भागों की भाषा के मण्डलाधीश ने सुझाव दिया कि यदि किसी प्रदेश में किसी विद्यालय में ४० अल्प संख्यक छात्र है अथवा किसी एक कक्षा में १० छात्र अल्प संख्यक वर्ग के भाषी है तो प्रदेश की सरकार का कर्तव्य है कि वह उनके लिए उनके ही प्रदेश की भाषा के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था करे।

(४) अंग्रेजी भाषा पर विवाद (Controversy over English Language) —

हिन्दी अथवा प्रादेशिक भाषाओं के प्रति अत्यधिक प्रेम के फलस्वरूप

अंग्रेजी से घृणा का भाव पैदा हो रहे है जो भाषा के लिए स्वस्थ चिन्तन की दृष्टि से यथोचित नही है। अब देश की स्वतन्त्रता के बाद अंग्रेजी की भूमिका व महत्व को कम नही समझा जाना चाहिए। यह विश्व की सर्वाधिक प्रचलित माध्यम भाषा है। हमें इसे अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से इसके सांस्कृतिक तथा राजनैतिक महत्व को ध्यान मे रखते हुए अध्ययन अध्यापन के लिए माध्यम के रूप में अपनाना चाहिए। इसका विस्तार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर है। यह विश्व के विज्ञान तथा साहित्य की भाषा है। भारत में शिक्षित लोगो में पढी और समझी जाती है। देश म राष्ट्रीय चेतना को पदा करने में इसका महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हमारे देश में सास्कृतिक पुनर्जागरण में भी इसने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत की महान् विभूतियां, कवि, राजनीतिज्ञ, व विश्व को सन्देश देने वाले, वज्ञानिक जसे डा० राधाकृष्णन, श्रीमती सरोजनी नायडू, महात्मा गाधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, जाकिर हुसैन, सर सी वी रमन तथा बहुत से प्रेरणा के स्रोत इस भाषा के फल स्वरूप अपने क्षेत्र में विशिष्ट स्थान प्राप्त करने में सफल सिद्ध हो पाये हैं।

हमें आखो के पट्टी बाधकर झूठे भावुकता में वशीभूत होकर अनावश्यक रूप से घृणा की भावना अंग्रेजी भाषा से इसलिए करना कि यह उन शासको की है जिन्होने हमें अपने अधीनस्थ परतन्त्र रक्खा। हमें अत्यधिक स्टेण्डड की अंग्रेजी को नही अपनाना चाहिए परन्तु भाषा के रूप में तथा भाषा माध्यम के रूप में जिससे अन्तराष्ट्रीय स्तर के ज्ञान को प्राप्त करने के दृष्टिकोण से स्वीकार करना ही पड़ेगा।

डॉ० के जी सैयदन—"विचार व सस्कृति की दृष्टि से भारत की महान् एव महत्वपूर्ण देन ससार को रही है। यह अपनी स्वय की तथा अंग्रेजी के माध्यम से ही हो सकता है।'

डॉ० के आर श्रीनिवास अयगर—"अंग्रेजी एक महान् भाषा है, विश्व का महान् साहित्य है। विश्व मे सबसे लोकप्रिय व अपरिमित भाषा है। यह सत्यारम्भक भाषा है जिसने विकास छोडा नही है। यह वह भाषा है जो उलझे हुए मसले को सुलझाती है जिसमे सक्षम अन्तर भी स्पष्ट है। इसका विशिष्ट सम्बन्ध भारत की जनता तथा अन्य भाषाओ से है जिसका सबसे लम्बा सम्बन्ध रहा है।

प्राचीन भाषाओं के उच्च श्रेणी के साहित्य के अध्ययन सम्बन्धी विवाद (Controversy over Classical Languages)—भाषाए संस्कृत,

पर्सियन तथा अरबी जैसी प्राचीन एव उच्च श्रेणी की भाषा को प्रशासन तथा अध्यापन-माध्यम के रूप मे मान्यता नही दी गई है । इन भाषाओ से ही कई अन्य भाषाए पदा हो विकास कर पाई है अत इसे बिल्कुल महत्व न देना, अनुचित ही है । ये विषय ऐतिहासिक अध्ययन तथा शोध के विषय बन गये है । सरकार इन विषयो को पढने वालों को विशेष आर्थिक प्रलोभन तथा उत्प्रेरित किया जाय । लेकिन कोठारी आयोग ने "प्राचीन भाषा को स्कूल पाठ्यचर्या मे केवल ऐच्छिक रूप मे दिया जा सकता है । ऐसा आठवी कक्षा से ही किया जा सकता है ।"१

भाषाए हमारे पूर्वजो की धरोहर है जो सस्कृति की समृद्धि हेतु महत्वपूर्ण हैं परन्तु समस्त देश मे विभिन्न शिक्षा के माध्यम के रूप मे प्रमुख समस्या देश के सम्मुख है । भारतीय सविधान द्वारा १५ भाषाओ को मान्यता प्राप्त है किन्तु इस विषम स्थिति मे विवाद का समाधान नहीं किया । "भाषा सम्बन्धी एक समुचित नीति के विकास से भी सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण में महत्वपूर्ण सहायता मिल सकती है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश ने जिन अनेक कठिन समस्याओ का सामना किया है उनमें भाषा का प्रश्न एक सबसे पेचीदा और काबू से बाहर का प्रश्न रहा है और अब भी वैसा बना हुआ है । अनेक कारणो से जिनमे शिक्षा, सस्कृति और राजनीतिक से सम्बन्धित कारण भी शामिल हैं, इस प्रश्न का शीघ्र ही सन्तोषपूर्ण समाधान करना जरुरी है ।"२

यह समस्या क्यो उत्पन्न हुई आदि प्रश्नो पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि भाषा के विवाद की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर गहराई से दृष्टिपात किया जाये, क्योकि भाषा के माध्यम को लेकर विभिन्न प्रदेशो में हिंसात्मक आन्दोलन हुए हैं और देश में भाषावार प्रान्तो का निर्माण हुआ। स्वार्थपरता से प्रेरित राजनीति ने इस विवाद मे अग्नि मे घृत डालने जसा काय किया । देश की वतमान परिस्थितियो को दृष्टि में रखते हुए तथा राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय एव सामाजिक अभिवृद्धि के लिए एक उचित भाषा नीति वांछित है ।

भाषा-विवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of Language issue)

(अ) स्वतन्त्रता से पूर्व—

अति प्राचीन काल में सस्कृत भारत की मुख्य भाषा थी । सस्कृत

१ कोठारी डी एस शिक्षा आयोग रिपोर्ट प्र २१९
२ कोठारी, डी एस शिक्षा आयोग की रिपोट प्र १५

को पूर्ण सम्मान एव प्रतिष्ठा प्राप्त थी राज्य भाषा का स्थान सस्कृत को ही प्राप्त था । बौद्ध धर्म के उदय होने के साथ पाली द्वारा उसका स्थान ले लिया गया फिर भी सस्कृत की प्रतिष्ठा व मान्यता बनी रही । मुस्लिम काल में अरबी और फारसी भाषाए राजभाषा प्रतिष्ठित हुईं । उक्त काल में भी हिन्दी उर्दू एव कई क्षेत्रीय भाषाए प्रचुर मात्रा मे प्रचलित थी सस्कृत भारतीय मन्दिर व पाठशालाओ की भाषा के रूप में ही अपना स्थान बनाये रही ।

अग्रेजी काल म भाषा में पुन परिवर्तन हुआ । इस काल में शिक्षा का उद्देश्य ईसाई धर्म पाश्चात्य विज्ञान, साहित्य एव सस्कृति का प्रसार निश्चित किया गया । इस समय में शिक्षा, व विज्ञान के माध्यम की समस्या रही परन्तु मैकाले की शिक्षा व्यवस्था में बालक को अग्रेजी जबरन पढनी पडती क्योंकि उसका आधार था नौकरी प्राप्त करना । अग्रेजी को माध्यमिक स्तर तक ही बल्कि उच्च शिक्षा के विषयो के अध्ययन का माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित की गई और स्कूल स्तर पर अनिवार्य विषय के रूप में पढाया जाता था । अत. इस प्रकार अग्रेजी को दोहरा सम्मान दिया गया, शिक्षा के माध्यम के रूप में तथा विषय के रूप मे भी । इस व्यवस्था के परिणाम स्वरूप अग्रेजी राजकीय भाषा के साथ साथ विभिन्न राज्यो की सम्पर्क भाषा भी बन गई । लेकिन इतना प्रचार–प्रसार एव राजकीय प्रोत्साहन के उपरान्त भी केवल ४ या ५ प्रतिशत भारतीयों की भाषा ही रह गई । यद्यपि राष्ट्रपिता गाधी व डा जाकिर हुसैन शिक्षा का माध्यम मातृभाषा के पक्षधर रहे है ।

(ब) स्वतन्त्रता के बाद :

भारतीय सविधान व भाषा स्वतन्त्रता के उपरान्त सविधान में भी राजभाषा के प्रश्न पर विचार करते हुए धारा ३५१ में कहा—हिन्दी भाषा के प्रचार में वृद्धि करना, उसका विकास करना, ताकि वह भारत की सामाजिक, सास्कृतिक तत्वो की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और आठवीं सूची में उल्लिखित (असमिया उडिया, उर्दू कन्नड, कश्मीरी गुजराती, तामिल तेलगू, पजाबी, मराठी, मलयालम सस्कृत, हिन्दी) अन्य भारतीय भाषाओ के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुये तथा जहा आवश्यक या वाछनीय हो, वहा उसके शब्द भडार के लिये मुख्यत सस्कृत से गौणत, वसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि करना सघ का कर्तव्य है ।"[1]

1 दिवान पारस भारतीय संविधान (अग्रेजी सस्करण) पृ ३०८

विभिन्न आयोगों के भाषा सम्बन्धी सुझाव—स्वतन्त्रता के बाद भाषा विवाद ने उग्र रूप धारण किया और उस विवाद के समाधान हेतु केन्द्रीय सरकार ने समय-समय पर नियुक्त समिति व आयोगो ने इसके बारे म गम्भीरता को समझाते हुए सुझाव दिये है—जसे १६४८ की ताराचद समिति ने सर्व प्रथम सव सम्मति से निणय लिया कि उच्च स्तर पर माध्यम अग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषाए होनी चाहिए। इसके उपरान्त विभिन्न आयोगो द्वारा भी इस विवाद के समाधान हेतु सुझाव प्रस्तुत किए, जसे—

(१) राधाकृष्णन आयोग के सुझाव—"हम अत्यधिक कीमत अग्रेजी अध्ययन म चुकानी पडी है। चितन व तक की बजाय रटने पर जोर दिया हमने ज्ञान के बजाय अग्रेजी शब्दो को ग्रहण किया। अत वास्तविक चिन्तन अपनी भाषा से ही सम्भव है।"[१] इसके उपरान्त भी निम्न सुझाव और दिए है—

१ भारतीय सविधान मे राजभाषा के रूप म हिन्दी का विकास आवश्यक है, जिससे हिन्दी व्यापार, दशन, विज्ञान उच्च स्तर का अध्यापन एव शोध की भाषा बन सके।

२ "अग्रेजी आधुनिक सभ्यता, विचारो तथा विज्ञान एव दशन की कु जी है। अग्रेजी भारत मे एकता स्थापित करने के के कारणो मे से भी एक है। यह महत्वपूण अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है। परतु अतीत की भाति अग्रेजी राजभाषा के पद पर नही रह सकती और न ही भविष्य म यह उच्च शिक्षा का माध्यम रह सकती है। फिर भी अग्रेजी भाषा का अध्ययन विश्वविद्यालय स्तर पर निरतर रखा जाये।

३ सस्कृत के प्रति भक्ति भाव है फिर भी राजभाषा नही बन सकती।

४ शिक्षण एव प्रजातन्त्रवाद के सिद्धान्तो के अनुसार उच्च शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए। इसलिये शिक्षा के माध्यम के रूप मे हिन्दी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओ का भी प्रयोग किया जाए। एक या अधिक विषयो की शिक्षा राष्ट्रभाषा के माध्यम द्वारा दी जाए।

५ उच्चतर माध्यमिक स्तर पर छात्रो को तीन भाषाओ का ज्ञान कराया जाये—(अ) प्रादेशिक भाषा, (ब) सघीय

---

१ राधाकृष्णन आयोग प्रतिवेदन पृ ३१७

भाषा तथा (स) अंग्रेजी ।

६ विश्वविद्यालय स्तर पर सभी कक्षाओं मे हिन्दी की शिक्षा दी जाय ।

(२) मुदालियर शिक्षा आयोग—मुदालियर शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन अपने अध्याय ५ म 'भाषाओं के अध्ययन' म भाषा के माध्यम और अध्ययन के सम्बध म निम्नलिखित सुझाव दिए गये—

१ माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा हो ।

२ मिडिल स्तर पर छात्र कम स कम दो भाषाओं का अध्ययन करे । इनमें स एक भाषा मातृभाषा हो और दूसरी हिन्दी । जहा हिन्दी मातृभाषा हो वहा किसी अन्य भारतीय भाषा का अध्ययन कराया जाए ।

३ माध्यमिक स्तर पर छात्र दो भाषाओं का अध्ययन करे । मातृभाषा का अध्ययन अनिवार्य हो । दूसरी भाषा हिन्दी (जहा हिन्दी मातृभाषा न हो) अंग्रेजी, आधुनिक भारतीय भाषा, कोई यूरोपीय भाषा या शास्त्रीय भाषा में स चुनी जाए ।

४ संस्कृत का अध्ययन वकल्पिक विषय के रूप में हो ।

५ माध्यमिक स्कूलो में अंग्रेजी को यथावत् रखा जाए परंतु अंग्रेजी का अध्ययन वकल्पिक हो तथा यह अध्ययन जूनियर स्तर पर ही प्रारम्भ हो ।

६ हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप मे महत्व प्रदान किया जाए तथा सभी विद्यालयो में हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य कर दिया जाए ।

(३) भाषा आयोग [१९५५]—श्री बी जी खर की अध्यक्षता में १९५५ में गठित आयोग (जो १९५७ में ससद के सम्मुख प्रस्तुत की गई) ने भी निम्न सुझाव दिये—

१ हिन्दी को ही शिक्षा का माध्यम बनाया जाए ।

२ विश्वविद्यालय स्तर पर परीक्षाओं का माध्यम हिन्दी हो ।

३ प्रतियोगी परीक्षा म वकल्पिक माध्यम हिन्दी हो तथा क्षेत्रीय भाषाओं को उपयुक्त स्थान दिया जाए ।

(4) केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् का त्रिभाषी सूत्र(1956) —
Three Language Formula of the Central Advisory Board of Education)

26 जनवरी 1956 को केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् ने भाषायी विवाद को सुलझाने हेतु त्रिभाषा सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त के अनुसार, माध्यमिक स्तर पर छात्रों को तीन भाषाओं का अध्ययन करना होगा। इस योजना के मुख्य बिन्दु —

(1) मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा।

(2) अंग्रेजी या अन्य आधुनिक विदेशी भाषा।

(3) हिन्दी भाषा अहिन्दी क्षेत्रों के लिए एवं कोई भारतीय भाषा हिन्दी क्षेत्रों के लिए

त्रिभाषा सूत्र भाषा विवाद के समाधान हेतु प्रभावशाली नहीं रहा। इसका कारण यह था कि हिन्दी क्षेत्रों में अन्य भारतीय भाषाओं के स्थान पर संस्कृत के पढ़ाने की व्यवस्था की गई तथा अहिन्दी भाषी राज्यों ने हिन्दी का विरोध किया।

राष्ट्रीय एकता समिति की अभिशपाएँ — सन् 1962 में स्व. श्रीमती गांधी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय एकता समिति ने भी त्रिभाषी सूत्र को लागू करने पर जोर दिया। समिति ने हिन्दी को सम्पर्क भाषा (Link language) माना और कहा कि इसका अध्ययन अनिवार्य कर दिया जाय जिससे प्रदेशों के आपसी सम्बन्धों को बनाए रखा जा सके।

इसके उपरान्त डॉ. सम्पूर्णानन्द ने भावात्मक एकता के लिए भाषा विवाद को हल करने हेतु त्रिभाषा सूत्र को ही समाधान का सूत्र बनाया। "कार्यालय भाषा अधिनियम 1963" में पुनः संशोधन 1968 में भारतीय संसद ने हिन्दी के साथ अंग्रेजी को भी सह भाषा की मान्यता प्रदान करदी है।"[1] इसके उपरान्त विवाद को शान्त न होता देखकर देखकर केन्द्रीय सरकार ने मुख्यमन्त्रियों के सम्मेलन सन् 1965 में अखिल भारतीय सेवाओं के लिए प्रतियोगी परीक्षा में क्षेत्रीय भाषा का माध्यम की स्वीकृति प्रदान कर दी लेकिन दक्षिण प्रान्तों के विरोध के फलस्वरूप आज भी हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में विवाद का विषय बनी हुई है।

Kolhari Commissiou & Three Language Formula

कोठारी शिक्षा आयोग एवं त्रिभाषी सूत्र — (1966) कोठारी आयोग ने त्रिभाषी सूत्र जो 1950 में दिया उसमें संशोधन किया गया। आयोग ने हिन्दी को राजभाषा के रूप में मान्यता देते हुए अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में दबाव से नहीं लादा जाय। किसी भी स्तर पर दो नई भाषाएँ प्रारम्भ नहीं होनी चाहिए। कक्षा 8 से 10 तक का त्रिभाषी अध्ययन के लिए उपयुक्त बताया। चार भाषाएँ एक साथ पढ़ाने की मनाई

---

1 बसु डी डी, इण्ट्रोड्यूक्सन टु दी कान्सटीट्यूसन आफ इण्डिया, पृष्ठ 260–361

की गई है चाहे छात्र किसी भी स्तर पर अध्ययन रत क्यों न हो। सार रूप में त्रिभाषी संशोधित रूप निम्न है:—

(1) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा।
(2) केन्द्र की राज्य भाषा या सहकारी भाषा।
(3) आधुनिक भारतीय भाषा या यूरोपीय भाषा जो ऊपर 1, 2 में सम्मिलित न हो।

व्यवहारिक त्रिभाषी सूत्र का आधार तथा उसकी क्रियान्विति —
(Practicable Three Language Formula & its Implementation)

स्कूलों के लिए व्यवहारिक त्रिभाषा सूत्र के निर्माण में निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धांतों से सहायता मिल सकती है।

(क) मातृभाषा के बाद संघ की राजभाषा के रूप में स्थित हिन्दी का ही स्थान आता है
(ख) अंग्रेजी का व्यवहारिक ज्ञान छात्रों के लिए मूल्यवान बना रहेगा,
(ग) भाषा में प्राप्त की गई क्षमता उपलब्ध शिक्षकों और सुविधाओं पर उतना ही निर्भर करती है जितना कि उसके सीखने के लिए दिए जाने वाले समय की लम्बाई पर,
(घ) तीन भाषाओं को सीखने के लिए सबसे उपयुक्त व्यवस्था अवर माध्यमिक (आठवी से दसवी तक) है।
(ङ) दो अतिरिक्त भाषाओं का एक दूसरे के बीच थोड़े अन्तर से शुरु करना चाहिए,
(च) हिन्दी या अंग्रेजी का अध्ययन तब शुरु करना चाहिए जब उनके लिए अधिकतम अभिप्रेरणा और आवश्यकता हो, और
(छ) किसी भी अवस्था में चार भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य नहीं करना चाहिए।

इन सिद्धांतों के अनुसार संशोधित व्यवहारिक त्रिभाषी सूत्र में ये बातें सम्मलित होनी चाहिए (क) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा, (ख) संघ की राज भाषा या संघ की सहचारी भाषा (जब तक वह बनी रहे), और (ग) ऐसी भारतीय या यारोपीय भाषा जो (क) और (ख) में सम्मिलित न की गई हो और जो शिक्षण के माध्यम के रूप में प्रयुक्त न हो।

आयोग ने भाषाओं के अध्ययन के बारे में सुझाव दिये हैं —

(1) अवर प्राथमिक अवस्था में छात्र सामान्यतः केवल एक मातभाषा या प्रादेशिक भाषा का अध्ययन करेगा। उच्च प्राथमिक अवस्था में वह दो भाषाएं— मातृभाषा (या प्रादेशिक भाषा) और संघ की राजभाषा (या सहचारी भाषा) पढ़ेगा अवर माध्यमिक अवस्था में वह तीन भाषाएं पढ़ेगा। मातृभाषा(या प्रादेशिकभाषा)

राज भाषा या सहचारी राज भाषा, एक आधुनिक भारतीय भाषा और उसके लिए राजभाषा या सहचारी भाषा, जिसे उसके उच्चतर प्राथमिक अवस्था मे नही पढ़ा, का अध्ययन अनिवाय होगा। उच्चतर माध्यमिक अवस्था में केवल दो भाषाएँ अनिवाय होगी।

(2) प्रत्यक राज्य में कुछ चुने हुए स्कूलो मे अग्रेजी से भिन्न किसी आधुनिय पुस्तकालयो की भाषा के अध्ययन की सुविधाए मिलनी चाहिए और हिन्दी तथा अग्रेजी के स्थान पर उसके अध्ययन की छुट होनी चाहिए इसी प्रकार केअहिन्दी-भाषी क्षेत्रो मे कुछ चुने हुए स्कूलो मे आधुनिक भारतीय भाषाओ के अध्ययन की सुविधाएँ मिलनी चाहिए और उसी प्रकार अग्रेजी या हिन्दी के स्थान पर उनके अध्ययन की छुट होनी चाहिए।

(3) अग्रेजी और हिन्दी के अध्ययन के घण्टो और ज्ञान प्राप्ति के स्तर के रुप मे व्यक्त किया जाना चाहिए। राजभाषा और सहचारी राजभाषा के सम्बन्ध मे प्राप्ति के दो स्तर निर्धारित किये जाने चाहिए। एक तीन साल के अध्ययन के लिए और दूसरा छ साल के अध्ययन के लिए।

(4) उच्च माध्यमिक शिक्षा मे भाषा का अध्ययन अनिवाय नही होना चाहिए।

(5) ऐच्छिक आधार पर हिन्दी के अध्ययन को बढावा देने के लिए एक देश-व्यापी कायक्रम बनाना चाहिए। लकिन अनिच्छुक लोगो पर इस थोपना नही चाहिए।

(6) प्रत्येक आधुनिक भारतीय भाषाओ के कुछ साहित्य को देवनागरी और रोमन दानो ही लिपियो मे प्रस्तुत किया जाना चाहिए। सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ को अन्तर्राष्ट्रीय अक भी अपनाने चाहिए।

(7) अग्रेजी का अध्ययन, सामान्यत पाचवी कक्षा से पहले, जबकि मातभाषा पर अभी पर्याप्त अधिकार प्राप्त नही हुआ होता, शुरु नही करना चाहिए। अग्रेजी का अध्ययन पाचवी कक्षा से पहले शुरु करना शक्षिक दृष्टि स बुद्धिमतापूर्ण नही है।

(8) आठवी कक्षा से ऐच्छिक आधार पर, प्राचीन भारतीय भाषाओ, जैसे सस्कृत या अरबी, के अध्ययन को प्रोत्साहित करना चाहिए और उन पर सभी विश्व विद्यालयो म निश्चित रुप से बल देना चाहिए। कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयो म इन भाषाओ के उच्च अध्ययन केन्द्र स्थापित किये जाने चाहिए। कोई नया सस्कृत विश्वविद्यालय स्थापित नही किया जाना चाहिए।' 1

1 कोठारी डी एस, 'शिक्षा आयोग की रिपोर्ट का सार' (पृष्ठ 723-724)

राजस्थान मे त्रिभाषी सूत्र की क्रियान्विति—राजस्थान मे त्रिभाषी-सूत्र को बहुत
(Implementation of three Languaage formula Rajasthan)

पहले से लागू कर दिया गया है। अल्प भाषा समुदाय के छात्रो को उनकी मात भाषा मे शिक्षा देने की योजना भी आरम्भ से क्रियान्वित की गई है। राजस्थान म भाषा शिपण की व्यवस्था निम्न प्रकार स है —

पूव प्राथमिक स्तर (कक्षा १ व २)—राजस्थान हिन्दी भाषी प्रान्त है एव अधिकाश छात्रा की मातृभाषा हि दी है। अत कक्षा 1 व 2 मे छात्रो को हिन्दी के माध्यम से उनको शिक्षण दिया जाता है। जिस अल्प समुदाय के छात्रो की मातभाषा हिन्दी नहीं है उनको उनकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। जिन भाषाओ को पढ़ाया जाता हैं, वे है–उर्दू, सिन्धी, गुजराती तथा पजाबी। ये भाषाए राजस्थान के लिए अल्प सख्यका की भाषा के रूप से मान्यता प्राप्त है।

प्राथमिक स्तर (कक्षा 3 से 5) जिन छात्रो को हिन्दी के अलावा अन्य भाषा के माध्यम से शिक्षण किया जाता है, उन्हे कक्षा 3 स 5 तक हिन्दी अतिरिक्त भाषा के रूप मे पढाई जाती है।

उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6 से 8) –छात्रो को कुल तीन भाषाओ का अध्ययन कराया जाता है, (i) हिन्दी (ii) अग्रेजी तथा (iii) ततीय भाषा सस्कृत, उर्दू सिन्धी, पजाबी तथा गुजराती मे से कोई एक भाषा।

माध्यमिक स्तर (कक्षा 9 से 10) — छात्रो को तीन भाषाओ का अध्ययन कराया जाता है—(i) हिन्दी, (ii) अग्रेजी तथा (iii) ततीय भाषा, सस्कृत, उर्दू, सिन्धी, पजाबी, गुजराती, मराठी, तमिल, कन्नड, मलयालम एव बगाली मे से कोई एक भाषा।

उच्च माध्यमिक स्तर (कक्षा 11) –छात्रो को केवल दो भाषाओ का अध्ययन करना होता है—हिन्दी, उर्दू, सिन्धी, पजाबी गुजराती तथा अग्रजी।

राजस्थान मे सस्कृत को तृतीय भाषा के रुप मे पढाए जाने का औचित्य —

राजस्थान मे आधुनिक भारतीय भाषा के रुप मे ततीय भाषा के स्थान पर सस्कृत का अध्ययन करवाया जाता है क्योकि—

(i) राजस्थान मे सास्कृतिक धरोहर के रूप मे सस्कृत का उच्च स्थान।

(ii) राजस्थान मे सस्कृत अध्यापको का बाहुल्य।

(iii) कक्षा 6 से 10 तक के लिए उपयुक्त सस्कृत की पाठय पुस्तकें।

(iv) आधुनिक भारतीय भाषाओं म से कई भाषाओ की जननी।

(v) सस्कृत तृतीय भाषा के रूप में कक्षा 9 शुरू करने की बजाय कक्षा कक्षा 6 से प्रारम्भ मनोवैज्ञानिक एव शक्षिक दृष्टि से उपयोगी है।

(vi) सविधान के परिष्ठि 8 मे आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित।

राजस्थान मे आधुनिक भारतीय भाषाओ की क्रियान्विति—

(Implementation of modern Indian Languages in Rajasthan)

सस्कृत भाषा को तृतीय भाषा के रूप मे पर्याप्त औचित्यपूर्ण मानने के बावजूद भी त्रिभाषी सूत्र की मूल भावना के अनुरूप क्रियान्विति की दिशा मे अन्य उपाय किए जा रहे हैं। राजस्थान मे तमिल, मलयायम, बगाली एव मराठी भाषाओ को पढ़ाये जाने की व्यवस्था कुछ विद्यालयो मे की गई है।

राजस्थान मे उर्दू, सिन्धी पजाबी के अल्प समुदाय, की भाषा के रूप मे मान्यता प्राप्त है जो इन भाषाओ मे से कोई एक मातृभाषा के रूप मे पढ़ते हैं। ऐसे छात्रो को सस्कृत को छोड देने की पूरी छूट है।

राजस्थान मे तृतीय भाषाओ (सस्कृत के अतिरिक्त) को पढने वाले छात्रो की सख्या निम्नलिखित है —

भाषा	विद्यालय	छात्र सख्या	अध्यापक सख्या
1 उर्दू	372	26495	418
2 सिन्धी	102	12942	548
3 पजाबी	70	3058	78
4 गुजराती	14	1019	13
5 मलयालम	8	512	8
6 तमिल	4	269	4
7 बगाली	1	13	1
8 मराठी	1	19	1

उपसहार —

भाषा सम्बन्धी विवाद यहा तक बढ़ गया है कि आये दिन शब्दो के क्रियान्विति सम्बन्धी द्वन्द्व को लेकर देश मे असामान्यता द्वन्द्व व अशान्ति पैदा हो जाती है। हम अपनी सारी शक्ति एक ऐसे दृष्टिकोण के विकास की ओर लगाना चाहिए जिनसे हम सब भारतीय अनुबन्धित होकर राष्ट्रहित को सब प्रथम प्राथमिकता दे। भाषा शिक्षण समस्या इतनी समस्या नही जितनी अध्ययन अध्यापन के माध्यम का लकर है। हमारा भाषा विवाद किसी भी दृष्टि से उलझा हुआ नही जबकि अपने राजनीतिक स्वार्थ पूर्ति हेतु उलझाने वालों की कमी नही है।

स्वतन्त्रता के बाद विभिन्न आयोगो, समितियो ने सृजनात्मक सुझाव प्रदान किय है। शिक्षा जगत् मे व्यवहारिक त्रिभाषा–सूत्र सब रोग हर औषधि के समान

विवादो का अच्छा समाधान प्रतीत होता है, बशर्ते उसकी क्रियान्विति म कोई ढील नही दी जाय। इसी प्रकार हिन्दी राष्ट्रीय स्तर पर, प्रमुख आधुनिक भारतीय भाषा, जिले स्तर पर स्थानीय लोकप्रिय भाषा को प्रशासनिक व कार्यालय की भाषा के रुप म प्रतिष्ठित करने क फलस्वरूप देश के सभी भषाई लोग सतुष्ट हो जाय गे, ऐसा विश्वास है। इस प्रकार की भाषा नीति राष्ट्रीय एव भावात्मक एकता के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रत्यक भारतीय डा के जी सयैदन के विचार से सहमत होग कि जिस राष्ट्र म बीस भाषाए होने के उपरान्त भी एक आवाज एव एक होने म विश्वास करते हैं फिर भला हमारे देश मे बहुभाषी को विघटन का कारण न समभकर राष्ट्रीय सस्कृति के विकास मे सहायक समभना चाहिए। अत हर भारतीय को देश हित को दृष्टि म रखते हुए छोटी छोटी बातो जैसे भाषा क्षेत्र सम्प्रदाय आदि को लेकर उग्र रुप धारण न कर देश में एक होकर याय, भ्रातत्व, सामाजिकता, स्वतन्त्रता, समानता जैसे गुणो के विकास हेतु सफल प्रयास करते हुए भारत की भारती व प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था मे सहयोगी सिद्ध होकर "हम सब भारतीय एक हैं" के नारे को बुलन्द करना, समय, देश व परिस्थिति की माग है।



मूल्याकन (Evaluation)

(अ) लघुत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 क्षेत्रीय भाषा को सभी स्तरो पर शिक्षण का माध्यम बनाने के पक्ष अथवा विपक्ष म पाच तर्क दीजिए। (राज 1983 व 1978)

2 सशोधित त्रिभाषा सूत्र की भावना क्या है ? (राज 1982)

3 'वस्तुत आज भारत की दो राष्ट्र भाषाएं हैं- अग्रेजी और हिन्दी।" इस कथन की परीक्षा कीजिय। (राज 1981)

4 शिक्षा आयाग द्वारा सुझाय गये त्रिभाषा सूत्र का वर्णन कीजिए। (राज पत्रा 1981)

5 भाषा समस्या क सम्बन्ध मे मुदालियर आयोग की सस्तुतियाँ लिखिए। (राज 1979)

6 भाषा समस्या के दो प्रमुख कारको व उपायों की चर्चा कीजिए। (राज 1979)

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1 त्रिभाषी सूत्र की व्याख्या कीजिए। त्रिभाषी सूत्र के क्या लाभ है? त्रिभाषी सूत्र को काय रुपमे बदलने के लिए शिक्षाविद् क्या कठिनाइया अनुभव कररहे है? (राज 1985)

2 वर्तमान भाषा समस्या को स्पष्ट कीजिय । त्रिभाषा सूत्र तथा संशोधित त्रिभाषा सूत्र के बावजूद यह समस्या अभी तक क्या बनी हुई है ? (राज पत्राचार 1985)

3 "भारत की भाषा समस्या का सर्वोतम सम्भव हल त्रिभाषा सूत्र नही, संशोधित त्रिभाषा सूत्र है।' इस कथन की समीक्षात्मक परीक्षा कीजिए। (राज 1982)

4 "विवेकपूर्ण शैक्षिक नीति की दृष्टि से शिक्षा का माध्यम विद्यालयी शिक्षा तथा उच्च शिक्षा मे सामान्यतया एक ही रहना चाहिए। शिक्षा आयोग (1966) की इस संस्तुति का अब तक विरोध क्यो हो रहा है? इस विरोध का आप किस प्रकार उत्तर देंगे ? (राज 1981)

5 'तृतीय भाषा राजनैतिक प्रपंच या शैक्षिक आवश्यकता', कथन की व्याख्या कीजिए तथा अपना अभिमत प्रकट कीजिए। (राज पत्राचार 1981)

6 भारत सरकार की घोषित नीति शिक्षा के सभी स्तरो पर अध्ययन-अध्यापन की सुविधाएँ प्रादेशिक भाषाओ के माध्यम द्वारा देने की रही है। उक्त नीति के अनुपालनाथ सरकार द्वारा क्या क्या कदम उठाये गए ? अंग्रेजी से प्रादेशिक भाषाओ के मार्ग मे क्या प्रमुख कठिनाइया हैं? (राज पत्राचार 1979)

अध्याय १६

छात्र असतोपः कारण एव उपचारात्मक उपाय

(Student Unrest Causes and remedial measures)

[विषय-प्रवेश (क) छात्र अस ताष-विश्वव्यापी व भारत (ख) छात्र असन्तोष की गम्भीरता (ग) छात्र असन्तोष के प्रकार (घ) छात्र असन्तोष व विभिन्न आयोग व समितियो की सिफारिश (ङ) छात्र असन्तोष के कारण- (1) नेतृत्व शक्ति का ह्रास (2) वतमान शिक्षा प्रणाली व सस्थाए (3) मादर्शों का पतन (4) मार्थिक कठिनाई (5) शैक्षिक कारण 6) सामाजिक कारण (7) राजनीतिक कारण (8) विद्यार्थी पश्चता और नवीन मान्यताय (9) पारिवारिक मा यताय (10) पुलिस का व्यवहार (च) छात्र असन्तोष का मनावज्ञानिक विश्लषण (छ) छात्र असतोष समाधान और सुझाव, (1) प्रशासक (2) शिक्षक (3) पचवर्षीय योजना म शिक्षा, (4) अभिभावक (5) राजनतिक, (6) लेखक व विचारक, (7) नैतिक मान्यताय (ज) उपसहार व मूल्यांकन]

विषय-प्रवेश —

भारत एक एसा राष्ट्र है जिसक विद्यार्थी आदोलन का इतिहास काफी समय का है भारत के स्वतन्त्रता-सग्राम म राष्ट्रीय नेताओं न विद्यार्थियों का सहयोग प्राप्त किया था सव प्रथम गाधीजी ने असयोग आदोलन के अवसर पर भारतीय नागरिको से माग की थी कि वह अपने बच्चो को सरकारी स्कूलो और कॉलिजो म पढ़ने न भज । उसके पश्चात् निरन्तर भारतीय विद्यार्थियो से राष्ट्रीय आंदोलन म सहायता ली गई। भारत छोड़ो आन्दोलन एक प्रकार से विद्यार्थियो का ही आदोलन कह तो अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि इसमे विद्यार्थी अधिक प्रभावी भूमिका निभान हेतु सक्रिय रहे थे। उन्होने जेल को स्वीकार किया और विध्वसकारी कार्य करन म पहल की। विद्यार्थियो ने राष्ट्र के सार्वजनिक जीवन मे भाग लेना राजनीति से प्रारम्भ किया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत का विद्यार्थी समाज राष्ट्रीय जीवन से अलग नहीं हुआ बल्कि उसका क्षत्र और विस्तृत हो गया। विभि न राजनतिक दलो न विद्यार्थियो को प्रभावित किया तथा उन्ह विरोध व सघष करने के तरीके भी बताये। स्वत न्त्रता सग्राम मे विद्यार्थियो का भाग लेना तथा विभिन्न राजनैतिक दलो का विद्यार्थियो क उत्साह को अपने उद्देश्यो की स्वाथ सिद्धि का साधन बनाना, विद्यार्थियो के

आदोलन और अनुशासन हीनता का एक कारण तो हो सकता है परन्तु मूल कारण नहीं। इनका आंदोलन और अनुशासनहीनता का कारण उनका गम्भीर रूप से असतोष है जिसका एक कारण नही बल्कि अनेकानेक कारण है यदि उत्तरदायित्वहीनता के कारण असतोष है तो उसके कारणो का अध्ययन अवश्यभावी है।

छात्र असन्तुष्ट होकर आदोलनात्मक रवैया अपनाते हैं, जो केवल भारत म ही नही बल्कि अन्य अनेक राष्ट्रो म भी विभिन्न प्रकार से प्रकट हुए है।

वतमान युग मे प्रत्येक राज्य मे जिस तीव्रता से आर्थिक परिवतन हो रहे हैं या हुए हैं और उनके प्रभाव से जो सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं या होने चाहिए उनका ठीक प्रकार से हल न निकल पाना, इस समस्या का मुख्य कारण है, जो प्रत्येक राज्य मे हमे समान रूप से प्राप्त होता है। द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त, विद्यार्थी समाज और प्राय सभी युवक और युवतियों मे उश्रृंखल और गैर कानूनी काय करने की प्रवृति बढ़ती जा रही है। जीवन की इन बदलती हुई परिस्थितियो ने उनके जीवन के लिये जहां अनेक नवीन मार्ग खोले हैं, वहां उनके सम्मुख अनेक समस्याओ को भी प्रस्तुत किया है। इन्ही समस्याओ और मान्यताओ का हल निकालने के प्रयत्न से जो प्रतिक्रिया उनके जीवन, विचार और भावनाओ पर हुई उसी का एक परिणाम उनका तीव्र असन्तोष और उससे उत्पन्न विध्वसात्यक काय और अनुशासनहीनता है। अनेक भारतीय समाज सुधारक, विद्वान, शिक्षाविद् अध्यापक तथा विद्यार्थी इस अनुशासनहीनता के फलस्वरूप राष्ट्रीय सम्पत्ति की क्षति व मूल्यो पर परोक्ष व अपरोक्ष रूप से प्रभाव डालने वाले प्रहार से चिन्तित है। विद्यार्थियो का असन्तोष बढता ही जा रहा है और उसका समाधान मुश्किल प्रतीत होता है। जो सम्पूर्ण समाज को प्रभावित किये बिना नही छोड़ता। भारत के बड़े शहरो मे हड़ताल, पथराव, आन्दोलन, घराव होता है, जिसके दमन हेतु लाल पगड़ी धारी मौजूद रहते हैं।

विश्व छात्र आन्दोलन— समस्त विश्व ही आज छात्र आन्दोलनो से परेशान और क्षुब्ध है। योरोप मे तो ये आन्दोलन पूरे जोरो पर है। वहां पुरानी पीढ़ी सरकार और बुद्धिजीवी सशकित और आन्दित हैं। विश्व म कोई भी देश ऐसा नहीं है जो इस दावानल रूपी आन्दोलन की लपेट म न आया हो। हां, हो सकता है इसका कही कम तो कही ज्यादा प्रभाव हुआ हो लेकिन प्रभाव पड़ा अवश्य है। भारत के अनुपात मे योरोपीय देशो म यह सफल भी रहे हैं क्योकि—

(1) छात्र आर्थिक रूप से निश्चित हैं क्योकि सरकार की ओर से प्रबन्ध है।
(2) विवाह बधन, सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक जिम्मेदारियों से मुक्त हैं।
(3) छात्र बने रहने से सभी सुविधाएं मिले तो फिर वे उनसे महरूम क्यो रहना

चाहेंगे।

(4) जीते रहने का अनुभव करन के लिए आन्दोलन।

(5) छात्र पारम्परिक उत्सवो के विरोधी, आन्दोलन की ओर अग्रसर।

(6) विज्ञान की दिन पर दिन प्रगति उसके मानस को उद्वेलित कर रही है।

छात्र असतोश व आदोलन की सरचना – छात्र आदोलन की सरचना म कई राष्ट्र विरोधी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दवाव व पडयन्त्र काय कर रहे हैं, जिससे कि उनकी शक्ति एव स्वरूप को विकृत करने म उन तत्वो को सफलता मिल रही है। इसलिए यह भी विचारणीय सवाल है कि छात्र-असतोष के फलस्वरूप आदोलन का प्रचण्ड रूप को विकसित करना चाहिए। छात्र-आंदोलन को अपन सही रूप म विकसित क्यों नही होने दिया जाता है ? इसके विपरित उससे राजनतिक दल अपने अपने दल का हित साधते है। अन्यथा तो छात्र-आंदोलन इस तेजी से सामने नही आते, जिस तजी से आ रहे हैं। कहना न होगा कि इन तत्वो ने छात्र-असतोष की सरचना म बहुत गलत 'पाट' या भूमिका अदा की है।"

छात्र-आदोलन की मानस भूमि —छात्रो को सदैव सत्ता से दूर रखा है और उसके खिलाफ साजिस भरा प्रचार-प्रसार करके जनता के मस्तिष्क में उसकी 'एमज' को बिगाडा है। राजनैतिक स्वाथ हेतु विरोधी दलों ने भ्रमित किया है। नौजवानो म जोश है और ऐसा तूफान खडा कर देत हैं जिससे जनता व सरकार घबराने लगते है। भारत के छात्र वतमान व्यवस्था से असतुष्ट और सस्कार त्यागते हुए परम्पराओ को तोडना है मानो उनका प्रमुख उद्देश्य हो गया है।

भारत के छात्र-असतोष व आंदोलन यूरोप की तरह सुविधाओं से नही,असुविधाओं के कारण शुरु हुए हैं। श्री आनद कुमार ने लिखा है—

(1) पढाई की दुष्टतापूवक व्यवस्था ही विद्यार्थी असतोष की रीढ है।

(2) राजनीतिक प्रतिबद्धता के मुकाबले बल्लकर को सगठित और सामाजिक योजना आकर्षित करती है।

(3) आज आंदोलन की अपरिहाय से इकारते हुए क्षुद्र सवालो मे उलझने वाले विद्यार्थी वे हैं जो ऊँचे परिवारों के बेटे बेटियों के नेतृत्व में है, शोषित होन की नियति से अपरिचित है।

(4) विषमताओ स मुक्ति के लिए समता और सम्पन्नता का सपना देखन वाला दिल और दिमाग हमेशा अपने अभीष्ट के लिए तडफता रहता है।"[1]

---

1 आन द कुमार 'क्या विद्यार्थी-आंदोलन आर्थिक तथा सामाजिक कु ठाओ के प्रतीक है ?" साप्ताहिक हि दुस्तान पृ /8 अक 19 जुलाई 1970

आज छात्र असंतोष के फलस्वरूप होने वाले आंदोलन के पीछे रचनात्मक कार्यो का अभाव है। यह आंदोलन सत्ता के डंडे से भयावह बनेगा। अस्थाई तौर पर असंतोष को दबा भी दिया जाता है तो समाज की शक्ति भविष्य मे कुंठित हो जायगी जिसकी जिम्मेदारी वर्तमान व्यवस्था का ही होगा।

छात्र असन्तोष छात्रो का दृष्टि मे —

कोई भी काय कारण के बिना नही होता है और असन्तोष का विकृत रुप लम्बी कशमकश के उपरान्त दृष्टिगोचर होता है। आखिर वे कौन से कारण हैं, जिनकी वजह से वे इस प्रकार के निर्णय लेने के लिए विवश हैं। छात्रो की सगोष्ठी मे कई बाते छात्र असन्तोष व उसके उत्पन्न आंदोलन के बारे मे उभर कर आई है —

(1) 80 प्रतिशत से अधिक छात्र परशानी उठाते हुए भी आंदोलन या विद्रोह के पक्ष मे नही है।

(2) छात्राएँ तो नब्बे प्रतिशत से भी अधिक इसके विरुद्ध है।

(3) पक्षपातपूर्ण वातावरण की निश्चित ही इसके लिए जिम्मेदारी है।

(4) अधिकारियो को समझ मे आ जाना चाहिए कि अब देश स्वत त्र है। अन ताना शाही की बजाय सेवक के रुप म अधिकारियों को काय पद्धति अपनानी चाहिए।

(5) यूनिवर्सिटी म उन्ही छात्रो को प्रवेश मिलना चाहिए जो सचरित्र हैं अच्छी श्रेणी से उत्तीण हुए हैं और जो ज्ञान के प्रति जिज्ञासु है।"2

मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि मे छात्र-असन्तोष — छात्र-असन्तोष के अस्तित्व का नकारा नही जा सकता। इस असन्तोष को सन्तुष्ठ करने की दिशा मे कोई ठीक सूझ नहीं दी गई है। यह छात्रो की अतर पीडा का प्रतीक है। पाठ्य पुस्तके बेसिर की है, अधिकारी उसको नकार देते हैं। इस सर्वत्र व्याप्त अस तोष के परिणाम वतमान और भविष्य म दूरगामी परिणाम हो सकने हैं जो सकट का कारण बन सकता है अत हम समय रहते ऐसे उपाय और माध्यम ढूढने चाहिए, जिनसे इन नवोन्मि शक्ति का देश की प्रगति हेतु इस्तेमाल किया जाने का सफल प्रयास किया जाय। विभिन्न मनोविदो के विचार यास्त अवलोकन प्रस्तुत किय जा रहे हैं —

मि चित्रा -के अनुसार - (1) छात्रो की फीस म वृद्धि (2) छात्रवृत्तिया म कमी (3) राजनतिक दलो की हिस्सेदारी (4) राजनीतिज्ञो का पूण सहयोग (5) छात्रो को बरगलाना (6) नब्बे प्रतिशत छात्र सीधे सादे है। 3

---

2 भटनागर राजेन्द्र मोहन, "छात्र-आंदोलन समस्या और समाधान" (पृ 49)

3 चित्रा, एम एन, "ए स्टुडेन्ट स्ट्राईक इन मसूर ए सासीओलॉजिकल एनलिसिस" प्रकाशित Journal of University Education Vol 4,No 3 मार्च1966P149 161

श्री जैनेन्द्र कुमार— "असन्तोष और आक्रोश न हों, यह अस्वाभाविक और असम्भव है। नवयुवक के बढते हुए जीवन की प्रक्रिया में ये भाव अनिवार्य रूप से प्रेरक बनते हैं। पुरुषार्थ की सृष्टि आखिर होती वहां से है? व्यक्ति की चेतना अपनी सीमा पर अवरोधों से टकराती और पराजय अस्वीकार करती है। इसी म तो जीवन चैतन्य का प्रकर्ष और विकास सम्भव होता है।

इसलिए वह क्या युवक है जो वर्तमान पर रुक जाता है और भविष्य के आवाहक के तौर पर उसको चुनौती भी नहीं देता रहता है।

इसलिए युवक वर्ग के असन्तोष और आक्रोश को मैं सर्वथा आवश्यक और श्लाघ्य मानता हूँ।

युवको का उत्साह केवल ताप बनकर यदि न रह जाए, यदि उसम तप भी मिल जाए, तो वह बहुत निर्माणकारी हो सकता है। तप के अभाव में वह ताप भीतर कष्ट क्षेत्र की ही सृष्टि करता है कुछ निर्माण नहीं कर पाता।" "होश साथ न रहे तो जोश फिर टूट फूट मचाकर बुझ रहता है।

असन्तोष और आक्रोश का फौरन बाहर लुटा देने की बजाय अगर युवक उन्हें अपने व्यक्तित्व की निधि और पूंजी बनने देते हैं, यानी उन प्रेरणाओ को उनन भीतर आत्म विसर्जन के सकल्प का रूप लेने देते हैं तो उनका व्यक्तित्व नम्र और दृढ़ बनता है। उनम आग्रह सत्याग्रह बनकर उभरता है। इस सत्याग्रह म अनायास दूसरे आकृष्ट होकर जुड जाते हैं और एक समवेत शक्ति का निर्माण कर सकते है।' 4

डा सम्पूर्णानन्द—"छात्र असन्तोष धार्मिक शिक्षा के अभाव और आर्थिक विषमताओ म वृद्धि का परिणाम है।"

श्री प्रेम कृपाल— "छात्र—अध्यापक सम्बन्धो के बिखराव को छात्र असन्तोष का का प्रमुख कारण मानते है।"

श्री एम सी छागला — ने 7 नवम्बर 1966 मे लोकसभा मे छात्र —असन्तोष पर वक्तव्य का सार —

(1) शिक्षा के प्रसार के सापेक्ष, सुविधाओ मे विस्तार नहीं हुआ।
(2) छात्रों के सामने और आगामी जीवन के लिए कोई ठोस कार्यक्रम नहीं।
(3) अशैक्षिक एव क्षुब्ध राजनीति से प्रेरित तत्व निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए छात्रों को उत्तेजित करते हैं।
(4) शैक्षिक अधिकारी नेतृत्व देने म असमर्थ है।

---

4 जनेन्द्र कुमार : समय, समस्या और सिद्धात, (पृ 47 48)

स्व श्रीमती इन्दिरा गांधी —"छात्र अशान्ति के कारण राजनैतिक उत्तेजना और आर्थिक विषमताएँ। लक्ष्यविहीन शिक्षा विद्रोही भावना को जन्म देती है।

प्रो हुमायूं कबीर— "परम अनुशासन हीनता के अतिरिक्त नयी पीढी के काफी बड़े वर्ग में अशान्ति और विद्रोह की भावना भर गई है। इसमे से कुछ तो नि सन्देह सारे विश्व मे व्याप्त उस अशान्ति का एक अंश है। पुराने जीवन मूल्यो के विनाश और उनके स्थान पर नये मूल्यो के तैयार न हो जाने के कारण उत्पन्न हुई है। फिर भारत मे कुछ ऐसे तत्व है जिनके कारण देश मे विद्यार्थियो मे अनुशासनहीनता और असन्तोष उत्पन्न होता है।'5

छात्र–असन्तोष के कारण (Student Unrest Causes)

देश मे छात्रो के असन्तोष और उसके फलस्वरूप होने वाले प्रतिक्रियात्मक कार्य पर समाज और सरकार दोनो ही गम्भीरता के साथ विश्लेषण करते आये हैं। जिससे एक बात तो स्पष्ट हो गई है कि विभि न कारणो के फलस्वरूप ही व्यापक अस तोष फलता जा रहा है। यह कारण नई और पुरानी पीढी के बीच द्व द्व, वतमान तनाव और बचैनी के युग के चि ह पूरे देश मे व्याप्त असन्तोष का प्रदशन, विश्वविद्यालयो म लगातार गिरती हुई परिस्थितियो, शिक्षा एव प्रशासन का निम्न स्तरमान, शिक्षा क्षेत्र मे आधारभूत कमिया, ससार के अ य देशो मे हो रहें प्रदशनो से प्राप्त प्रोत्साहन या छात्रावास, पुस्तकालय, शिक्षा शुल्क, छात्र–वृति परीक्षा–प्रणाली के दोष आदि कुछ भी हो सकते हैं। वर्तमान समय मे बढती हुई महगाई, प्रशासन एव विश्वविद्यालयो म भी बढता हुआ भ्रष्टाचार तथा शिक्षित बेरोजगारी की भयकर समस्या है। छात्र–असन्तोष के कुछ बाहरी कारण है, जसे राजनैतिक दलो को छात्र शक्ति का प्रयोग नही करना चाहिए, देश मे सवत्र भ्रष्टाचार व आर्थिक अव्यवस्था। विश्वविद्यालय म भी बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार तथा शिक्षित बेरोजगारी की भयकर समस्या ने इन कारणो की तालिका का और लम्बा कर दिया है। इस समस्या के मूल मे गहन कारण है जिनका सम्ब ध दश की ऐतिहासिक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियो से है। इन बिन्दुओं का गम्भीरता से विवेचन नीचे किया जा रहा है— (1) शिक्षा नीति और सस्थाऐ (2) आर्थिक परिस्थितिया (3) पारिवारिक और सामाजिक मा यताऐ (4) विद्यार्थी सभ्यता और नवीन मान्यताऐ (5) सांस्कृतिक कारण (6) नैतिकता।

कारण—(1) शिक्षा नीति और सस्थाऐ — विद्यार्थी किसी न किसी शिक्षा सस्था का सदस्य होता है और इस दृष्टि से वह राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था का भी सदस्य हो जाता है। अत कुछ ऐसे दोष विद्यमान है जिससे उसमे अस तोष निर तर बढ़ता

5 हुमायू कबीर—"स्वत त्र भारत म शिक्षा', (,, 205)

ही जा रहा है– (1) भारत की शिक्षा प्रणाली राष्ट्र की आवश्यकतानुकूल नही–सव प्रथम उसमे असन्तोष के कारण राष्ट्र की शिक्षा नीति या शिक्षा सस्थाऐ, जिसका वह सदस्य है उनके व्यवहार से उत्पन्न होते हैं। भारत मे आधुनिक शिक्षा का विकास ब्रिटिश शासन सत्ता के समय मे हुआ। अग्रेजो ने इस शिक्षा प्रणाली का विकास मुख्यतया अपने शासन प्रबन्ध की आवश्यकताओ की दृष्टि से किया था और जो प्रयत्न उन्होने एक उदार शिक्षा प्रणाली की स्थापना के लिए किया भी उसमे भारतीय शिक्षा का आधार मूलतया बौद्धिक प्रवृत्ति न बन सका। इस प्रकार भारत की शिक्षा प्रणाली मे यह दोष स्थायी रूप से रह गया कि एक तो वह विद्यार्थियो के ज्ञान के विस्तार के लिए शिक्षा प्राप्त करने की भावना को उत्पन्न न कर सकी और द्वितीय उस पर ब्रिटिश सम्पन्नता की छाप रही। इस प्रकार भारत की शिक्षा प्रणाली का विस्तार स्वाभाविक ढग से अपने देश की सस्कृति के अनुरूप नही हो सका। स्वतन्त्रता के पश्चात भी भारतीय शिक्षा प्रणाली का आधार अग्रेजो के द्वारा आरम्भ की गई शिक्षा प्रणाली ही रही। समय-समय पर उसमे जो परिवर्तन हुए हैं अथवा जो उसका विकास हुआ है, वह देश की नवीन और बढ़ती हुई आवश्यकताओ के अनुकूल अब भी नही है। इसका कारण यह है कि भारत जैसे अर्द्धविकसित देश के पास वह साधन नही है जिनसे वह अपनी आवश्यकताओ के अनुरूप शिक्षा प्रणाली का विकास कर सके। भारत अभी आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया सम्पन्न नही हो सका है। इसके साथ ही साथ अभी पर्याप्त सख्या मे योग्यता प्राप्त व्यक्ति नही हैं जो राष्ट्र की बढ़ती हुयी शिक्षा की आवश्यकताओ और विद्यार्थियो की सख्या के भार को सभाल सके।

(2) शिक्षा प्रणाली छात्रो को व्यवसाय प्रदान करने मे असमर्थ–विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने का एकमात्र उद्देश्य, एक अच्छी नौकरी प्राप्त करना समझता है जबकि यह शिक्षा प्रणाली उसके इस उद्देश्य की पूर्ति करने मे सर्वदा असमर्थ है। जो शिक्षा व्यावसायिक है जैसे-डाक्टरी शिक्षा, इन्जीनियरिंग शिक्षा एम बी ए आदि, उनमे प्रवेश कठिनता से मिलता है, फिर भी, उन्हे भी सेवा कार्य मिलना कठिन हो रहा है। अत हमारी शिक्षा व्यवसाय प्रदान करती हो ऐसी आशा केवल कल्पना है यद्यपि एसी शिक्षा की व्यवस्था की जाने की है जिससे विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करके किसी नौकरी को प्राप्त कर सके, परन्तु कहाँ तक सफलता मिलती है यह भविष्य के गर्भ मे है।

(3) रुचि के अनुकूल शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ–बहुत से अवसरो पर प्रवेश प्राप्त करने की कठिनाई के कारण विद्यार्थी को कला अथवा विज्ञान के उन विषयो को पढ़ने के लिए बाध्य होना पडता है, जिन्हे न वह पढ़ना चाहता है न उसके अभिभावक उसे पढ़ाना चाहते हैं। ऐसे विद्यार्थी अपनी शिक्षा मे रुचि नही ले पाते हैं।

(4)शिक्षा मे भाषा समस्या - शिक्षा का माध्यम अग्रेजी हो,राष्ट्रभाषा हिन्दी हो अथवा प्रादेशिक भाषा हो, यह प्रश्न अभी ठीक प्रकार से नही सुलझ सका है। विभिन्न विश्वविद्यालयो ने इस विषय में विभिन्न नीतियो को अपनाया है, परन्तु अभी तक समस्या का सतोषजनक हल नही निकल सका है। अग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है जिसकी शिक्षा देना आवश्यक समझा जाता है तो हिन्दी और प्रादेशिक भाषा का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहते है। विभिन्नता होने के फलस्वरूप भाषा के माध्यम की समस्या रहती है। जिससे उसकी शिक्षा का आधार ही समाप्त हो जाता है। विद्यार्थी तथा अध्यापक दोनो के लिए शिक्षा-माध्यम की समस्या रहती है। इसी प्रभाववश छात्रो मे शिक्षा के प्रति अरुचि उत्पन्न होती है जो असतोष का कारण बनती है।

(5)पाठयक्रमो का अनुचित निर्माण -राष्ट्र की प्रगति और राष्ट्र की शिक्षा को विश्व स्तर पर बनाये रखने के लिए आवश्यक है पाठयक्रम का निर्माण आदश को सम्मुख रखकर बनाया जाय। परन्तु यह आदर्श वास्तविक परिस्थितियो से पृथक हो जाता है। जिस मात्रा मे भारत मे शिक्षा का प्रसार हो रहा है और जिस प्रकार सभी श्रेणी वर्ग और स्तर के विद्यार्थी शालाओ म शिक्षा प्राप्त करने आ रहे है। उसको देखते हुए पाठयक्रम वास्तविकता से परे हो जाते हैं। अध्यापक को अपनी रुचि, और तरीके व व्यक्तिगत प्रयास के कोई स्थान बाकी नही रह जाता तथा विद्यार्थी अध्यापक से केवल लिखे हुए नोट्स ही चाहता है जिनको रटकर वह परीक्षा मे उत्तीर्ण हो सके। विद्वान गोरे ने इस विषय मे लिखा है कि "इस प्रकार यह व्यवस्था निरकुशी है जिसमे एक अध्यापक अपने पढाने के तरीके स्वय के पाठयक्रम अथवा स्वय की बौद्धिक प्रेरणा का बढाने के लिए स्वतन्त्र नही हैं। 6

(6) दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली -वर्तमान की परीक्षा प्रणाली विद्यार्थियो को निरतर काय करने तथा बौद्धिक जागृति हेतु उत्प्रेरणा नही दे पाती यह याद करने की क्षमता (Memory) पर अधिक बल देती है। छात्र कक्षा में रुचि नही लेत और अध्यापको के प्रति श्रद्धाभाव नही। उनकी श्रद्धा बाजार के नोट्स, प्रश्नोत्तर कुजिया म रहती है।

(7) छोटी आयु मे कालेज जीवन — छोटी आयु मे ही कालेज मे आ जाने से विद्यार्थी न तो कॉलेज जीवन के उत्तरदायित्व को समझने की स्थिति मे होता ह और न उसके अध्यापक ही उसके प्रति एक युवा पुरुष के समान व्यवहार करने की स्थिति म होत हैं। अध्यापक-छात्र निकटता नही बनती।

---

6 The Sylem, then is an authoritarian one in which the lecturer is not free to develop his own style of teaching, his own courses on his own intellectual initiative" Mr Gore

(8) शक्ति और उत्साह के सदुपयोग हेतु सुविधाओं की कमी — हमारे देश की शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थियों की शक्ति और उत्साह का अन्य प्रकार से सदुपयोग करने की सुविधायें बहुत कम हैं। खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम व अन्य सहगामी प्रवृत्तियों के संचालन से उनके उत्साह व शक्ति का सही उपयोग किया जा सकता है लेकिन शिक्षण संस्थाओं में अध्ययन अध्यापन के अतिरिक्त बहुत ही कम सुविधाएँ वह भी सीमित संस्थाओं में उपलब्ध हैं। मानवीय व भौतिक साधनों के अभाव के साथ साथ इन कार्यों के लिए समय बहुत कम रहता है। विभिन्न प्रकार के खेलों की व्यवस्था, व्यायामशाला, ड्रामा, वाद विवाद एवं ललित कलाओं की शिक्षा आदि से छात्रों के व्यक्तित्व का विकास होता है तथा बचे हुए समय का सदुपयोग भी। सिद्धांत के तौर पर एन सी सी, एस एस यू आई, एस एम एल, स्काउटिंग, गर्ल गाईड आदि जैसी राष्ट्रीय उपयोगी संस्थाओं का संगठन शिक्षण संस्थाओं में कायरत है परन्तु छात्र उसका लाभ उठाकर समाजोपयोगी नागरिक के रूप में परिवर्तित हो सकें, ऐसी आशा करना व्यर्थ है।

(9) योग्य अध्यापकों व उपयुक्त परिस्थितियों का अभाव — छात्रों के असंतोष का मुख्य कारण योग्य अध्यापकों का न होना और यदि योग्य अध्यापक हो तो उनके काय करने योग्य उपयुक्त परिस्थितियों का अभाव है। आज की अनुशासनहीनता का कारण बहुत हद तक अध्यापक है। बहुत से अध्यापक स्वेच्छा से इस व्यवसाय में प्रविष्ठ नहीं हुए है उन्हें सम्मान देने वाला व अधिक पैसा देने वाला व्यवसाय न मिलने की स्थिति में अध्यापक बने हैं। अतः स्वाभाविक है कि वे लिखने पढ़ने व छात्रों के विकास में कोई रुचि नहीं रखते। अपनी व्यवसायिक व शैक्षिक योग्यता बढ़ाकर पदोन्नति व पैसे जोड़ना ही उनका उद्देश्य रहता है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी भी उनका सम्मान नहीं करते। लेकिन कुछ अध्यापक अपने कर्तव्य का निर्वाह करना चाहते हैं उन्हें काय करने का अवसर नहीं मिलता। अध्यापकों को सामाजिक आर्थिक, व स्तर (Status) की दृष्टि से हेय समझा जाता है। इसलिए योग्य व्यक्ति इस व्यवसाय में नहीं आते, आते भी हैं तो उनको एसी परिस्थितियाँ उपलब्ध नहीं होती कि उनका पूर्ण लाभ उठाया जा सके।

अध्यापकों का जीवन कठिन है। जब अध्यापक स्वयं अपनी परिस्थितियों से संतोष का अनुभव नहीं करते तो विद्यार्थियों पर भी उनके असंतोष का प्रभाव आना अवश्यंभावी होगा। बम्बई विश्वविद्यालय की खोज की एक रिपोर्ट में लिखा गया है कि "प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से विद्यार्थियों की अधिकांश निराशा का कारण उदासीन अध्यापकों और अप्रगतिशील शिक्षा के तरीकों में पाया जा सकता है। 7

7 A large amount of student of Frustration can be traced directly & indirctly to indifferent teachers & unprogressive teaching mathds Report of a Sarvey of the Student of University of Bombay

इस प्रकार, भारत की शिक्षा नीति व शिक्षा संस्थाओं की कार्य प्रणाली में अनेक ऐसे दोष हैं जिनका प्रभाव भारतीय विद्यार्थी समाज पर प्रत्यक्ष रूप से आता है और जो उनके असन्तोष का कारण बनता है। भारत के विद्यार्थियों के अधिकांश आंदोलनों का मूल कारण यही रहा है।

(2) आर्थिक परिस्थितियां – छात्र असन्तोष के पीछे पाश्चात्य संस्कृति अतिभौतिकवादी दृष्टिकोण और शारीरिक सुखवाद कार्य रहा है। अर्थ सभ्यता व संस्कृति का विकास औद्योगिक क्रान्ति के समय से प्रारम्भ हुआ है। 1960 से घाटे की अर्थ व्यवस्था का युग प्रारम्भ हुआ है। जमाखोरों और सट्टे बाजारी ने मूल्य वृद्धि में और अधिक सहयोग दिया है। गरीबी के इस बढ़ते हुए कुचक्र ने जन जीवन को परेशान कर दिया। इससे उनमें असन्तोष और आक्रोश बढ़ा। मध्यमवर्ग के छात्र ज्यादातर अध्ययनरत होते हैं जिनका उद्देश्य अच्छी नौकरी प्राप्त करना है। मध्यम वर्ग के छात्रों के पास राजनैतिक प्रभाव और उत्कोच आदि न होने से नौकरी में भी पिछड़ गये और वह छात्र समुदाय बुरी तरह झुंझला उठा क्योंकि उसे नौकरी मिलने की सम्भावना कम होने लगी और उसका अचेतन मस्तिष्क उसे उत्तरदायित्वहीन ही नहीं बल्कि अनेक अवसरों पर अपने आर्थिक, सामाजिक और शिक्षात्मक ढांचे के प्रति विद्रोही बना देता है अर्थात् छात्र असन्तोष का कारण भूखमरी और भविष्य के प्रति आशंका है।

प्रत्येक कार्य तत्परता से होगा आवश्यक वस्तुओं की मूल्य वृद्धि नहीं होगी और सुगमता से मिलता रहेगा तो ईमानदारी बढ़ेगी इससे छात्रों का असन्तोष घटेगा। तत्कालीन वित्त मंत्री स्व. श्री चाह्वान ने लोकसभा–"चीजों जिन पर जीवन आश्रित है, के दाम सामान्य रहते तो भी छात्रों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।"

(3) पारिवारिक व सामाजिक मान्यतायें –(1) औद्योगिक क्रांति व समाज – औद्योगिक प्रगति और बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियां हमारी पारिवारिक और सामाजिक जीवन को प्रभावित किया है। आर्थिक प्रगति की गति के मुकाबले सामाजिक प्रगति नहीं हुई है जिसके फलस्वरूप असंतुलन पैदा होगया और आक्रोश व [illegible] द पैदा हुआ। औद्योगिकरण के कारण सामाजिक मान्यताएँ बदल रही है। परन्तु परम्परा, समाज और धर्म का प्रभाव भी भारत पर बड़ा गम्भीर है। इससे मानसिक तनाव विशेषकर शिक्षित छात्र वर्ग पर आ रहा है। भारत की संयुक्त परिवार व्यवस्था बच्चों का मां–बाप और परिवार के प्रति उत्तरदायित्व, व्यक्ति का अपनी जाति पड़ोसी सम्बन्धियों आदि के प्रति कर्त्तव्य आदि सभी कुछ एक औद्योगिक समाज के अनुकूल नहीं है। इससे औद्योगिक प्रगति के मार्ग पर अग्रसर भारत में ये सभी टूटते या बदलते जा रहे हैं।

हैं। परन्तु इस परिवर्तन से जो तनाव उत्पन्न हो रहा है वह विद्यार्थी-समाज को गम्भीरता से प्रभावित कर रहा है और वह उनकी अनुशासनहीनता का एक मुख्य कारण है।

(2) विद्यार्थियो मे निरकुश व स्वतन्त्र वातावरण का द्वन्द्व —

आज का विद्यार्थी घर पर निरकुशता और मित्रों मे स्वतन्त्र विचारधारा, दोनों से मानसिक तनाव बढ़ता है। वह परिवार के कठोर वातावरण के सम्मुख प्रकट नही कर पाता। उसको प्रकट करने का सबसे उपयुक्त स्थान अपनी स्वय की शिक्षण सस्था होती है।

(3) लडके व लडकियो के सह सम्बन्ध — भारतीय समाज लडके व लडकियो के पारस्परिक सम्बन्ध स्वतन्त्रता, सहयोग और मित्रता के नहीं है। इसके परस्पर मित्रता के सम्बन्ध स्वीकार नही है। लेकिन सह शिक्षा व सेवाओ के लिए समान अवसर जैसी व्यवस्था म दोनो के सहयोगी और मित्रता के सम्बन्ध सम्भव हो गय हैं। जबकि समाज इसे मूल्यो के प्रतिकूल समझता है। लडके व लडकियो के पारस्परिक सम्बन्ध ऐसी परिस्थितियो मे स्वाभाविक नही बन पाते और तनाव को पैदा करते है। दुर्भाग्य है कि अधिकाशतया लडको का व्यवहार लडकियो के प्रति उद्दडता और उच्छृखलता का होकर अशोभनीय हो जाता है और लडकियो का व्यवहार लडको के प्रति शका और भय का हो जाता है। इसका प्रभाव विद्यार्थियो के व्यवहार पर प्रभाव डालता है। अनेक अवसरो पर सह शिक्षा मे अनुशासनहीनता का मुख्य कारण लडके व लडकियो के स्वाभाविक सम्बन्धो का न होना ही है।

(IV) धार्मिक मा यताओ व परम्पराओ से वास्तविक जीवन मे निराशा —

भारत धर्म प्रधान देश है, जिसका सामाजिक जीवन पर प्रभाव डालता है। विद्यार्थी इस प्रभाव से मुक्त होना चाहता है लेकिन प्रत्यक्ष रुप से धर्म से अपने आपको पृथक नही कर सकता। धर्म प्रधान देश के नवयुवको के लिए दिल और दिमाग म सघर्ष पैदा करता है। उसकी धार्मिक मा यताओ और परम्परागत आदर्शो का जो सघर्ष उसके जीवन की वास्तविक परिस्थितियो से होता है, उससे उसे निराशा और दुख का अनुभव होता है। एलीन डी रोस ने ठीक ही लिखा है— 'धार्मिक विश्वास मात्र को खो देने के साथ समझौता कठिन नही है, परन्तु जब एक विद्यार्थी इसे अपने पहले के अनेक विश्वासो के साथ-साथ खोता है तो यह उसके लिए एक बडा हानिकारक अनुभव हो सकता है।"8

(4) विद्यार्थी-सभ्यता और नवीन मान्यताये —

(1) आर्थिक और शिक्षा व्यवस्था म परिवर्तन – विद्यार्थी समाज को अपनी

8 Loss of religious faith itself may not be difficult to adjust to but when it occurs at the same time as a student loses men of of his early beliefs, it may be a very upsetting experience ' Aileen D Ross

अलग सभ्यता का निर्माण हुआ है। देश की आर्थिक और शिक्षा व्यवस्था म बहुत तीव्रता से परिवर्तन हुए हैं। बगैर लिंग व जातिभेद के व्यवसाय चयन की स्वत त्रता है। विद्यार्थी घर से दूर छात्रावास मे भी रहते हैं जिनकी अलग मनोवृत्ति का विकास होता है। विद्वान मातजा लिखते हैं—'नवयुवको मे पृथक होकर अपनी एक पृथक सभ्यता के निर्माण की भावना प्रमुख है, यह इस बात से समझा जा सकता है कि यह प्रवृति केवल एक किसी विशेष राष्ट्र या सामाजिक वर्ग तक सीमित नही है बल्कि औद्योगिक दृष्टि से प्रगतिशील सभी देशो म पाई जाती है।'9

छात्र व छात्राओ के केश-वि यास, वेशभूषा, विचारों, भावनाओ को कुछ विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है। फिल्मे उनकी वेशभूषा, विचारो व आदर्शो को प्रभावित करते है। धम और सामाजिकता वर्ग के आधार पर नही मानते। आज का विद्यार्थी आर्थिक, सामाजिक समानता व व्यक्तिगत स्वत त्रता का पक्षधारी है। इस प्रकार अनेक बात विद्यार्थी-सस्कृति को भारतीय समाज की साधारणतया मा य सस्कृति से अलग करती है। परन्तु इनके अतिरिक्त उसकी दो बाते विशेष हैं—

(1) वर्ग-भावना और (2) प्राचीन के प्रति विरोध की भावना।

ii) विद्यार्थियो के विचार प्रौढ़ पीढ़ी स्वतन्त्रता व प्रगति में बाधक —

जहा उ हे अधिक स्वतन्त्रता भी होती है वहा पर भी वह अपने मस्तिष्क स इस विचार को नही निकाल पाते। टी आर फीवेल के अनुसार-"जो है इसके प्रति विद्यार्थियो म एक आलोचनात्मक भाव है। यह आलोचनात्मक दृष्टिकोण परम्परा से होती आई आलोचना और अलगाव की भावना और आधुनिक समाज के बुजुर्गों के प्रति नवयुवको का विद्रोही दृष्टिकोण है।"10 इस प्रकार शिक्षित युवा पीढ़ी और प्रौढ़ पीढी म जो अन्तर और विरोध हो गया है उसका परिणाम भी विद्यार्थियो का असन्तोष है।

(iii) युवा पीढी और प्रौढ़ पीढी का अ तर निर तर बढ रहा है — अभिभावक, समाज व अध्यापको पर विद्यार्थियो का आक्षेप है कि वे उनकी स्थिति से अनभिज्ञ है अत उ ह अपना रास्ता स्वय तलाश करना है। ऐसे विचार छात्रो को शाला व समाज म सघर्ष की ओर अग्रसर करता है।

---

9 The fundamental nature of this seperation of yong people into a Sub calture of their own is evident from the fact that this Phenomenon is not cofied to any particular nation or Social class, but is found in all highly industriatrialized Countries" Matza

10 "There is a inherent tendency for students to take a critical attitude towords the status quo This critical attitude is the product of a tradition of criticism & alienation and of the rebellions of youth towards their elders in modern society" —T R Fyvel

(iv) प्रौढ पीढी आदर्श और मान्यताओं को प्रदान करने में असफल— वास्तव में प्रौढ पीढी छात्रो को समय व युग के बदलते हुए परिवेश के अनुकूल आदर्श और मान्यतायें प्रदान करने में असफल रही है। देश के विशिष्ट वर्ग चाहे व्यापारी, राजनेता, समाज सुधारक हो स्वतन्त्रता के उपरान्त अनैतिक चरित्र ही प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही रोष और घृणा पैदा करने जैसी कार्य-प्रणाली को अपनाया है। अध्यापक व शिक्षाविदो ने भी कोई ठोस कार्य नही किया, जिससे छात्रो में असंतोष व विद्रोह की आग को प्रज्जवलित किया। युवा पीढी के अलगाव का कारण उनमें अनेको के सम्मुख आने वाली विरोधी मांगे और मान्यतायें हैं।

(v) छात्रो की कठिनाई और बुराई दूर करने के लिए समाज द्वारा प्रयत्न नहीं— आज सभी वर्गों के लोगो का अभियान है कि छात्रो को अनुशासन में रहना चाहिए। उन्हें अपनी शिक्षा के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण आचरण अपनाना चाहिए। छात्रो के लिए मानवीय एवं भौतिक साधनो का अभाव है। अध्यापक व छात्रो के बीच भावात्मक संबंधों का अभाव है। ऐसी स्थिति में इन असुविधाओं को दूर करने के लिए भी विद्यार्थियो के पास अपने असंतोष को प्रकट करने के अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं है। अपनी आवश्यकताओं और सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने का उत्तरदायित्व विद्यार्थियों पर ही छोड़ दिया गया है और ऐसी स्थिति में उनके पास हड़ताल, जुलूस नारे, घेराव भूख हड़ताल आदि के अतिरिक्त और कोई ऐसा साधन ऐसा नहीं होता है जो उन्हें उनकी उचित सुविधा दिला सके।

(5) सांस्कृतिक कारण— आज हम सांस्कृतिक ह्रास के युग में सांस ले रहे हैं। संस्कृति है क्या? इसके लिए श्री ई बी टायलर का कथन- "संस्कृति वह संश्लिष्ट अभियोजन है, जिसमें समाजगत ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, रस्म रिवाज की सभी प्रकार की क्षमताएँ और आदतें सम्मिलित रहती है।' भारतीय संस्कृति की चार विशेषताएं हैं- (1) राष्ट्रीय एकता (2) गत्यात्मकता (3) ममत्व (4) साम्प्रदायिकता रहित भावना। लेकिन हम देखते हैं कि हमारी संस्कृति के अनुरूप कार्य न होकर पाश्चात्य संस्कृति देश में फैल रही है। डा एस राधाकृष्णन ने तत्सम्बन्धी के अनुसार-"पश्चिमी संस्कृति की मुख्य प्रवृत्ति मनुष्य और ईश्वर में विरोध बढ़ाना है जिसमें ईश्वर की शक्ति का प्रतिरोध करता है। भारत में मनुष्य ईश्वर से उद्भूत माना जाता है। भारतीय चिंतन में ईश्वर और मनुष्य में हार्दिक समन्वय है।

श्री के एम मुन्शी का कथन है- "पाश्चात्यवाद मनुष्य को उनके निकृष्टतम विचारों के धरातल पर गिरा देता है। उसके लिए अपनी स्वाभाविक इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरा करने के सिवाय और कुछ है ही नहीं, जिसे वह अपना ध्येय बनावे।"

भारत अन्य संस्कृतियों को अपने में आत्मसात करता आया है। प्रो राधा कुमुद मुकर्जी 'यह वह राष्ट्र है जिसने भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण करके सांस्कृतिक परिसीमा की नूतन अवधारणाओं को अंगीकार किया है अर्थात् हम अपनी संस्कृति खो रहे हैं।

आज के भारत में "मन्त्रा संस्कृति" व 'भौतिक संस्कृति' जिसका प्रतीक धन, भौतिक प्रतियोगिता और भौतिक शक्ति की पूजा है जिसके कारण अनैतिकता, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार अश्लीलता, मदिरापान, नाइट क्लब, रेस, गैम्बलिंग, मडर केबरा आदि का प्रयोग बढ़ रहा है।

आज हमारी शिक्षा, सांस्कृतिक क्रान्ति का मार्ग खोलने में पूर्णतया असफल रही है। समय की मांग है कि पाठक्रम में संस्कृति का समावेश हो अन्यथा आज का बालक दिशा भ्रष्ट और विद्रोही होता रहेगा। विध्वंस ही उसकी सृजन शक्ति है और आत्मसंतोष का कारण'। हमारी शिक्षा उधार ली गई पद्धति पर आधारित है।

(6) नैतिक कारण — पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से सिनेमा, क्लब जीवन केबरे, ब्लू-प्रिंट यौन उन्मुक्तता का दृष्टिकोण तेजी से बढ़ता जा रहा है। इसका प्रसार होने का कारण देश के नैतिक मूल्यों का पतन है जिसे अब भी गम्भीरता से नहीं लिया जा रहा है। मुक्त यौनाचार, लड़के-लड़कियों का 'डेटिंग पर जाना 'एडवांस समझा जाता है। इसके साथ ही अश्रद्धा और अनास्था नैतिकता की कमी का कारण है। यही अनैतिकता अराजकता को जन्म देती है। छात्र असन्तोष व आक्रोश कुण्ठा और अविश्वास अनैतिकता के कारण हैं। अतः हमारी शिक्षा का दृष्टिकोण छात्रों में नैतिक दृष्टि पैदा करना हो जाय तो उनमें कर्तव्य के प्रति उत्तरदायित्वों की भावना बलवती हो जायगी और स्वस्थ्य चिन्तन की आदत बढ़ेगी।

छात्र असन्तोष का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण —
(Psychological Analysis of Student Unrest)

आज भारतवर्ष का छात्र भी अन्य पाश्चात्य देशों की भांति सामाजिक स्तरीकरण, मान्यताओं, मूल्यों परम्पराओं को तोड़कर नये ढंग से स्थापित करने में रुचिकर है। किशोर अवस्था में छात्रों पर समाज, शाला व अभिभावकों द्वारा अत्यधिक नियंत्रण रखने का सफल प्रयास किया जाता है जबकि इस अवस्था में बालक नियंत्रित नहीं होना चाहता। 'बाल-केन्द्रीत' शिक्षा व्यवस्था में बालक को स्वतन्त्र चिन्तन व स्वाध्याय पर बल दिया जाता है। बदलते हुए मूल्यों में किशोर एवं नवयुवक स्वतन्त्रता चाहता ही है। इसीलिए आज का युवक प्रौढ़ों की परवाह किये बगैर ही अपनी विचारधारा, क्रियाकलाप, अपनी पहचान को बनाये रखने का प्रदर्शन करने में कोई कोताही नहीं करता छात्र-असन्तोष प्रौढ़ व वृद्धों का, नये तथा परम्परागत लोगों के बीच नई विकसित मान्यताओं एवं प्राचीन प्रथाओं का संघर्ष है।

मनोवैज्ञानिक किसी भी असन्तोष को घबराने वाली स्थिति की श्रेणी म नहीं रखना चाहिए जैसे कि विद्रोह, विप्लव ग्रादि से। भारतीय छात्र ग्रावश्यकताओं मूल्यों, दिशाओ ग्रौर निरन्तर परिवर्तन के लिए कटिबद्ध है तो ऐसी अवस्था में असन्तोष एव सामाजिक ग्रसन्तुलन जैसी स्थिति का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक क्रिया है। कभी-कभी प्रगति के लिए असन्तोष ग्रावश्यक भी होता है। छात्रो म डर,भय, प्रलोभन व परम्परा की ग्राड म अनुशासन बनाने हेतु निर्देशित करने की बजाय ग्रात्म-ग्रनुशासन के लिए सस्कार डाले जाय। ऑडर व डिसिप्लिन के भेद को स्पष्ट किया जाय। जहा ग्रनुशासन है वहां ग्रॉडर स्वत ही बना रहेगा परन्तु जहां ग्रॉडर है वहां ग्रनुशासन का होना ग्रावश्यक नही। ग्रनुशासन एक मानसिक स्थिति है जिसम व्यक्ति को सर्वोच्च मानसिक एव सामाजिक प्रयत्न करना सम्भव है।

नये विकासो के फलस्वरूप राजनैतिक, सामाजिक, ग्रार्थिक, सांस्कृतिक व पारिवारिक दबाव व तनाव बढ रहा है जिससे इन से सम्बन्धित सस्थाओ के प्रति असतोष व विध्वसात्मक प्रवृत्ति बढ़ रही है। उनम मानसिक कमजोरी बढती है जिससे शाला, परिवार, कक्षा, प्रवृतियो म सम्भागी नही होना चाहिये। इस प्रकार से विकसित ग्रसन्तोष सामुहिक हडताल करते है जो 'भीड-मनोविज्ञान' के ग्रन्तर्गत विचार का विषय बनता है। छात्रो मे असन्तोष मुख्यत कार्य आगे पढ़ने मे रूचि न लेना भी है। पाठ्यक्रम से ऊब कर गलत तरीको से परीक्षा उत्तीर्ण करना चाहता है। वे पाठ्यक्रम को हृदय से स्वीकार नही करते तो एकाग्रता कोरी कल्पना ही है। पुराने व नये युग के बीच, नौजवानो व प्रौढो के बीच विचारो का सघर्ष है। इसलिए छात्रो के ग्रसन्तोष तथा विद्रोह से भय नही है। भय इस बात का है कि छात्रो म केवल नकारात्मक एव विध्वसात्मक प्रवृतियो का प्रभाव बढ रहा है। यदि उसकी शक्ति का उचित स्तेमाल करते हुए सृजनात्मक कार्यों के प्रति उत्प्रेरित किया जाय तो उत्तम रहेगा। सौन्दर्य-दृष्टि से व्यभिचार, ग्रश्लीलता, घृणा व ग्राक्रोश समाप्त होकर उपयोगी नागरिक बनगा।

छात्र असन्तोष समाधान और सुझाव

(Student Unrest remedial measures & Suggustions)

छात्रो की ऊर्जा, का उचित ढग से उपयोग करने और उनम ग्रसन्तोष दूर करने के लिये निम्नलिखित बिन्दु सामने ग्राते है, जिनके सहयोग और सम्यक् दृष्टिकोण से इस समस्या का समाधान हो सकता है —

(i) प्रशासन, (ii) शिक्षक, (iii) शिक्षा का नियोजन, (iv) ग्रभिभावक (v) राजनीतिज्ञ,

(vi) लेखक विचारक (vii) छात्र (viii) नैतिक मान्यताएँ (ix) अन्य कारण।

(i) प्रशासक —

(a) शिक्षण संस्थाओं को प्रजातान्त्रिक ढंग से पुनर्गठन करते हुए नयी व्यवस्था हो।
(b) शिक्षण संस्थाओं के प्रशासकों में अधिकार के प्रयोग की बजाय सेवा की भावना हो।
(c) शिक्षण-संस्था प्रधान को समझदारी और सद् व्यवहार का वातावरण बनावें।
(d) परीक्षा-व्यवस्था निष्पक्ष व नियमितताओं को लिए हुए हो।
(e) असमंजस की स्थिति को समाप्त करने हेतु सफल प्रयास वांछित है।
(f) संस्था प्रशासन के गठन व संचालन में छात्रों को भागीदार बनाया जाय।
(g) शिक्षण-संस्थाओं में कोई किसी पर अविश्वास न करे, ऐसा प्रशिक्षण दे।
(h) 'शिक्षक छात्र परिषद्' का निर्माण किया जाय।
(i) 'छात्र कल्याण' के लिए समुचित व्यवस्था हो।
(j) किसी भी महत्वपूर्ण परिवर्तन को लागू करने से पूर्व छात्रों को विश्वास में लिया जाय
(k) संस्था में गम्भीर व चिन्तन के वातावरण को बनाया जाय।
(l) व्यवसायिक सूचना, परामर्श, हॉबी क्लब, आदि का संगठन किया जाय।

(ii) शिक्षक —
(a) शिक्षक व छात्रों के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण बना रहे।
(b) बढ़ती हुई छात्र संख्या के साथ शिक्षक संख्या बढ़ायी जाय।
(c) शिक्षकों को सभी सुविधाएँ व पदोन्नतियां दी जाय।
(d) सस्ते नोटस और कुंजियां लिखना अपराध समझा जाय।
(e) अध्यापक को छात्र के हित में कार्यरत रहना चाहिए।
(f) अध्यापकों को आदर्श व्यावसायिक रूप में अपने को प्रतिष्ठित करना चाहिए।
(g) शिक्षक को छात्र में मैत्री भाव स्थापित हो। उनका परस्पर व्यवहार भी प्रिय और श्रद्धाजनक हो तो उत्तम होगा।
(h) छात्रों के संशय को निकालने में मदद करना चाहिए।
(i) शिक्षक को विश्वसनीय और सम्माननीय बनाने से छात्रों में रूचि और रूझान लेने लगेगा।
(j) शिक्षक छात्रों का आदर्श नेतृत्व तब ही कर सकता है जब स्वयं प्रत्येक प्रवृत्ति में भागीदार बने और छात्रों को भाग लेने हेतु उत्प्रेरित करे।

(iii) पंचवर्षीय योजना में शिक्षा —
(a) शिक्षा-नियोजन इस ढंग से किया जाय कि आवश्यकता और पूर्ति का सन्तुलन बना रहे।

(b) श्रम]निष्ठा तथा श्रम का सम्मान करवाने की दृष्टि से श्रमिक वर्ग का स्तर उठाया जाना चाहिए।

(c) श्रम का समुचित और सम्माननीय मूल्य आँका जाय तो नौकरी की समस्या बहुत कुछ सुलझ जायगी।

(d) स्वतन्त्र व्यवसाय चयन में दिलचस्पी का विकास किया जाय।

(e समाज के विशिष्ट वर्ग के लोगों पर, राष्ट्र विरोधी गतिविधियों पर कड़ा रुख अपनाने से छात्रों में भी ईमानदारी, श्रमनिष्ठा व कर्त्तव्य पालन के गुणों का विकास हो सकेगा।

(f) पंचवर्षीय योजनायें आर्थिक विषमता की खाई को पाटें।

(g) बेकारी की महामारी से देश को बचाने की व्यवस्था योजना में हो।

(h) पंचवर्षीय योजनाएँ ठोस, तथा यथार्थपरक होनी चाहिए।

(i) ज्ञानार्जन के साथ धनार्जन(सीखो कमाओ, एम यू पी डब्ल्यू) के लिए उचित अवसर उपलब्ध हों।

(iv) अभिभावक —

(a) अभिभावक छात्रों की हर प्रवृत्ति की ओर ध्यान दें।

(b) अभिभावक की लापरवाही से ही छात्र गैर-जिम्मेदार बनते हैं।

(c) उन्हें छात्रों के मन में संशय रहित स्थिति पैदा करनी चाहिए।

(d) छात्रों को समय-समय पर सृजनात्मक सुझाव प्रदान करें।

(e) अभिभावकों व छात्रों के बीच प्रतिदिन परस्पर वार्ता हो।

(f) परिवार में लोकतान्त्रिक वातावरण का निर्माण करें।

(g) छात्र की रुचि, और आदतों के विकास में मदद करें।

(h) छात्रों में रुचि, उनके कार्य के प्रति जिज्ञासा तथा भावी योजना में परस्पर सहयोग से असंताप समाप्त होता है।

(i) परिवार-संस्कृति को बरकरार रखना।

(v) राजनीतिज्ञ —

(a) राजनीतिज्ञों को अपने अनुकरणीय कार्य करने चाहिए।

(b) गुटबन्दी, दल बदल राष्ट्र विरोधी कार्यवाही को कानूनी अपराध घोषित किया जाय, ताकि छात्र राजनेताओं के आचरण का अनुसरण करें।

(c) विदेशी राष्ट्रों के एजेण्टों को राजनैतिक दल कानूनी पाबन्द करें।

(d) सभी राजनैतिक दल एकजुट होकर देश को जनतन्त्र व मानवतावादी ढाँचे में ढालें।

(e) हमारी संस्कृति, रिवाज व परम्परा आध्यात्मिकता पर आश्रित है। अतः अध्यात्म व नैतिक शिक्षा का समावेश हो।

(f) राजनैतिक दल को छात्र-निर्वाचन व आदोलन मे भाग नही ले ।
(g) राजनीतिज्ञ सौदेबाजी छोडकर जनहित नीति को अपनाय ।
(h) राजनतिक दल को अपनी आदर्श नीति पर आधारित शिक्षण-सस्थाओ की स्थापना करनी चाहिए ।
(i) दलो के बीच पारस्परिक द्व द्व समाप्त किया जाय ।

(vi) लेखक व विचारक —
(a) लेखक और विचारको का दायित्व है कि व मांग की पूर्ति के दृष्टिकोण स साहित्य-सृजन न कर जनता की मनोवृति का परिष्कार करे ।
(b) विचारको को चाहिए अच्छा दशन प्रदान करे जिसको आदर्श या लक्ष्य के रूप मे देश अपनाय ।
(c) सुबोध साहित्य की ही रचना करे ।
(d) लेखक विचारक और प्रकाशक छात्रो को स्वस्थ साहित्य दे ।

(vii) छात्र —
(a) छात्र अध्ययन की ओर अनुप्रेरित हो ।
(b) शिक्षा को नौकरी पाना ही उद्देश्य न समझकर चरित्र विकास का साधन समझे।
(c) छात्र बेरोजगारी के होए स भयभीत न हो ।
(d) अध्ययन और मनन से श्रम के प्रति निष्ठाभाव पैदा करे ।
(e) स्वय आर्थिक-लाभ की योजना का निर्माण करे ।
(f) अपने बीच स्टडी सर्किल का निर्माण कर अच्छे वातावरण का निर्माण करे।
(g) वह हल्का बहुरुपिया और बहकाने वाला न हो ।
(h) सशक्त वीर्ययुक्त, स्वालम्बी निर्भीक शान्त स्वभाव का, निष्ठावान और मधुरभाषी हो।
(i) विपरीत परिस्थितियो म डगमगाय नही ।

(viii) नैतिक मान्यताएँ —
(a) प्रौढ़-पीढी, नव-पीढी के कार्यों की भर्त्सना करना छोड दे ।
(b) नय दृष्टिकोण को आत्मसात् करना ।
(c) जहा नैतिक दृष्टि से सशोधन वाछित है, वहा अविलम्ब कर देना चाहिए ।
(d) प्रौढपीढी को आवश्यक सशोधन मे पहल करनी चाहिए जिससे विवाद जैसी परिस्थिति ही नही आने पावे ।
(e) दृष्टिकोण और दायरा विस्तृत व उदार हो ।
(f) पाश्चात्य मान्यताओ का विरोध की बजाय मैत्री और सौज पूर्ण वातावरण बनने से नई और प्रौढ पीढ़ी मे द्वन्द नही होगा ।

(g) नैतिकता का सही प्रत्यय छात्रो का स्पष्ट करे कि यह मानव विकास हेतु ही तो है।

(h) नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था से छात्रों म सहयोग,सद्भावना,सहिष्णुता, स्वस्थ्य प्रतियोगिता तथा ग्रात्मनुशासन ग्रादि गुणो का विकास हो सके।

(ix) अ य कारण —

(a) छात्रो को सुविधाएँ देना विरोध के लिए अवसर न दे।

(b) छात्रा के विश्वास का पुन स्थापित किया जाय।

(c) विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी सस्थाएँ छात्रों क हितैषी काय करने से छात्र अकेलापन नही समझे।

(d) असन्तोष पदा होने से पूव ही मनोवैज्ञानिक ढग से व्यक्तिगत निर्देशन व परामर्श प्रदान किया जाय।

(e) प ठ्यक्रमो मे विविधता व शिक्षा प्रणाली रूचिकर हो।

उपसहार —

यह कहा जाना अनुपयुक्त नही होगा कि छात्र–असन्तोष के पीछे सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक नतिक तथा शैक्षणिक अपरिपक्व याजनाओ का शोचनीय होना बहुत बडा कारण है। आज के युग म सब का समन्वित प्रभाव परस्पर पडता है। आज किसी भी प्रश्न को एक दूसरे से जुदा करके नही देखा जा सकता है। प्रत्येक प्रश्न के साथ अनेक सदर्भित प्रश्न या समस्याएँ हैं। छात्र असन्तोष वतमान परिस्थतियो की देन है। यह कोई आकस्मिक घटना नही है और न सिर्फ चौकाने वाली है,बल्कि जीवन के विभिन्न घटको म हो रहे परिवर्तन और प्रयोग का प्रतिफल है और इसके पीछे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि काय कर रही है। इसलिए इस समस्या ने कई क्षेत्रो को प्रभावित किया है और यह सोचने के लिए मजबूर कर दिया है कि कही यह विस्फोटक रूप राजनैतिक उथल पुथल का कारण नही बन जाए। यदि इस युवा शक्ति का सही दिशा मे प्रयोग नही किया गया तो इसमे दो राय नही कि यह शक्ति जन–क्रांति तक की स्थिति पैदा कर सकती है और तब इस पर विचार करने का समय निकल चुका होगा, वस्तुतया यह एक भयावह और विध्वसात्मक स्थिति होगी, जिसके परिणाम व प्रभाव को आज सोचना कठिन होगा।

छात्र–असन्तोष का मुख्य कारणो मे से बेरोजगारी है। शिक्षा पद्धति और पाठ्यक्रम मे क्रांतिकारी परिवतन शिक्षा का रोजगार से जोड़ा जाय। देश का भौतिक सुविधाओ से नही आध्यात्म दृष्टिकोण के विकास से उन्नत किया जाना चाहिए। नये मूल्यों के आधार पर नये समाज की रचना हेतु दर्शन प्रस्तुत किया जाय। हमारी शिक्षा नीति

म निरन्तर परिवर्तन हो रहा है उसे एक राष्ट्रीय नीति के रूप मे प्रस्तुत किया जाय। और निश्चित भारतीय दृष्टिकोण को विकसित करते हुए शिक्षा को जीवन की आवश्यकता स जोड़ा जाना चाहिए। छात्र, शिक्षक अभिभावक, राजनीतिज्ञ, लेखक विचारक और शैक्षिक प्रशासकों को चाहिए कि वे सभी सहयोगी रवैया अपनाकर छात्र-असतोष को समाप्त करन का सफल प्रयास करे। छात्रो को रोब, डर, भय से नहीं बल्कि विश्वसनीय तथा सामाजिक व सन्तोषप्रद वातावरण का निर्माण करे जिससे देश व छात्र समुदाय दोनो को लाभ हो सके।



मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघुत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 छात्र असन्तोष के निवारण हेतु पाच सुझाव दीजिए। (राज पत्राचार 1985)

2 आपके राज्य मे छात्र-असन्तोष के पाच कारणो की सूची बनाइये। (राज 1984)

3 छात्र-असंतोष न्यायसंगत हो सकता है, किन्तु छात्र-आन्दोलन' नहीं। टिप्पणी कीजिये। (राज 1983)

4 शिक्षण संस्थाओ के प्रशासन मे विद्यार्थियो के सम्भाग से छात्र असंतोष की समस्या किस सीमा तक सुलझ सकती है ? (राज 1982)

5 'भारत मे छात्र असंतोष का मूल कारण है बेरोजगारी।" इस कथन की परीक्षा कीजिए। (राज 1981)

6 युवा शक्ति के मार्गान्तरीकरण से आप क्या समझते है ? (राज पत्राचार 1981)

7 राजस्थान मे छात्र-असंतोष के मुख्य दस कारणो की सूची बनाइये। (राज 1979)

8 शिक्षित बेरोजगारी तथा छात्रो मे बढ़ती हुई अनुशासनहीनता पर टिप्पणियां लिखिये। (राज पत्रा 1979)

9 युवाशक्ति को राष्ट्रीय पुनर्निर्माण हेतु ठीक दिशा मे प्रवाहित करने हेतु पाच सुझाव दीजिए। (राज 1978)

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1 विद्यार्थी आन्दोलन के लिए शैक्षिक कारक कहा तक उत्तरदायी ठहराये जाते है ? इनके निराकरण करने के उपाय सुझाइये। (राज पत्रा 1984)

2 छात्र असन्तोष को कम करने के लिए एक शैक्षिक योजना बनाइये। (राज पत्रा 1981)

3 छात्र असन्तोष को कम करने के कारकों पर प्रकाश डालिए और साथ मे ऐसे सुझाव प्रस्तुत कीजिए जिनके द्वारा विद्यालय इस समस्या का निराकरण कर सकते हैं। (राज 1975)

अध्याय
१७

शिक्षा का भारतीयकरण
(Indianization of Education)

[रूपरेखा– विषय प्रवेश, भारतीयकरण की आवश्यकता, शिक्षा म भारतीयकरण का सम्प्रत्यय, भारतीयकरण का अर्थ, शिक्षा म भारतीयकरण की वांछनीय अवधारणा सस्कृति और भारतीय सस्कृति, भारतीय शिक्षा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, शिक्षा का भारतीयकरण हेतु प्रयास स्वतन्त्रता से पूव तथा स्वतन्त्रता के उपरान्त भारतीयकरण प्रयास क असफलता के कारण, भारतीयकरण हेतु सुझाव, उपसहार मूल्याकन]

विषय प्रवेश –

अग्रेजी काल मे लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति का उद्देश्य भारत के बालक व बालिकाओ का सर्वांगीण विकास करना न होकर कूटनीति दृष्टि स एक एसी शिक्षा प्रणाली का प्रारम्भ करना था जिससे रग स भारतीय बने रहे परन्तु विचार, रुचिया अभिरुचियो रहन सहन, दृष्टिकोण तौर-तरीके से, नतिक मूल्य सम्प्रेजीयत का ओर झुकाव निरन्तर द्रुत गति से हो सक । विज्ञान की प्रगति, तकनीकी विकास यन्त्रो का अविष्कार एक दूसरी प्रक्रिया है । प्रकृति की देन– जलवायु सूय चाद के समान ही ये विज्ञान के उपकरण भी मानवमात्र के लिए एक सरीखे हैं किन्तु अग्रेजो की सत्ता क पिपासु मकाले जसे लोग विज्ञान की विशालता का सकुचित बनाकर अपने साम्राज्य एव अपनी भोगवादी सस्कृति एव अन्न विदेशी धम के प्रचार के लिये विज्ञान को एक अस्त्र बना रहे थ । भारतीय मनिषियो समाज सुधारको ने इस प्रकार की शिक्षा नीति का वचारिक दृष्टि स ही नही भिन्न–भिन्न सृजनात्मक क्रियाकलापो के माध्यम स भी प्रतिकार किया । क्रातिकारी सावरकर ने विदशीयन स देश को सावधान करने के कारण मानसिक दासता से मुक्त करने वाले कायाकल्प का जनक कहा हैं । अर्थात् वे चाहते थे कि शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा हो और राष्ट्रीय शिक्षा हो ताकि देश भक्ति का विकास हो सक ।

भारतीय मनीषि व समाज सुधारक चाहते थे कि भारत क प्राचीन गौरव से वत मान को गुंजाते हुए आध्यात्मिकता एव वज्ञानिकता के समन्वय का प्रयत्न करते हुए भारतीय शिक्षा मे सुधार के लिए उपयुक्त माग का अन्वेषण करते हुए शिक्षा के

के क्षेत्र मे कुछ नये सिद्धा तो का प्रतिपादन किया बुनियादी शिक्षा, गुरुकुल प्रणाली शांतिनिकेतन आदि सफल प्रयोग रहे है। राष्ट्रपिता व अय राष्ट्रनायक भारतीय शिक्षा को भारतीय परम्पराओ पर आधारित करने के पक्ष मे थे। पाण्डुचेरी आश्रम मे अरवि द तथा काशी मे मालवीजी, अहमदाबाद की गुजरात विद्यापीठ आदि शिक्षा मे भारतीयता पर आधारित करने हेतु सफल प्रयोग कह जा सकते हैं। इन सस्थाओ ने स्वत त्रता से पूव ही महान् देशभक्त पदा किये है जो स्वत त्रता सग्राम म अहम् भूमिका निभाने मे सक्षम रहे हैं।

स्वराज्य प्राप्ति से पूर्व राष्ट्रपिता राष्ट्रीयता की ज्योति जगाई जिसके विकास म महामना, श्री नेहरूजी, सरदार पटेल, नेताजी राजाजी एव श्री देसाई आदि जुटे रहे परन्तु स्वत त्रता के उपरा त हमारा दृष्टिकोण नकारात्मक बनता ही गया और सामाजिक एव राजनैतिक क्षेत्र मे निरन्तर भ्रष्टाचार का बोलबाला तथा 'मूल्यो' का ह्रास तो हुआ ही साथ ही पाश्चात्य देशो की नकल के आदी होते गय जिसके फलस्वरूप हम अपनी महान सस्कृति, हमारे सामाजिक, राजनतिक मूल्यो एव आदर्शों से दूर होते जा रहे हैं। इसी का कारण है कि आये दिन देश के सम्मुख साम्प्रदायिकता, जातियता, धम क्षत्र भाषा तथा भारतीय सविधान के प्रावधानो को लेकर ताडवनत्य दृष्टिगोचर हो रहे हैं। ऐसी स्थिति का जड से समाप्त करन के लिए भारत मे प्राचीन मूल्यो मे आस्था स्थापित और पाश्चात्य सभ्यता का अ धानुकरण न कर, देश की आवश्यकता के अनुरूप भारतीयकरण' करने के सफल प्रयास से ही देश सभी क्षेत्रो मे प्रगति की ओर अग्रसर हो सकता है। इसलिए म दयान द भारतीयता का अवमूल्यन नही करना चाहते थे। भारत के शव पर प्रगतिवाद-एव पश्चिम के डिजाइन (Design) का भवन व सहन नही कर सकते थे। जिस प्रकार किसी वृक्ष की पहचान हम उसके फल से करत हैं और फल की परीक्षा स्वाद से होती है, ठीक उसी प्रकार शिक्षा की पहिचान देश से एव देश की पहिचान सास्कृतिक मूल्यो से हो पाती है। यद्यपि हमने राजनैतिक व्यवस्था मे तो इग्लैड, फास, अमेरिका, स्वीजरलैण्ड आदि का अनुसरण किया है लेकिन देश मे शिक्षा तथा शिक्षा प्रदान करने के माध्यम अनेका अनेक है। अत अरवि द ने इसीलिए कहा— 'आधुनिक भारतीय शिक्षा न तो आधुनिक है न भारतीय और न शिक्षा ही।' अतः वतमान पद्धति की जडता से पीछा छुडाया जाना आवश्यक है। हमारी शिक्षा नीति 'जिसम अ तरग सुनम्यता हो ताकि वह अपने आपको बदलती हुई परिस्थितियो के अनुरूप ढाल सके।"1

---

1 कोठारी दौलतसिंह, शिक्षा आयोग की रिपोट'(शिक्षामत्री श्रीछांगला को पत्र29जून66)

किसी देश की पहिचान उसकी संस्कृति से होती है। संस्कृति के हस्तान्तरण संरक्षण एवं संवर्द्धन का प्रमुख साधन शिक्षा ही है। अतः किसी राष्ट्र की शिक्षा उसकी संस्कृति का परिचायक नहीं है तो वह सच्चे अर्थ में शिक्षा नहीं है। संस्कृति के प्रमुख तत्व है, जीवन-दर्शन, जीवन-चर्या, भाषा और साहित्य परम्पराएँ व रीति-रिवाज आदि। दीर्घकालीन दासता के कारण हमारे राष्ट्र में शिक्षा की स्थिति निरन्तर भारतीयता के दृष्टिकोण से कमजोर बनती ही गई। यह वही भारत जो शिक्षा की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ और जगद्गुरु कहा गया था दुर्भाग्य से आज इस देश की शिक्षा-पद्धति की कोई पहचान तक नहीं है हाँ भारत की पहिचान ब्रिटेन के उपनिवेश के रूप में अवश्य रही है। हम 21वीं शताब्दी में प्रविष्ट होने हेतु प्रयत्नशील है तो हमारे राष्ट्र की पहिचान हो और यह पहिचान अपनी स्वयं की शिक्षा व्यवस्था द्वारा हो। अतः शिक्षा में भारतीयकरण का प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है।

शिक्षा में भारतीयकरण की आवश्यकता

(Need of Indianization of Education)

(1) शिक्षा देश की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं के अनुरूप हो।
(2) शिक्षा का दर्शन भारतीय हो, जिससे देश की पहचान हो सके।
(3) भारत में निर्मित भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल हो।
(4) शिक्षा भारतीय संस्कृति व परम्पराओं के अनुकूल हो।
(5) शिक्षा जिससे धार्मिक सहिष्णुता एवं राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास हो सके।
(6) भारतीय मूल्यों के प्रति आस्था, राष्ट्रीय-चरित्र का निर्माण।
(7) भारतीय जीवन-दर्शन, भाषा, साहित्य और परम्पराओं के प्रति गौरव की भावना का उदय।
(8) भारतीय संविधान, झण्डे, राष्ट्रगीत, व राष्ट्रीय चिह्न के प्रति आस्थावान।
(9) शिक्षा द्वारा चारित्रिक विकास भारतीय आधार पर।
(10) सामाजिक, राष्ट्रीय भावनाओं का विकास करते हुए कर्तव्यों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का उदय हो सके।

शिक्षा में भारतीयकरण का सम्प्रत्यय

(Concept of Indianisation of Education)

भारतीयकरण का क्या आशय है और भारतीय परम्पराओं या भारतीय लोगों के द्वारा अन्य संस्कृति को अपनाने का- यह सम्प्रत्यय स्पष्ट नहीं है, क्योंकि स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय वस्तुओं का प्रयोग ही भारतीयकरण समझा जाता था। "भारतीय संस्कृति

सदव समन्वयन तथा नये उपकरणो को पचाकर आत्मसात् करने की अद्भुत योग्यता है।'1

देश मे ईरानी, ग्रीक शक, हूण, कुषाण तुर्क, मुगलो का गहरा सम्बन्ध रहा है। लेकिन फिर भी हमने अपनी आधारभूत आयामो को नही छोडा। जिस प्रकार विभिन्न नदियो का पानी हिन्दमहासागर मे विलीन होने पर नदियां अपनी पहिचान खत्म कर देती है ठीक इसी प्रकार भारतीय सस्कृति से इन विदेशी सस्कृति का परोक्ष व अपरोक्ष रूप में प्रभाव होते हुए भी हम अपनी मूलभूत सास्कृतिक आधार को नही छोड पाये। स्वतन्त्र भारत मे प्रो बलराज मधोक ने भारतीयकरण का आशय–"भारतीय भावना तथा भावात्मक एव रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने से है।' भारत राष्ट्र के प्रति राष्ट्रीय भावना उज्जीवित करने का ही दूसरा नाम है— भारतीयकरण'।

शिक्षा मे भारतीयकरण के आधार तत्व

राष्टीय उद्देश्यो की पूर्ति राष्ट्रीय दर्शन पर निर्भर है तो राष्ट्रीय दशन के आधार पर शिक्षा दशन का निर्माण होता है और उसी आधार पर पाठ्यक्रम का, जिसके माध्यम से हम अपनी राष्ट्रीय आवश्यकताओ के अनुरूप उद्देश्यो की पूर्ति करने का सफल प्रयास करते है। देश के सम्मुख अनेक विकट चुनौतिया का सामना शिक्षा मे ऐसे आधारभूत तत्वो का समावेश करने से ही समस्याओ का समाधान सम्भव है। शिक्षा में भारतीयकरण वतमान समय मे अहम् माग है। भारतीयकरण के निम्न आधार भूत तत्व है —

(1) धर्मों की विभिन्नता मे एकता —भारतीयकरण हेतु सभी धर्मों की मूलभूत एकता को समझाना। क्योकि किसी भी धम की शिक्षाओ मे अथवा उसके मान्य ग्र थो मे पारस्परिक विद्वेष, ईर्ष्या, सघष आदि प्रतिपादन नही किया गया है। "मजहब नही सिखाता, आपस म बैर रखना।' सम्राट अकबर ने 'दीन इलाही,' धम को प्रचारित किया जो एकता हेतु प्रभावशाली प्रयोग रहा।

(2) धार्मिकता –धम का तात्पर्य 'कतव्य' से जोडे। सभी धर्मो मे मानवीय आचरण से सम्बन्धित नियम निकालकर शिक्षा के पाठ्यक्रम मे सम्मिलित करने का सफल प्रयास करे तथा परोपकार, अहिंसा, सत्यपालन, सदाचार अपरिग्रह आदि।

(3) भारतीय जीवन शैली —अध्ययन काल में बिना लिंग, जाति, सम्प्रदाय व क्षेत्र भेद के सभी को सामान रूप से शैक्षिक व अन्य सुविधाएँ प्रदान की जाय चाह वस्त्र व खानपान की भी क्यो न हों। लेकिन इन सुविधाओं के पीछे उद्देश्य

1 रामधारी सिंह दिनकर, "सस्कृति के चार अध्याय" प्रस्तावना लेखक प नेहरू पृ 11 12

सादगी, उच्च विचार, सशक्त वर्ग द्वारा निर्बल वर्ग की कल्याणकारी काय करना अथवा दान देना, भोगवाद से दूर रहना, लेन की अपेक्षा देने में अधिक रुचि, विश्वास, अतिथि सत्कार त्याग, तपस्या को श्रेष्ठ बताया है तथा भोग को तुच्छ। जनसंख्या नियन्त्रण हेतु ब्रह्मचर्य पालन, जनसंख्या शिक्षा को छात्रों को समझाया व पढ़ाया जाय सहकारी वृत्ति-संयुक्त परिवार। इन वृत्तियों एवं विचारों की शिक्षा द्वारा पुनः स्थापना वांछित है।

(4) आध्यात्मिक मूल्यों को प्राथमिकता —' इस देश ने आध्यात्मिक मूल्यों के मुकाबले में भौतिक वस्तुओं को ऊँचा नहीं माना। ऐसा क्यों है कि इस देश के राजनीतिक नेता भी धार्मिक व्यक्ति हो रहे हैं उदाहरणार्थ गांधीजी श्री तिलक श्री अरविन्द, स्वामी विवेकानन्द क्योंकि वे अपनी छाप इस देश पर छोड़ सके? यह उनकी राजनीतिक प्रतिभा के कारण सम्भव नहीं हुआ बल्कि यह सम्भव हो सका है उनके त्याग और वैराग्य की भावना के कारण जिसके वे जीते-जागते उदाहरण थे, क्योंकि वे त्याग की उस भावना को, जिसका अनुसरण यह देश हमेशा से करता आ रहा है, अपने जीवन में उतारने में सफल हुए थे।1

(5) प्रजातन्त्र —' भारत में आजादी मिलने से पहले लोगों में इस प्रकार की आशंका और भय था। भारत की आजादी से खिन्न हुए इन आलोचकों को स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद घटी घटनाओं ने पूरी तरह निराश कर दिया। आज विशाल जन संख्या वाले देश का यह एकता किसी प्रकार के बल प्रयोग या तानाशाही के दबाव से नहीं बल्कि उनके लोकतान्त्रिक विचारों के कारण ही सम्भव हो सकी है।' 2 हमने लोकहितकारी संसद प्रणाली को अपनाया है। अतः बालकों में इसमें अधिकार व कर्त्तव्यों के बारे में ज्ञान करवाकर सारे भारतीयों के हित में काम हो बिना लिंग, जाति धर्म, सम्प्रदाय के।

(6) धार्मिकता की स्वतन्त्रता —पिछली तीस चालीस शताब्दियों से हमारी धार्मिक सहिष्णुता की नीति रही है। स्वतन्त्रता के बाद भी संविधान में 'धर्म-निरपेक्षता को क्रियान्वित रूप देने हेतु प्रावधान रखा है। धर्म मनुष्य द्वारा ईश्वर को व्यक्तिगत स्तर पर खोजने का एक साधन है। अशोक ने अपने एक शिलालेख में कहा था 'धर्म को लेकर झगड़ने की बजाय समन्वय आवश्यक है। किसी भी धर्म का अनुयायी होने के बावजूद तुम्हारे व्यक्तित्व में समन्वय स्थापित हो गया तो तुम ऐसा महसूस करोगे कि तुम सब एक ही परिवार के सदस्य हो।'3

1 राधाकृष्णन् "हमारी विरासत पृ 5
2 राधाकृष्णन, "हमारी विरासत" पृ 9
3 राधाकृष्णन् हमारी विरासत" पृ 10

(7) ज्ञान विज्ञान तथा प्रविधि का समावेश— भारतीय जीवन की आवश्यकता-नुसार पश्चिम के ज्ञान को हमारी शिक्षा म समावेश करते हुए शोध तथा उनके परिणामो का उपयोग सवजन हित मे किया जाय।

(8) राष्ट्रीय विकास तथा चुनौतियो से सामना करने की शक्ति — भारत जसे विकासशील देश मे आर्थिक राजनतिक व सामाजिक, ज्ञान विज्ञान क क्षत्र मे सच्चे, चरित्रवान परिश्रमी, साहसी राष्ट्र के प्रति भावात्मक लगाव रखन व ले नागरिक हो पदा करने का सफल प्रयास की आशा की जाती है।

(9) दुगुणा तथा दु भावनाओ से मुक्त करने वाली शिक्षा व्यवस्था हो।

(10) गुरू की महत्ता –शिक्षा म गुरू को ऊचा स्थान देना चाहिए तथा "गुणयुग विद्यायुक्त शिक्षा दन योग्य हो ' 3

(11) सादा छात्र जीवन – अत्य त विपलो वस्तुओ के सेवन से पृथक रहकर शुद्ध आहार व्यायाम शारी क परिश्रम एव सयम से जीवन निर्वाह और स्वच्छ वस्त्रादि धारण करे अर्थात् सादा जीवन उच्च विचार' 4 छात्र विद्या व्यसनी बने।

(12) भारतीयता के प्रति गौरव की भावना —भारतीय इतिहास का एक विहगम दृश्य प्रस्तुत कर सकें चुनकर अमरिका के विलियम्स वर्ग के नमून पर विकास किया जाय।

(13) समन्वय का सूत्र - उदारता विशालहृदयतात्यता हो। विभि न सस्कृतियो, धर्मों, सम्प्रदायो, जातियो का समान आधार पर श्रद्धा प्रदान करे।

भारतीयकरण का सकुचित अर्थ–(Meaning of Indiaization) कांग्रेस न अपन प्रारम्भिक काल म भारतीयकरण का तात्पय यह माना था कि राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षत्रो स विदेशीयो को हटाकर भारतीयो की नियुक्ति करना। कतिपय व्यक्तियो ने भार तीय वशभूषा एव खान-पान का ही भारतीयकरण की सज्ञा द दी जो अनुपयुक्त है।

शिक्षा के भारतीयकरण का व्यापक अर्थ —भारत के प्रथम प्रधानमत्री प नेहरू ने अपनी पुस्तक 'हमारी खोज म बताया कि विदेशी आक्रमण क समय भारतीयो ने उनका सामना करके उन्हे भगाया। जि ह भगा नही सक उ ह आत्मसात कर लिया। अर्थात् उनक अनुसार विदेशी तत्वो के समावेश और आत्मसातकरण की प्रक्रिया का नाम भारतीयकरण है। अत प नेहरू जी की दृष्टि मे विदेशी तत्वा क समावश और आत्मसातकरण की प्रक्रिया का ही नाम भारतीयकरण है।

3 म दयान द—'दयानन्द के सर्वश्रेष्ट भाषण', पृ 123
4 म दयानन्द वही—पृ 122

प्रो0 बलराज मधोक ने अपनी पुस्तक भारतीयकरण में लिखा है–"भारतीयकरण का आशय है भारत और भारतीय संस्कृति के प्रति रागात्म–भावात्मक सम्बन्ध रखना। भारत राष्ट्र के प्रति राष्ट्रीय भावना उज्जीवित करने का ही नाम है भारतीयकरण।"1 यदि हम इस एसे भी स्पष्ट कर सकते हैं—"सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की भावना के विकास का दूसरा नाम ही भारतीयकरण है। राष्ट्रीय भावना का अर्थ केवल राजनैतिक निष्ठा ही नहीं वरन् राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहरों पर गर्व, राष्ट्रध्वज, राष्ट्र गीत, राष्ट्रभाषा, राष्ट्र के महापुरुषों, राष्ट्र के मूल्यों व विरासत आदि का हृदय से सम्मान करें।

प्रो0 मधोक ने भारतीकरण' 2 पुस्तक म भारतीयकरण को बहुत आवश्यक माना है। जिससे भारतीयो मे चेतना और गर्व पैदा करने के प्रभावशाली साधन प्राप्त हो सके। उन्होने बताया है —

(i) नैतिक शिक्षा एव राष्ट्रीय भावना पैदा करने वाले कार्यक्रमो का समावेश पाठ्य क्रम मे हो

(ii) वर्गभेद दूर हो और राष्ट्रीय एकता की बात विद्यालय से प्रारम्भ हो। यदि विद्यालयो मे कोई एकता नही तो बाहर के जीवन म एकता नहीं हो सकती।

(iii) कुछ सम्प्रदाय भाषा विशेष से लगाव रखते है । यदि सम्प्रदाय या जाति विशेष के आधार पर एक भाषा विशेष के माध्यम से अध्ययन करने की माग करे तो राष्ट्रीय एकता में बाधक है।

(iv) इतिहास के प्रति सही दृष्टिकोण यह है कि तत्वो को पवित्र समझा जाए और आज की सामाजिक आवश्यकताओ के अनुसार उनकी व्याख्या की जाए। घृणा, द्वेष पैदा करने वाला न होकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इतिहास का अध्ययन हो जिससे सम्प्रदायो में सौहार्दपूर्ण वातावरण बनेगा।

प्रो0 रमेश कुन्तल मेघ के अनुसार—'भारतीकरण' आधुनिक भारतीयता तथा भारतीय आधुनिकता' का सामञ्जस्य हैं।'3

'आधुनिक भारतीयता' का अर्थ वह भारतीयता जो भारत मे आज है अतीत की भारतीयता नही । 'भारतीय आधुनिकता' से आशय है आधुनिकता का वह रूप जो भारत मे विकसित और स्वीकृत हुआ है। प्रो मेघ का सम्प्रयय तथा प नेहरू के विचार

1 मधोक बलराज, भारतीकरण—1970 पृष्ठ 101–112

2 " " " "

3 रमेश कुन्तलम मेघ, "आधुनिकता बोध और आधुनिकरण" प0 79

एक समान ही है।

म दयानन्द— "परिवर्तन एव सुधार एक फैसन नही राष्ट्रीय आवश्यकता समझ कर वे करना चाहते थे। उनका दृढ मत था— आदि शाश्वत मूल्यो की जो रत्न एव मणिया है। हमने अपनी भूल परस्पर फूट से उनको धून धूमरित कर दिया है उसी को धोकर स्वच्छ कर नवीन स दर्भों मे उनके उन्नत पक्ष को दर्शाना हमारा ध्येय है।"[1]

स्वामी विवेकानन्द जी भी पूर्व और पश्चिम के विचारो मे आदान-प्रदान के हामी थे। उनका विश्वास था कि भारत पश्चिमी राष्ट्रो को अध्यात्म बाद की शिक्षा दे सकता है और पश्चिम से भौतिक प्रगति की शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

डा सर्वपल्लि राधाकृष्णन् भी अपनी प्राचीन परम्पराओ म अच्छाई है उन्हे अप नाने तथा आधुनिक बाते भी स्वीकार करने योग्य है उन्हे मानने को तैयार है। उन्होने कहा— 'म आधुनिक हूँ लेकिन मै यह मानता हूँ कि आधुनिकता का अर्थ है– अपनी प्राचीन विरासत की मूल्यवान बातों को बनाये रखना और घटिया बातो को छोड देना। ऐसी बहुत सी बातें हैं जो हम परम्परा से प्राप्त हुई है लेकिन वे हमारी संस्कृति या देश के लिए गौरवपूर्ण नही है। इसके अलावा, बहुत सी बातें अत्यन्त मूल्यवान हैं और उन्ही की वजह से यह देश टिका हुआ है। 2

सिकन्दर जैसे सम्राट जो सभी गैर यूनानीयो को जगली समझते रहे है लेकिन कालान्तर म उनके विचारो मे परिवर्तन आया और कहने लगे—"प्रतिभा और गुणो से सम्पन्न सभी व्यक्ति एक ही परिवार के सदस्य है। "केवल दुर्जन–दुष्ट ही विदेशी है।' इससे स्पष्ट है कि बगैर लिंग,जाति, धर्म, व सम्प्रदाय भेद के सभी सज्जन नागरिक भारतीय है और भारतीयकरण की श्रेणी मे आते है आर्थिक असमानता, धार्मिक विचार सामाजिक ढाचे मे विभिन्नता होते हुए भी समन्वय व सज्जनता एक-विचार —भारतीय ही रहेगा। जब कभी कोई कहता है कि वह भारतीय है, फिर वह विदेश या भारत म कही भी क्यो न बसता हो, उसका सम्बन्ध भौगोलिक सीमाओ से न होकर भारतीय लम्बे गौरवमय इतिहास से होता है जहा आदर्श जाति, अस्पृश्यता व जब महान् आदर्श है।

शिक्षा मे भारतीयकरण की वांछनीय अवधारणा

शिक्षा का भारतीय संस्कृति के अनुरूप इस प्रकार नियोजित किया जाय कि समुचित सामाजिक एव राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की भावना का विकास करे और हमारी आज

1 'नव जागरण' —म दयानन्द (पृ स)
2 डा राधाकृष्णन् 'हमारी विरासत' (, 25)

की आवश्यकताओं को अधिकतम तीन तत्वों पर ध्यान दें—

(अ) शिक्षा को भारतीय संस्कृति के अनुरूप नियोजित किया जाए।

(ब) शिक्षा सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की भावना का विकास करे।

(स) शिक्षा हमारी आज की आवश्यकताओं को अधिकतम सीमा तक पूरी करे।

संस्कृति का अर्थ और भारतीय संस्कृति — 'संस्कृति किसी समुदाय के सम्पूर्ण व्यवहार का एक प्रतिरूप(Pattern) है जो अंशतः भौतिक पर्यावरण (Environment) से अनुकूलित(Conditioned) होता है। यह पर्यावरण प्राकृतिक अथवा मानव निर्मित होता है, परन्तु मुख्यतः यह प्रतिरूप सुनिश्चित विचारधाराओं, प्रवृत्तियों, मूल्यों तथा आदतों द्वारा अनुकूलित होता है। जिसका विकास समूह द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है।"1 डा राधाकृष्णन् ने ऋग्वेद के संदर्भ में कहा है कि—'उस काल से लेकर आज तक, इस देश की संस्कृति हमें मिल-जुलकर समान आदर्शों और उद्देश्यों को प्राप्त करने का उपदेश देते हैं।' डॉ राधाकृष्णन ने हमारी संस्कृति के बारे में लिखा है—"अभय असग अहिंसा- ये तीन गुण भारतीयता के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालते हैं। यदि हम जानना चाहें कि भारतीय संस्कृति की क्या विशेषताएं हैं तो कहा जा सकता है ये तीनों गुण ही भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ हैं।'2 अत भारतीयों द्वारा अर्जित ज्ञान, उनके विश्वास, आदत सामाजिक मूल्य, रीति-रिवाज आदि का अध्ययन ही भारतीय संस्कृति का अध्ययन है। भारतीयों में विभिन्नताओं के कारण भारतीय संस्कृति संश्लिष्ट, सामाजिक एवं समन्वयवादी है।

डॉ रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार—"भारतीय संस्कृति का मूल सिन्धु घाटी की सभ्यता तथा द्रविण सभ्यता में है, मध्य एशिया से आये आर्यों की इस संस्कृति पर गहरी छाप है तत्पश्चात् यह पश्चिम से आने वालों से प्रभावित हुई।

"प नेहरूजी ने भारतीय संस्कृति की उपमा गंगा से दी है। अनेक छोटी-बड़ी नदियाँ उसमें मिलकर उसकी धारा को पुष्ट कर गति को वेगवान बनाती है।"

भारतीय संस्कृति में मुक्ति का विशेष महत्व रहा है। लाला लाजपतराय ने मुक्ति को राष्ट्रीय आदर्श बताते हुए उसकी व्याख्या की है—"हर प्रकार की दासता, अज्ञानता, रोग, निर्धनता और कष्टों से इसी जीवन में अपनी और अपनी संतति की मुक्ति है।' इसी प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा में प्राचीन भारतीय दर्शन और जीवन-मूल्यों का पुन लौटने पर बल दिया। उनके विचार अपने सर्वश्रेष्ठ भाषण' में लिखा

---

1 ब्राऊन, जे एफ, 'एज्यूकेशनल साशियोलॉजी (पृष्ठ 72)

2 डा राधाकृष्णन्, हमारी विरासत („ 30)

है —"अपने देशवासियो मे स्वय अपनी राष्ट्रीय भाषाओ के माध्यम से साहित्य सृजन हो ता एकता एव सगठन भी इसके सम्पर्क से निश्चय ही आजायेगा।" इसी को वे शिक्षा का भारतीयकरण मानने लगे जो वास्तव मे ब्रिटिश शासको की शिक्षा प्रणाली की गम्भीर प्रतिक्रिया थी।

भारतीयकरण हेतु किये गये प्रयास दो कारणो से पूर्वत सफल नही हो सके—

(i) भारत के मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, सिख, जैन सम्प्रदाय के लोगो ने नि शुल्क वेदकालीन शिक्षा की ओर लौटना सहन नही हुआ तथा

(ii) थोडे से हिन्दुओ के अतिरिक्त अधिकाँश भारतीय यह समझ नही पाये कि ज्ञान विज्ञान के वर्तमान युग मे प्राचीन वेद कालीन शिक्षा पद्धति द्वारा आधुनिकता की मांगो की पूर्ति सम्भव नहीं है।

अत भारतीयकरण सदैव समन्वयपूर्ण शिक्षा प्रणाली से ही हो पायगा। विज्ञान आधारित शिल्प विज्ञान के अन्य महत्वपूर्ण परिणाम सामाजिक और सास्कृतिक जीवन पर होते है और उसके कारण ऐसे मूलभूत सामाजिक और सास्कृतिक परिवर्तन आते हैं जिन्हे मोटे तौर पर 'आधुनिकरण' कहा जाता है। क्योकि विज्ञान के विस्फोट', जल्दी जल्दी वाले सामाजिक परिवर्तन, शीघ्र उन्नति की आवश्यकता आदि ऐसे आधारभूत बिंदु है जिन्हे दृष्टि मे रखकर प्राचीन परम्पराओ व सस्कृति के तत्वो के साथ आधुनिक ज्ञान विज्ञान का सयोग से 'भारतीयकरण सम्भव है, जिन्हे सभी सम्प्रदाय व क्षेत्रो के लोगो को मान्य भी हो सकेगा।

भारतीय शिक्षा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

(Historical Perspective of Indian Education)

वैदिक कालीन शिक्षा — जीवन का लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म अर्थ, काम और मोक्ष) को प्राप्ति करना है शिक्षा के उद्देश्य — धार्मिक भावना का विकास, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, सामाजिक कर्त्तव्यो पर बल, सामाजिक कुशलता का विकास, सामाजिक कर्त्तव्यो पर बल, सामाजिक कुशलता का विकास एव सस्कृति का सवर्द्धन।

प्रमुख विशेषताएँ — (i) धर्म का वर्चस्व (ii) सुसगत विकास (iii) प्रकृति सानिध्य (iv) गुरुकुल प्रणाली (v) गुरु–शिष्य सम्बन्ध, गुरु आध्यात्मिक एव बौद्धिक पिता, शिष्य उसकी मानसी सन्तान– गुरु सरक्षक व मार्गदर्शक होता था (vi) व्यक्तिवादी शिक्षा (vii) नि शुल्क शिक्षा (viii) सबके लिए शिक्षा (ix) वशानुक्रम और पर्यावरण (शुद्र के द्विज बनाने मे पर्यावरण का महत्व) (x) शिक्षण विधिया श्रवण मनन ध्यान करना अभ्यास, परिश्रम द्वारा समाधान।

बौद्धकालीन शिक्षा — उस काल म वदिक धम का पतन, बाहरी आडम्बर, पशुहिंसा, वर्ण व्यवस्था कमरणा से ज मना, शूद्रों पर अत्याचार अत भगवान बुद्ध ने सुधार मार्ग बताया बौद्ध धम प्रचारको के लिए। काला तर मे बौद्ध शिक्षा सबके लिए। वदिक शिक्षा का प्रभाव-महत्व स्वीकार लेकिन उद्देश्य वही।

विशेषताएँ — (1) जातिभेद नही–शिक्षा बौद्ध धम प्रवेश पर ही, 'प०वजा' सस्करण द्वारा श्रमण सघ प्रवेश (ii) विद्या समाप्ति पर 'उप सम्पदा' सस्कार– भिक्षु धम प्रचार विशेष स्थिति सघ त्यागकर– गृहस्थाश्रम प्रवेश। (iii) गुरु शिष्य- निकट्वा' वैदिककाल से काम, पवित्रता मधुरता, शिक्षक उपाध्याय, (iv) सघ, विहार का जीवन सुखमय, बिहार महलो की भाति विशाल एव सुन्दर, (v) भोजन– भिक्षा द्वारा, (vi) पाठ्यक्रम धार्मिक साहित्य की प्रधानता, औद्योगिक व अन्य जीवनोपयोगी शिक्षा भी सस्कृत अनि वाय, (vii) स्त्री शिक्षा प्रारम्भ मे उपेक्षित फिर उच्च वर्ग हेतु रहन की व्यवस्था एक ही बिहार मे फिर पृथक (viii) शिक्षा का माध्यम जन भाषा, (ix) शिक्षा मे केन्द्रीय करण– मठ, सघ आदि प्रचारको क प्रशिक्षण हेतु (x) विद्यार्थी जीवन वैदिक काल की तपश्चर्या नही वरन् सुविधाजनक, (xi) एक सघ मे अनेक शिक्षक विषय विशेषज्ञ, (xii) शुल्क किसी न किसी रूप म देय।

मुसलमान युग मे शिक्षा – मुसलमान आक्रमणकारियो ने वदिक बौद्ध शिक्षा केन्द्र नष्ट कर इस्लामी शिक्षा प्रणाली की स्थापना की। इस्लाम धम मे शिक्षा अनि- वाय पवित्र अत शिक्षा हेतु अन्य धर्मादा खाता विद्यालय बनाना मस्जिद के समान) पवित्र– प्रारम्भिक शिक्षा हतु मकतब (मस्जिद के साथ) उच्च-शिक्षा हेतु 'मदरसा'। मदरसो के लिए छात्रावास जीवन सुखमय, शिक्षा–सामग्री, भोजन वस्त्र, जेब खच आदि क लिए दान मे प्राप्त जागीरो की आय।

प्रमुख बिन्दु —(i व्याख्यान पद्धति, (ii) कठोर शारीरिक दण्ड, (iii) पर्दा प्रथा क कारण स्त्री शिक्षा की समाप्ति सम्पन्न घरा व्यक्तिगत रूप से घर पर ही स्त्रियो के लिए शिक्षा की व्यवस्था (iv) शिल्पो की प्रशिक्षण घर या कारखाने म (v) शिक्षक का सम्मान, शिष्य विनयी परन्तु प्राचीन आदर्शो का लोप (vi शिक्षा का उद्देश्य राज्य मे पद, मान व नौकरी प्राप्त करना ही था।

मुसलमान शासन मे हिन्दू शिक्षा —निजन वनो एव ग्रामा म गुरुओ के आश्रम चलते रह जहाँ वेद, पुराण स्मृति उपनिषद् दशन आदि का अध्यापन होता था जिसका माध्यम जन-भाषा। हिन्दी का विकास भी इस काल म हुआ।

अ ग्रेजी शासन मे शिक्षा —वतमान भारतीय शिक्षा की नीव 15 वी शताब्दी के अन्तिम भाग म है जब ईसाई धम प्रचारको ने धर्म प्रचार हेतु भारतीय भाषाओ का

अध्ययन किया, बाइबल का अनुवाद किया तथा प्राथमिक विद्यालय खोलें। 1835 मे वायसराय के कानूनी सलाहकार मेकाले ने अ ग्रेजी शिक्षा की स्थापना इस उद्देश्य से की कि जिससे भारत के निवासी रग, रक्त मे भारतीय हो, पर तु रुचि नीति का अनुसरण पूर्णतया ब्रिटिश शासन काल म होता रहा।

विभिन्न आयोगो के सुझावो पर भारतीय भाषाओ एव शिक्षा पद्धति को भी स्थान मिला तथा शार्ति निकेतन, गुरुकुल कांगडी, गुजरात विद्यापीठ काशी विद्यापीठ जैसी सस्थाये स्थापित हुई। इन सस्थाओ का दृष्टिकोण मेकाले के विपरीत सच्चे भारतीय,जो राजभक्त एव देशभक्त हो तैयार करना था जो कालान्तर जब वे व्यवहारिक जीवन म प्रवेश कर ले तो भारत की भारतीय के मनुकूल आचरण करतेहुए सभी भारतीयकरण' हो सके।

शिक्षा का 'भारतीयकरण' हेतु भारतीय सस्थाओ के प्रयास

(Efforts to Indianisation by Education of Indian Institutions)

शिक्षा के भारतीयकरण' हेतु तीन प्रवृत्तिया सक्रिय रूप से कायरत थी —

(1) प्राचीन भारतीय शिक्षा को पुनर्जीवित करने का प्रयास जिसके लिए महर्षि दयानन्द द्वारा गुरुकुल व्यवस्था का प्रादु भार ।

(2) शिक्षा का आधुनिकीकरण करने का प्रयास राजा राममोहनराय, दी एग्लो–हि दू स्कल विश्व धम के सिद्धान्त पश्चिमी विज्ञान, दशन एव साहित्य का अध्ययन।

(3) समन्वित प्रयास–डी ए वी कॉलेज, शान्ति निकेतन, अरवि द आश्रम, बेसिक शिक्षा आदि का क्रान्तिकारी प्रयास।

प्रमुख शिक्षाविद् व शिक्षण सस्थाऐ जिन्होने शिक्षा का भारतीयकरण'हेतु प्रयास किया उनके बारे मे सक्षिप्त विवेचन व देन प्रस्तुत कर रहे है। जि हे हम दो भागो मे विभक्त भी कर सकते है।

(अ) स्वतन्त्रता से पूव किये गये प्रयास (ब) स्वतन्त्र भारत व भारतीयकरण

(1) महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार शिक्षा का प्रयास — "जिससे विद्या सभ्यता धर्मात्मा जिते द्रियता की बढोतरी हो और अविद्या दोष छूटे उसको शिक्षा कहते हैं। वे विद्या का आधार वेद मानते थे जिसमे सभी तरह का ज्ञान विद्यमान है। उनके अनुसार 'माता–पिता, आचाय और अतिथि का सत्कार वाछित है। वे अध्यापका से आशा करते थे कि जो अध्यापक दुष्टाचारी है, वे शिक्षा देने योग्य नही है। वे बालिकाओ की शिक्षा के हामी थे। पाचवे या आठवें वष से आगे कोई अपने लडके या लडकियो को घर मे न रखे– पाठशाला भेजे।[1] डा चौबे ने अपनी पुस्तक रिसे ट एज्यूकेशनल फिलोसोफी इन इण्डिया मे दिये हैं[2]

1 स्वामी दयान द के सर्वश्रेष्ठ भाषण पृ 122 123

2 चौबे, एस पी, रिसे ट एज्यूकेशनल फिलोसोफी इन इण्डिया' „ 41–42

(1) गरीब अमीर, राजा व रक, ऊँचे नीचे ब्राह्मण व तथाकथित नीची जात के सभी समान रूप से अध्ययन करने के अधिकारी है।

(2) प्रजातान्त्रिक समाजवाद के लिए आवश्यक है कि जाति, सम्प्रदाय व लिंग भेद के शिक्षा की सुविधाए सभी को सरकार द्वारा प्रदान करने की व्यवस्था हो।

(3) वह यह नही चाहते थे कि अध्ययन-अध्यापन का माध्यम विदेशी भाषा हो।

(4) अपनी भाषा सास्कृतिक विरासत व राष्ट्रीय प्रगति का राष्ट्रीय भाषा म अध्ययन के पक्ष मे थे।

(5) यदि ज्ञान विदेशो से प्राप्त करना है तो प्राप्त किया जाय।

(6) जिज्ञासु एव शिक्षा के पात्र हेतु ही शिक्षा के द्वार खुले।

(7) विचार-व्यवहार शिक्षा जीवन म एकरूपता लाना।

(8) छात्रो को आदश ब्रह्मचाय सादगी आज्ञापालननियमित जीवन जीने की शिक्षा देना

(9) शिक्षा म स्वाध्याय चिन्तन, तक मजन, व्याख्यान उदाहरण तथा अनुभव पर बल देना।

(10) अध्यापक मे पडित्व अनुभव त्याग मा जैसा स्नेह, नि स्पृहता आदि गुण हो।

लाला लाजपत राय के अनुसार 1 – राष्ट्रीय शिक्षा के लिए चलाई गई योजनाओ मे स डी ए वी कॉलेज व स्कूल ही ऐसी योजना है जिसमे आर्थिक समस्या पर भी ध्यान दिया गया तथा स्वदेशी का विचार समाविष्ट किया—

(i) शिक्षितो और अशिक्षितो के मध्य की खाई को दूर किया जाय।

(ii) कलाओ और उद्योग मे तकनीकी शिक्षा की आवश्यकता, जिससे भावी नागरिक सरकारी नौकरी क मोहताज न रहे।

(iii) यह योजना सरकारी सरक्षण से दूर रहे।

डा एस पी चौबे के अनुसार — कालान्तर म उपरोक्त बिन्दुओ पर ध्यान नही दिया गया और उद्देश्य पूर्ति— भारतीयकरण की धुमिल हो गई यद्यपि इन सस्थाओ म सुबह की प्राथना, धार्मिक व नैतिक शिक्षा का अध्ययन गुरुकुल मे प्रात काल से पूव ही छात्रो का कायरत होना, कुछ हद तक दयानन्द के विचारो से मेल खाते है लकिन वास्तव म स्वामीजी की आशा की पूर्ति नही हो रही है।2

(2) महर्षि रवीन्द्र नाथ ठाकुर के अनुसार भारतीयकरण हेतु प्रयास — रवीन्द्रनाथ ठाकुर न अपनी शिक्षा-प्रणाली के माध्यम से भारतीयकरण हेतु प्रयास

---

1 लाजपतराय, प्रोबलम आफ नेशनल एज्यूकेशन पृ 3

2 दयानन्द एग्लो वदिक कॉलेज डी ए वी कॉलेज

परोक्ष और अपरोक्ष रूप से किया । आज शिक्षा ही देश मे परिवर्तन हेतु प्रभावशाली साधन है अत उनके शिक्षा सम्बन्धी विचार—

(1) बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राकृतिक वातावरण मिले, आडम्बर नही ।

(2) व्यक्ति को महान् समझते हुए व्यक्तित्व का विकास करने हेतु 'बाल–केन्द्रित' शिक्षा व्यवस्था पर जोर दिया।

(3) रूसो की भांति पाठ्य–पुस्तको की आवश्यकता को नही समझा गया ।

(4) प्रकृति द्वारा शिक्षा । (5) शिक्षा सगठन प्राकृतिक वातावरण मे,

(6) शिक्षा के उद्देश्य – पूर्व पश्चिम मे एकता की स्थापना, प्रतिभा का विकास, विश्व बन्धुत्व के भाव, सत्य की एकता का ज्ञान, देश की आवश्यकता के अनुसार शैक्षिक सुधार –

(7) शिक्षा का माध्यम राष्ट्र भाषा हो ।

(8) शिक्षा म आदान–प्रदान की प्रक्रिया मे पारस्परिक सम्मान भाव हो,

(9) समाज शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र मे शिक्षा का प्रसार हो ।

निर्विवाद रूपसे श्री ठाकुर की शिक्षा व्यवस्था भारतीयकरण ही नही अन्तर्राष्ट्रीयता' की ओर झुकाव रखती है लेकिन इनकी विचारधारा के आधार पर शिक्षण सस्थाओ द्वारा व्यवहारिक रूप से प्रचार व प्रसार नही हो पाया है।

(3) गाधी की बुनियादी शिक्षा द्वारा भारतीयकरण' का प्रयास –

अग्रेजो द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली म विदेशी तत्वों की प्रमुखता को लिए हुए थी जिसमे भारतीय दर्शन सस्कृति व जीवन प्रणाली से ओत–प्रोत नही थी । गाधीजी के विचारो मे वह पूर्णतया अभारतीय और अस्वाभाविक थी । सन् 1914 म वे भारत लौटने के उपरान्त सर्व प्रथम शान्तिनिकेतन तदुपरान्त साबरमती के तट पर रह कर शिक्षा सम्बन्धी प्रयोग करते रहे और इस निष्कर्ष पर पहुचे कि भारतीयो के लिए शिक्षा ऐसी हो जिसमे—(1) किसी उद्योग को केन्द्र बनाकर दी जाय, (2) शिक्षा ग्रहण करते वक्त छात्र अपना व्यय स्वयं निकाल सके (3) ग्रामोद्योग से सम्बन्धित हो । गुजरात विद्यापीठ मे इसे प्रारम्भ की । उनके विचार थे कि भारत निर्धन व किसानो का देश है । नि शुल्क, स्वावलम्बी व उद्योग सहित विद्या प्रारम्भ की । उद्योग पर जोर देने का कारण बुद्धि वर्ग और श्रमिक वर्ग नगर निवासी औरग्रामवासी मिल–जुलकर म समाज मे समानता आयेगी ।

वे अग्रेजो की शिक्षा से बुनियादी शिक्षा पर जोर देने का कारण समझते थे कि– (1) देश की आवश्यकताओ के प्रतिकूल है, (2) अग्रेजो को शिक्षा मुठ्ठी भर लोगो के लिए है, (3) इस शिक्षा से मानसिक कार्य को तैयारी हो जाती है, उत्पादन कार्य नही (4) सस्कृति को भूलकर विदेशी तड़क भड़क सीखने

है, (5) गावो से भारतीय जीवन विच्छेद होता जा रहा है। अतः गांधाजी ने देश की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक दृष्टि का ध्यान मे रखकर जो विभिन्न प्रकार की समस्याओ के समाधान हेतु बुनियादी शिक्षा को प्रदान की। इसमे मूल तत्व वतमान भारतीय परिस्थितियो के अनुकूल है जैसे — (1) यह अहिंसा के सिद्धातो पर आधारित है, (2) इसमे हाथ से काम करने को महत्व दिया है, (3) हस्तकौशल के द्वारा मस्तिष्क के विकास पर जोर, (4) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रखी गई है, (5) पाठ्यक्रम ऊपर से न थोपकर स्थानीय परिस्थितियो के आधार पर अध्यापकों द्वारा निर्मित, (6) बाहरी परीक्षा को स्थान नही (7) उद्योग ऐसे छाटे जाते है जो उत्पादक भी हो (8) विषय अलग अलग नही पढाये जाते बल्कि एक दूसरे से सम्बन्धित कर दिये जाते हैं।

देश मे साम्प्रदायिकता क्षेत्रीयता, धर्म, सामाजिक व आर्थिक असमानता भारत को एक सगठित देश बनने देने म बाधा है लेकिन गांधीजी की यह बुनियादी शिक्षा इनके समाधान हेतु अमोघ मन्त्र के रूप मे है। लेकिन प्रयास असफल रहा-सरकार ने सोचा औद्योगीकरण के माध्यम से व्यवसायहीनता की स्थिति समाप्त हो जायगी अतः यह व्यय है।

(4) महर्षि अरविन्द द्वारा भारतीयकरण' के प्रयास - अरविन्द के अनुसार मनुष्य क्षणिक एव परिवतनशील प्राणी है—मनुष्य से कई सीढियाँ ऊपर यह मानवता (Supermanhood) का स्थान है जो दिव्य (Divine) है, यही हमारा गन्तव्य (शिक्षा का उद्देश्य) है।

' केवल वही शिक्षा सच्ची और वास्तविक है जो व्यक्ति की अन्तर्निहित (Inner) सभी शक्तियो का इस प्रकार विकास करती है कि वह उससे पूर्णतया लाभान्वित हो सके। मानव जीवन को सफल बनाने मे यह शिक्षा उसकी सहायता करती है। 1

"सही शिक्षा यान्त्रिक न होकर दिमाग की शक्ति जो मानव मात्र के लिए उपयोगी हो जो राष्ट्र के लिए उपयोगी हो। शिक्षा का काम है कि वह बालक को स्वय अपने प्रयत्न से शिक्षा प्राप्त करने तथा अपनी मानसिक, आध्यात्मिक, सृजनात्मक शक्तियो के विकसित करने म सहायता प्रदान करे।"2

आश्रम मे रूचि के अनुरूप कार्य करने को स्वतन्त्रता निःस्वार्थ सेवा भावना

---

1 श्री अरविन्द 'ए सिस्टम आफ नेशन' चौबे, एस पी, रिसेंट एजुकेशनल फिलोसोफी इन इण्डिया पृ /99)

2 वही वही प /102)

प्राचीन ऋषियो के आश्रमो की विशेषताओ के साथ-साथ आधुनिक तकनीकी सुविधाएँ उपलब्ध है। आश्रम मे परीक्षा-प्रणाली न होकर अध्यापको द्वारा परख के आधार पर कक्षोन्नति की व्यवस्था है। अध्यापक भी समर्पित भाव से बगर वेतन प्राप्त कर कायरत है। 1950 के पश्चात् तो "श्री अरविन्द अन्तर राष्ट्रीय विश्व-विद्यालय केन्द्र के रुप मे हो गया है जहाँ भारतीय तथा पाश्चात्य दशन गणित, अन्तराष्ट्रीय, सम्बन्ध समाजशास्त्र आदि विषय पढ़ाए जाते है। अनुसधान की सुविधा भी है।

वे प्रत्येक बालक को राष्ट्र के इतिहास व राष्ट्र की सस्कृति के बारे मे ज्ञान प्रदान करने के पक्षधारी थे। इस प्रकार देश की स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीयो के लिए 'भारतीय शिक्षा' प्रदान कर, देश म 'भारतीयकरण' के लिए प्रभावशाली काय किया।

इसके साथ ही साथ काशी विद्यापीठ गुजरात विद्यापीठ, वनस्थली, हिन्दू विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया दिल्ली गुरुकुल, आदि ने देश की स्वतन्त्रता से पूर्व 'भारतीयकरण के लिए सफल व असफल प्रयास किया है।

स्वतन्त्रता से पूर्व किये गये प्रयास तथा इनकी असफलता के कारण —

देश की महान् विभूतियो ने स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीयकरण'हेतु विभिन्न सस्थाओ को जन्म देकर शिक्षा-दर्शन को क्रियान्वित रूप देन का प्रयास किया, लेकिन निम्न-लिखित कारण है जिससे वे असफल रहे —

(1) प्राचीन मूल्यो मे आस्था का अभाव — 'भारत स्वतन्त्र होते ही भारतीय साहित्य सस्कृति और भाषा के प्रति रूचि गायब हो गई।'(जे पी नायक)
(2) अग्रेजो का शासन मैकाले की शिक्षा प्रणाली।
(3) धर्म निरपेक्षता की नीति सबको प्रसन्न रखन के लिए अग्रेजो ने यह नीति अप-नाई- प्राचीन हिन्दू ज्ञान एव दशन के स्थान पर पाश्चात्य ज्ञान को प्रमुखता दी।
(4) पाश्चात्य सस्कृति का मोह-जाल भारतीय, पश्चिम की भौतिक उपलब्धियो की चकाचौंध से प्रभावित होकर भारत के अध्यात्म धर्म एव सस्कृति से परे हो गए।
(5) भारतीयकरण के व्यापक अर्थ का अभाव।

(ज) स्वतन्त्र भारत मे 'भारतीयकरण' की शिक्षा हेतु प्रयास —

महात्मा गाधी ने देश की स्वतन्त्रता मे पूर्व यह घोषणा की थी कि स्वतन्त्रता के पश्चात्-अग्रेजी शिक्षा के स्थान पर राष्ट्रीय शिक्षा सस्थाओ की शिक्षा को मान्यता दी जायेगी, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। शिक्षा का लोकतन्त्रीकरण स्वा-धीन भारत का एक महत्वपूर्ण निश्चय है जिसके अन्तर्गत दस वर्षों म 6 से 14

वर्ष की आयु के सभी बालकों के लिए अनिवार्य नि शुल्क प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान किया। यद्यपि यह शत प्रतिशत पूर्ण नही हुआ है फिर भी अच्छी प्रगति हुई। राष्ट्रीय चेतना द्वारा हम सभी लिंग, जाति व सम्प्रदाय के लोगों मे भारतीयकरण' की भावना से ओत प्रोत करने म सफल हो सकत हैं। स्वतन्त्रता के उपरान्त निरन्तर इसके लिए सरकार सचेत है और समय समय पर नियुक्त आयोगो ने अपने सुझाव प्रस्तुत किए है जस — (1) कोठारी आयोग (2) राष्ट्रीय शिक्षा नीति, (1968 व 1979)

कोठारी आयोग — 'शिक्षा जो विज्ञान पर आधारित हो, जा भारतीय सस्कृति और मूल्यो के अनुरूप हो, राष्ट्र की उन्नति, सुरक्षा और कल्याण की बुनियाद और साधन पदा कर सकती हो " आयोग शिक्षा को राष्ट्रीय विकास की कतिपय समस्याए जिसका समाधान शिक्षा का दायित्व है निम्न प्रकार हैं —

(1) अन्न मे आत्मनिभरता।
(2) आर्थिक विकास तथा व्यवसायहीनता उन्मूलन।
(3) सामाजिक राष्ट्रीय एकता का विकास।
(4) प्रजातन्त्र की मा यताओ मे विश्वास करने हुतु विकास।
(5) शिक्षा मे क्रांतिकारी परिवतन–आधुनिकरण की प्रक्रिया का सुचारू रूप।
(6) शिक्षा को भारतीय जीवन, आवश्यकताओं व आकाक्षाओ से जोडना।
(7) सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो का विकास।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968 तथा 1979)

1968 के कार्यक्रम का सुझाव

(1) शिक्षा को लोगो के जीवन के निकट लाया जाये।
(2) शिक्षा को जीवन के निकट लाने के लिए निम्न कायक्रम अपनाया —
   (क) शिक्षा प्रणाली का रूपान्तरण
   (ख) शक्षिक अवसरो का विस्तार।
   (ग) शिक्षा के सभी स्तरो पर गुणात्मक सुधार।
   (घ) विज्ञान एव शल्य विज्ञान पर बल।
   (ङ) नैतिक और सामाजिक मूल्यो का निर्माण।

इसके अनुसार 10+2+3 की योजना की घोषणा हुई परन्तु कांग्रेस सरकार के के पतन के बाद जनता सरकार ने 1979 मे नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की जिसम कोठारी आयोग व राष्ट्रीय शिक्षा नीति म सामान्य सशोधन के साथ भारतीय

शिक्षा जगत का प्रदान की गई जिसके मुख्य बिन्दु निम्न प्रकार है।

(1) नि शुल्क और अनिवार्य शिक्षा।

(2) कामन स्कूल सिस्टम अर्थात् सामान्य विद्यालय प्रणाली जिसमे धनी व निर्धन का भेद न हो।

(3) प्रौढ़ शिक्षा

(4) माध्यमिक शिक्षा का गुणात्मक उन्नयन सामाजिक उपयोगी उत्पादन कार्य (SUPW) के द्वारा व्यवसायीकरण।

(5) उच्च शिक्षा मे प्रवेश चयनात्मक, स्तर सुधार, सामान्य पदो के लिए उपाधि अनिवार्य न हो।

(6) शिक्षा सरचना माध्यमिक शिक्षा 12 वर्षीय, प्रथम उपाधि 3 वर्षीय।

(7) प्राविधिक शिक्षा —कुशल राष्ट्रीय जन शक्ति की सूचना व्यवस्था ग्रामीण क्षत्र का विशेष अध्ययन।

(8) कृषि शिक्षा—औपचारिक, अनऔपचारिक विधि से प्रसार हो, कृषि विश्वविद्यालय मे शोध कार्य हो, कृषि विज्ञान केन्द्रो का सचालन हो।

(9) आयुर्विज्ञान (Medical) शिक्षा - का आधार चिकित्सालय तक सीमित न रहकर देश की स्वास्थ्य रक्षा होना चाहिए। प्राकृतिक यूनानी, होमियोपथी आयुर्वेदिक आदि चिकित्सा पद्धतियो से पारस्परिक सहयोग हितकर होगा।

(10) सस्कृति—पारस्परिक एव समकालीन सस्कृति के तत्वो का शिक्षा द्वारा सश्लेषण हो

(11) शारीरिक शिक्षा—सामान्य शिक्षा का एक अग हो। प्रत्येक स्तर पर राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय कौशल प्राप्त करने की प्रेरणा एव व्यवस्था हो। जो प्रत्येक विद्यार्थी हेतु अनिवार्य हो।

(12) शिक्षा माध्यम —प्राथमिक स्तर मातृभाषा, अन्य स्तर क्षेत्रीय भाषा।

(13) त्रिभाषा-सूत्र —माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी के साथ अहिन्दी भाषी क्षेत्रो म हिन्दी तथा हिन्दी भाषी क्षेत्रों मे आधुनिक भारतीय भाषा (विशेषत दक्षिण भारत की) का अध्ययन।

(14) भारतीय भाषाओ का विकास—भाषा शिक्षण की विधियो का, सस्कृत अध्ययन का, सम्पर्क भाषा हिन्दी का व अन्य शास्त्रीय भाषाओं का विकास व प्रसार।

(15) परीक्षा प्रणाली मे सुधार—वस्तु परक एव विश्वसनीय बनाएँ, पाठ सामग्री में क्रियाओ का महत्व, आवधिक परीक्षा का महत्व; विश्वविद्यालय उपाधि तक तीन से अधिक सावजनिक परीक्षा न हो।

(16) पाठय पुस्तको मे गुणात्मक सुधार तथा क्षेत्रीय भाषा म पुस्तकें तैयार करवाना ।

(17) शिक्षा प्राप्त करने के अवसर —लडकियाँ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति, भूमिहीन, श्रमिक, पिछड़े वर्ग नगरा क निम्न श्रेत्रा के लिए विशेष अवसर प्रदान करें ।

(18) अध्यापको का सवाकालीन प्रशिक्षण अधिक हो, शोध, प्रयोग के अवसर मिलें।

(19) समाज का सम्भाग-स्थानीय समाज को विद्यालय स जोडें ।

(20) स्वच्छिक सगठनो का सहयोग प्राप्त करें ।

(21) निवेश – योजना के अनुसार शालाओ म बढ़ने वाले व्यय का शिक्षा शुल्क जो समथ हो उनसे ही ले तथा समाज स सहायता प्राप्त कर पूरा किया जाए ।

(22) समीक्षा—पाँच पाँच वर्षों क पश्चात् शिक्षा की राष्ट्रीय नीति क क्रियान्वयन और परिणाम की समीक्षा कर अपेक्षित परिवतन किए जाय ।

भारत के लिए सास्कृतिक नीति (1972)

जून 1972 मे शिक्षा मत्रालय की सहायता से राष्ट्रीय अध्ययन सस्थान, शिमला म एक परिसवाद आयोजित किया गया था । विषय था—'भारत क लिए एक सास्कृतिक नीति की दिशा मे ।'[1] इस परिसवाद म श्री वी वी जॉन, डॉ सुरश शुक्ला, श्री रजनी कोठारी, डॉ नामवर सिह डा सुरेश अवस्थी, डॉ विजयदेव नारायण साही जैसे अनेक शिक्षाविदो और विद्वानो ने भी भाग लिया । अनेक विवादा से जूझने बाद लगभग 1500 शब्दो का अग्रेजी में जो वक्तव्य जारी किया गया उसम यह स्वीकार किया गया कि एक सांस्कृतिक नीति का मूल उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह जन मन म जनतान्त्रिक भावना पदा करे । उसका उद्देश्य आत्म निभरता समतावाद राष्ट्रीय एकता और ऐसे मानवतावाद का विकास करना होना चाहिए जो आधुनिक ज्ञान और तकनीकी तथा हमारी परम्परा के सशक्त तत्वो के समन्वय पर आधारित हो ।

वतमान शिक्षा को भारत की सस्कृति स जोडन के लिए जो नीति स्वीकार की गई वह सक्षेप म नीचे दी जा रही है —

1 शिक्षा क ढाचे मे इस तरह सुधार किया जाना चाहिए ताकि यथा-स्थिति के बने रहने की जगह पर सामाजिक व्यवस्था म आमूल परिवतन हो । विशिष्ट वर्गों का शिक्षित करन की अवधारणा को इसलिए तिरस्कृत कर देना चाहिए क्योंकि इसकी वजह से निरन्तर असमानता बढ़ती है और उस प्रक्रिया मे अनिवार्यो के बहिर्गमन की प्रवृत्ति उभरती है ।

---

1 विस्तार के लिए देखिए, दिनमान, दिल्ली, 2 जुलाई, 1972, पष्ठ 17, 19-21 तथा 9 जुलाई, 1972, पृष्ठ 13–14 ।

2 शिक्षा का नया स्वरूप निश्चय ही ऐसा होना चाहिए जो साम्प्रदायिक और विभाजक शक्तियों से लोहा ले सके। इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए निरक्षरता का विनाश करना, तथा शिक्षण संस्थाओ का राष्ट्रीयकरण करना विशेषाधिकार पर आधारित शिक्षण संस्थाओ और पब्लिक स्कूलों की समाप्ति करना आवश्यक है। ऐसी स्थितिया लाने की भी आवश्यकता है जो लोगो मे शिक्षा व्यवस्था मे भागीदार बनने की प्रवृत्ति को विकसित कर सके। उचित मूल्य पर भारत सम्बन्धी साधक सामग्री वाली पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

3 भाषायी अल्पसंख्यको के हितो को प्रभावकारी संरक्षण देते हुए हर स्तर पर सम्बद्ध राज्यो की भाषा को शिक्षा माध्यम बनाना चाहिए। अनुसूचित पिछडी जातियो की भाषा के विकास के लिए उचित कदम उठाया जाना चाहिए।

4 शिक्षा के क्षेत्र मे भारतीय स्त्री को विशेष कठिनाइयो की स्थिति मे काम करना पडता है। शहरी, ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रो मे विभिन्न सामाजिक आर्थिक स्तरो पर इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। पर एक समतावादी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण म उन्ह सावजनिक और पारिवारिक दोनो क्षत्रो मे एक नाजुक भूमिका निभानी पडेगी। शिक्षा के नए प्रारूप मे यह क्षमता होनी चाहिए कि जटिलताओ स भरे मुद्दो के साथ पूरा न्याय कर सके।

5 हरिजनों, अनुसूचित जातियो, गदी बस्ती मे रहने वाला, भूमिहीन मजदूरो जसे सुविधाहीन वग के लोगो को शिक्षा देने की हर कोशिश करनी चाहिए। इसके लिए शिक्षा के मद मे बडी राशि की व्यवस्था करने की आवश्यकता होगी जिसम प्रारम्भिक, माध्यमिक और तकनीकी शिक्षा पर उच्चतर शिक्षा की अपेक्षा अधिक बल देना होगा। अब तक उच्चतर शिक्षा को उसके अनुपात से कहीं अधिक हिस्सा मिलता रहा है। शिक्षा मे विभिन्न स्तरो पर समाज की दृष्टि से उपयोगी कार्यो को मुख्य स्थान मिलना चाहिए, ताकि बुद्धिजीवियो और मजदूर वग के बीच के अन्तर को खत्म किया जा सके। जिस समाज मे युवा वग के बहुसख्यक छात्र स्कूल के अहाते से बाहर रहने को विवश हों, वहा जरूरी है कि सुविधाहीन या अपेक्षाकृत कम सुविधा प्राप्त लोगो के लिए मनोरंजन के साधन उपलब्ध किए जाएँ। उनके लिए शहरी और ग्रामीण दोनो क्षेत्रो मे सामुदायिक क्रीडा क्षेत्रों की आवश्यकता है। इस तरह की सुविधाओं के रूप म जनता के लिए बडे पैमाने पर युवा केन्द्र खोले जाने की आवश्यकता है। खेल कूद न केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है वरन् अन्तर-क्षेत्रीय स्तर पर सम्पर्क को अधिक बढ़ाने के लिए भी। अत राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से भी इसका अधिक महत्व है।

शिक्षा का भारतीयकरण कैसे किया जाए—इस विषय पर विद्वानो मे अभी सहमति नही है। इसलिए अभी इस विषय पर कोई निश्चित बात कहने से पूर्व विद्वानो के विचारो का सर्वेक्षण करने की आवश्यकता है। इस विषय ने विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया है। यह एक शुभ लक्षण है।

'भारतीयकरण' के राष्ट्रीय लक्ष्य तथा उनकी चुनौतियो के समाधान से

देश की स्वतन्त्रता के उपरान्त प्रजातन्त्र प्रणाली को सफल बनाने हेतु व्यक्ति का महत्व तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय प्रदान करना समाज का उत्तरदायित्व है। धार्मिक सहिष्णुता का विकास करते हुए जीवन स्तर सुधारने का सफल प्रयास करना चाहिए। समाजवादी व्यवस्था की जडे गहरी करते हुए भारतीयों को एकता के सूत्र मे बाधना आदि प्रमुख लक्ष्य है ताकि देश मे सौहार्दपूर्ण वातावरण बन सके।

लेकिन दुर्भाग्य है कि हम अपने लक्ष्यो को प्राप्त करने मे कई विकट बाधाओ का सामना करते हैं जैसे आबादी का विस्फोट, राष्ट्र मे जाति, सम्प्रदाय व क्षेत्र के आधार पर हिंसा वृत्ति जिसका पजाब, असम व गुजरात उदाहरण है। राष्ट्रीय-चरित्र गिरता जा रहा है तो देश मे नेतृत्व प्रभावशाली नही जो जनसाधारण मे लोकप्रिय हो। विश्व मे शक्ति का ध्रुवीकरण तो दूसरी तरफ पडोसी देश पाकिस्तान, चीन आदि से बिगडे हुए सम्बन्ध। इन सभी चुनौतियो का सामना करते हुए देश मे भारतीयकरण का प्रशिक्षण देना वांछित है।

शिक्षाविद जे पी नायक ने राष्ट्रीय लक्ष्य, को प्राप्त करने हेतु शिक्षा व्यवस्था तथा उसकी प्रगति मे आने वाली बाधाओ को दृष्टि मे रखते हुए कार्यक्रम दिया है —[1]

(1) शिक्षा मे प्रजातन्त्र का समावेश —

(i) ज्ञान तथा सामाजिक शिक्षा द्वारा निरक्षरता विनाश।

(ii) अनिवार्य तथा मुफ्त शिक्षा।

(iii) छात्रो मे सहिष्णुता आत्म सयम, अपनी राय देना और दूसरो की राय धर्मपूर्ण सुनना, उचित राय का स्वीकार करना आदि गुणो को विकसित करना।

(iv) शैक्षिक प्रशासन का विकेन्द्रीकरण।

(v) छात्रो को प्रजातन्त्र की विचारधारा का ज्ञान देना और प्रजातान्त्रिक जीवन का अभ्यास।

(2) धर्म निरपेक्षता का समावेश —

(i) धर्म का व्यापक अर्थ समझा जाय धर्म का अर्थ 'धारण करना' अर्थात् मनुष्य को

1 जे पी नायक – 'एज्यूकेशनल प्लानिंग इन इण्डिया" पाठ 6,
"ए नेशनल सिस्टम आफ एज्यूकेशन"

(ii) हर धर्मावलम्बी छात्र को अपने विद्यालय मे उसके धर्म की शिक्षा देने की छूट देना परन्तु धर्मावलम्बी छात्र को वह शिक्षा पाने के लिए विवश न करना।

(iii) हर धर्मावलम्बी छात्र को दूसरे धर्म की उत्तम बातो का ज्ञान कराना।

(iv) श्री प्रकाश समिति (1960) के जो धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा पर विचार करने के लिए बनी थी सुझावो के अनुसार धर्म से उपासना या कर्मकाण्ड को छोडकर शिक्षा के लिए नैतिकता की शिक्षा को स्वीकार करना।

(v) धर्म निरपेक्षता का अर्थ अधार्मिकता नही है जैसा कि आज समझा जाता है और जिसके कारण आम जनता के मन से धर्म की भावना समाप्त होती जारही है।

(3) शिक्षा द्वारा देश के आर्थिक विकास कार्यक्रम —

(i) आम छात्रो मे श्रम तथा हाथ के काम के लिए आदर का भाव जगाना।

(ii) कृषि तथा उद्योग विकास के लिए विज्ञान तथा प्रविधि की उत्तम शिक्षा देना।

(iii) शिक्षा द्वारा ऐसी अभिव्यक्ति जगाना जिससे युवा जन अधिक उत्पादन, अधिक श्रम करने तथा मितव्ययी बनने के आदि बन।

(iv) जनसंख्या शिक्षा की व्यवस्था जिसके द्वारा परिवार नियोजन सफल हो।

(4) विज्ञान तथा प्रविधि की शिक्षा —

(i) छात्रो म वैज्ञानिक अभिवृत्ति पैदा करना जिससे वे तर्क पूर्वक और चिन्तन द्वारा तथ्यो को सत्यासत्य निरूपण द्वारा स्वीकार करे।

(ii) प्रतिभाशाली छात्रों का चयन और उत्तम विज्ञान शि ा की व्यवस्था परन्तु विज्ञान के साथ नैतिक मूल्यो का संयोग करना।

(5) सांस्कृतिक पुनरूत्थान के लिए शिक्षा —

(i) शिक्षा के द्वारा प्राचीन भारतीय मू ्यो की रक्षा की जाय। ग्राह्य मूल्यो को ही स्वीकार करना।

(ii) एक ऐसे बुद्धिजीवी वर्ग को तैयार करना जो आस्थावान हो और जो मानविकी तथा विज्ञान विषयों का सन्तुलित ज्ञान रख सके। उसम भारतीयता के प्रति प्रेम तथा श्रद्धा हो।

(iii) आम जनता और बुद्धिजीवी वर्ग के बीच सन्तुलित सम्बन्ध कायम रखना।

(6) राष्ट्रीय एकता और शिक्षा —

(i) शिक्षा द्वारा आम जनता मे भारत के प्रति प्रेम उत्पन्न करना।

(ii) समस्त देशवासियो के लिए एक समान आर्थिक विकास के द्वार खोलना।

(iii) एक ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग तैयार करना जो सारे भारत म फैला रहे और भाषा,

विचार, कार्य क्षमता तथा जीवन-पद्धति मे समान रहे।

(iv) राष्ट्रीय संस्थाएँ एक ही पैटन पर चलायी जायें।

(7) समाजवाद और शिक्षा —

(i) शिक्षा द्वारा जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण, क्षेत्र और लिंग की विभिन्नता से परे हर नागरिक की क्षमताओं का पूर्ण विकास किया जाय।

(ii) अनिवार्य तथा मुफ्त शिक्षा की व्यवस्था।

(iii) शिक्षा के समान अवसर का सूत्र अपनाये।

(8) बढ़िया किस्म की शिक्षा —(i) प्रतिभाशाली छात्रों की खोज, चयन तथा उनके लिए सुविधाएँ जुटाना (ii) शिक्षा के पाठ्यक्रम म अधिक गहराई लाना। (iii) शिक्षा-काल को बढाना। (iv) निर्धारित समय मे अधिक ज्ञान देना।

शिक्षाविद् श्री नायक के द्वारा शिक्षा-प्रणाली को राष्ट्रीय स्वरूप देने का प्रयास किया गया है। ज्ञान के विस्फोट हान और उसे प्राप्त करने के विभिन्न रूप है। एक देश की अच्छी प्रणाली का दूसरा देश अपनाता है, उसी प्रकार हम भी उसे विदेशी प्रणाली जो भारतीय भूमि के अनुकूल है उसे अपनाने मे कोई असुविधा नही होनी चाहिए यही भारतीयकरण का सही प्रयास है।

स्वतन्त्र भारत की शिक्षा मे भारतीयकरण की बाधाएँ

शिक्षा के माध्यम से बालक का मानसिक शारीरिक सामाजिक आर्थिक विकास कर देश के लिए उपयोगी नागरिक बनाना प्रमुख ध्येय है। इसके साथ ही सारे भारतीयो म एक होने की भावना स राष्ट्र प्रगति की ओर अग्रसर हो पायेगा। जब सकुचितता का त्यागकर भारतीय समझें लेकिन भारतीयकरण के मार्ग मे अत्यधिक बाधाएँ आरही है यद्यपि राष्ट्रीय विभूतियो न अत्यधिक प्रयास स्वत त्रता से पूर्व व उपरान्त भी किए है। वतमान म भी भारतीयकरण हतु निम्न बाधाएँ प्रमुख रूप से खडी है जो समाधान की माग करती है। प्रमुख बाधाए —

(1) 'भारतीयकरण के सम्प्रत्य स्पष्ट नही —देश को स्वतन्त्र हुए अडतीस वष हाने जा रहे है फिर भी भारतीयकरण का अर्थ विभिन्न विद्वान अपने ढग से प्रस्तुत कर रह है। स्वत त्रता स पूर्व, प्रत्येक पाश्चात्य मूल्य को हटाकर भारतीय-मूल्यो को अपनाना ही भारतीयकरण माना जाता था जबकि स्वत त्रता के उपरान्त विदेशी संस्कृति व मूल्य को जो भारतीय भूमि के उपयुक्त है उन्हे अपने मे मिला लेना अर्थात् आत्मसात करने को प नेहरू ने भारतीयकरण की सज्ञा दी है। प्रो0 मधोक भारतीयकरण, भारतीय संस्कृति के प्रतिरोधात्मक एव भावनात्मक

सम्बन्ध के विकास को मानते है। स्वामी दयानन्द प्राचीन भारतीय ज्ञान विज्ञान और संस्कृति भाषा की शिक्षा को भारतीयकरण' मानते थे। मालवीयजी, तिलक, प्रो हुमायू कबीर आदि विद्वानो के मत एक नही है,जिससे भारतीय स्वरूप शिक्षा म प्रदान करना मुश्किल प्रतीत हो रहा है। भारत मे हिन्दुओं के अतिरिक्त धर्मावलम्बी लोग वेदकालीन शिक्षा को आधुनिक परिवेश मे उपयुक्त नही मानते। ऐसी स्थिति म समन्वयपूर्ण शिक्षा प्रणाली को अपनाने का प्रयास किया जिसका अर्थ है कि प्राचीन संस्कृति को आधुनिक ज्ञान विज्ञान से आवश्यकतानुसार जोड बिठाना चाहते है। वर्तमान युग मे हम अपने दिमाग दिल व कान खुले रखने होंगे और अपनी आवश्यकतानुसार अन्य देशो से आने वाले ज्ञान को भी प्राप्त करना पडेगा-अन्यथा हम और अधिक पिछड जायगें। अस्तु शिक्षा के भारतीयकरण का अर्थ कुछ और होगया। आज शिक्षा म भारतीयकरण का अभियान द्रुतगति से नही फैलने का प्रमुख कारण अस्पष्ट अर्थ है।

(2) प्राचीन मूल्यो के प्रति अनास्था —

आज अर्थ प्रधान युग है जिसम भौतिकता का केन्द्र स्थान प्राप्त है। सारा विश्व भौतिकवादिकता की ओर झुकता ही जा रहा है, ऐसी स्थिति म भारत भी अछूता नही है। जब भौतिकवादी खाने-पीने और मौज करने मे विश्वास करत हैं ऐसी स्थिति म हमारी विरासत जिसमे दया, धर्म, कर्तव्य, मोक्ष आदि को न मानकर पाश्चात्य विचारो से ओत-प्रोत होते जा रहे हैं और प्राचीन मूल्यो व परम्पराओ के प्रति आस्था हटती जा रही है। आधुनिक युग न न्यूक्लीन साधना का विकास अवश्य किया है लेकिन नैतिक मूल्य जो भारतीय विरासत है उसम पिछडते हो जा रहे है। अपने प्राचीन मूल्यो को छोडने के फलस्वरूप विश्वास के स्थान पर अविश्वास अभय के स्थान पर भय का वातावरण देश म बना हुआ है। देश म असन्तुलन, आर्थिक सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र बढ़ा है और विषय आयोजन का वातावरण भी उसे हमारी संस्कृति परम्पराओ म पुन आस्था स्थापित करके ही अस्पष्टता का स्पष्ट वातावरण म तबदील करन म सफल हो सकेंगे। हम वर्तमान के साथ भूत व भविष्य के बारे म सोचन हेतु छात्रों को तयार करना है वह हमारी प्राचीन संस्कृति म आस्था रखने स ही सम्भव है।

(3) लम्बे समय तक परतन्त्रता —

हम बहुत लम्बे समय तक दासता की बेडियो मे जकडे रहे। मुगलो, अंग्रेजो व अन्य जातियो न हमारी संस्कृति पर नियोजित ढग स प्रहार किया। मैकाले की शिक्षा व्यवस्था ने भारतीय परम्परा व संस्कृति का समाप्त करने की साजिश

की थी। हम पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति के दास बन गये और अपने आपको भूल गये और अपने पूर्वजो के स्थान से गिर गये तितर-बितर हो गये और भौतिक लाभ, छीना-झपटी मे सलग्न हो गये। लेकिन हमारी संस्कृति की आत्मा जीवित है जिसके कुछ महत्वपूर्ण आदर्श है। हमे विभिन्न धर्मों के लोगो को परस्पर मिल जुलकर रहने की आवश्यकता है ना कि दगा-फसाद की। हमे आज पुन ससार का एक आत्मा बनी है क्योकि विश्व की अन्य संस्कृतिया सिर्फ शरीर है। हम अपने दासता के काल म खोई हुई प्रतिष्ठा को प्राप्त कर देश व विदेशियो को चेतना देकर जाग्रत करना है यदि हम सच्चे भारतीय हैं।

(4) धर्म निरपेक्षता की नीति — धर्म निरपेक्षता, जिसे गलती से धर्म निरपेक्षता कहा जाता है का अर्थ सभी धर्मों का समान रूप से आदर करना, इसका अर्थ धर्मों को जोडना नही है। प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति द्वारा पवित्र समझी जाने वाली चीज का आदर करना चाहिए। लेकिन देश म आदिवासी, गरीब जातियाँ प्रलोभन व मजबूरी म विदेशी धर्म प्रचार व प्रसार के चकाचौंध मे आकर बडी सख्या म धर्म परिवर्तन करवा रहे हैं जो हमारी उदारता का नाजायज लाभ उठा रहे है और हम प्रतिरोध नही कर पा रहे हैं और न भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रचार के लिए ही उपयुक्त कार्य कर पा रहे है क्योकि हमारी संस्कृति परोक्ष व अपरोक्ष रूप मे धर्म से सम्बन्धित है। विश्व के सभी धर्मों के अनुयायी रहते है वे सभी धर्मों के लोग भारत के नागरिक है जो शताब्दियो से रहते है उन्हे भारतीय परम्पराओ से जोडना है तभी भारतीयकरण होगा।

(5) पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव —पाश्चात् सभ्यता के केन्द्र बिन्दु अर्थ है। भौतिकवादी जीवन जीने की लालसा देशवासियो म पाश्चात्य सभ्यता का ही प्रभाव है। हमे आज विरासत म जो सभ्यता परम्पराएँ व धारणाएँ प्राप्त हुई है उसी से हमारा उद्धार सम्भव है। भारत आध्यात्मिक मूल्यो का हामी रहा है लेकिन पाश्चात् सभ्यता की चका चौंध करने वाली संस्कृति की ओर हमारा झुकाव बढ रहा है। हम अपनी भारतीय के अनुरुप शिक्षा व्यवस्था राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने म हिचकिचाते है। हमे पुनः आदर्शो पर ही चलना है, हमे नये भौतिकवादी पश्चात् विचारो म खो नही जाना है और न ही उनसे भ्रमित होना है। माँग इस बात है कि हमारी भावी पीढी को प्राचीन मूल्यो का ज्ञान प्रदान किया जाय। इसी कमी के कारण आज के विद्यार्थियो म इतनी अधिक स्वेच्छाचारिता या अनुशासन

हीनता बढ रही है। यदि हम पुन विद्यार्थियो को शिक्षा पद्धति के माध्यम से अपनी सस्कृति व मूल्यो की ओर लौटा लाये और उन्हें यह समझा दें कि हमारे धम की बुनियाद सबसे अधिक वैज्ञानिक सबसे अधिक लोकतान्त्रिक, सबसे अधिक अनुकूल और सबसे अधिक महत्वपूण है। यह शिक्षा स चेतन हो सकती है और सभी नागरिको मे भारतीयकरण की ओर सफल प्रयास रहेगा।

भारतीयकरण हेतु उपाय

1) भारतीय दशन का विकास —प्राचीन नतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यो चिन्तन तथा सस्कृति के आधार पर वतमान वैज्ञानिक उन्नति के सदभ म दशन का विकास।

2) शिक्षा दर्शन का विकास —सभी धर्मों के मूल मे एकत्व है। किसी भी धम की शिक्षा में विद्वेष ईर्ष्या, सघष का प्रतिपादन नही किया है। अत सभी धर्मों की विशेषताओ का समन्वय स्थापित कर शिक्षा दर्शन बनाया जाय जिससे वस्तु स्थिति को समझकर व्यापक दृष्टिकोण का विकास हो।

3) जीवन से सम्बद्धता — शिक्षा दशन काल्पनिक या विदेशी विचारो से ओत प्रोत न हो बल्कि भारतीय जीवन स सम्बन्धित हो।

4) सवधम-समन्वय — भारत के सभी धर्मों मे आत्मा अहिंसा, सत्य परोपकार, दया सहिष्णुता, मानवता आदि गुण विद्यमान है सभी धर्मों का समन्वय करते हुए शिक्षा-प्रणाली का अभिन्न भाग बनाया जाय। सभी धर्मों म मानव कल्याण, ईश्वर की समान कल्पना, देवी देवताओ के विवाह सम्बन्धी कथाएँ समान नैतिक पक्ष की एक रूपता है। डा भगवानदास ने उदाहरण देते हुए यह प्रमाणित किया है कि विभिन्न धर्मों की स्थिति झिलमिल रगो के समान होती है। इस प्रकार शिक्षा प्रदान की जाय तो भावात्मक एकता स्थापित हो सकेगी।

(5) विज्ञान और उद्योग शिक्षा - वैज्ञानिक प्रगति भारत मे प्राचीन काल मे इतनी अधिक थी कि विश्व का सिरमौर था।' रामायण, महाभारत मे उदाहरण प्राप्त है। वैज्ञानिक प्रगति भारतीयकरण का एक अविभाज्य अग है, परन्तु विज्ञान को नैतिकता तथा धम से जोडना होगा। इसकी शिक्षा का प्रचार व प्रसार बड़े पैमाने पर करने की आवश्यकता है।

(6) मानवीय गुणो का विकास —हमारी शिक्षा प्राचीन सस्कृति को आधार मानकर बनाई जाय जिसमे मानवीय गुण का समावेश हो। 'सादा जीवन उच्च विचार' दया, निष्ठा, सहानुभूति, परोपकार, समानता सहिष्णुता, सहकारिता, प्रेम आदि इसको आधार बनाकर शिक्षा व्यवस्था की जाए।

(7) सामाजिक शिक्षा —प्राचीन भारत म औरत और आदमी को समान अधिकार होते थे कोई छोटा बडा नही होता। वगर औरत के आदमी और वगैरआदमी के औरत कोई सस्कार सम्पन्न करन के अधिकारी नही होते थे। विवेकानन्द ने कम के आधार पर जाति को माना है। परशुराम क्षत्रिय तथा विश्वामित्र राज ऋषि हो सकते थे। देश मे बगैर लिंग जाति धम क्षेत्र के सामाजिक समानता को आधार बनाकर शिक्षा व्यवस्था वाछित है।

(8) उत्पादनशील शिक्षा — प्राचीन शिक्षा मे शारीरिक परिश्रम को सदैव महत्व दिया जाता रहा है। आश्रम-व्यवस्था क अन्तर्गत शिष्यो को आश्रम से सम्बन्धित सभी काय करने पडत थे। पाश्चात्य सभ्यता जहाँ भोग प्रधान रही है, जिसका प्रभाव भारतीय शिक्षा पर दृष्टिगोचर होता है। आज छात्र विद्याव्यसनी होन के बजाय मास मदिरा के व्यसनी हैं। वतमान शिक्षा का भारतीयकरण करते समय 'श्रम को प्रधानता देनी होगी और उस उत्पादनशीलता से जोडना होगा जिससे दान, त्याग आदि गुणो का विकास होगा।

निम्नलिखित कायक्रमो को सब प्राथमिकता देनी चाहिए —

(1) शिक्षा और सस्कृति के मूल अ ग के रूप म विज्ञान।

(2) सामान्य शिक्षा के एक अभिन्न अग के रूप मे कार्य-अनुभव।

(3) उद्योग कृषि और व्यापार की आवश्यकताओ की पूर्ति क लिए शिक्षा का व्यवसायीकरण, विशेषकर माध्यमिक स्कूल स्तर पर, और

(4) विश्वविद्यालय स्तर पर वैज्ञानिक और शिल्प वज्ञानिक ओर शिक्षा एव अनुसधान मे सुधार किन्तु कृषि और सबद्ध विज्ञानों पर विशेष जोर।

(9) लोकतान्त्रिक मूल्यो का विकास2 —' शिक्षा म भारतीयकरण का स्वरूप ऐसा हो जो लोकतान्त्रिक मूल्यो का विकास कर सकें जैसे कि मन की वज्ञानिक प्रवृत्ति, सहनशीलता अल्प राष्ट्रीय समूहों की सस्कृति के प्रति आदर आदि पर भी विशष रूप से जोर दिया जाना चाहिए ताकि हम लोकत त्र को न केवल शासन के प्रकार के रूप म अपितु एक जीवन शैली के रूप मे भी अपना सके। भारत की आबादी मे विभि न धम व भाषायी, प्रजातिया जातिया व वग के समुदाय रहते है। लोकतान्त्रिक प्रवृत्ति-सहनशीलता सबसे महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। इससे स्वस्थ्य दृष्टिकोण का विकास होने से विभाजन क असर की सामाजिक, आर्थिक तथा सास्कृतिक समूहो को सहायता मिलेगी।

---

1 कोठारी डी एस-'शिक्षा आयोग की रिपोट (पृ 7-8)

2 वही वही (पृ 20 21)

उपसहार —भारत में प्रचलित शिक्षा प्रणाली हमारे राष्ट्रीय उद्देश्यों को पूरा करने में सक्षम सिद्ध नही हुई है क्योकि यह ब्रिटिश शासन की देन है। आज पढ़े लिखे नवयुवक अपनी परम्पराओ, मूल्यो, व सस्कृति को भूलकर पाश्चात्य जीवन शैली के अ धे भक्त होते जा रहे हैं। इसमे दोष छात्रो का कम और शिक्षा पद्धति का अधिक है,क्योकि उन्हे मूल्यो', परम्पराओ व सस्कृति का अध्ययन करवाया ही नही जाता है। इस ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली के विष वृक्ष के बारे म स्वामी दयानन्द, रवीन्द्रनाथ, विवेकान द लाला लाजपत राय व गाधीजी जसे देश भक्तो को इनके द्वारा पडने वाले प्रभावो के बारे मे खूब जानते थे और उन्होने प्रतिकार भी किया।

देश की सस्कृति के प्रमुख तत्व इस देश की सस्कृति के प्रमुख तत्व इस देश की अनेक मानव पीढीयो को घोर परिश्रम, सघष,साधना और बलिदान क उपरान्त निर्मित हुए है। यह हमारी बहुमूल्य धरोहर है जिसके कारण ही हम विश्व मे सर्वोच्च प्रतिष्ठित हो सके। आज देश को आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक क्षेत्रों मे द्वन्द निरन्तर फलता जा रहा है और देश दिन-प्रतिदिन मूल्यो व सस्कृति के दृष्टि से कमजोर हो रहा है। आज स्वय के लाभ को प्राप्त करने मे छीना झपटी कर रहे हैं। हमारे देश का प्रगतिशील विचारो की ओर अग्रसर करना है और भावी पीढी को देश क बारे में सही तस्वीर देनी है तो समय रहत छात्रा को भारतीय सस्कृति मूल्यो, धार्मिक सहिष्णुता, प्रजातान्त्रिक जीवन शैली, सम्वेदनशीलता आदि गुणो से ओत-प्रोत शिक्षा का भारतीयकरण करके सफल हो सकत है और जो आदर्श दर्शन, राष्ट्रीय सविधान मे निहित है उसकी पूर्ति करने मे सहायक सिद्ध हो सकती है।



मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघुत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1 'शिक्षा में भारतीयकरण' के तथा शिक्षा के आधुनिकीकरण' के पाच मुख्य अ तर लिखिये। (बी एड पत्राचार1985, बी एड 1984)

2 शिक्षा का भारतीयकरण करने के अब तक क्या प्रयास किये गये हैं? (बी एड 1983)

3 'भारतीयकरण' आधुनिक भारतीयता और 'भारतीय आधुनिकता का समन्वय है।' स्पष्ट कीजिए। (बी एड 1982)

4 माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के भारतीयकरण के लिए आप किस कार्यक्रम का सुझाव देते है। (बी एड पत्राचार 1981)

5 शिक्षा के 'भारतीयकरण' और शिक्षा के आधुनिकीकरण के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए पाँच प्रमुख बिन्दुओं को लिखिए। (बी एड 1968)

(द) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1 शिक्षा में भारतीयकरण का क्या अर्थ है ? उन शैक्षिक पक्षों की व्याख्या कीजिए जो भारतीयकरण में सहायक होंगे। (बी एड 1985)

2 शिक्षा में भारतीयकरण का क्या अर्थ है ? शिक्षा के भारतीयकरण के लिए किन-किन शैक्षिक क्षेत्रों में परिवर्तन की आवश्यकता है और क्यों ? (बी एड 1984)

3 'भारतीयकरण एवं आधुनिकीकरण' के अन्तर को बतलाइए तथा भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में दोनों में सामंजस्य स्थापित करने की सम्भावना खोजिए।

(बी एड पत्राचार 1984)

4 शिक्षा के भारतीयकरण से आप क्या समझते हैं ? क्या राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968 व 1969) के आधार पर शिक्षा का भारतीयकरण सम्भव है ? 'देश के भावात्मक एकीकरण के लिए शिक्षा का भारतीयकरण पूर्वावश्यकता है।" विवेचन कीजिए। (बी एड 1981)

5 शिक्षा के भारतीयकरण से आपका क्या अभिप्राय है ? शिक्षा के भारतीयकरण के उद्देश्य की प्रगति हेतु उदाहरण देते हुए ठोस सुझाव दीजिए। (बी एड 1979)

अध्याय
१८

धार्मिक एव नैतिक शिक्षा

(Moral & Religious Education)

[विषय-प्रवेश-धार्मिक शिक्षा का अर्थ ऐतिहासिक परिपेक्ष्य-सविधान मे धार्मिक शिक्षा-प्रगतिशील राष्ट्रों मे धार्मिक शिक्षा-स्वत त्र भारत मे धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता आध्यात्मिक मूल्यो की आवश्यकता-धम निरपे क्षता एव धर्म-आध्यात्मिकता व नतिक मूल्यो की शिक्षा कसे दी जाय विभिन्न आयोगो की सिफारिशे ।

—नतिक शिक्षा—का अथ—नतिक शिक्षा की आवश्यकता एव महत्व—नैतिक शिक्षा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य—नैतिक शिक्षा का स्वरूप— पाठ्यक्रम एव विधियां—उपसहार मूल्याकन]

(अ) धार्मिक शिक्षा

भारतीय शिक्षा पद्धति मे धार्मिक एव नतिक शिक्षा से अधिक अन्य कोई भी विषय विवादास्पद नही है। केवल भारत मे ही नही विश्व के अ र राष्ट्रो मे भी अनुशासहीनता तथा सामाजिक मूल्यो का ह्रास द्रुतगति स किशोर बालक व बालिकाओ मे दृष्टिगोचर हो रहा है। हम शरीर का पोषण करन म आत्मा का हनन कर रहे हैं। शिक्षा का उद्देश्य सर्वांगीण विकास करना है, लेकिन हम एकाकी विकास करने मे तत्पर है। सर्वांगीण विकास जिसमे शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक सामाजिक, आध्यात्मिक, नतिकता का विकास करना है जो सम्भव प्रतीत नही होता है। विश्व क प्रगतिशील व 'तनीय विश्व के राष्ट्र इस विषय को गम्भीरता से लेत हुए अपनी शिक्षण-व्यवस्था पाठ्यक्रम मे मूल्यो (Values को पुन स्थापित करन का सफल प्रयास कर रहा है। विश्व का हर व्यक्ति भौतिक दौड मे लगा हुआ है। जापान ने अचिरकाल (Recently) अपने अभिकृत पाठ्यक्रम मे परोक्ष व अपरोक्ष रूप से इस विषय को प्रारम्भ किया है। इग्लैण्ड व अमेरिका भी अत्यन्त गम्भीरता स आत्मा व जीवन मूल्यो की शिक्षा प्रदान करने पक्ष मे है। भारत मे लगभग पिछले चार हजार वर्षों से धम की परम्परा रही है कि उनमे दर्शन, सिद्धात आत्मा व मूल्यो को हम विरासत मे प्राप्त हुए है। लेकिन दुख इस बात का है कि आज हम धार्मिक विश्वास के प्रति अनास्था और विरासत मे प्राप्त

पारंपरिक मूल्यो के वि खण्डन के युग में जी रह हैं । विज्ञान और नतिक मानवतावादी के प्रभाव में पले हुए व्यक्ति भाप्तवाक्य के रूप कुछ भा स्वीकार करन के लिए तैयार नहीं होते । फलस्वरूप विश्व के अनक भागा मे धार्मिक विश्वासो को छोड रह है। यदि हम इतिहास के महत्व को वैज्ञानिक दृष्टि के महत्व को, धर्म के मम वेद के मह व को, लोकतन्त्र के बुनियादी महत्व को आधुनिक युग की विशेषताओं के रूप मे स्थापित करता ह ता हम अपन आदर्शों को नही छोडना ह हम नय विचारो-अ-नहो-सो-आना ह। आज शाला व महाविद्यालय स्तर तक छात्रो को मूल्यों' व धर्म व नतिकता का ज्ञान न होन के फलस्वरूप ही इतने अधिक स्वच्छाचारिता, या अनुशासनहीनता व्याप्त ह। धम' की शिक्षा के नाम पर विवाद होता है लेकिन भारतीय धम की बुनियाद वैज्ञानिक, लोकतांत्रिक है । हमारे सविधान की प्रवृत्ति धम निरपक्ष है। जिसे गलत ढग से अर्थ लिया जा रहा है। धमनिरपेक्षता का अथ है सभी धर्मो का समान रूप स आदार करना इसका अथ धम को छोडना नही है । अत हम किशोर अवस्था से ही बालको को धार्मिक व नैतिक शिक्षा प्रदान करन की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए ।

कोठारी कमीशन के आधार पर धमनिरपेक्षता व धर्म — कोठारी कमीशन न 'धमनिरपेक्षता व धम पर कहा है—' धम निरपेक्ष नीति अपनान का अर्थ यह ह कि राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक मामलो मे, सभी नागरिको को, वे चाहे किसी भी धम के मानने वाले हो समान अधिकार प्राप्त होंग किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय क साथ न तो कोई पक्षपात किया जाएगा और न ही उसके साथ कोई भेदभाव किया जायगा ।'1

लोकतान्त्रिक भारत म अनेक धम व सम्प्रदाय के लोग निवास करते हैं । अत यह आवश्यक है कि वह सभी धमा के सहिष्णुतापूण अध्ययन का प्रोत्साहित करे ताकि उसके नागरिक एक दूसर को और अच्छी तरह समझ सके तथा शान्तिपूवक साथ साथ रह सके । अब जो बच्चे बडे हो रहे हैं स्वय अपने ही धम का कोई स्पष्ट ज्ञान नहीं है और न ही उन्ह अ य धर्मो की कोई बात सीखने का अवसर मिलता है । वास्तव मे नई पीढी म, इन बाता सम्बन्धी इतना सामान्य अज्ञान और गलतफहमी है कि उससे उस लोकतन्त्र क विकास के लिए बडा खतरा है जिसम सहिष्णुता का एक बडा मूल्य समझा जाता है । हमारा यह सुझाव है कि प्रत्येक प्रमुख धम स सम्बन्धित चुनी हुई जानकारी दन वाला एक पाठय-विवरण स्कूलो तथा कॉलजा म प्रथम उपाधि तक प्रारम्भ किए जान चाहिए क्योंकि विश्व के महान् धम म जो मूलभूत समानताए है, तथा य मोटे तौर पर तुलनीय जिन नतिक और आध्यात्मिक मूल्यो के निर्माण पर जो बल

1 कोठारी डी एस "शिक्षा आयोग की रिपोर्ट" (पृ 24)

दत है, उसे भी प्रकाश में लाए।" – उसमें कोई ऐसी बात शामिल नहीं है, (सुनिश्चित हो जाय) जिस पर कोई भी धार्मिक सम्प्रदाय उचित आपत्ति उठा सके।' 2 जिससे कालान्तर में सम्पूर्ण मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा न कि उसके व्यक्तित्व के किसी खण्ड विशेष का।

अतः यह महसूस किया जाने लगा है कि धार्मिक व नैतिक शिक्षा पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग होना चाहिए। हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति में महान् कमजोरी रही है लेकिन हमें शाला पर पर धार्मिक व नैतिक शिक्षा छात्रों को प्रदान की जानी चाहिए।

ऐतिहासिक परिपेक्ष में (Historical Back ground)

(1) वैदिक-काल —प्राचीन भारत में धार्मिक व नैतिकता का शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वास्तव में शिक्षा तथा धर्म एक दूसरे के बीच गहरे सम्बन्ध रहे है। अध्यापन का कार्य धार्मिक गुरुओं द्वारा आश्रम में प्रदान किया जाता था। धर्म व्यवहारिक जीवन का आधार था और सारी सामाजिक जीवन की धर्म के आधार पर ही व्याख्या की जाती थी। अध्यापक का मुख्य उद्देश्य अपने शिष्यों की व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में आचार-विचार नैतिक व धार्मिक दृष्टि से निर्देशित करना था। उनका विश्वास था कि भावात्मक व नैतिक आचार सम्बन्धी विकास बाल्यकाल में होकर संस्कार पड जाते है वे जीवनपर्यन्त बने रहते हैं। उक्तकाल में जीवन का उद्देश्य धर्म अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति, जिसमें धर्म को सर्व प्रमुख माना जाता था। उस समय आत्म ज्ञान व ब्रह्म ज्ञान विशेष महत्व दिया जाता था। उस समय भीष्म पितामह राजा हरिश्चन्द्र, सीता, राम सावित्री के गुणों का वर्णन इनके उन्होंने किया जाता। अर्थात् सम्पूर्ण शिक्षा धर्म और नैतिकता पर आधारित थी।

3) उत्तर वैदिक काल —इस काल में उपनिषदों की रचना की गई तथा यांत्रिक पद्धतियों द्वारा, पूजा उपासना तथा बलि देने की प्रथा प्रारम्भ की गई। इन समस्त परिवर्तनों का तत्कालिन शिक्षा पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। शिक्षा पूर्ण तया आध्यात्मिक बन गई थी।

(3) ब्राह्मण काल —इस काल में आश्रम व्यवस्थाए प्रचलित हो गई थी जहाँ आश्रम में गुरू तथा शिष्य अध्ययन-अध्यापन करते थे। गुरू अपने व्यक्तित्व की छाप शिष्य पर छोडता था। शिक्षा का अंतिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना था। शिक्षा का सम्पूर्ण रूप धार्मिक था तथा शिक्षा के माध्यम से विभिन्न पहलुओं का ज्ञान कराते हुए बालक में मानवीय गुणों का विकास किया करते थे।

---

2 कोठरी, डी एस, "शिक्षा आयोग की रिपोर्ट" (पृष्ठ 24)

(4) बौद्धकाल – विहार व मठ बौद्धकालीन शिक्षा के केन्द्र स्थल थे। मूर्ति-पूजा, बलि देना, ब्राह्मण-युग मे प्रारम्भ हो गई थी। इस काल की कुप्रथाएं समाज मे इस ढंग से जड़ें जमा गईं कि धर्म का सही रूप लुप्त हो गया जिसका शिक्षा पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। चिन्तन, मनन न होकर आडम्बर हो गया।

(5) मुस्लिम काल — इस काल में शिक्षा मकतब और मदरसा में इस्लामी धर्म एवं कुरान की पवित्रता के बारे मे प्रदान की जाती थी जो सामान्यतः मस्जिदों मे लगते थे। प्राचीन भारतीय गुरुओं की भांति इस काल में शिक्षा प्रदान करने वाले धार्मिक नेता मुल्ला या मौलवी ही होते थे। ये छात्रों में ईश्वर भक्ति व धर्मानुसारिता की शिक्षा देते थे।

(6) अंग्रेजी काल व उनकी उपेक्षित धार्मिक नीति —

ब्रिटिश-शासन का भारत में आगमन के साथ ही हमारी प्राचीन व मध्यकालीन शिक्षा-पद्धति का द्रुतगति से महत्व समाप्त होने लगा। क्रिश्चियन मिशिनरियां भारत मे यूरोपीयन व्यापारिक कम्पनियों के साथ ही आगमन हुआ इन मिशिनरियों ने शिक्षण संस्थाओं की स्थापना देश मे ही की जिनका प्रमुख उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार व प्रसार भारत की जनता में करना था। पुर्तगाली मिशनरियों द्वारा कैथोलिक धर्म की शिक्षा दी जाती थी और फ्रांसीसियों द्वारा ईसाई धर्म की। भारत में ब्रिटिश-शासकों ने इन संस्थाओं को वित्तीय सहयोग के साथ-साथ अन्य तौर तरीकों से भी मदद की। परन्तु प्रकट रूप में पूर्णतया तटस्थ दृष्टिगोचर होते थे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने तुष्टी की नीति अपनाकर मुसलमान व हिन्दुओं को खुश करने के लिए क्रमशः कलकत्ता मदरसा (1780) व बनारस संस्कृत कॉलेज (1791) खोले। सन् 1813 के चार्टर एक्ट का स्वरूप धर्म निरपेक्ष माना गया। डेविड हेयर, जे ई डी बेथ्यून राजा राममोहन राय, जगन्नाथ, शंकर सेठ आदि ने धर्म निरपेक्ष शिक्षा पर जोर दिया। मैकाले ने इन लोगों का समर्थन किया लेकिन वे इस बात को स्वीकार करते थे। कि अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य निश्चय रूप से भारतीय जनता के धार्मिक दृष्टिकोण में फर्क लायेंगे। मैकाले की धर्म निरपेक्षता के समर्थन के पीछे चाल थी कि लोग मूर्ति-पूजा की आस्था से हट जाय और वे सफल भी रहे। लार्ड मैकाले ने 1836 में लिखा— "हिन्दुओं का अपना धर्म नहीं यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि अगर हमारी शिक्षा योजनाएं परामर्शानुसार क्रियान्वित हुईं तो बंगाल के प्रतिष्ठित परिवारों में 30 वर्ष पश्चात् कोई मूर्ति पूजक नहीं रहेगा। बगैर धर्म परिवर्तन करवाये और बगैर धार्मिक

स्वतन्त्रता मे दखल दाजो की स्वाभाविक रूप से पाश्चात्य ज्ञान व प्रभाव से यह प्रभाव पड़ेगा।"1

1854 के वुड के घोषणा पत्र ने यद्यपि कहने को धम निरपेक्ष शिक्षा का समर्थन किया परन्तु मिशिनरी स्कूलो के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से ईसाई धर्म को प्रश्रय दिया और सभी पुस्तकालयो के लिए बाईबल रखना अनिवार्य कर दिया। ऐसे तो 1859 म भारत राज्य के सक्रेट्री न पुन घोषणा कर दोहराया कि ब्रिटिश सरकार शिक्षण सस्थाओ म पूणतया धमनिरपक्षता को अपनायगा। 1882 मे हंटर कमीशन ने धमनिरपेक्षता के सिद्धान्त को तो माना लेकिन नतिक पाठयक्रम के सुभाव को निरस्त कर दिया और कुछ नैतिक शिक्षाएँ छात्रों को सामा य पाठयपुस्तकों मे प्राकृतिक धम के बारे म राजकीय महाविद्यालयो के प्रधानाचाय या प्रोफसर द्वारा विभिन्न 'मानव के कत्तव्य' के बारे मे भाषण का सुझाव दिया जिसकी क्रियान्विति बिलकुल नही हुई। भारतीय विश्वविद्यालय आयोग 1902 ने धार्मिक शिक्षा को विश्वविद्यालय से त्याग दिया क्योंकि उनकी आवश्यकता नही समझी गई। कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (1917 1919) ने धम को भेदभाव का कारण समझते हुए किसी भी तरह का सुझाव ही नही दिया।

केन्द्रीय सलाहकार बोड 1944-45 —

द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त भा त म शिक्षा के विकास हेतु केन्द्रीय सलाहकार बोड 1944 म अपनी बैठक मे धार्मिक शिक्षा को मान्यता दी और मान्य पादरी श्री जी डी बर्न के सभापतित्व मे एक समिति का गठन हुआ जिसने सुझाव दिए —जबकि हम मानते हैं कि चरित्र निर्माण आध्यात्मिक और धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता है परन्तु इस शिक्षा की व्यवस्था स्कूलो मे नही की जा सकती। यह बालको के परिवार

1 "No Hindu his religion It is my firm belief that if our Plans of Education are followed up, there will not be a single idolator among the respectable classes in Bengal, thirty years hence And this will be effected with out any effort to proselytics with out the smallest interference in their religious liberty, merely by the natural operation of knowledge and reflection"

–Lord Macaulay (1836)

व समाज का उत्तरदायित्व ।[2] मुख्य उद्देश्य इस प्रस्ताव का था, हमारी शिक्षण संस्थाओं म धर्म निरपेक्षता को बनाये रखना ।

स्वतन्त्र भारत के सविधान मे धार्मिक शिक्षा

(Constitution provision regarding Religious Education)

स्वराज्य–प्राप्ति के बाद 1950 में हमारी सविधान सभा न सारे देश क लिए सम्पूर्ण प्रभुत्व –सम्पन्न प्रजातान्त्रिक गणराज्य की सविधान म व्यवस्था की । इसके अनुच्छेद 28 व 30 के अनुसार धार्मिक शिक्षा के विषय में निम्न निर्णय लिए गए —

अनुच्छेद 28 – (1) राज्य-अनुदान पर पूर्णतया आश्रित शिक्षा सस्था में धार्मिक शिक्षा नही दी जायेगी ।

(2) खण्ड (1) में निहित बात उन शि ा संस्थाओं पर लागू नहीं होगी जो राज्य द्वारा प्रशासित तो की जाती हो किन्तु जिनकी स्थापना किसी धर्मादा अथवा न्यास द्वारा की गई हो और जिनम धार्मिक शि ा देना आवश्यक माना गया है ।

(3) राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त अथवा राज्य अनुदान प्राप्त करने वाली शिक्षा सस्थाओ में कोई भी व्यक्ति एसी धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने क लिए जो इन सस्थाओ में दी जाती हो बाध्य नही किया जायगा और न उनसे सम्बन्धित किसी परिभाषा में धार्मिक पूजा म भाग लेने के लिए बाध्य किया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति की अपनी (अथवा यदि वह नाबालिग हो तो उसके अभिभावक का) अनुमति न हो ।

अनुच्छेद 30 —

(1) सभी अल्प मतों को चाहे वे धर्म अथवा भाषा के आधार पर हो अपनी इच्छानुसार शिक्षा संस्थाओं को स्थापित करने तथा प्रशासित करने का अधिकार होगा ।

(2) राज्य की ओर से अनुदान देते समय किसी भी शिक्षा सस्था म इस आधार पर कि वह भाषा अथवा धर्म के आधार पर अल्पमत द्वारा प्रनिर्वाचित है भेदभाव नहीं बरता जाएगा ।

---

2 'While we recognise the fundamental importance of spiritual and moral instruction in the building of charcter, the provision for such teaching, except in so for it can be the responsibility of the home and the community to which the pupil belongs '

इन अनुच्छेदो के शब्दो से यह स्पष्ट है कि जहाँ एक ओर ऐसी शिक्षा संस्थाओ म जो पूर्णतया राज्यकोष पर आश्रित हैं कोई धार्मिक शिक्षा नही दी जायेगी वहाँ दूसरी ओर राज्य सरकार धर्मादा अथवा न्यास द्वारा स्थापित शिक्षा संस्थाओ का जिनमे धार्मिक शिक्षा दी जाती है सहायता देती रहेगी, इन अनुच्छेदो से यह भी निर्दिष्ट होता है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी शिक्षा संस्था म धार्मिक शिक्षा की कक्षाओ म उपस्थित होने के लिए बाध्य नही किया जा सकेगा । धर्म अथवा भाषा के आधार पर अल्पमतो को अपनी इच्छानुसार शिक्षा संस्थाएँ स्थापित करने का पूर्ण अधिकार हैं। राज्य सरकार उनको अनुदान प्राप्त करने से वंचित नहीं कर सकती । संविधान निहित इन सिद्धान्तो म किसी प्रकार के परिवर्तन करने की संस्तुति करना भी वांछनीय है ।

प्रगतिशील राष्ट्रो के संविधान मे धार्मिक शिक्षा –

अमेरिका गणराज्य एक धर्म निरपेक्ष राज्य है। वह न तो धार्मिक और न ही बिना धर्म के है। अमेरिका के संविधान के प्रथम संशोधन म नैतिकता के लिए न तो धर्म को मान्यता दी और न ही इसकी अवहेलना की है । सभी अमरीकी नागरिको को स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विचानुसार पूजा का अधिकार हैं। अर्थात् धार्मिक स्वतन्त्रता है। कानून की दृष्टि से सभी धार्मिक संस्थाए समान है । वे केवल नागरिको की स्वयं सेवी संस्थाएँ है ।

आस्ट्रेलिया के संविधान के द्वारा सभी को अपने धर्म और मान्यताओ मे विश्वास रखने का अधिकार प्राप्त है ।

भारतीय संविधान के प्रावधानो व प्रगतिशील राष्ट्रो के संविधान के अवलोकन से स्पष्ट है कि आज विश्व मे धर्म निरपेक्षता को ही प्रधानता देते है क्योकि लार्ड ह्यूम कहते है कि 'यूरोप की आधी लडाइया और आन्तरिक विद्रोह धार्मिक विरोध और राज्य तथा धर्मो के आपसी सम्बन्धो के कारण हुए ।' भारत का विभाजन ही संकुचित धार्मिक भावना का ही प्रतिफल था । देश के युवक और नवयुवतियाँ शालाओ से ऐसे निकले कि वे संयमी, उत्तरदायित्वपूर्ण तथा आस्थावान हो और एक स्वतन्त्र देश के योग्य साबित हो सके । धर्मनिरपेक्षता का नैतिक नियन्त्रणो से पूर्व मुक्ति के रूप में गलत अर्थ लगाया जा रहा है जिसके कारण हम सभी मान्यताओ को खो बैठे हैं–इस कमी को पूरा करना ही होगा और सम्भवतया जीवन में उच्चतर मान्यताओ को शिक्षा द्वारा ही सम्भव है । गाधीजी सभी धर्मों की अच्छाइयाँ बताकर संस्कार निर्माण के पक्षधर थे ।

धर्म का अर्थ भारतीय विचार —

भारत में धर्म शब्द पर विवाद होते रहते हैं और आज भी विवाद का विषय बना हुआ है-- एक धर्म वाले दूसरे पर भिन्न-भिन्न प्रकार से कीचड़ उछालने में कभी पीछे नहीं रहते लेकिन धर्म की ओट में चालाक लोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि में सफलता पाने का सबसे सरल रास्ता समझते रहे हैं जबकि हमारी संस्कृति में ऐसा नहीं है। धर्म शब्द संस्कृत के धृ धातु से निकला है जिसका अर्थ होता है धारण करना या जिसे धारण किया जाय। व्यक्ति और समाज धर्म के आधार पर ही टिके हुए हैं सुरक्षित हैं उनमें व्यवस्था और शान्ति है। धर्म का प्रादुर्भाव भारत की संस्कृति में ही नहीं बल्कि मानव जाति में कलह' समाप्त कर प्रेम, शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए ही हुआ होगा। 'मनु' ने बताया है कि वह धर्म नहीं अर्थात् अधर्म है, चोरी, लोगों का बुरा चिन्तन करना, मन में द्वेष, ईर्ष्या करना, मिथ्या निश्चय करना और लोगों में अशान्ति, भय व असुरक्षा और अव्यवस्था उत्पन्न करे। महर्षि कणाद—"जिससे भौतिक उन्नति तथा आध्यात्मिक प्रगति दोनों सिद्ध हो।" मनु स्मृति में महाराज मनु(2/1) ने धर्म का कई प्रकार से परिभाषित करने का प्रयास किया है। एक स्थान पर कहा है कि अपने देश के राग द्वेषहीन सदाचारी विद्वान जिसका अनुष्ठान करते हैं और अपना हृदय भी जिसे स्वीकार करता हो उसे धर्म कहते हैं।' एक अन्यस्थान पर मनु स्मृति में धर्म के दस लक्षण बतलाये हैं। धैर्य, 2 क्षमा, 3 मनोयोग, 4 चोरी न करना, 5 पवित्रता, 6 इन्द्रियों पर नियंत्रण, 7 बुद्धिमत्तापूर्वक काम करना 8 विद्या प्राप्त करना,9 सच बोलना, 10 क्रोध न करना6/92

डॉ राधाकृष्णन् — "धर्म न तो उन सिद्धांत का नाम है जिस पर हम विश्वास करते है न उन भावों का नाम है जिनका हम अनुभव करते हैं, न उन अनुष्ठानों का नाम है जो धर्म के नाम पर हम करते हैं। यह तो एक प्रकार का परिवर्तित जीवन है।"

मनुष्य जीवन की उस व्यापक नीति का धर्म कहते है जिसके पालन करने से मनुष्य पूर्ण बनता है। अतः धर्म और जीवन दो पृथक वस्तुएँ नहीं है। प्राचीनकाल में जीवन का प्रत्येक पक्ष और शिक्षा धर्म से अनुप्राणित थे। आजकल धर्म को मात्र कुछ विश्वासों आस्थाओं और पूजा-विधि तक सीमित मान रखा है। धर्म के संकुचित अर्थों ने ही धार्मिक कट्टरता तथा धर्मान्धता तथा अन्य धर्मों के प्रति घृणा के भाव विकसित कर दिये हैं। अतः आज धार्मिक शिक्षा के माध्यम से कट्टरपंथी व घृणा पैदा करने की व्यवस्था न करने जा रहे है बल्कि बालकों के सर्वांगीण विकास करते हुए उनके भौतिक एवं आध्यात्मिक श्रेष्ठाओं की ओर अग्रसर करना चाहते हैं जिसकी आज देश को आवश्यकता है।

स्वामी दयानन्द — स्वामीजी शिक्षा को विद्या का ही पर्यायवाची मानते थे। व ि ा क उ — जिससे विद्या सभ्यता, धर्मात्मा जितेन्द्रियता दि की बढ़ोतरी हो और अविद्यादि दोष दूर उसको शिक्षा कहते थे। जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को जीतकर विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। विद्या के बिना मनुष्य को निश्चय ही सुख नहीं मिलता अत उसको मोक्ष के लिए विद्याभ्यास करना चाहिए। मनुष्य को विद्या से यथार्थ ज्ञान लेकर यथायोग्य व्यवहार कराया जाय।

स्वामी विवेकानन्द — स्वामी जी धर्म को शिक्षा की आत्मा मानते थे लेकिन धर्म से उनका अभिप्राय किसी विशेष धर्म से नहीं है धर्म एक साधन है, अनुभूति है, आत्म–साक्षात्कार है। आधुनिक शिक्षा हृदय का परिष्कार तथा प्रशिक्षण नहीं करती इसलिए अधूरी है। वे लिखते हैं— "अत्यधिक मानसिक प्रशिक्षण से अधर्मी मनुष्यों का निर्माण होता है। पाश्चात्य शिक्षा का यह एक दोष है। यह कई गुना स्वार्थी बना देता है। बुद्धि व्यक्ति को उस सर्वोच्च स्तर पर नहीं पहुंचा सकती है, जिस पर हृदय उसको पहुंचाता है। अत हृदय का परिष्कार करो। ईश्वर हृदय के माध्यम से ही सन्देश देता है। स्पष्ट है कि वे शिक्षा का अर्थ मानसिक विकास से न लेकर हृदय के विकास या आध्यात्मिक विकास से लेते थे।

गांधीजी — वे नीति और सदाचार के नियमों की शिक्षा के पक्षपाती थे क्योंकि इस प्रकार के मूल सिद्धान्त सब धर्मों के एक से है। वे सभी धर्मों के मुख्य सिद्धान्तों के अनुसार नीति की शिक्षा देना चाहते थे। वे मानव धर्म को मानते थे।

धर्म का अर्थ पाश्चात्य दृष्टिकोण —

मैक्समूलर अनन्त की खोज को धर्म मानते हैं जो हीगल स्वतन्त्रता को ही धर्म मानते है। विशप बटलर विश्व में आध्यात्मिक शासन (अर्थात् ईश्वर) में विश्वास को धर्म मानते है। बाइबल में दीन–दुखियों की सेवा ही धर्म बतलाया गया है।

स्वतन्त्र भारत में धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता

(Need for Religious Education in Free India)

हमारी शिक्षण संस्थाओं में कुछ न कुछ त्रुटियाँ तो हैं ही जिसके कारण हमारे माता पिता चाहे व सरकार के अंग हों या जनता के, इस समस्या पर पुनर्विचार के लिए बाध्य होना पड़ा है। क्योंकि आज विभिन्न भागों में विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता,

दगो और हत्याओं की दु खद घटनाएँ हुई है। शिक्षण संस्थाओं में अनुशासन नष्ट होता जा रहा है और विद्यार्थी असमाजिक कार्यों में भाग लेने लगे है इससे स्पष्ट है कि युवकों मे जीवन मूल्यों के प्रति अधिक जागरूकता तथा चरित्र बल उत्पन्न करने की प्रबल आवश्यकता है।

परिवार, व्यवसाय,राजनीति तथा अन्य क्षेत्रों के कार्यों में प्रौढ़ों के आचरण तथा मानक मूल्यों से प्रभावित होते हैं। आज राष्ट्रीय परम्परा को समृद्ध बनाने की अपेक्षा समाज में सत्ता और संरक्षण का निग्रान प्राप्त करने के लिए सभी वर्गों के लोग आतुर है। इनका परोक्ष व अपरोक्ष रूप से बालक व बालिकाओं पर प्रभाव पड़े बगैर नहीं रह सकता।

धर्मों की विविधता हमारे राष्ट्रीय जीवन की महत्वपूर्ण विशेषता है। शिक्षित व्यक्ति भी अपने धर्म व अन्य धर्मों की जानकारी नहीं रखते। शिक्षित होकर नौकरी व उच्च पद प्राप्त करना ही हमारा ध्येय न हो अथवा हमारा ज्ञान केवल राजतंत्र द्वारा निर्धारित दण्ड संहिताओं तक ही सीमित रहेगा तो हम विशुद्ध मानवोचित संवेदना और भ्रातृत्व को स्थापित नहीं कर सकते। श्री प्रकाश ने धर्मों की शिक्षा के महत्व को स्पष्ट किया है—"धर्मों में अन्तर्निहित सामाजिक और आध्यात्मिक तत्व ज्ञान है और यदि हम उन्हें जान सके और समझ सकें, तो इसमें हमारा ही कल्याण है"[1]

आगे फिर श्री प्रकाश ने नैतिक व आध्यात्मिक शिक्षण की आवश्यकता पर प्रकाश डाला है— 'नैतिक और आध्यात्मिक मान्यताओं के शिक्षण पर हम विशेष ध्यान देना होगा। विभिन्न परिस्थितियों में, यथा परिवारों में, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में या सामान्य लोक जीवन में साधारण मनुष्य परस्पर समीप आते रहते हैं। नैतिक मान्यताओं को ठेठ बचपन से ही हमारे मस्तिष्क में बैठा देना परम आवश्यक है।"[2] जिस प्रकार नैतिक मान्यताएं मनुष्य के परस्पर सम्बन्धों को प्रभावित करती हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक मान्यताएं व्यक्ति और उसकी अन्तरात्मा को प्रभावित करती है। मुख्यतः नैतिक और आध्यात्मिक मान्यताओं द्वारा प्रतिपादित सामाजिक कर्त्तव्यों के आत्मज्ञान में ही हम भौतिक स्वार्थों से ऊपर उठ सकते है और परहित में संलग्न हो सकते है। यदि ये सद्गुण हमें बचपन से ही नहीं सिखाये जाते तो हम बड़े होकर कभी नहीं सीख सकेंगे और कालान्तर में जब विद्यार्थी व्यवहारिक जीवन में प्रविष्ट करेगा तो भ्रष्टाचार व बेइमान बनेगा क्योंकि उसने बाल्यकाल में वास्तविक निष्ठा का मूल्य नहीं समझा है।

1 श्री प्रकाश, 'भारतीय शिक्षा की समस्याएँ' (पृष्ठ 48)

2 वही („ 49)

अत धर्म में ही वह शक्ति है जो उच्च आदर्शों की स्थापना कर सकता है । संसार तक से नहीं, हृदय के आदेशों द्वारा संचालित होता है और हृदय पर प्रभाव एक विशेष पर्यावरण में विशेष स्थिति में विशेष व्यक्तियों द्वारा विशेष ढंग से कही हुई बात का ही पड़ता है । अत धार्मिक व नैतिक शिक्षा देना वांछित है क्योंकि —

(1) देश में धर्म की प्रधानता धर्म की अच्छाईयों को हृदयगम करवाना–अन्य एजेंसियों के पास व्यवस्थित साधन नहीं है ।
(2) हमारे जीवन मे भौतिकवाद बढ़ रहा है ।
(3) छात्रों मे अनुशासनहीनता, अराजकता, अशिष्टता हुल्लडबाजी बढ़ रही है ।
(4) आत्मबल और सहिष्णुता हेतु
(5) गुरू व शिष्य के सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध के लिए
(6) व्यक्तिगत स्वार्थ की बजाय अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए
(7) भ्रष्टाचार, अनैतिकता को रोकने के लिए
(8) व्यक्तित्व के सन्तुलित विकास, धर्म के भय से दूषित कार्य करने से रुकता है ।
(9) जीवन मूल्यों की अपवित्रता चोरी बलात्कारी, बेईमानी, भ्रष्टाचार को रोकने तथा पवित्रता की ओर अग्रसर करने हेतु ।
(10) अनुशासित जीवन के लिए–अशिष्टता व अराजकता की समाप्ति हेतु ।
(11) चारित्रिक विकास सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, कर्त्तव्य परायणता सहिष्णुता, दया का पाठ पढ़ाकर ।
(12) भौतिकवादियों के ,अवगुण–षडयंत्रपूर्ण व तनावपूर्ण वातावरण को समाप्तकर सामाजिक मूल्यों के अनुरूप तैयार करने हेतु प्रयत्न ।

कोठारी कमीशन (1964–66) ने भी धार्मिक व नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में समायोजित करने हेतु सिफारिश की है —

"हमारे विद्यालयीय पाठ्यक्रम का एक बहुत बड़ा दोष यह है कि उसमें सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का प्रावधान नहीं किया गया है । अधिकांश भारतवासियों के जीवन में धर्म एक अत्यधिक प्रोत्साहक एवं प्रेरणात्मक शक्ति है और वह चरित्र निर्माण तथा नैतिक मूल्यों के विकास से घनिष्ठता से सम्बन्धित है । राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली जो जन-साधारण के जीवन तथा उसकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं से सम्बन्धित है इस रचनात्मक शक्ति की उपेक्षा नहीं कर सकती । इसलिए विद्यालयों के द्वारा नैतिक शिक्षा प्रदान करने तथा आध्यात्मिक मूल्यों के निर्माण हेतु व्यवस्थित प्रयास किया जाना चाहिए ।"

इसी प्रकार श्री प्रकाश समिति (1960) में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षण के बारे में इसी ही बात पर जोर दिया है—

धर्म मूलभूत सिद्धान्तों का लोगों के हृदय से हट जाने से हमारा शिक्षा जगत व समाज में बहुत सी बुराईयों से ग्रसित है। पुराने व धन जो भिन्न भिन्न समूहों और वर्गों को एक सूत्र में बांधे हुए थे अब समाप्त हो गये हैं। बाल्यकाल से ही नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों के बारे में अध्यापन कराना ही एकमात्र समाधान है। अगर हमने उन्हें खो दिया, हम बगैर हृदय राष्ट्र के समान हो जावेंगे।'[1]

आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा की आवश्यकता

(Need of Education for Spiritual Values)

वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि हम बगैर सोचे-समझे पाश्चात्य व भौतिकवादी मूल्यों की ओर बढ़ते जा रहे हैं जो हमारी परम्पराओं व संस्कृति के प्रतिकूल है। हम अपनी शानदार आध्यात्मिक धरोहर व विरासत से बहुत दूर हो रहे हैं। इस देश में आध्यात्मिक मूल्यों के मुकाबले में भौतिक वस्तुओं को ऊंचा नहीं माना है। त्याग व वैराग्य की भावना का अनुसरण यह देश हमेशा करता आ रहा है अपने जीवन में उतारने में सफल हुए थे।

श्री प्रकाश ने इसकी आवश्यकता पर मुहर लगाते हुए लिखा है — नैतिक और आध्यात्मिक मान्यताओं के शिक्षण पर हम विशेष बल देते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में परिवारों में, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में व सामान्य नागरिक जीवन में साधारण मनुष्य सभी प्रकार रहते हैं। नैतिक मान्यताओं का विचार करने इन विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्यों का एक दूसरे के प्रति आचरण की ओर होना है।

देश की प्राचीन परम्पराओं के अनुसार आध्यात्मिक शिक्षा का पाठ्यक्रम राष्ट्र को भी पढ़ाना चाहिए। आध्यात्मिक मूल्यों का विकास भाषणों, इश्तहारों और छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के द्वारा अथवा रेडियो और सिनेमा आदि के माध्यम से सफल प्रयास होना चाहिए ताकि छात्रों में शिष्टाचार व्यवहार आसानी से विकास हो सके। आज के

1 The mamy ills that our world of Education and our Society as a whole is Suffering to day, are mainly due to the gradual disappearance of the hold of the basic principles of religion on the hearts of the people The old bonds that kept them together are fast loosening and the Various new ideologies that are coming to us are increasingly worssening the situation The only cure it seems to us is in the deliberate inculcation of moral and spiritual Values from the earliest years of our lives It we lose them,we shall be a nation without a soul"

ाज में द्वंद्व, अशान्ति, शोषण,व्यक्तिगत स्वार्थपरता से राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय स्तर भी गहरा प्रभाव पड़ा है–विश्व में घृणा व द्वंद्व का वातावरण विद्यमान है।

यह हमारे लिए दुर्भाग्य है कि आज के नवयुवक अपनी आध्यात्मिक बातों के बारे जानकारी नहीं रखते हैं, जबकि विश्व के अन्य राष्ट्रों के लिए भारतीय आध्यात्मि ा के सिद्धान्त उन्हें दिग्दर्शन के रूप में काम आ रहे हैं हमारा शिक्षा का मूल रूप उद्देश्य आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना ही होना चाहिए। इस तरह के विकास जाति व धर्म के आधार पर भेदभाव अनुचित है।

आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान न करने की स्थिति में विभूतियां नष्ट करने के साथ ने स्वार्थ में दूसरों का उपयोग स्वार्थपरता आक्रमण तथा घृणा जैसी प्रवृत्तियां का नाश संसार में हो रहा है। क्योंकि विज्ञान की प्रगति से विध्वंसक शस्त्रों का विकास रूप दो महायुद्धों में दुर्दशा हो चुकी है अतः विज्ञान के युग में सामाजिक उत्तरदायित्व ी भावना का विकास हो। शिक्षा आयोग ने कहा है कि आवश्यक मूल्यों के बिना ज्ञान तरनाक हो सकता है, 'पश्चिमी देशों की युवा पीढ़ी में सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों ी अवहेलना के कारण अनेक गम्भीर सामाजिक तथा नैतिक संघर्षों का जन्म हुआ है, ौर वहां के विद्वान अब यह चाहते हैं कि विज्ञान और तकनोलाजी द्वारा प्राप्त ान व कौशल को उन मूल्यों तथा अन्तर्दृष्टि से सन्तुलित किया जाय जो धर्म और ानिकता से सम्बन्धित है, जैसे यह खोज करना मैं कौन हूं? जीवन का क्या अर्थ है? क मनुष्य का दूसरे मनुष्य से तथा वास्तविकता से क्या सम्बन्ध है? आदि। दुसारी ंक्षा में 'मूल्यों' के शिक्षण आवश्यक है। 'यह मनुष्य पर निर्भर है कि वह उन मानवता े हीन बातों को स्वीकारे या आध्यात्मिक मूल्यों से ओत प्रोत हो। इस प्रकार ...ण्ड रसल ने कहा है – 'नैतिक आधार व आध्यात्मिक मूल्यों से विनाश नहीं ... अस्तित्व में विश्वास पैदा करता है।''इंग्लैण्ड की न्यू सम रिपोर्ट (New Som Report, 1963) के अनुसार—' विशिष्ट धार्मिक शिक्षा प्रदान करना, जो केवल नैतिक शिक्षा ही न हो, विद्यालय का कर्तव्य है।''

धर्म निरपेक्षता और धर्म (Secularism and Religion)[1]

(अ) धर्म निरपेक्षता धर्महीन या धर्म विरोधी नहीं —धर्म निरपेक्ष नीति अपनाने का अर्थ यह है कि राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक मामलों में,सभी नागरिकों को, वे चाहे किसी भी धर्म के चाहने वाले हों समान अधिकार प्राप्त होंगे, किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय के साथ न तो पक्षपात किया जाएगा और न ही उनके साथ भेद

1 कोठारी, डी एस., "शिक्षा आयोग की रिपोर्ट' (पृ 22 से 25)

भाव किया जाएगा, और राज्य की स्कूलों म धार्मिक सिद्धान्तो की शिक्षा नही दी जाएगी। किन्तु यह नीति धमहीन हो धम विरोधी नहो है, यह धम की महत्ता को भी कम नही करती है। यह प्रत्यक नागरिक को अपने धम को मानन तथा उपासना करने की पूरी स्वतन्त्रता देती है। वह विभिन धार्मिक सम्प्रदायो म अच्छे सम्ब य सुनिश्चित करने के साथ ही साथ न केवल धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा देना चाहती है अपितु सभी धर्मों के लिए सक्रिय आदर का भी प्रोत्साहन करना चाहती है।

(ब) धार्मिक शिक्षा' और 'धर्मों के बारे में शिक्षा' में भेद – धार्मिक शिक्षा का सम्बन्ध तो अधिकाश किसी धम विशेष के सिद्धान्त एव अचार की उसी रूप म शिक्षा देने से होता है जो कि सम्बन्धित धार्मिक सम्प्रदाय द्वारा परिकल्पित हो किन्तु 'धर्मों के बारे म शिक्षा' तो एक व्यापक दृष्टिकोण-आत्मा की अनन्त खोज-से धर्मों वाले धम निरपेक्ष राज्य के लिए यह व्यवहार्य नहीं होगा कि वह किसी एक धम की शिक्षा दे धम का कोई स्पष्ट ज्ञान न होने से लोकतन्त्र के विकास के लिए खतरा है जिसम सहिष्णुता को महत्वपूर्ण समझा जाता है। अत वे मोटे तौर पर तुलनीय जिन नतिक और आध्यात्मिक मूल्या के निर्माण पर जोर देते है उसे भी प्रकाश मे लाए। उसमे ऐसी कोई बात शामिल नही की जाय जिस पर कोई भी धार्मिक सम्प्रदाय उचित आपत्ति उठा सके।

(स धम निरपेक्षता सपूर्ण मानव की आवश्यकताओ की पूर्ति का साधन — विज्ञान के उस जीवन अध्ययन से, जिसम उदार मन होने सहिष्णुता और वस्तु निष्ठता पर जोर दिया गया है, अन्त म जाकर विभिन्न धर्मावलम्बियों मे और भी अधिक धम निरपेक्ष दृष्टिकोण का विकास होगा, ठीक उसी अर्थ मे जिसमे कि हम धम निरपेक्ष शब्द का प्रयोग करते हैं डॉ इकबाल के शब्दो म आत्मा अपने विकास का अवसर भौतिक प्राकृतिक तथा धम निरपेक्ष जगतो म पाता है। इसलिए जिसकी जडो म ही धम निरपेक्षता है वह पवित्र है। भारत को विज्ञान तथा आत्मा सम्बन्धी मूल्यो को निकट एव सगति म लाने की कोशिश करनी चाहिए जिससे सम्पूर्ण मानव की पूर्ति करेगा न कि व्यक्तित्व के किसी खड विशेष की।

अत स्पष्ट है कि धम निरपेक्षता और धम या आध्यात्मिक मूल्या मे कोई आपसी द्वन्द्व नहीं है। यदि कोई कमी है तो हमारी शिक्षा-पद्धति की है जिसे हमे अविलम्ब परिवतन करना चाहिए। इसकी पूर्ति धार्मिक आध्यात्मिक या जीवन के उच्च मूल्या की शिक्षा प्रदान कर ही सकते है।

आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों की शिक्षा कैसे दी जाय
(How to Impart Education in Moral & Spiritual Values)

श्री प्रकाश ने राज्य सरकारों द्वारा शालाओं में शारीरिक, व्यायाम, खेलकूद तथा मनोरंजनात्मक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रति अधिक रूचि दिखाकर नैतिक मान्यताओं कि शिक्षा देने का विस्तृत कार्य क्षेत्र बताया है। चरित्र और अनुशासन के विकास में इन कार्यक्रमों का प्रभावकारी उपयोग करना चाहिए। मुख्य निष्कर्ष यहाँ दिये जाते है। —

(1) शिक्षा संस्थाओं में नैतिक और आध्यात्मिक मान्यताओं की शिक्षा वांछनीय है और कुछ सीमाओं में रहते हुए इसका विशेष प्रबन्ध सम्भव है।

(2) महान् धार्मिक मार्ग देशकों की जीवनी और उपदेशों की तुलनात्मक तथा संवेदनशील अध्ययन को शिक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लेना चाहिए। शुद्ध आचरण, समाज सेवा और सच्ची देशभक्ति का सभी स्तरों पर निरन्तर महत्व देते रहना चाहिए।

(अ) हम समझते है कि यह नितान्त महत्वपूर्ण है कि किसी भी शिक्षा व्यवस्था में घर-परिवार की उपेक्षा न की जाये और हमारा सुझाव है कि इश्तहारों, वार्ताओं, रेडियो और सिनेमा जैसे व्यापक माध्यमों से तथा स्वयं सेवी संगठनों के द्वारा घर-परिवार की लौकिक व्यवस्था और मनोवैज्ञानिक वातावरण की कमियों और कमजोरियों का प्रकट कर देना चाहिए तथा यह भी बताना चाहिए कि इनको किस प्रकार मिटाया जाये। यदि यह कार्य निष्पक्ष दृष्टि से किया जाता है तो इससे किसी को चोट नहीं पहुँचेगी वरन् सम्बन्धित व्यक्तियों का ध्यान अपनी कमियों की ओर आकर्षित होगा और इस प्रकार वे उन्हें मिटाने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित होंगे।

(आ) यह अत्यंत वांछनीय है कि समस्त शिक्षा संस्थाओं में प्रतिदिन कुछ समय के लिए मौन चिन्तन से कार्य प्रारम्भ किया जाये, चाहे वह कक्षाओं में हो या सभा-भवन में हो। कोई एक प्रार्थना भी की जा सकती है जो न तो किसी देवता की स्तुति में हो या उससे कोई वरदान मांगने की दृष्टि से हो, वरन् वह आत्म संयम तथा आदर्श आस्था के प्रति प्रेरित करने वाली हो। कभी कभी इन सामूहिक सभाओं में धार्मिक और लोकपरक महान् साहित्य के प्रेरणादायक उद्धरण जो संसार के सभी धर्मों और संस्कृतियों से सम्बन्धित हो, पढ़े जाए। इनका लाभ होगा। स्कूल स्तर पर प्रेरणादायक भजनों और स्तोत्रों का सामूहिक गान भी बड़ा प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है।

श्री प्रकाश "भारतीय शिक्षा की समस्याएँ" (पृ 53-57)

(इ) प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय के स्तर तक उपयुक्त पुस्तकें तैयार कराई जाएँ। इनमें तमाम धर्मों के मूलभूत विचारों का तथा सभी धर्मों के महात्माओं, सन्तों, मनीषियों और दार्शनिकों की जीवनियों और उपदेशों के सारांश का तुलनात्मक तथा संवेदनशील संक्षिप्त वर्णन हो। ये पुस्तकें स्कूलों और कालेजों की विभिन्न कक्षाओं के अलग-अलग आयु-वर्ग के विद्यार्थियों के अनुकूल होनी चाहिए और सभी को इनका अध्ययन करना चाहिए। उपयुक्तता के लिए कविताओं तथा संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं से उपयुक्त उद्धरणों का संग्रह बनाया जाए। इन प्रकाशनों से उन्हें उचित शिक्षा और तन्मयता सच्ची बुद्धिमानी प्राप्त हो सकेगी। इनसे वे यह भी जान लेंगे कि उनका अपने प्रति तथा दूसरों के प्रति क्या कर्तव्य है? शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए उपयुक्त पुस्तकें तैयार कराई जानी चाहिए जिनसे विद्यार्थियों के मन में देशभक्ति और समाज सेवा की भावना जगायी जा सके। इनमें साहसिक कार्यों और राष्ट्रहित तथा परहित के लिए आत्म-त्याग पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। हमारी दृष्टि में ऐसी पुस्तकों के आयोजन प्रकाशन का बड़ी महत्ता है। ऐसी पुस्तकों के लेखकों का चयन बड़ी सावधानी और सतर्कता से करना चाहिए और सम्बन्ध अधिकारियों के परामर्श से उनकी पाण्डुलिपियों का संशोधन करा लेना चाहिए। ऐसी पुस्तकों के निर्माण और वितरण का समस्त कार्यक्रम केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय के तत्वावधान में किसी एजेन्सी द्वारा होना चाहिए।

(ई) पाठ्येतर कार्यक्रमों के अन्तर्गत पारस्परिक धार्मिक सद्भाव पर वार्ताओं के लिए विद्वान एवं अनुभवी व्यक्तियों को आमन्त्रित करना चाहिए। नैतिक और आध्यात्मिक मान्यताओं के अध्ययन में रुचि उत्पन्न करने के लिए नैतिक प्रवचनों और सामूहिक वाद विवादों का आयोजन किया जा सकता है।

(उ) शिष्ट आचरण की शिक्षा पर विशेष बल दिया जाना चाहिए और श्रद्धा और सौजन्य के गुणों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उत्तरी भारत में मुस्लिम मौलवियों जैसे शिक्षकों के द्वारा परम्परागत साधनों से समुचित शिष्टाचरण की शिक्षा दिलाने को प्रोत्साहित करना चाहिए। एक तरह से सभी को कंधे से कंधा मिलाकर इस काम के लिए जिहाद बोलना चाहिए और शिष्ट आचरण तथा सौजन्य की भावना की उन्नति के लिए कोई कोर कसर उठाकर नहीं रखनी चाहिए।

(ऊ) प्रत्येक स्तर पर किसी न किसी प्रकार की व्यायाम शिक्षा को अनिवार्य बना देना चाहिए। शेर बच्चे और बालचर से लेकर एन सी सी और एन सी सी तक यह विभिन्न वर्गों में विभाजित की जा सकती है। खेल-कूद को बढ़ावा मिलना चाहिए

ग्रौर विद्यार्थियो को अपने हाथ से काम करने की गरिमा तथा समाज सेवा की भावना सिखानी चाहिए। आजकल बहुत कम विद्यार्थी इन कार्यक्रमो म भाग लेते हैं। हमारी सम्मति म सभी को इस प्रकार के किसी न किसी कार्यक्रम म भाग लेना चाहिए ताकि वे सहयोग ग्रौर निष्पक्ष खेल खिलाडी की भावना को ग्रहण कर सक।

(ए) यह उपर ही कहा जा चुका है कि शिक्षा संस्थाओ मे नैतिक और आध्यात्मिक मान्यताओ की शिक्षा वाछनीय है और निश्चित सीमाओ म इसके शिक्षण का विशेष प्रबन्ध भी किया जा सकता है सीमाएँ प्रत्यक्ष हैं। संविधान के मूल अभिप्राय का आदर करना चाहिए तथा विभिन्न धार्मिक समुदायो की भावनाओ की अवहेलना नही करनी चाहिए। पाठ्यक्रम पहले से ही काफी बोझल है ग्रौर उपयुक्त अध्यापक सुगमता से प्राप्य नही है। ऐसे समाज मे जहा कई प्रकार के धर्म प्रचलित हो ग्रौर जहा पर धार्मिक ग्रावेशो का सुगमता से उत्तेजित किया जा सकता है राज्य सरकार के लिए नैतिक और आध्यात्मिक मान्यताओ की शिक्षा के पाठ्यक्रम को निर्धारित करने मे बडी सावधानी बरतनी होगी। इस शिक्षा से विद्यार्थी उदार बने, परस्पर भाई चारा बढे विभिन्न मतो के लोगो मे एक–दूसरे के प्रति आदर भाव उत्पन्न हो, राष्ट्रीय एकता स्थापित हो। मुख्य बात यह है कि हमारी नयी पीढी के सामने जीवन का कोई महान् आदर्श प्रस्तुत किया जाये और यह आदर्श उनमे ऐसा समा जाये कि जब वे अपनी शिक्षा समाप्त कर चुके तो यह उनके शरीर और आत्मा का एक अभिन्न अग हो जाय। हमारे सामने यही समस्या है कि यह सब किस प्रकार किया जाय।

आध्यात्मिक शिक्षा के लिए रूपरेखा —

यहाँ पर शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर नैतिक ग्रौर आध्यात्मिक मान्यताओ के शिक्षण के लिए सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत की जाती है।

प्राथमिक स्तर

(1) सामूहिक गान के लिए प्रतिदिन सबसे पहले विद्यालय के सभी विद्यार्थी एकत्र होने चाहिए।

(2) पैगम्बरो, सन्तो ग्रौर धार्मिक मार्गदर्शको के जीवन और उपदेशो से सम्बन्धित सरल ग्रौर रोचक कहानियो का भाषा–शिक्षण के पाठ्यक्रम मे सम्मिलित करना चाहिए।

(3) जहा तक सम्भव हो बालक की अभिरुचि श्रव्य द्रव्य सामग्री के प्रति आकृष्ट किया जाये विशेषतया अच्छे किस्म के फोटो, फिल्म, रंगीन चित्र आदि के विषय मे जिनम ससार के चेतनशील मुख्य–मुख्य धर्मो से सम्बन्धित कला ग्रौर वास्तुशिल्प

की सुन्दर कृतियाँ हों। ऐसी सामग्री को भूगोल के शिक्षण में भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

(4) विद्यालय के कार्यक्रम में प्रति सप्ताह दो घण्टे नैतिक शिक्षा के लिए अलग से नियत कर देना चाहिए। इन कक्षाओं में अध्यापक को संसार के सभी महान् धर्मों से संकलित रोचक कहानियाँ सुनानी चाहिए और उनके नीति वचनों को स्पष्ट करना चाहिए। हठधर्मी और धार्मिक कर्मकाण्डों का नैतिक शिक्षा में कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

(5) विद्यालय के कार्यक्रम में सेवाभाव और धर्मोपासना की प्रवृत्ति विकसित की जानी चाहिए।

(6) व्यायाम शिक्षा तथा सभी प्रकार के खेलों के आयोजन से चरित्र का निर्माण होना चाहिए और खेलकूद में निष्पक्ष भावना को विद्यार्थियों के मन में बिठला देना चाहिए।

माध्यमिक स्तर

(1) प्रातःकालीन प्रार्थना में दो मिनट का मौन रखा जाय। तदुपरान्त धर्म-ग्रन्थों या संसार के महान् साहित्य में से कुछ अंश पढ़कर सुनाये जाएँ या कोई समयानुकूल वार्ता हो। सामूहिक गान को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(2) संसार के महान् धर्मों के सारभूत उपदेशों का सामाजिक तथा इतिहास के पाठ्यक्रम के एक अंग के रूप में अध्ययन किया जाना चाहिए। विभिन्न धर्मों से सम्बंधित सरल मूल पाठ और आख्यानों का भाषा के शिक्षण तथा सामान्य पठन-पाठन में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

(3) प्रति सप्ताह एक घण्टा नैतिक शिक्षा के लिए नियत कर देना चाहिए। अध्यापक को कक्षा में विचार-विमर्श की आदत को प्रोत्साहित करना चाहिए। नियमित कक्षा शिक्षण के अतिरिक्त उपयुक्त वक्ताओं को नैतिक और आध्यात्मिक मान्यताओं पर वार्ता के लिए आमन्त्रित करना चाहिए। सभी धर्मों के मुख्य त्योहारों पर सम्मिलित उत्सवों का आयोजन किया जाये। अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का ज्ञान तथा परिवाद अनेक सत्यापकों के प्रति श्रद्धा को निबन्ध प्रतियोगिताओं और भाषणों जैसे विभिन्न साधनों से प्रोत्साहित करना चाहिए।

(4) छुट्टियों में अथवा विद्यालय के समय के बाद संगठित समाज सेवा पाठ्येतर कार्यक्रमों का विशिष्ट अंग होना चाहिए। ऐसी सेवा श्रम-श्रद्धा, मानव प्रेम, देश भक्ति तथा आत्म-संयम का पाठ पढ़ाती है। खेलकूद में भाग लेना अनिवार्य कर देना चाहिए

व्यायाम शिक्षा और यौन स्वास्थ्य विज्ञान को विद्यालय के कायक्रम का सामान्य
ाना दना चाहिए। विद्यार्थियो का आचरण तथा चरित्र का गुण उनके विद्यालय
ाय के सम्पूण मूल्यांकन का विशिष्ट भाग होना चाहिए।

श्वविद्यालय स्तर

(1) प्रात समय विद्यार्थियो को समूहो म मौन चि तन के लिए प्रोत्साहित करना
ए। इनका किसी वरिष्ठ अध्यापक द्वारा स्वेच्छा से निरीक्षण किया जाना चाहिए।

(2) विभिन्न मतो का सामान्य अध्ययन स्नातक कक्षाओ के सामान्य-शिक्षा
क्रम का प्रमुख अग होना चाहिए। इस सम्बन्ध मे विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग
निम्नलिखित सस्तुतियां प्रस्तुत की जाती है—

(क) स्नातक पाठ्यक्रम क प्रथम वर्ष मे भगवान बुद्ध, कन्फूशियस, अरस्तु, सुकरात
शंकराचाय, रामानुज, माधव मुहम्मद कबीर नानक और गांधीजी जैसे महान्
क तथा आध्यात्मिक नेताओ की जीवनी पढानी चाहिए।

(ख) धम-ग्रन्थो के विश्व सम्मत उद्धरणो का द्वितीय वष मे अध्ययन किया
ा चाहिए।

(ग) तृतीय वर्ष मे धमशास्त्र की मूल समस्याओ पर विचार विमश करना
इए। इस प्रकार के अध्ययन के लिए उन विशेषज्ञो से प्रामाणिक ग्र थ तैयार कराने
इए जिन्हे धार्मिक विषयो का गहरा ज्ञान और विवेक हो।

(3) स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के लिए धम के तुलनात्मक अध्ययन क लिए प्रब ध
ा चाहिए। ओनस और एम ए के पाठ्यक्रम मे ह्यूमनिटीज और सामाजिक विषयो
ध्ययन के लिय निम्नलिखित विषयो पर आवश्यक बल दिया जाना चाहिए-(क)
ास्त्रो का तुलनात्मक अध्ययन, (ख) धमशास्त्रो के इतिहास का अध्ययन।

(4) सभी विश्वविद्यालयो मे काफी लम्बे समय तक समाज सेवा करानी चाहिए
समाज सेवा को सगठित और व्यावहारिक रूप देने के लिए नैतिक और आध्यात्मिक
ताओ का ज्ञान और उन पर आचरण करने पर बहुत ध्यान देना चाहिए।

धार्मिक शिक्षा के प्रसग मे प्रमुख शिक्षा आयोग के विचार —

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1948 — अतीत मे धम का सम्प्रदाय मान
ा गया अत जिन्होने इस धम रूपी सम्प्रदाय के दुष्परिणाम देख, सुने या पढे वे
के विरोधी हो गये। पर विशुद्ध भौतिकवाद का राज्य के दशन के रूप मे स्वीकार
ना भारत के स्वभाव के विपरीत होगा। भारतीय दृष्टिकोण धम के बारे म जो
ा है और धमनिरपेक्षता मे कोई भेद नही। भारतीय धार्मिक परम्परा का आधार
ानुभूति व आध्यात्मिक प्रशिक्षण पर आधारित है जिसमे जिज्ञासा उत्प न होती है
र स्वतन्त्रता देती है। दूसरे धर्मो का उतना ही आदर देना है जितना अपने धम को।

"एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋग्वेद) ऋग्वेद मे कहा गया है कि सत्य एक है, पर विद्वान उसे विभिन्न नामो से पुकारते हैं। हमारे संविधान के आधारभूत सिद्धान्ता की मांग है कि जनता को आध्यात्मिक प्रशिक्षण दिया जाय। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धार्मिक दृष्टि से अप्रशिक्षित होना नही बल्कि गम्भीर रूप से आध्यात्मिक होना है।

आयोग ने धार्मिक शिक्षा को प्रभावी बनाने हेतु सुझाव दिए हैं —

(1) धार्मिक शिक्षा का उद्देश्य है मानव हृदय का विकास तथा सदाचार के उच्च संस्कार डालना।

(2) विद्यालय मे शान्तचिन्तन से कार्य प्रारम्भ करना।

(3) महापुरुषो की जीवनियां, जीवन की घटनाएँ, वे कहानियां जो महान् नैतिक और धार्मिक नियमो पर आधारित हो।

(4) महापुरुषो के विचारो के अध्ययन से विचारो मे दृढ़ता एवं सद्विचारो मे आस्था मजबूत होगी।

(5) विभिन्न समुदायो के धार्मिक साहित्य का अध्ययन किया जाय।

(6) डिग्री कक्षा के प्रारम्भिक वर्ष मे बुद्ध, कन्फ्यूसियस, सेक्रेटीज, जीसेस, शंकर मोहम्मद, कबीर, नानक, गांधी आदि का ज्ञान देना।

(7) डिग्री के दूसरे वर्ष मे संसार के विभिन्न धर्मों के सामान्य तत्वो का ज्ञान देना।

(8) तीसरे वर्ष मे छात्रो का धर्म के दर्शन पर विचार करना चाहिए और नई दुनिया के लिए उसके संदेश को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) – इस आयोग ने 'धार्मिक नैतिक शिक्षा' के बजाय 'चरित्र की शिक्षा' की चर्चा की है।

(1) सामूहिक प्रार्थना और प्रेरणापूर्ण प्रवचनो की व्यवस्था।

(2) शालाओ मे नियमित धार्मिक व नैतिक शिक्षा के स्थान पर घर समाज तथा विद्यालय के वातावरण को श्रेष्ठ बनाने के प्रयास बताये हैं जिससे चरित्र निर्माण मे सहयोग मिलेगा।

भावात्मक एकता समिति (1962) — डॉ सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता मे गठित भावात्मक एकता समिति ने अपना प्रतिवेदन सन् 1962 मे सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया इस समिति ने बालको में राष्ट्रीय व भावात्मक एकता के विकास के लिए उन्हे धार्मिक व नैतिक शिक्षा प्रदान करने की बात कही। इस समिति ने जिस प्रकार की धार्मिक व नैतिक शिक्षा का प्रस्ताव दिया, वास्तविक रूप से वह धार्मिक व नैतिक शिक्षा न होकर चारित्रिक शिक्षा थी। भावात्मक एकता समिति का विचार था कि बालको के चारित्रिक विकास के लिए धार्मिक व नैतिक शिक्षा अपरिहार्य है।

शिक्षा आयोग (1964-66) व धार्मिक एव नैतिक शिक्षा

कोठारी समिति ने आधुनिककरण पर जोर दिया है ताकि देश का आधुनिकीकरण हो लेकिन उसका तात्पय यह नहीं है- "हमारे राष्ट्रीय जीवन म नतिक, आध्यात्मिक एव आत्मानुशासन के मूल्यो के निर्माण के महत्व को पहचानने से इन्कार कर दिया जाये। आधुनिकरण यदि जीवन्त शक्ति है तो इसे आत्मा से शक्ति प्राप्त करनी होगी।'

'स्वभावत व्यक्ति की प्रेरणा एव मूल्या के अवबोध पर निभर करता है कि वयक्तिक सन्तोष के लिए एव भावी कल्याण के लिए इन मूल्यो को ग्रहण करे ।"

'नई पीढी मे सामाजिक एव नैतिक मूल्यो की दुर्बलना पश्चिमी समाज मे अनेक गम्भीर सामाजिक और नतिक सघर्षो को उत्पन्न कर रही है। पाश्चात्य विचारक यह अनुभव करने लगे हैं कि ज्ञान एव कौशल मे सतुलन हो, विज्ञान तथा तकनीक को नतिकता तथा धम से सम्बधित किया जाए। जीवन का अथ जाना जाए। मानव मात्र क सम्बन्धा का ज्ञान हो एव वास्तविक सत्य का उद्घाटन हो।"

कोठारी कमीशन ने राष्ट्र विकास के लिए आध्यात्मिक, नतिक तथा सामाजिक मूल्यो का प्रत्यक्षण आवश्यक बतलाया हैं। कमीशन के अनुसार— "शिक्षा पद्धति को सामाजिक नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यो का निर्माण करने म इस प्रकार सहयोग देना चाहिए।'

(1) केन्द्र तथा राज्य सरकारो द्वारा सभी शिक्षण सस्थाओ म नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षा की व्यवस्था की जाए। यह शिक्षा राधाकृष्णन् कमीशन द्वारा सुझाये गए पाठ्यक्रम के अनुसार दी जाए।

(2) निजी सस्थाओ म भी इन सुझावो के अनुसार नैतिक,सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षा दी जाए।

(3) पृथक कालांश की व्यवस्था व पृथक-पृथक शिक्षक हो।
अन्य विषयो के पढाने वाले अध्यापक ही इस विषय को पढ़ावें।

(4) शिक्षक अच्छे आदर्श प्रस्तुत करें।

(5) विश्वविद्यालय के तुलनात्मक धर्म विभाग ऐसी विधियां खोजे जिनके द्वारा मूल्य प्रभावी ढग से विकसित किए जा सके।

(6) प्रमुख धर्मों के बारे में आवश्यक जानकारी देन वाली पुस्तके तयार की जाए जो या तो नागरिकता के पाठ्यक्रम के अग हो या सामान्य शिक्षा का अग। ऐसी पुस्तक राष्ट्रीय स्तर पर तैयार की जा सकती है।

धार्मिक शिक्षा और भारतीय विद्यालय,

शालाओं मे धार्मिक शिक्षा पर पर्याप्त बल देने के लिए राधाकृष्णन् आयोग, मुदालियर आयोग तथा कोठारी आयोग ने सिफारिश की है लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से अभी तक महत्व प्राप्त नहीं हो पाया है। राज्यो के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने इस नैतिक शिक्षा क रूप म समावेश तो किया है परन्तु यह बहुत ही सीमित, अनुपयुक्त एव अव्यवहारिक है। शिक्षक व छात्र दोनो ही रूचि नही लेत क्योकि यह परीक्षा हेतु विषय नहीं रखा गया है और 'परीक्षा क द्रोत' शिक्षा व्यवस्था म इसका उपक्षित होना स्वाभाविक है।

देश म मिसनरी स्कूल या अन्य निजी सस्थाओ म अप्रत्यक्ष रूप से धार्मिक वातावरण आध्यात्मिक एव नतिक मूल्यो का विकास करता है लेकिन उनका दृष्टिकोण सकुचित होता है जो देश म साम्प्रदायिकता के बीज बोते है।

देश मे धम निरपेक्षता क सकुचित अथ को लेकर शिक्षा प्रशासन भयभीत है, वे आध्यात्मिक एव नैतिक मूल्यो की शिक्षा पर ध्यान आकर्षित नही करते क फलस्वरूप इसके अभाव म देश के लोगो का व्यक्तिगत एव सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त होता जा रहा है। देश मे प्रगति की आड म अनक सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक व व्यक्तिगत जीवन की समस्याए बढ़ती ही जा रही है। अत इस ओर राजनेता, शिक्षाविदो व सामजिक कार्यकर्ताओ को सहकारिता के आधार पर ठोस कदम उठाने की परम आवश्यकता है।

(ब) नैतिक शिक्षा

नतिक शिक्षा का भारत मे सदव ही महत्व रहा है। शिक्षा की सकल्पना एव उद्देश्यो का विवचन करते हुए पूर्व मे स्पष्ट किया जा चुका है कि प्राचीन भारत म शिक्षा और धम का सम्बध घनिष्ट रहा है तथा शिक्षा का उद्देश्य नतिक एव धार्मिक जीवन-यापन करते हुए मोक्ष प्राप्त करना था। पाठक व शर्मा क शब्दो म—"भारत म शिक्षा और धम का सम्बध प्राचीन काल मे बहुत घनिष्ट था। उस समय बिना धम के शिक्षा का कुछ महत्व नहीं था। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को धार्मिक बनाकर मोक्ष तक पहुचा देना था। तभी उस समय का यह एक पवित्र नारा था कि विद्या वही है जो मुक्ति की ओर ले जाय— सा विद्या या विमुक्तये 'आत्मानम् विद्धि' अर्थात् आत्मा को जानो। आत्मा और परमात्मा का ज्ञान मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य था और इस लक्ष्य की प्राप्ति विद्या द्वारा होती थी। 1

1 एम पी पाठक व श्रीमती एम डी शर्मा—भारतीय शिक्षा की तत्कालीन समस्याएँ (पृष्ठ 340)

नैतिक शिक्षा की यह समसमन्वित सकल्पना भारतीय संस्कृति का अभिन्न अग थी। कालांतर मे पराधीनता के कारण देश मे नैतिक ह्रास हुआ और इसका कारण रहा शिक्षा मे नैतिक एव सांस्कृतिक मूल्यो का अभाव तथा उनके प्रति उपेक्षा। यह नैतिक ह्रास आज अपनी चरम सीमा पर पहुच गया है। राजस्थान मे प्राथमिक एव उच्च प्राथमिक कक्षाओ मे सत्र 1981–82 से अनिवार्य रूप से लागू की गई नैतिक शिक्षा हेतु प्रकाशित 'नैतिक शिक्षा उपागम' निर्देशिका में यह तथ्य स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि—"आज देश के सभी वर्गों, व्यवसायो और तबका के लोग अनुभव करते हैं कि हमारे जीवन मे नैतिक मापदण्ड शिथिल हो रहे हैं। अनैतिक कार्यों के विरोध का भाव भी लोगो मे से घटता जा रहा है। सामान्य जन-जीवन मे नैतिक जीवन जीने का भाव भी लोगो मे से घटता जा रहा है।"[1] नैतिक मूल्यो के ह्रास की उन परिस्थितियो मे देश के भावी नागरिको के निर्माण हेतु नैतिक शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। प्रस्तुत अध्याय मे नैतिक शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर विचार किया जायेगा।

नैतिक शिक्षा का अर्थ

रवीन्द्र अग्निहोत्री ने नैतिक शिक्षा का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि—नैतिकता शब्द नी धातु से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है ले चलना'। मानवीय सम्बन्धो का निर्वाह जिसके द्वारा हो उसे 'नीति' कहते हैं। इसी आधार पर एक विद्वान ने धर्म और नीति का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि आत्मा और परमात्मा के सबधो की चर्चा धर्म के अन्तर्गत आती है तथा सामाजिक व्यवहार के नियमो की चर्चा नीति के अन्तर्गत की जाती है। अग्रेजी मे भी 'Moral' का अर्थ है Relating to principles of right and wrong in behaviour' अर्थात् व्यवहार में उचित अनुचित का विवेक करने वाले सिद्धान्त।" धर्म के दो पक्षो— आचार और अनुष्ठान-का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। आचार नैतिकता का ही पर्याय है। नैतिकता वांछित सामाजिक आचरण या व्यवहार का द्योतक है।[2]

शिक्षा के वैयक्तिक एव सामाजिक उद्देश्यों की चर्चा करते समय पूर्व मे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि शिक्षा द्वारा मनुष्य के वैयक्तिक एव सामाजिक आचरण या व्यवहार का इस प्रकार निर्माण किया जाता है कि वह समाज एवं राष्ट्र का योग्य नागरिक बन सके। एक योग्य नागरिक से समाज-सम्मत व्यवहार की अपेक्षा की जाती है तथा साथ ही उससे यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह अपने सुसंस्कृत

1 नैतिक शिक्षा–उपागम' ('नया शिक्षक —अक्टूबर-दिसम्बर 1981 पृ 85 85)
2 रवीन्द्र अग्निहोत्री : भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ (पृ 261)

प्रबुद्ध व्यक्तित्व एवं चरित्र से समाज के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में योगदान करे। व्यक्तित्व एवं चरित्र का निर्माण नैतिक शिक्षा का लक्ष्य है। नैतिक शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में समायोचित आदतों एवं व्यवहार का विकास किया जाता है जो देश की संस्कृति एवं राष्ट्रीय आदर्शों पर आधारित हो। नैतिक शिक्षा जहां एक ओर चारित्रिक गुणों का विकास करती है वहीं दूसरी ओर वह लोकतंत्र समाजवाद धर्म निरपेक्षता विज्ञानाधारित आधुनिकीकरण राष्ट्रीय एकता, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव आदि राष्ट्रीय लक्ष्यों के अनुकूल नये समाज की स्थापना में सहायक अभिरुचियों, अभिवृत्तियों एवं कौशलों का विकास भी करती है। आधुनिक परिवेश में नैतिक शिक्षा का अर्थ काफी व्यापक हो गया है जिसमें वैयक्तिक एवं सामाजिक व्यवहार के विकास तक ही सीमित न रहकर उसकी परिधि में समस्त समाजवादी एवं विश्व बंधुत्व की अभिवृत्तियों का विकास भी आ जाता है।

नैतिक शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व –

जैसा कि अभी हम देख चुके हैं आधुनिक युग में जब कि नैतिकता का ह्रास हो रहा है तथा शिक्षा में नैतिक शिक्षा की उपेक्षा के कारण विद्यार्थियों में उच्छृंखलता एवं अराजकतावादी प्रवृत्तियाँ पनप रही हैं नैतिक शिक्षा की आवश्यकता शिक्षा संस्थाओं में तीव्रता से अनुभव की जा रही है। आज के सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक तथा शैक्षिक परिवेश में चारित्रिक गुणों का तेजी से विघटन हो रहा है, अतः देश के भावी नागरिकों के निर्माण हेतु तथा राष्ट्रीय लक्ष्यों के अनुकूल समाज के पुनर्निर्माण हेतु नैतिक शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है।

अंग्रेजों से विरासत में मिली शिक्षा व्यवस्था में धर्मनिरपेक्षता के नाम पर जिस प्रकार नैतिक शिक्षा का निर्वासन हुआ, उसी गति से विद्यार्थियों के चरित्र में गिरावट आती गई धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्महीनता कदापि नहीं होता। रवीन्द्र अग्निहोत्री के शब्दों में – धर्म नीति का निर्धारण करता है। धर्म नैतिकता की पूर्व आवश्यकता है। अतः धर्म कारण है नैतिक व्यवहार उसका परिणाम है।[1] धर्मनिरपेक्षता के अनुसार परस्पर एक दूसरे के धर्मों के प्रति आदर एवं सद्भाव रखते हुए सभी धर्मों के आधारभूत नैतिक मूल्यों पर आधारित, नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए यह मत शिक्षाविद् एवं शिक्षा आयोगों ने समय-समय पर प्रकट किया है।

नैतिक शिक्षा का महत्व प्रकट करते हुए डॉ राधाकृष्णन् विश्वविद्यालय आयोग (1948) ने कहा है कि "हमारे संविधान के आधारभूत सिद्धान्तों की माँग है कि जनता को आध्यात्मिक प्रशिक्षण दिया जाए। धर्म निरपेक्ष होने का अर्थ धार्मिक दृष्टि से

1 पूर्वोद्धृत-पृ 261।

प्रशिक्षित होना नही है, बल्कि गभीर रूप में आध्यात्मिक होना है।"1 मुदालियर माध्यमिक शिक्षा आयोग (1953) ने भी नैतिक शिक्षा का महत्व स्वीकार किया है—'धार्मिक व नैतिक शिक्षा भी चरित्र के विकास मे यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राज्य का धर्म निरपेक्ष होने का यह अर्थ नही है कि राज्य मे धर्म का कोई स्थान नही है। 2 कोठारी शिक्षा आयोग (1966) का मत है कि —'यदि आधुनिकीकरण को एक जीवन शक्ति होना है तो उसे आत्मा की शक्ति से अपनी शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। आधुनिक समाज का हमें जो ज्ञान का विस्तार और बढती हुई शक्ति मिलती है उसका सयोग इस कारण सामाजिक उत्तरदायित्व की सुदृढ तथा गहरी होती हुई भावना तथा नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के उत्पुक्तापूर्ण गुण-ग्रहण के साथ होना चाहिए। हम अपनी शिक्षा प्रणाली को उचित रूप से मूल्य युक्त करें।"3 पाठ्यचर्या के संदर्भ मे भी कोठारी शिक्षा आयोग ने नैतिक शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डाला है—'स्कूल पाठ्यचर्या मे एक गभीर त्रुटि यह है कि उसमे सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा की व्यवस्था नही की गई है। अधिकाश भारतीयों के जीवन मे धर्म एक बडी अभिप्रेरण शक्ति के रूप मे विद्यमान है और चरित्र के निर्माण तथा नैतिक मूल्यों की शिक्षा से उसका आतरिक सबध है। एक ऐसा राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रम जो लोगो के जीवन आवश्यकताओ और अभिलाषाओ से सबधित हो इस उपयोगी शक्ति की उपेक्षा नही कर सकता। इसलिये हमारी सिफारिश है कि जहा कही सभव हो बडे-बडे धर्मों के नीति सबधी उपदेशो की सहायता से सामाजिक नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षा देने का जागरूक और सगठित प्रयत्न किया जाये।' 4

अत नैतिक शिक्षा की आवश्यकता एव महत्व को देखते हुए अब शिक्षा सस्थाओं मे इसकी व्यवस्था करने की ओर जनसाधारण एव सरकार की जागरूकता प्रकट हो रही है। राजस्थान राज्य ने प्राथमिक एव उच्च प्राथमिक विद्यालयो मे नैतिक शिक्षा को अनिवार्य कर इस दिशा मे साहसिक कदम उठाया है।

नैतिक शिक्षा एतिहासिक परिप्रेक्ष्य—

भारतीय शिक्षा मे नैतिक शिक्षा की स्थिति एव औचित्य को समझने मे एतिहासिक परिप्रेक्ष्य का सक्षिप्त सर्वेक्षण उपयोगी रहेगा।

1. Report of the University Education Commission
2. Report of Secondary Education Commission (पृ0 125)
3. कोठारी शिक्षा का आयोग—पृ0 22 23।
4. कोठारी शिक्षा आयोग—पृ 228-229।

(क) स्वाधीनता पूव भारत मे—

इस पुस्तक मे अन्य सबधित स्थलो पर शिक्षा के उद्देश्य एवं उसके राष्ट्रीय विकास एव समाज से सबधो की चर्चा करते समय स्वाधीनतापूव भारत मे नतिक शिक्षा का प्रसगानुकूल उल्लेख किया गया है। प्राचीन भारत म धम एव नतिकता की शिक्षा का घनिष्ठ सबध रहा है तथा यह कहना अतिशयोक्ति न हागी कि धम व नतिकता ही शिक्षा का उद्देश्य रहा था। शिक्षा द्वारा सयम, त्याग उदारता, सहयोग, सद्भावना आदि चारित्रिक गुणो का विकास किया जाता था तथा मोक्ष प्राप्ति का आध्यात्मिक लक्ष्य अय शक्षिक उद्देश्यो से सर्वोपरि माना जाता था। डॉ सीताराम जायसवाल तत्कालीन शिक्षा को नैतिकता या आचार का मुख्य आधार मानते हुए लिखते हैं कि—प्राचीन भारतीय सस्कृति म शिक्षा को स्वच्छता और आचार का मुख्य आधार माना गया है। मनु ने इस बात पर बल दिया है कि नये ब्रह्मचारी को स्वच्छता और शिष्टाचार के नियम भली-भांति ज्ञात होने चाहिए।"1

कालान्तर मे नैतिक शिक्षा का महत्त्व देश की पराधीनता तथा विदेशी शासको की शिक्षा के प्रति उपेक्षा के कारण कम होता गया मध्यकाल। मे मुस्लिम व हिन्दू सस्कृतियो का समन्वय हुआ तथा नतिकता के नये मापदण्ड विकसित हुए। दोनो सस्कृतियो की शिक्षा व्यवस्था पृथक होने के कारण प्राचीन भारतीय शिक्षा का नैतिक उद्देश्य किसी न किसी रूप मे बना रहा किन्तु मुस्लिम शिक्षा-पद्धति एव सभ्यता को राजाश्रय प्राप्त होने तथा उसके प्रति भारतीयो का आकषण होने के कारण प्राचीन नतिक आदर्शों का ह्रास होने लगा।

स्वाधीनता पूव अग्रेजी शासन के आधुनिक काल मे शिक्षा के प्रति शासको की उदासीनता तथा धर्म में हस्तक्षेप न करने की नीति के फलस्वरूप नवीन शिक्षा-पद्धति मे नैतिक शिक्षा को कोई स्थान नही दिया गया। अग्रेजी भाषा और शिक्षा-प्रणाली के प्रति आकषण होने से जन-साधारण मे भारतीय नैतिक आदर्शों की उपेक्षा ही नहीं पनपी बल्कि उनके प्रति घृणा का भाव भी विकसित होने लगा। अग्रेजी शासन मे धम निरपेक्षता के नाम पर शिक्षा-सस्थाओ मे ईसाई धम को ही प्रश्रय दिया जाने लगा। सव प्रथम 1854 म वुड के घोषणा-पत्र (Wood s Despatch) में सभी धर्मो के आधारभूत सिद्धातो को लेकर एक नैतिक शिक्षा की पाठ्य-पुस्तक तैयार करने

1 डा सीताराम जायसवाल भारतीय शिक्षा की सास्कृतिक पृष्ठभूमि ('साहित्य परिचए'—शिक्षा और सस्कृति विशेषाक—पृ 134)

व उसे शिक्षा संस्थाओं में पढ़ाने की अभिशंसा की गई किंतु सरकार ने इस सुझाव को धर्म में हस्तक्षेप समझकर अस्वीकार कर दिया। 1944–46 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने जी डी बार्ने की अध्यक्षता में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की आवश्यकता एवं सम्भावना पर विचार करने हेतु एक समिति गठित की जिसने चरित्र-निर्माण के लिए धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की उपयोगिता तो स्वीकार की किंतु इस शिक्षा का दायित्व समाज और परिवार का माना। इस प्रकार स्वाधीनतापूर्व भारत में नैतिक शिक्षा को धर्म में हस्तक्षेप करने की आशंका से तथा अंग्रेजी शासकों की कूटनीति के कारण नहीं अपनाया गया।

स्वाधीनता पश्चात् भारत में—

भारत को स्वाधीनता मिलने के पूर्व अंग्रेजी शासनकाल में स्वाधीनता संग्राम के दौरान राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति की संकल्पना विकसित होती रही जिसमें नैतिक शिक्षा को उपयुक्त स्थान दिये जाने का आग्रह किया गया। महात्मा गांधी, विवेकानन्द स्वामी दयानन्द, अरविन्द आदि ने नैतिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता की जिस नीति का प्रावधान किया गया उसका उल्लेख प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। इस नीति के कारण शिक्षा-संस्थाओं में नैतिक शिक्षा को अब तक महत्व नहीं दिया गया है, यद्यपि विभिन्न आयोगों ने इसकी अभिशंसा की है। विभिन्न शिक्षा आयोगों ने नैतिक शिक्षा को जो महत्व दिया है, उसका उल्लेख भी हो चुका है। 1959 में "धार्मिक-नैतिक शिक्षा" पर श्री प्रकाश की अध्यक्षता में जो समिति गठित की गई थी जिसने 1960 में नैतिक शिक्षा हेतु शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए सुझाव दिये। इन सुझावों का कोठारी शिक्षा आयोग ने समर्थन किया।

नैतिक शिक्षा का स्वरूप पाठ्यक्रम व विधियां

(क) पाठ्यक्रम –

नैतिक शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए इसे शिक्षा-संस्थाओं में लागू करने हेतु उसके पाठ्यक्रम को विकसित करने के प्रयास किए गए। श्री प्रकाश समिति द्वारा निम्नांकित पाठ्यक्रम सुझाया गया —[1]

प्राथमिक स्तर पर धार्मिक शिक्षा का पाठ्यक्रम

(1) प्रार्थना सभा के समय विद्यालयों में विद्यार्थियों द्वारा सामूहिक गानों का गान की योजना बनानी चाहिए अर्थात् धार्मिक व नैतिक भजन सामूहिक रूप से विद्यार्थी गाएं,

1 Shri Prakash Committee's Report on Moral Education

(2) विद्यार्थियों को महापुरुषों की कहानियाँ सरल तथा मनोरंजक ढंग से सुनाई जाये,

(3) मुख्य धर्मों से सम्बन्धित कला व वास्तुकला के चित्र एवं वस्तुओं का श्रव्य दृश्य साधनों द्वारा प्रदर्शन किया जाये,

(4) सेवा की अभिवृति का प्रचार व विकास किया जाये,

(5) नैतिक शिक्षा हेतु विद्यालय के समय विभाग चक्र में दो कालांश नियत किए जायें।

माध्यमिक स्तर पर धार्मिक शिक्षा का पाठ्यक्रम

(1) विद्यालयों मे प्रातःकालीन प्रार्थना-सभा का आयोजन,

(2) विश्व के प्रमुख धर्मों की आधारभूत शिक्षाओं का अध्ययन,

(3) अवकाश के दिनों मे या कक्षा-शिक्षण के पश्चात् समाज सेवा के कार्यक्रमों का आयोजन,

(4) विद्यार्थियों में मूल्यांकन करते समय विद्यार्थियों के चरित्र एवं व्यवहार का मूल्यांकन किया जाये।

विश्वविद्यालय स्तर पर धार्मिक शिक्षा का पाठ्यक्रम—

(1) विभिन्न धर्मों का अध्ययन स्नातक कक्षाओं की सामान्य शिक्षा का आवश्यक अंग बनाया जाये,

(2) स्नातक कक्षाओं के दो अथवा तीन वर्षों में धर्म तथा धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया जाये

(3) स्नातकोत्तर शिक्षा में विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाये,

राजस्थान मे लागू पाठ्यक्रम—

कोठारी शिक्षा आयोग ने पाठ्यक्रम की उपरोक्त रूपरेखा की अभिशंसा की। राजस्थान राज्य की प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक कक्षाओं मे सन् 1981-82 से नैतिक शिक्षा के जिस पाठ्यक्रम को अनिवार्य बनाया गया है उसे शिक्षा विभाग द्वारा सुबुद्ध शिक्षा प्रकाशन— 16 मे "नैतिक शिक्षा-उपागम" (पाठ्यक्रम कक्षा 1 से 8) के नाम से प्रकाशित व प्रचारित किया है। इसके अनुसार नैतिक शिक्षा के उद्देश्य निम्नांकित हैं"1 (1) विविध आचरणों मे से सही आचरण क्या है छात्र यह जान सके, (2) अपने स्तर पर सही आचरण के अनुरूप व्यवहार कर सके (3) छात्र सही तथा गलत आचरण के बीच अंतर कर सके, (4) छात्र विभिन्न क्षेत्रों में अपना कर्त्तव्य स्थिर कर सके, (5) अपने कर्त्तव्य के अनुरूप उपयुक्त व्यवहार कर सके,

(6) छात्र जीवन के विभिन्न प्रसंगो मे वांछित दृष्टिकोण बना सके, (7) अपने वांछित दृष्टिकोण का जीवन मे निर्वाह कर सके, (8) छात्र आपस मे मिलजुल कर काम करने की आदत बना सके, (9) छात्र विषय परिस्थितियो मे निर्भिकता एव धीरज बनाये रखने की आदत बना सके, (10) छात्र अपने व्यवहार के कारण वता सकन की आदत बना सके, (11) छात्र सदाचारी लोगो व महापुरुषो के सद्गुणो को सराहना कर सके, (12) व्यवहार करते समय छात्र दूसरो के हितो का ध्यान मे रखने की आदत बना सके, (13) छात्र सभी लोगो को समानता की नजर से देखने की आदत का बना सकें, (14) छात्र सार्वजनिक सम्पत्ति व सामग्री के प्रति सद्भावना रखने की आदत बना सकें, (15) वे दूसरो के विचारो को धीरज के साथ समझन की आदत बना सके।"

उपरोक्त, उद्देश्यो के अनुसार बालकों मे कुछ महत्वपूर्ण आदतो के विकास हेतु सुझाव दिये गये है जसे – (1) समय की पाबन्दी, (2) सम्मान एव अभिवादन करना, (3) स्थान की सफाई, (4) काम मे आनेवाली चीजो की सफाई, (5) बोलने सम्बंधि आदतें, (6) अपनी बारी की प्रतिक्षा करना, (7) अनुशासन एव शान्ति बनाए रखना, (8) घर आए अतिथि के साथ शिष्टाचार, (9) भोजन सम्बंधि आदतें (10) वस्त्रो की सफाई, (11) शारीरिक स्वच्छता, (12) खेल सम्बंधि आदतें, (13) उत्सवो एव सभाओ के नियमो का पालन, (14) कुछ विशिष्ट आदतें जसे पहल करना, काय को बीच मे न छोड़ना, घर के काम मे रूचि लेना मित्रो के काम मे सहयोग देना आदि।2

इन आदतो के विकास हेतु इसकी प्रेरणास्वरूप कुछ जीवन मूल्यों का पाठयक्रम, पाठ्य पुस्तको व शाला–कार्यक्रमो मे प्रतिबिम्बित होना आवश्यक माना गया है। ये जीवन मूल्य है—सचाई सहयोग साहस, दृढ निश्चय, आत्मविश्वास, परोपकार देशभक्ति कर्त्तव्य-परायणता, ईमानदारी समाज–सेवा की भावना श्रम मे निष्ठा त्याग की भावना, विश्व-बन्धुत्व विनम्रता, अहिंसा, प्रेम सहानुभूति, धैय, सहिष्णुता दया, क्षमा, दूसरों का आदर दान, तत्परता मित्रता दूसरो के गुणो की प्रशंसा, निर्भीकता, स्वावलम्बन, आवश्यकता से अधिक सग्रह न करना, फिजूलखर्ची न करना, अनुशासन तथा सादगी।3

1 नतिक शिक्षा उपागम–पाठ्यक्रम कक्षा 1 से 8 ('नया शिक्षक' अक्टूबर-दिसम्बर 1981 पृ 87)

2 पूर्वोक्त—(पृ 88)

3 पूर्वोक्त—(पृष्ठ 80)

(ख) नैतिक शिक्षा की विधियाँ—

जो शिक्षाविद् एवं शिक्षा-आयोग नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का अंग बनाना चाहते हैं उन्होंने इसकी विधियों का सुझाव दिया है। इनका मत है कि नैतिक शिक्षा प्रत्यक्ष शिक्षण का विषय नहीं है बल्कि अप्रत्यक्ष विधियों द्वारा शिक्षक के आदर्श महापुरुषों के जीवन प्रसंगों तथा विद्यालय के वातावरण एवं क्रियाकलापों से की जानी चाहिए। इस सन्दर्भ में मुदालियर माध्यमिक शिक्षा आयोग ने कहा है कि—' चाहे धार्मिक शिक्षा दी जाय अथवा नैतिक शिक्षा, इस प्रकार की शिक्षा को कक्षा शिक्षण की परम्परागत विधियों से प्रभावी नहीं बनाया जा सकता बल्कि शाला के वातावरण तथा शिक्षकों के प्रभाव द्वारा ही उपयोगी बनाया जा सकता है।1

कोठारी शिक्षा आयोग ने श्री प्रकाश समिति की अभिस्तावों का समर्थन करते हुए नैतिक शिक्षा की विधियों के विषय में अपना मत प्रकट किया है— '"शिक्षण-पद्धति चाहे भी क्यों न हो, इसके कारण नैतिक शिक्षा न तो बाकी पाठ्यचर्या से कटकर अलग पड़ जानी चाहिए और न एक ही घण्टे में सीमित रह जानी चाहिए। यदि मूल्यों को छात्र के चरित्र का अंग बनना अभीष्ट हो तो नैतिक जीवन को सब ओर से सँवारने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक धर्म के साहित्य में अनुयायियों को किसी नैतिक मूल्य का महत्व बताने के लिए कहानी या दृष्टान्त को मुख्य स्थान दिया जाता है। नैतिक शिक्षा के कार्यक्रम में यदि शिक्षक ठीक मौके पर ऐसी कहानियाँ सुनाए तो उनका बहुत ही अच्छा असर पड़ेगा, निचली कक्षाओं में तो यह बात और भी प्रभावी होगी। बाद की आवश्यकताओं में महान् धार्मिक और आध्यात्मिक नेताओं के जीवन का चित्र करना स्वाभाविक होगा। इसी प्रकार विभिन्न धर्मों के त्योहार मनाने में इन धर्मों के नेताओं के जीवन के इतिहास में से खास-खास घटनाओं को सुनाने का अवसर मिलता है। माध्यमिक स्कूल के अन्तिम दो वर्षों में बड़े-बड़े धर्मों के सारभूत उपदेशों के अध्ययन के लिए भी व्यवस्था होनी चाहिए।"2

राजस्थान में अपनाये गये नैतिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी शिक्षण की उपरोक्त विधियों पर ही बल दिया गया है। इसमें जीवन मूल्यों के प्रस्तुतीकरण के सन्दर्भ में कहा गया है कि—"क्या छात्रों को सीधे यह उपदेश दिये जायें कि 'सच बोलो', "माता-पिता का आदर करो", 'ईमानदार बनो' — ये सब उपाय कारगर नहीं

1 मुदालियर माध्यमिक शिक्षा आयोग—(पृष्ठ 125—126)

2 कोठारी शिक्षा आयोग—(पृ 230)

होगे क्योंकि इस प्रकार की अमूर्त या भावात्मक बातो का छात्र रट तो सकता है, पर उनका व्यावहारिक सन्दर्भ नही जानने के कारण समझ नही सकता।" होना यह चाहिए कि उपरोक्त बातें न रटवाई जायें, न इनकी परिभाषा बताई जाये, बल्कि उन्हे जीवन की वास्तविक स्थिति मे या अनुभव आधारित बनाकर छात्रो के सम्मुख प्रस्तुत किया जाय।'1 अत नैतिक शिक्षा मे मूल्यो का घटना, कहानी या महापुरुषो के जीवन प्रसगों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप मे विकसित करना वाछनीय है।

उपसहार —

धर्म का सम्प्रत्य गलत ढग से प्रस्तुत किया जाता है जबकि प्राचीन काल से ही धर्म का सम्बन्ध कर्त्तव्यो से लिया गया है। स्वतन्त्र भारत मे गिरते हुए मूल्यो को पुन स्थापित करने के लिए तुलनात्मक एव विवेकपूर्ण अध्ययन छात्रो को वांछित है। धार्मिक शिक्षा उत्तम नागरिक और चरित्र निर्माण के लिए परम आवश्यक है। देशवासी धर्म के सिद्धान्तो से अपरिचित होते जा रहे हैं, जिसके परिणाम स्वरूप जीवन विक्षुब्ध और अस्त-व्यस्त हो गया है। अत जीवन के प्रारम्भिक काल से ही आध्यात्मिक व नैतिक मान्यताओं की शिक्षा देनी चाहिए। आज देश मे विध्वसकारी प्रवृत्तिया बढ रही है। हमारी आने वाली पीढी शिक्षण सस्थाओ मे जैसा सीखेगी वैसा ही व्यवहारिक जीवन में आचरण करेगी। यदि हम समय रहते प्रभावशाली ढग से धार्मिकता व आध्यात्मिकता के मूल्यों की शिक्षा छात्रो को नही देंगे तो राष्ट्र का भविष्य अन्धकारमय और भयानक हो जायेगा।

नैतिक शिक्षा का अर्थ सही ढग से समझकर उसके पाठ्यक्रम को आयु वर्ग के अनुरूप अप्रत्यक्ष विधि से प्रस्तुत करने पर ही नैतिक शिक्षा प्रभावी हो सकती है। राजस्थान मे प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर नैतिक शिक्षा को अनिवार्य किया गया है। यह शिक्षकों का दायित्व है कि उसे सही परिप्रेक्ष्य मे ग्रहण कर उसकी क्रियान्विति हेतु प्रयास करे।

1 पूर्वोद्धृत—(पृ 90)

मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघुत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions)

(1) 'धार्मिक शिक्षा' तथा 'नैतिक शिक्षा' मे भेद बतलाइये। (बी एड पत्रा 1985)

(2) विद्यालयो मे नैतिक शिक्षा के महत्व पर सक्षेप मे लिखिये। (बी एड 1984)

(3) हमारे विद्यार्थियो को नैतिक शिक्षा प्रदान करने की दृष्टि से कोई पाच विकल्प प्रस्तावित कीजिए। (बी एड पत्राचार 1982)

(4) 'धार्मिक शिक्षा' और 'धर्मों की शिक्षा' के पदों मे अन्तर बताइये। (बी एड 1982)

(5) धार्मिक शिक्षा से आप क्या समझते हैं? धर्मनिरपेक्षता' का प्रत्यय स्पष्ट कीजिए। (बी एड पत्रा 1981)

(6) राधाकृष्णन् आयोग द्वारा धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध मे क्या क्या मुख्य संस्तुतियां प्रस्तुत की गई है ? (बी एड 1979)

(7) 'धार्मिक शिक्षा' एव 'नैतिक शिक्षा के मध्य भेद को स्पष्ट करने वाले पांच बिन्दुओं का उल्लेख कीजिए। (बी एड 1978)

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1 'नैतिक शिक्षा विद्यालीय शिक्षा का एक महत्वपूर्ण भाग है।" उन मूल सिद्धांतों की व्याख्या कीजिये जिसके आधार पर नैतिक शिक्षा विद्यालयीय शिक्षा का एक भाग बन सकता है। (बी एड 1985)

2 हमारे जैसे धर्मनिरपेक्ष राज्य के विद्यालय मे धार्मिक शिक्षा देना उचित नहीं परन्तु नैतिक शिक्षा का प्रावधान होना नितान्त आवश्यक है।' इस कथन की समीक्षा कीजिये तथा धार्मिक शिक्षा और नैतिक शिक्षा के मध्य भेद स्पष्ट कीजिये। (1983)

3 (क) धार्मिक शिक्षा और (ख) नैतिक शिक्षा का क्या अर्थ है? इन दोनों पक्षों का प्राय साथ-साथ प्रयोग क्यों किया जाता है ? सच्चे धर्म निरपेक्ष समाज के निर्माण के लिए सच्ची धार्मिक शिक्षा अपरिहार्य है।' इस कथन की परीक्षा कीजिए। (बी एड 1981)

4 राजनीतिज्ञों द्वारा धर्म निरपेक्षता की गलत व्याख्या ने भारतीय समाज को बहुत हानि पहुंचाई है जीवन के उच्च आदर्शों एव नैतिक आधार को गहरी ठेस लगी है।' इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए तथा धर्म निरपेक्ष भारत मे माध्यमिक स्तर पर धार्मिक शिक्षा देने हेतु एक योजना प्रस्तुत कीजिए। (बी एड 1979)

5 'नवयुवकों मे नैतिक मूल्यों के विकास की दृष्टि से हमारी शिक्षा संस्थान बहुत ही बुरी तरह असफल रहे है " इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिये। पाठ्यक्रम सम्बन्धी एव पाठ्यक्रम सहगामी ऐसे उपयोगी कार्यक्रमों का भी सुझाव दीजिए जिनके द्वारा उनमे नैतिक मूल्यों का विकास किया जाना सम्भव हो। (बी एड 1978)

6 हमारा संविधान धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण पर किस प्रकार आग्रह रखता है ? साथही ऐसे उपायों और तरीकों का विवेचन कीजिए जिनके द्वारा हम विद्यालयों मे सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता का भाव पैदा कर सकते है ? (बी एड 1975)

अध्याय १६ | व्यावसायिक उपक्रम (Vocational Preparation)

[विषय प्रवेश—व्यावसाय के लिए शिक्षा और समाज—विद्यालयों द्वारा व्यावसायिक उपक्रम (तैयारी) सहकारी हो—आजीविका-सम्बंधी समाज का निरंतर पर्यवेक्षण—व्यावसायिक तैयारी के प्रकार नियुक्ति प्रारम्भ होने से पहले की तैयारी नियुक्ति के सम्बन्ध में तैयारी—आजीविका परिवर्तन की तैयारी—आर्थिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों का व्यावसायिक तैयारी के साथ सम्बन्ध—उपसंहार—मूल्यांकन]

विषय प्रवेश —

आज देश में माध्यमिक शिक्षा प्राप्त बेरोजगारों की लम्बी कतार खड़ी है क्योंकि उन्हें व्यावसायिक उपक्रम (तैयारी) की दृष्टि से शिक्षित नहीं किया गया है। माध्यमिक शिक्षा मात्र उच्च शिक्षा हेतु प्रवेश प्राप्त करने की तैयारी मात्र है। देश की आर्थिक व सामाजिक धारा से छात्रों को जोड़े जाने की गरज से तथा औद्योगिक विकास में उत्पादक-नागरिक के रूप में छात्रों के सहयोग के लिए, बालक व बालिकाओं का व्यावसायिक तैयारी विद्यालय में करना, उन्हें श्रम के प्रति आस्था तथा रचनात्मक दृष्टिकोण के विकास हेतु वांछित है।

विद्यालय से आजीविका सम्बन्धी सफलता में स्थानान्तरण की प्रक्रिया की दिशा में निःसन्देह कहीं-न-कहीं उसी क्रम में आजीविका की तैयारी घटित होनी चाहिए। व्यापार और उद्योग दोनों ही से सम्बन्धित आजीविकाओं में नियुक्ति के बाद ही यह घटित होती है। दूसरों में नियमित पूर्वकाल-नियुक्ति प्राप्त करने के पहले ही विद्यालय पाठ्यक्रम में अत्याधिक मात्रा में तैयारी की जाती है। और भी अन्य आजीविकाओं में आजीविका सम्बन्धी कर्तव्यों को वास्तविक रूप में ग्रहण करने के पहले ही लम्बी अवधि तक अति विशिष्ट तैयारी की जाती है।

किसी भी स्थिति में यह स्पष्ट है कि व्यक्ति की व्यावसायिक सफलता उसकी तैयारी के गुण, उसकी उपयुक्तता तथा आजीविका के समुचित चुनाव पर निर्भर है। अतः इसके लिए विद्यालय द्वारा व्यावसायिक निर्देशन छात्रों को प्रदान किया जाकर उन्हें व्यावसायिक तैयारी करने में भरपूर सहयोग प्रदान किया जाना परम आवश्यक है।

सूचना–पाठ्यक्रमो, परीक्षात्मक अनुभवो और व्यक्तिगत परामर्श के सहारे अपने कार्य को चुनने मे शाला परामर्शदाता से सहायता प्राप्त कर छात्रो को तैयारी की योजना बनानी चाहिए। विद्यालय व्यावसायिक तैयारी प्रदान करने तथा व्यक्तियो का उनकी विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति सम्बन्धी तैयारी की योजना बनाने मे सहायता करना अपना दायित्व समझना चाहिए ताकि, व्यवहारिक जीवन मे प्रवेश के समय व्यावसायो मे सफलता प्राप्ति हेतु अभिरुचियो का विकास कर स्वय अपने व्यावसाय का चयन कर धर्नाजन करने मे सफल सिद्ध हो सके।

व्यावसाय के लिए शिक्षा और समाज —भारतीय संविधान के प्रावधानों के अनुरूप यदि हम सबके लिए समान अवसर' के सम्बन्ध म वास्तविक रूप देना चाहते है तो व्यावसाय की तयारी के लिए शिक्षा मे समाज के उत्तरदायित्व को अवश्य स्वीकार और ग्रहण करना होगा। विद्यालय व्यक्तिगत योग्यताओ आवश्यकताओ एव विद्यालय से भी लाभ उठाने की सम्भावनाओ से निरपेक्ष सबके लिए समान अवसर देवे। यदि हम देश म समान अवसरो को वास्तविक रूप देना चाहते है तो विद्यालयो को विविध आजीविकाओ म प्रवेश करने वाले युवक व युवतियो को आजीविकाओ के लिए पूर्व तैयारी अर्जित करने मे सक्रिय सहयोग प्रदान करे। आज देश म पढे लिखे व विशिष्ट वर्ग अपने बालक व बालिकाओ को उच्च प्राविधिक शिक्षा दिलवाने की व्यवस्था म विद्यालयो का पूर्ण उपयोग अपने बालको के हित मे करते हैं तो दूसरी ओर सामान्य, गरीब व निरक्षर अभिभावको के बालक सैद्धान्तिक ज्ञान प्रदान करवाके परीक्षा उत्तीर्ण करवाना ही अपने उद्देश्य की पूर्ति समझते हैं। यहां तक की वे उन्हे साधारण से साधारण हस्त–कला व कौशल के काय के लिए तैयार होने मे बिल्कुल सहायता नही करते जबकि दोनो प्रकार की अध्ययन-व्यवस्था पर समाज का ही व्यय भार पडता है जिससे देश म असन्तोष व असमानता की भावनाओ से शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य समानता के आधार पर अवसर प्रदान करने का खुलकर उल्घन होता है।

व्यावसाय की तयारी हेतु शिक्षा सबंधी समाज का यह उत्तरदायित्व ठीक उन्ही स्तरो से विस्तार हो पाता हैं, जिससे सामान्य शिक्षा। तात्पय यह है कि यदि सामान्य उच्च विद्यालयो के पाठ्यक्रम को बनाए रखा जाय, तो उच्च विद्यालयो श्रेणी की व्यावसायिक तयारी भी प्रदान की जानी चाहिए। उच्च माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के इच्छुक और उससे लाभ उठाने को तत्पर व्यक्ति की विद्यालय से वैसी शिक्षा की माग ठीक उसी प्रकार युक्ति सगत है, जिस प्रकार सामान्य शिक्षा के इच्छुक व्यक्ति की।

विद्यालय जैसा कि इसे होना चाहिए, लोक–समाज का अभिकरण बन जाता है,

ि सहार एक खास श्रेणी या स्तर की व्यावसायिक तयारी की शिक्षा और श्रेणी या स्तर का सामान्य शिक्षा उन्हें उपलब्ध हो जाती है जो उसके इच्छुक हैं।

द्यालयों मे व्यावसायिक उपक्रम सबंधी शिक्षा सहकारी हो'—

आज देश मे बहुत ही कम संख्या में उद्योग, व्यापार एवं राजकीय संस्थाएँ ो समुचित व्यावसायिक तैयारी प्रदान करने हेतु व्यवस्था करते हैं। अत विद्या को बढ़ती हुई छात्र-संख्या के प्रति अपने उत्तरदायित्व के पालन के लिए यह ारित करना चाहिए कि प्रत्येक आजीविका के लिए यह तयारी किस प्रकार ाधिक प्रभावशाली और मितव्ययिता पूर्ण ढग से प्रदान की जा सकती हैं तथा अभिप्राय के लिए कौनसी जन-शक्ति आवश्यक और वाछनीय है। सम्भवत । तयारियाँ, जो अभी नियुक्ति काल मे प्रदान की जाती हैं व विद्यालयों मे ुक्ति प्रारम्भ होने के पहले अधिक अच्छी तरह प्रदान की जा सकती हैं। ालय नियोक्ता एव कार्यकर्ताओं के बीच व्यवस्थित सहकारी योजना के आधार अधिक व्यावसायिक तैयारी प्रदान करनी चाहिए।

इस दिशा मे देश की परम्पराओं, इस अभिप्राय के लिए प्रशिक्षित शिक्षक ों और इसकी प्राप्ति के लिए विकसित विधियो के साथ निश्चय ही विद्यालय य किसी भी अभिकरण की अपेक्षा समाज के आवश्यक व्यावसायिक कार्यों का भार ण करने के अधिक योग्य है। अत देश मे व्यावसायिक तैयारी के प्रभावशाली काय म के लिए नियोजकों और कार्यकर्ताओं के बीच सहयोग नितान्त आवश्यक है।

आजीविका सम्बन्धी समाज का निरन्तर पर्यवेक्षण --

विद्यालयों का यह निर्णय करना चाहिए कि कौन कौन से छात्रों को कौन ी व्यावसायिक तैयारी प्रदान करनी चाहिए और किस प्रकार प्रदान करनी चाहिए। ार्यकर्ताओं और नियोक्ताओं के सहयोग से प्रत्येक आजीविका की सावधानी पूर्वक ोज या सर्वेक्षण आवश्यक है। सर्वेक्षण करने के लिए अवसर पर दो बातों को दृष्टि मे रखनी चाहिए — (1) आजीविका में सफलता के लिए कौन सा प्रशिक्षण आवश्यक है? तथा (2) इस प्रशिक्षण को प्रभावशाली तथा मितव्ययिता पूर्ण ढंग में प्रदान करने के लिए कौन-सी व्यवस्था आवश्यक है? विद्यालय द्वारा की गई व्यावसायिक तयारी की प्रभावोत्पादकता की खोज होनी चाहिए। इसके साथ ही साथ यह भी निर्धारित करना आवश्यक है कि विद्यालय कौन सी व्यावसायिक तयारी प्रदान करे तथा

उसे कितने प्रभावशाली ढग से प्रदान किया जावे। व्यावसायिक आवश्यकताएँ विभिन्न समाज मे विभिन्न प्रकार की होती है। समाज की जनसख्या, उसकी औद्योगिक एव व्यापार-क्रियाओ का सामान्य स्वरूप, नियुक्ति के विभिन्न क्षेत्रो के लिए आवश्यक प्रशिक्षित कार्यकर्ताओ की सख्या, विविध रीतियो से पहले प्रदान की गई व्यावसायिक-शिक्षा तथा नियोक्ताओ एव कायकर्ताओ से अपेक्षित सहयोग की सीमा पर विचार करना होगा।

व्यावसायिक तैयारी से पूर्व स्थानीय अवस्थाओं के सर्वेक्षण के साथ साथ अन्य नगरो द्वारा अपनी आवश्यकता व उनकी पूर्ति के लिए किये गये प्रयासो पर निरन्तर सावधानीपूवक विचार करना चाहिए। अन्यत्र जो कुछ इस दिशा म किया गया है वह प्राय अभिरुचिपूर्ण समावनाओ का सकेत करता है किन्तु सुरक्षित ढग स इसकी नकल केवल तभी की जा सकती है जब अवस्थाएँ बिलकुल समान हो। किसी भी स्थानीय समाज के व्यावसायिक शिक्षा कायक्रम के निर्धारण मे य यत्र नियुक्ति के प्रयास करने वालों की आवश्यकताओ और स्थानीय समाज मे रहने वालो की आवश्यकताओ दोनो पर ही विचार करना चाहिए।

व्यावसायिक तैयारी के प्रकार (Kinds of Vocational Preparation) —

व्यावसायिक शिक्षा के कायक्रम के निर्धारण के सम्बन्ध मे अभी भी जो कुछ कहा गया है, उसके प्रकाश मे यह प्रश्न करना तर्क सगत है कि इस सम्बन्ध मे अभी माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालय क्या कर रहे हैं और किस दिशा मे विकास की सभावनाएं हैं।

व्यावसायिक तैयारी के तीन सामान्य प्रकार भारतीय विद्यालयो मे स्थाई स्थान प्राप्त कर चुके हैं। ये तीन प्रकार की क्रियाएँ है जो कृषि, वाणिज्य, सामाजिक, उपयोगी उत्पादन काय एव औद्योगिक क्षेत्रो मे सम्प न की जाती है। फिर भी हमारी शिक्षा व्यवस्था पूर्ण रूप से काय-केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था (Work Centred Education) नही बन पाई हैं। ये तीन प्रकार हैं —

(1) नियुक्ति प्रारम्भ होने से पहले की तैयारी।
(2) नियुक्ति के सबध में तैयारी।
(3) आजीविका-परिवतन की तैयारी।

(1) **नियुक्ति प्रारम्भ होने के पहले की तैयारी** — देश की स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा को ऐसी बनाये जाने के पक्ष में शिक्षाविद् व राजनेता रहे हैं कि उन्हें नौकरियो एव बाबूगिरी पेशो के लिए तैयार न कर व्यवसाय की तैयारी कीजाय।

इसके लिए माध्यमिक शालाओं में व्यावहारिक विषयों को प्रारम्भ करने के पक्ष में रहे। यह बात स्वतन्त्र भारत में ही नहीं बल्कि 1882 में भारतीय शिक्षा आयोग ने भी इस प्रसंग की सिफारिश की थी। 'देश में व्यावसायिक तैयारी हेतु पाठ्यक्रमों में भरती होने वालों का प्रतिशत कुल विद्यार्थियों के मुकाबले में केवल 9 ही है जो कि दुनियां में सबसे कम है।"1 'विश्वविद्यालय छात्रों में से अधिकांश- 26,000 में से लगभग 22,000 केवल साहित्यक पाठ्यक्रम लेते हैं जो कि उन्हें प्रशासनिक क्लर्की, शिक्षण और वकील पेशा के अलावा अन्य किसी पेशे के योग्य नहीं है।"2 कलकत्ता आयोग की रिपोट के पच्चास वर्ष पश्चात् कुछ सुधार हुआ है और विश्वविद्यालय स्तर पर 23 प्रतिशत व्यावसायिक तैयारी की शिक्षा के पाठयक्रम में भरती हो रहे हैं। कोठारी आयोग की आशा थी—' भविष्य में स्कूल शिक्षा की प्रवृत्ति सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा के लाभदायक मिश्रण की ओर होगी– इस सामान्य शिक्षा में व्यवसाय-पूर्व और तकनीकी शिक्षा के कुछ तत्व होंगे और इसी प्रकार व्यावसायिक शिक्षा के कुछ तत्व होंगे और इसी प्रकार व्यावसायिक शिक्षा में भी सामान्य शिक्षा के कुछ तत्व होंगे।"3 इन बातों को दृष्टि में रखते हुए माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों को व्यावसायिक तयारी प्रदान करने केनिमित्त विभिन्न प्रकार के उद्योग प्रशिक्षण, कार्यानुभव (work Experience), समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (S U P W), जैसी योजनाओं को क्रियान्वित रूप दिया जाय। इस मत का अनुसरण करते हुए गृह–विज्ञान,ग्रामीण युवाओं के लिए व्यवसाय व शिक्षा को सम्बन्द्ध करते हुए कृषि कक्षाए सगठित की गई तथा लड़के एवं लड़कियों को औद्योगिक आजीविकाओं के लिए तैयार करने के निमित्त माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर के विशेष विद्यालयों की स्थापना की गई है। निश्चय ही इनमें करणीय अधिकांश कार्य का वास्तविक व्यावसायिक मूल्य विवादास्पद था और अभी भी है, किन्तु जहां तक इसके व्यावसायिक होने का प्रश्न था, यह लगभग नियुक्ति के पहले की पूर्ण तैयारी ही है। प्रचलित व्यावसायिक तैयारी के निम्नांकित रूप रहे हैं—

(1) व्यापार प्रयत्नों के लिए — देश में व्यावसायिक तैयारी के लिए विद्यार्थी रूचि नहीं रखते हैं वे साहित्य, सामाजिक विषय एवं कानून की पढ़ाई के सैद्धांतिक ज्ञान के आधार पर नौकरी प्राप्त करने के पक्षधर रहे हैं जबकि अब देश में निरन्तर व्यावसायिकरण की ओर झुकाव द्रुतगति से बढ़ रहा है। स्वतन्त्रता के उपरान्त वाणिज्य विषयों को ग्रहण किया गया जो अन्य विषय-समूह की अपेक्षा

1 कोठारी शिक्षा आयोग की रिपोर्ट पृ 10
2 कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की रिपोर्ट, खण्ड 1 पृ 21
3 कोठारी शिक्षा आयोग— ' पृ 11

है । शिक्षा के अग के रूप मे कृषि अनुस्थापना दिया जाना चाहिए । क्याकि ''ज्यो-ज्यो फार्मो की आमदनी अधिक कृषि उपज के साथ बढ़ेगी, त्यो त्यो अधिकाधिक सफल कृपक अपने लडको का कृषि की शिक्षा देना चाहेगे ।''

(iv) औद्योगिक वृत्तियो के लिये नियुक्ति के पहले युवकों को औद्योगिक आजीविकाओ के लिए तयारी करने म एक बडी कठिनाई है कि वाणिज्यात्मक ग्रह विनान गृह निर्माण, कृषि की शिक्षा की अपेक्षा औद्योगिक शिक्षा बहुत अधिक हद तक विशिष्ट आजीविकाओ की तैयारी मे बटी रहती है, जैसे बढ़ईगिरी, इलेक्ट्रोक सामान की तैयारी, चित्रकारी उपकरण निमाण साचा निर्माण, मुद्रण और इसी सदृश अन्य आजीविकाएं । इस प्रकार अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा इसमे उन आजीविकाओ की सख्या अधिक है जिनके लिए तयारी आवश्यक हैं । केवल बडे नगरो म अथवा जहा एक ही उद्योग की प्रधानता है, वहा ऐसे काफी लडके पाए जात हैं जो इन आजीविकाओ मे से किसी एक ही की तयारी करना चाहते है और इस प्रकार आवश्यक उपकरण के निर्वाह तथा भली भांति तयारी शिक्षक की नियुक्ति के व्यय को युक्ति सगतसिद्ध करते हैं । देश के विभिन्न राज्यो की शिक्षण सस्थाओ मे पहले पहल बुनियादी शिक्षा के माध्यम से बालको मे श्रम के प्रति निष्ठा, महत्ता के अनुकूल अभिवृत्ति का विकास करन हेतु स्वय अपन हाथ से काम करने का प्रशिक्षण दिय जाने क पक्ष मे थे और महात्मा गांधी न इसी उद्देश्य को लेकर बुनियादी शिक्षा के माध्यम से उद्योग के महत्व का प्रतिपादन किया एव समग्र शिक्षा को उद्योग से जोडने पर बल दिया था । आज भी भारत के कुछ राज्यो की शिक्षण सस्थाएँ व्यावसाय की तयारी के दृष्टि से कार्यरत है ।

कार्यानुभव (Work Experience)

कोठारी कमीशन ने 'करना ही सीखना है' (Learning is doing) मनोवैज्ञानिक सिद्धात पर आधारित 'कार्यानुभव' के रूप मे एक नए विषय को पाठ्यक्रम म समावेश करने की सस्तुति 10+2 शिक्षा प्रणाली में की इस सस्तुति के पीछे उद्देश्य शिक्षा को जीवन से जोडना है । कार्यानुभव का उद्देश्य बालक को स्वय व्यावसाय क लिए तयार करना है । कार्यानुभव स्कूल, घर, कारखाने, खेत, फैक्टरी या अन्य किसी भी उत्पादक स्थिति मे उत्पादक काय म भाग लेना है जिसका उद्देश्य छात्रो को व्यावसायिक तयारी है। इसके माध्यम से बालक व्यावसाय की समस्या को ओर अधिक आसान बना सकता है । हम अपनी शिक्षण सस्थाओ में विद्यार्थियो म कठिन और उत्तरदायित्व

पूरा कार्य करने की आदत डालने का सफल प्रयास कर सकते है । 1977 के एक सर्वेक्षण के आधार पर देश मे 95 विभिन्न प्रवृत्तियाँ व्यावसाय की तैयारी हेतु शालाओ मे क्रियाशील है और कुछ स्थितियो मे इनके द्वारा बालक स्वावलम्बी भी बने है ।

समाजोपयोगी उत्पादन कार्य एव समाज सेवा

(Socially Useful Prodictive Work & Community Service SUPW & CS)

सन् 1977 मे साउथ गुजरात विश्वविद्यालय गुजरात के कुलपति ईश्वर भाई पटेल ने इसे परिभाषित किया—' यह सोद्देश्य अथ पूर्ण शारीरिक श्रम युक्त काय है जिसके प्रतिफल समुदाय के लिए लाभप्रद सामग्री अथवा सेवाए होती है । ' इसे कक्षा 10 तक के विद्यार्थियो के लिए पाठ्यक्रम में पूर्ण विषय का स्तर प्रदान करने के पक्षधारी है अर्थात् कुल समय का 18% कायभार समाजोपयोगी उत्पादन काय एव समाज सेवा (SUPW& CS) को प्रदान किया जाये । जिसका क्षेत्र शारीरिक स्वच्छता एव स्वास्थ्य, भोजन आवास, वस्त्र संस्कृति, एव मनोरजन व सामुदायिक कार्य तद् समाज सेवा है । आदिशैषैया समिति ने ईश्वरभाई की सिफारिश को उच्च माध्यमिक स्तरीय (+2) शिक्षा के पाठ्यक्रम मे सम्मिलित करने की सिफारिश की है । इसके अन्तर्गत विभिन्न उद्योग जो 'सीखो कमाओ (Earn while you learn) कार्यानुभव (work Experience) आदि के लाभो को दृष्टि में रखकर नई सकल्पना को स्वीकारा जिसका मुख्य उद्देश्य बालक के हाथ से काय करने की क्षमता श्रम के प्रति आस्था एव अनुकूल अभिवृत्ति तथा सहयोग से काय करने की योजना का विकास कर व्यावसाय के लिए तैयार करना है ।

एस यू पी डब्लू म घर पर दैनिक किये जाने वाले काय घर पर कभी कभी किये जाने वाले काय, आवश्यकता एव सुविधानुसार सामग्री उत्पादन विद्यालय के दैनिक काय, शाला में कभी कभी किये जाने वाले काय सामुदायिक काय विद्यालयो के लिए उपयोगी निर्माण आदि से छात्रो को व्यावसायिक तैयारी के लिए आधार उपलब्ध हो सकता है । जैसा कि उनकी सिफारशो से स्पष्ट है — There are two pertinent aspects of this recommendation First SUPW is given the status of special Subject Secondly the Committee has recommended that it should not be 'Education Plus work ' but "Education through work[5] अनेक कठिनाइयों के बावजूद सम्पूर्ण दिन उद्योग काय करते हुए छात्रो का समय बीतता है जो बहुत अधिक हद तक मूल्यवान व्यावसायिक तैयारी प्राप्त की जा रही है । छात्रो के लिए

[5] Buch & Patel, 'Towards work Centred Education P/29

विद्यालय द्वारा SUPW कार्यक्रम में किये गये कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन करने की अधिक समुचित व्यवस्था की जा सकती है।

राजस्थान में शिक्षा सत्र 1984 85 से समस्त माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक विद्यालयो मे SUPW & CS नामक एक नया विषय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर ने प्रारम्भ किया है। जिसका उद्देश्य राजस्थान के विद्यार्थी उत्पादक कार्य के प्रति रुचि लेते हुए समाजोपयोगी साबित होवे और उन्हें व्यवहारिक जीवन में व्यावसाय प्राप्त करने में असुविधा न रहें।

डा मैल्कम एस आदिशेषय्या, तत्कालीन कुलपति मद्रास विश्वविद्यालय ने पटेल समिति (1977, को सिफारिशों के पुनरावलोकन कर 28 फरवरी 1978 को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।' उन्होने अनेक क्रियाएँ जो समाज-आधारित तथा शाला-आधारित रखी। एक कल्पना मूलक अध्यापक स्थानीय परिस्थितियो व आवश्यकताओ के अनुसार अन्य क्रियाये भी जोड सकते हैं। '6 अध्यापकों के निर्देशन हेतु लगभग 85 प्रवृतियां गिनाई है जिन्हें चार भागों म विभक्त किया है — 1 प्राडक्टवू वर्क,, 2 प्राडक्टवू प्रवृतियाँ, 3 सामुदायिक सेवा प्रवृतियां तथा समुदाय के रहन-सहन सम्बन्धी प्रवृतियाँ। आदिशेषय्या ने कृषि आधारित प्रबन्ध एव वाणिज्य सम्बन्धी, स्वास्थ्य एव पराचिकित्सकीय व्यावसाय सम्मिलित किए जाने की सिफारिश की है। व्यावसाय को अध्ययन का अभिन्न भाग मानने का उद्देश्य रोजगार म वृद्धि की दृष्टि से प्रस्तावित की गई है। इसके अन्तगत कृषि एव कृषि आधारित व्यावसाय कुटीर उद्योग, वाणिज्य एव कार्यालय व्यवस्था सम्बन्धी व्यावसाय, पराचिकित्सकीय व्यावसाय, पत्रकारिता सबधी व्यावसाय, गृह विज्ञान सबधी व्यावसाय तथा अन्य सेवाये।

देश मे औद्योगिक वृत्तियाँ माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शालाओ, चाहे बुनियादी शिक्षा, चाहे 10+2 शिक्षा योजना म कार्यानुभव चाहे समाजोपयोगी उत्पादक कार्य एव समाज सेवा चाहे आदिशेषय्या प्रतिवेदन इन सभी का परोक्ष व अपरोक्ष रूप से उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा के माध्यम से बालको को आत्म निर्भर बनाना और भिन्न भिन्न कार्यों को सीखाना जो कालान्तर मे व्यावसाय की तयारी के रूप में सिद्ध हो सके।

(5) पत्राचार पाठ्यक्रमो के सहारे व्यावसायिक तैयारी — पत्राचार पाठ्यक्रम घर पर तैयारी करवाते हुए अल्पतम व्यय के सहारे माध्यमिक व उच्च

---

6 Report of the National Review Committee on Higher Secondary Education with Special Reference to Vocationalisation

माध्यमिक विद्यालय के अपने छात्रों को कुछ व्यावसायिक तैयारी प्रदान कर सकते है। शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्ति जो इस योजना के अनुसार आजीविकाओ की तैयारी प्राप्त कर भी रहे हैं। कमशाला अभ्यास के लिए निकटवर्ती या स्थानीय कमशाला मे काय करने का अवसर दिया जाता है। देश मे बहुत सी ऐसी भिन्न सस्थाएँ है जो शाम को, दिन की छुट्टी या अत स्थापित आधार पर अशकालीन पाठयक्रम सचालित कर रही है जो सामान्य शिक्षा तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण दोनों प्रकार की व्यवस्थाये रखती है। "बहुत से देशो, जसे आस्ट्रेलिया सयुक्त राष्ट्र तथा रूस म व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण के लिए पत्राचार अध्ययन का बडे पैमाने पर उपयोग हो रहा है। स्पष्ट है कि बहुत से व्यावसायिक पाठयक्रमो जैसे लेखा विधि और बही खाते में वकशाप अभ्यास की आवश्यकता नही परन्तु यहां भी अवकाश के दिना म पढाई व कुछ घण्टे शिक्षको से तय किये जा सकते हैं। वक शॉप अभ्यास तथा प्रयोगशाला प्रशिक्षण वाले क्षेत्रो म सस्थान सप्ताह के अन्त तथा अवकाश की अवधि म खोले जा सकते हैं, जिससे कि पत्राचार छात्रो को ये सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें। 7 कुछ ऐसे ही पाठ्यक्रम है जिन्हें पत्राचार द्वारा सम्पूण कर व्यावसाय की तयारी की जा सकती है - लेखाविधि वातानुकूलन वास्तुकला आलेखन मोटर गाडी यांत्रिक, भवन-ठेका व्यापार-प्रबन्ध, व्यग-चित्र निर्माण, वाणिज्यात्मक कला ढलाई-शाला सिद्धात पत्रकारिता यत्र-आलेखन, प्रारूप निर्माण सिद्धात फोटोग्राफी व्यावहारिक विद्युत, व्यावहारिक परिचर्या रेफ्रिजेरेशन, विक्रय कला, पशुओ की खाल मे भूसा इत्यादि भरकर उसे सजीववत् बनाने की कला आदि देश मे शक्षिक व व्यवसायिक शिक्षा पाठयक्रम के द्वारा बहुत सी सरकारी,अर्द्ध सरकारी, राज्यो के बोड, विश्वविद्यालय व गैर सरकारी सस्थाएँ कायरत है। इस प्रकार पत्राचार द्वारा व्यावसायिक तयारी प्रदान की जा सकती है।

(२) नियुक्ति हेतु व्यावसायिक तैयारी

नियुक्ति के सम्ब ध मे सचालित व्यावसायिक तैयारी तीन सामान्य प्रकार की होती है - (1) पहले प्रकार मे विद्यार्थी विद्यालय में रहता है और उसकी नियुक्ति प्रधानत उसकी व्यावसायिक तयारी योगदान के साधन के रूप मे समझी जाती है। कुछ स्थितियों मे आधा समय विद्यालय मे बिताता है और आधा काम मे, जबकि कुछ अन्य स्थितियों मे विद्यालय मे व्यतीत समय का अनुपात कम होता है। (2) दूसरे

7 कोठारी शिक्षा आयोग की रिपोर्ट, पृ 440

प्रकार में प्रधानत वह एक कमचारी होता है और विद्यालय पहले स सलग्न काय अथवा अ"य भावी काय के लिए उसे अधिक अच्छी तरह तयारी करने मे सहायता प्रदान करता है। विद्यालय मे प्रति सप्ताह केवल कुछ घटे बिताना पडता है। (3) तीसरे प्रकार म सीखने वाला विद्यालय मे बिलकुल समय बिताए बिना ही काय के सम्बन्ध मे कुशलता एव ज्ञान प्राप्त कर लेता है। पहले प्रकार म 'विविध आजीविका" सम्बन्धी कायक्रम होते है। दूसरे प्रकार म आशिक काल विद्यालय, व्यस्को के लिए सध्याकालीन-व्यावसायिक कक्षायें, कभी कभी इन तीनो समन्वित रूप स 'अनवरत विद्यालय" कहते है। तीसरे प्रकार म काम के समय प्राय सह कमचारी द्वारा प्रदान की गयी अल्पाधिक अनौपचारिक शिक्षा निहित रहती है।

सहकारी एव आजीविका-कायक्रम —सहकारी योजना के अन्तगत विद्यार्थी युग्म काम करता है । एक काम मे लगा रहता है दूसरा विद्यालय मे और ये दोनो अलग-अलग एक सप्ताह या इससे अधिक काल तक काम करत है। आजीविका योजना के अन्तगत प्रत्येक विद्यार्थी सामा"यत आधा दिन काम-काज मे बिताता है और आधे दिन विद्यालय म। विद्यालय में आधे समय तक सामा य रूप से प्रतिदिन सम्बन्धित विषय की शिक्षा देता है। इस व्यवस्था में कई विभिन्न आजीविकाओ का प्रतिनिधित्व कर सकता है। विद्यार्थी पूणकाल में नियुक्ति के तुरन्त पहले सम्पूण दिन के कायक्रम म आजीविका की तयारी के बाद आजीविका कायक्रम मे विशिष्ट आजीविका की तयारी की ओर अग्रसर होता है।

पयवेक्षित शिक्षा —इस प्रकार की व्यावसायिक तया ी के लिए विद्यालय, नियोक्ताओ और कमचारियो के बीच सहयोग आवश्यक है।

अ शकालीन विद्यालय —व्यावसायिक तैयारी जो नियुक्ति प्रारम्भ होने के बाद प्रदान की जाती है। इनका लक्ष्य युवा कमचारियो को उनके रोजगार के जीवन म आवश्यक अभियोजन स्थापित करने म सहायता करना तथा विशेष आजीविकाओ के लिए प्रशिक्षण प्रदान करना है।

सध्या विद्यालय एव कक्षाएँ — व्यस्क कमचारियो के दनिक अनुभवो की अनुपूर्ति करना और जिन आजीविकाओ म व पहले से सलग्न है उनमे उ हें अधिक प्रवीण बनाना। कुछ हद तक औद्योगिक आजीविकाओ की तयारी सध्या विद्यालयो मे प्रदान की जाती है। ये विद्यालय सभी प्राढ-वग क व्यस्क कमचारियो को व्यावसायिक विस्तार-शिक्षा प्रदान करने के महत्वपूर्ण साधन है।

कामकाज मे कायरत रहकर तैयारी —अलग से समय की व्यवस्था किय बगर स्वत ही कामकाज मे बहुत अधिक मात्रा में व्यावसायिक शिक्षा घटित होती है। सह कमचारी सीखने वाले को य त्र-त त्र प्रदशन या सकेत द्वारा सहायता प्रदान करता है।

(३) आजीविका परिवर्तन के लिए तैयारी

व्यापार मे मन्दी की अवस्था अथवा अन्य कारणो से सेवा से मुक्ति करने, उद्योग मग्न थी बेरोजगारी, नये उद्योगो के विकास एव आजीविकाओ मे ऐच्छिक परिवर्तनो के कारण यह एक स्थायी समस्या बनी हुई है। प्रतिवर्ष व्यस्क कर्मचारियो को आजीविका परिवर्तन के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसके लिए औद्योगिक पुन शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था की आवश्यकता है। कुछ स्थितियो मे पुराने कार्य को छोड़ने से पहले ही परिवर्तन की प्रत्याशा कर ली जाती है और आवश्यक तैयारी भी प्राप्त कर ली जाती है। अन्य स्थितियो मे अचानक परिवर्तन आ जाता है और कर्मचारी को नये कार्य मे लग जाना पड़ता है जिसके लिए पूर्व मे प्रशिक्षण प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। अनेक स्थितियो मे परिवर्तन के साथ-साथ प्राय बेरोजगारी की एक लम्बी अवधि आती है और जब व्यक्ति बेरोजगार रहता है तो यह तैयारी प्राप्त की जाती है।

आर्थिक एवं सामाजिक प्रवृतियो का व्यावसायिक तैयारी के साथ सम्बन्ध

व्यावसायिक तैयारी कार्यक्रम के अभिप्राय की सिद्धि प्रभावशाली ढग से तभी हो सकती है जब व्यावसायिक शिक्षा के नेता व्यापार उद्योग राष्ट्रीय आवश्यकताओ मे होने वाले परिवर्तनो के प्रति निरन्तर सतर्क रहे और सामान्यत सामाजिक संस्थाओं में सतर्कता की बड़ी आवश्यकता होती है। जब तक श्रमिक नेता इन प्रवृतियो पर तथा इनके सदृश अन्य प्रवृतियो पर ध्यान नहीं देगे और जहा परिवर्तन की स्पष्ट आवश्यकता हो, वहा शीघ्र ही परिवर्तन नही करेंगे तब तक व्यावसायिक शिक्षा भावी कार्य की तैयारी के बदले प्राचीन आजीविकाओ की तैयारी मात्र रह जाएगी"[18]

उपसहार -व्यावसायिक तैयारी कुशलता पूवक प्रदान करना वाछित है लेकिन वह तैयारी अल्प व्यय साध्य भी होनी चाहिए यदि इस तैयारी के लिए शिक्षण सस्थायें अपने ऊपर उत्तरदायित्व ही लेती हैं तो सभी के लिए समान शैक्षिक अवसर' नारा मात्र रह जायगा। व्यावसायिक तैयारी एक शैक्षिक कार्य के अन्तर्गत हो जाता है। विद्यालय शैक्षिक कार्यों को करने के अभिप्राय से स्थापित समाज का चयनित अभिकरण है। भारत गरीबो व किसानो का देश है। बहुत बड़ा भाग अभिभावको का निरक्षर है, ऐसी अवस्था मे व्यावसायिक तैयारी का उत्तरदायित्व शालाओ को निभाना होगा।

माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालयो मे तीन सामान्य प्रकारो से व्यावसायिक तैयारी हेतु शिक्षण व्यवस्था का विकास किया जा सकता है — 1 नियुक्ति प्रारम्भ होने के पहले की तैयारी, 2 नियुक्ति के सम्बन्ध मे तैयारी, 3 नियुक्ति के परिवर्तन के लिए तैयारी। इनमे से तीनो सरकारी एव गैर सरकारी विद्यालयो के अन्तर्गत कृषि,

[18] चार्ल्स ए बियर्ड सिडनी वेब और बीयट्रिस वेब, 'लेबर, इन विदर मन काइंड पृ 140

व्यापार, गृहविज्ञान, उद्योग व व्यवसाय विशेष के लिए प्रशिक्षण विभिन्न अनुपातो मे पाये जाते है। शिक्षा म व्यावसाय की तयारी का मुख्य उद्देश्य आत्मनिर्भर बनाना, बेरोजगारी की समस्या को सुलझाना, देश की आर्थिक धारा मे छात्रों को जोडना, ग्रामीण विकास एव भिन्न-भिन्न सामाजिक एव आर्थिक परिवारो से आने वालो का उनकी क्षमतानुसार प्रशिक्षण की व्यवस्था करना है।

स्वतन्त्रता के बाद देश मे 'बुनियादी शिक्षा', 'कार्यानुभव', समाजोपयोगी उत्पादन काय एव समाज सेवा का विभिन्न स्तरों पर समावेश कर परोक्ष व अपरोक्ष रूप स प्रभावशाली क्रियान्विति की ओर देश की शिक्षण सस्थाएँ अग्रसर हो रही है जो निश्चय ही छात्रो म सामूहिक रूप स श्रम काय सामुदायिक सेवा करेंगे। शिक्षा म व्यावसायिक तयारी के लिए ग्रा॰िन्सटर कमटी के सुझाव भी मुख्यत काय आधारित शिक्षा, व्यावसायिक पाठ्यक्रम एव नवीलापन को लिये हुए है जो व्यावहारिक प्रतीत होता है। आज देश की आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनशील अवस्थाओ का सामना करने के लिए विद्यालयो द्वारा प्रेरित करना, व्यावसायिक तयारी की प्रभावशाली व्यवस्था म निरन्तर विस्तार एव पुनर्नियोजन का जारी रहना देश की अनिवार्य आवश्यकता है जिससे उपयोगी नागरिक प्राप्त होगे जो देश की आर्थिक, राजनतिक व सामाजिक उन्नति के लिए उपादय सिद्ध हो सकेंगे।

मूल्याकन (Evaluation)

(अ) लघुत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions)

(1) सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा के पाच कायक्रमो के नाम बताइये। (बीएड पत्रा 1985)

(2) यदि समग्र माध्यमिक शिक्षा व्यावसायिक कर दी जाय तो वतमान शिक्षा क स्वरूप म पाच महत्वपूर्ण परिवतन क्या होंगे ? (बी एड 1984)

(3) शिक्षा एव राष्ट्रीय उत्पादकता पर टिप्पणी लिखिये। (बी एड 1978)

(4) शिक्षा के व्यावसायीकरण और व्यावसायिकता की तयारी के अन्तर स्पष्ट कीजिए ?

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

(1) 'शिक्षा का व्यावसायिकरण अनेक राष्ट्रीय समस्याओ का समाधान प्रस्तुत कर सकता है।' इस कथन की विवेचना कीजिए। ऐसे व्यवसायो का सुझाव दीजिए जिनके विषय मे पूर्व-स्नातक शिक्षा-स्तर पर निर्देशन दिया जा सके। (बी एड 1983, 1978)

(2) 10+2+3 की नई शिक्षा योजना लागू करने म कौन कौन सी प्रमुख समस्याए है ? (बी एड पत्राचार 1981)

(3) 'कार्यानुभव' और व्यावसायिक शिक्षा म सम्प्रत्यात्मक (विचार या अवधारणा मूलक) अन्तर क्या है ? राजस्थान उच्च विद्यालयो शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर सन्निविष्ट करने की दृष्टि से क्या योजना अपनाने का विचार कर रहा है ?

इकाई चतुर्थ

अध्याय 20 | विद्यालय-समुन्नयन-योजना
(Institutional Planning)

[विषय-प्रवेश—विद्यालय-समु नयन-योजना के विभिन्न अंग—योजना निर्माण विधि—विद्यालय-योजना का एक नमूना—अच्छी समु नयन-योजना की विशेषताएं—योजना म शक्षिक प्रयोगो का स्थान—उपसंहार—परीक्षोपयोगी प्रश्न ।]

विषय-प्रवेश

अध्याय संख्या-12 म अध्यापन काय के नियोजन एव अध्याय सख्या-17 मे विद्यालय-कायक्रम के नियोजन का विवचन करते समय शक्षिक-योजन का अथ, उसका महत्व, सिद्धात, पक्ष, क्रिया वयन एव मूल्याकन तथा विद्यालय-योजना के विभि न पक्षो पर विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। अत प्रस्तुत अध्याय मे उन तथ्यो की पुनरावृत्ति करना वांछनीय नही है । पूर्वोल्लिखित तथ्यो के सदर्भ मे प्रस्तुत अध्याय म विद्यालय-समु नयन योजना के विभि न अगो, उसकी विशेषताओ तथा शक्षिक प्रयोगो का महत्व स्पष्ट किया जायेगा ।

विद्यालय-समुन्नयन-योजना के विभिन्न अग

विद्यालय-कायक्रम के नियोजन क सदभ म यह पूर्व म बतलाया जा चुका है कि विद्यालय-कायक्रम का नियोजन क्या है, यह क्या किया जाता है नियोजन कौन करे तथा विद्यालय-योजना के विभि न क्षेत्र या अग कौन से होते है। यह स्मरण कराना आवश्यक है कि विद्यालय-योजना विद्यालय क विभि न पक्षो-शक्षिक, सहशक्षिक तथा भौतिक पक्षो के भि न-भि न कार्यों म अनुभूत आवश्यकता के अनुसार तथा उपलब्ध मानवीय एव भौतिक साधनो के आधार पर सुधार अथवा उ नयन लाने हेतु पूव योजना होती है, अत इसे विद्यालय-समु नयन-योजना (School Improvement Plan) कहा जाता है। इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना है कि विद्यालय क सामा य नियमित (Routine) कार्यों की योजना से भि न वज्ञानिक विधि से शाला-कार्यों मे सुधार हेतु क्रियान्वित की जाने वाली विशिष्ट योजना है ।

विद्यालय-समुन्नयन-योजना के प्रमुख अग निम्नाकित है —

विद्यालय-योजना के क्षेत्र

1 शक्षिक पक्ष—विद्यालय के शक्षिक काय म सुधार हेतु बनाई

शैक्षिक क्षेत्र के अन्तगत आती है। जैसे छात्रों की संख्या बढाना, अपव्यय एव अवरोधन रोकना, विषय-अध्यापन मे सुधार, परिवीक्षण को प्रभावी बनाना आदि। शिक्षा विभाग राजस्थान के प्रकाशन 'विद्यालय-योजना-2" मे शैक्षिक क्षेत्र से सम्बंधित विद्यालय-योजना के चुनाव हेतु निम्नांकित विषय सूची प्रस्तावित की है[1] –

1 छात्रों की संख्या बढाना, 2 अपव्यय एव अवरोधन रोकना, 3 लिखित काय का सशोधन, 4 'अविभक्त इकाई' पद्धति से अच्छा अध्यापन, 5 वर्तनी सुधार, 6 शिशु-क्रीडा-केन्द्र का संचालन, 7 उच्चारण सुधार, 8 कविता-पाठ मे सुधार 9 कहानी-अभिनयीकरण, 10 मेरा संग्रह, 11 सकलन काय, 12 शब्द भण्डार वृद्धि, 13 मानचित्र-रचना सुधार, 14 सामान्य ज्ञान वृद्धि 15 भित्ति (दीवार) पत्रिका, 16 हस्तलिखित पत्रिका, 17 श्रुति लेख, 18 समाचार वाचन 19 प्रयोगनिष्ठ विज्ञान शिक्षण, 20 कहानी-कथन, 21 वय की परिवीक्षण योजना, 22 वाचनालय का सदुपयोग, 23 पुस्तकालय का समुचित उपयोग 24 कक्षा पुस्तकालय की व्यवस्था, 25 गणित शिक्षण सुधार, 26 संग्रहालय निर्माण।

2 सहशैक्षिक-पक्ष —इसके अन्तगत विद्यालय के पाठ्यक्रम सहगामी क्रिया कलापों में सुधार हेतु बनाई गई योजना होती है। 'विद्यालय-योजना-2" मे इस क्षेत्र की निम्नांकित सूची प्रस्तावित की गई है —

1 व्यायाम शिक्षण सुधार, 2 खेल कूद सुधार 3 सामूहिक पी टी 4 बाल-सभा 5 राष्ट्र-गीत अभ्यास, 6 समय-पालन, 7 मध्यान्ह भोजन की व्यवस्था, 8 रुचि काय (हाबी) का आयोजन 9 कबिंग स्काउटिंग 10 स्वास्थ्य रक्षा, 11 शाला-गणवेश का सुधार, 12 प्रौढ शिक्षा कायक्रम, 13 छात्रो की स्वास्थ्य परीक्षा और उसके बाद सुधार-कायक्रम, 14 उत्सव दिवसो का सफल आयोजन 15 अध्यापक-अभिभावक-सघ, 16 शिष्टाचार 17 प्रार्थना सभा सुधार।

3 भौतिक पक्ष —योजनाएँ जो शाला भवन, प्रागण उद्यान खेल के मैदान, शिक्षण सहायक उपकरणो से सम्बंधित होती है, वे भौतिक पक्ष के अन्तगत मानी जाती है। उसकी प्रस्तावित सूची निम्नांकित है —

1 बाल-वाटिका, 2 फुलवारी लगाना 3 जन सहयोग से शाला भवन निर्माण 4 अन्तर्कक्षा सफाई-प्रतियोगिता, 5 विद्यालय की दीवारो पर यथोचित सामग्री का प्रदर्शित करना, 6 विद्यालय-प्रागण मे सुनियोजित रूप से वृक्षारोपण, 7 पेयजल की उचित देख-रेख।

1 विद्यालय-योजना-2 (शिक्षा विभाग, राजस्थान-पृ॰ 14-15)

नना-निर्माण विधि

सुधार हेतु चयनित कार्यों मे से प्रत्येक की काय योजना बनाई जानी चाहिए। योजना मे निम्नाकित पद, चरण या सोपान होते है —

काय का नाम, 2 वतमान स्थिति, 3 उद्देश्य

क्रियान्विति के चरण, 5 उपलब्ध साधन, तथा 6 मूल्याकन

सम्पूर्ण विद्यालय समुन्नयन योजना का प्रपत्र निम्नाक्ति होना चाहिए[2] —

विद्यालय का सामान्य-परिचय, स्थिति, पहुँच के साधन आदि।

विद्यालय का इतिहास-अति सक्षेप मे।

विद्यालय के अपने मुख्य उद्देश्य यदि कोई स्पष्ट हो तो।

विद्यालय की छात्र सख्या कक्षा एव वगवार (निम्नाकित प्रपत्र मे)

ा तथा वग	छात्र सख्या	बालक	बालिका
1	2	3	4

विद्यालय परिवार निम्नाकित प्रपत्र मे —

(अ) अध्यापक वग

प्रधानाध्यापक

सहायक " "

अध्यापक गण

योग "

णी	द्वि श्रेणी	तृ श्रेणी	अन्य (पी टी आई टेक्नीकल आदि)	योग

ग्यतावार

ग्यता	कला वग ट्रेंड/अनट्रेंड	विज्ञान वग ट्रेंड/अनट्रेंड	कृषि वग ट्रेंड/अनट्रेंड	आदि
स्ट ग्रेजुएट				
जुएट				
कण्डरी/हायर सकण्डरी				
टेक्नीकल				
अन्य				
योग—				

2 विद्यालय योजना–3 (शिक्षा विभाग, राजस्थान पृ० 33-34)

विषयवार		उच्च प्राथमिकस्तर	
प्राथमिकस्तर			
विषय	अध्यापको की सख्या	विषय	अध्यापको की सख्या

(ब) अ य परिवार

	वरिष्ठ	कनिष्ठ	योग
लेखक वग		—	
पुस्तकालयाध्यक्ष	—	—	
प्रयोगशाला सहायक	—	—	
चतुथ श्रेणी कमचारी	—	—	
लेब बॉय (Lab Boy)	—	—	

6 विषय जो पढाये जाते हो —

प्राथमिकस्तर		उ प्रा स्तर	
विषय	छात्र सख्या	विषय	छात्र सख्या
अनिवाय			
वैकल्पिक			
उद्योग एव अ य			

7 भवन एव उपकरण आदि (निम्नाकित प्रपत्र मे) —

प्रकार	साइज	सख्या	विवरण

8 खेल के मदान (निम्नाकित प्रपत्र म) —

खेल	सख्या	स्थिति (प्रागण से दूरी)	स्तर

9 पुस्तकालय म पुस्तको की सूचि विषयवार ।

10 वाचनालय म पत्र पत्रिकाओ का विवरण ।

11 परीक्षा–परिणाम प्रत्येक सत्र का कक्षावार ।

12 वतमान सत्र मे उपलब्ध काय दिवसो की सख्या (माह एव सप्ताह के दिन म विभक्त कर)

13 आर्थिक साधन (निम्नाकित प्रपत्र म) —

राजकीय सत्र ( )			छात्र कोष सत्र ( )		
मद	राशि	योग	मद	गत सत्र का शेष नया	योग

समु नयन काय-बि दु (निम्नाकित प्रपत्र मे)—

गत सत्र.... मे लिये गये	इस सत्र मे प्रस्तावित
(अ) शक्षिक	
(ब) सह शक्षिक	
(स) भौतिक	
(द) अध्यापक उ ययन	
(ई) विभाग द्वारा प्रसारित	
(फ) अ य	

हर एक समुन्नयन काय बि दु की योजना नीचे क शीपको म दी जाये—

1 समु नयन काय का नाम, 2 प्रभारी शिक्षक/समिति, 3 समिति का जक (यदि हो), 4 मानक अपेक्षाए, 5 वतमान स्थिति का विश्लेषण, काय के लक्ष्य एव समय सीमा, 7 क्रियान्विति सम्बन्धी क्रिया पद—(क) समय , (ख) साधन-सुविधाए, 8 मूल्याकन-विधि ।

उपरोक्त शाला-समु नयन-योजना के निर्माण, उच्चाधिकारियो को प्रेषित अद्ध सत्रीय मूल्याकन, सत्र के अ त का मूल्याकन तथा अ तिम रिपोट भेजने निर्धारित तिथिया क्रमश 30 अप्रेल, 7 मई, 30 नवम्बर, 15 अप्रेल तथा अप्रेल है ।

द्यालय-योजना का एक नमूना[3]

विद्यालय-समु नयन-योजना की एक काय योजना का नमूना प्राथमिक विद्यालय पूर्वोल्लिखित सोपानो मे निम्नाकित है —

कायक्रम का नाम—'पहली कक्षा मे छात्रो की सख्या मे वृद्धि करना' ।

वतमान स्थिति—विद्यालय की छात्र सख्या काफी कम है । केवल 125 विद्यार्थी है । विद्यालय पहली से पाचवी कक्षा तक है। शिक्षक शिक्षार्थी अनुपात 1 25 है । पहली कक्षा में केवल 40 विद्यार्थी हैं ।

उद्देश्य —पहली कक्षा की छात्र सख्या 40 से बढाकर 60 करना ।

क्रियान्विति के चरण —

म	पद	प्रभारी अध्यापक	समय	पद पूर्ति की तिथि
1	गांव म स्कूल जाने योग्य बालकों का पता लगाना (सर्वेक्षण करना)	कक्षाध्यापक (पहली कक्षा)	10 दिन	10 जुलाई

3. विद्यालय-योजना-2 शिक्षा विभाग, राजस्थान-पृ० 16)

2 ऐस बालका के अभिभावका स मिलना व भेजने का आग्रह करना	कक्षाध्यापक (पहली कक्षा)	7 दिन	17 जुलाई
कक्षाध्यापक के प्रयत्न के बावजूद न आने वाले बालको के अभिभावको से मिलना	प्रधानाध्यापक	3 दिन	20 जुलाई
4 छात्रो की सख्या वढाने के लिए गाव की पचायत की सहायता से सभा करना	कक्षाध्यापक कक्षा–1 (सहयोगी सभी अध्यापक)	1 दिन	25 जुलाई
5 पहली कक्षा म भर्ती होकर अनुपस्थित रहने वाले छात्रो के अभिभावको से मिलना	कक्षाध्यापक कक्षा–1	सप्ताह मे एक दिन	प्रति शनिवार
6 छात्रो के लिए अच्छे खेल-कूद की व्यवस्था	सभी अध्यापक	एक कालाश	प्रतिदिन

5 उपलब्ध साधन —इसके लिये कोई विशेष साधनो की आवश्यकता नही है। नि शुल्क पाठय-पुस्तकें प्राप्त हुई तो छात्रो म बाट दी जायेंगी। कक्षा 1 क हाजिरी रजिस्टर के माध्यम स उपस्थिति का लेखा जोखा रखा जायेगा।

6 मूल्याकन —1 प्रतिमाह औसत हाजिरी निकाली जायेगी, 2 वर्ष क अ त मे प्रारम्भ की हाजरी से तुलना की जाएगी।

अच्छी समुन्नयन योजना की विशेपताएँ

अच्छी समु नयन योजना की निम्नाकित विशेपताएँ हो सकती हैं —

1 योजना के निर्माण म सभी सबधित व्यक्तियो का योगदान रहे, 2 वह महात्वाकाक्षी न हो अर्थात् उपलब्ध ससाधनो एव कार्यकर्ताओ की क्षमता के अनु कूल हो, 3 उपलब्ध मानवीय एव भौतिक साधनो का अधिकतम उपयोग हो, 4 समु नयन काय बिदुओ का चुनाव अनुभूत आवश्यकता पर आधारित हो, 5 चयनित काय बिदुओ को प्राथमिकता क अनुसार क्रियान्वित किया जाये, 6 योजना के लक्ष्यो का निधारण सावधानी से हो 7 योजना के क्रिया वयन प्रभारी का चुनाव उपयुक्त हो, 8 क्रियान्विति के समय समुचित व्यक्ति द्वारा परिवीक्षण, निर्देशन एव मूल्याकन की व्यवस्था रहे 9 योजना का अभिलेख सावधानी स रखा जाय 10 योजना समय बद्ध (Time bound) कायक्रम क अनुसार सम्पन्न की जाय, 11 जिलाधिकारियो द्वारा इन योजनाओ क सफल क्रिया वयन हेतु निर तर प्रोत्साहन मिलता रहे।

ना मे शैक्षिक प्रयोगो का स्थान–

यह तथ्य स्पष्ट हो चुका है कि विद्यालय समुन्नयन–योजना की काय योजनाए लय के सामान्य नियमित (Routine) कार्यों की योजनाएँ नही है । वस्तुत काय-योजनाग्रो मे वर्तमान समस्याग्रो के निराकरण हेतु वज्ञानिक विधि एव उ प्रविधियो का प्रयोग किया जाता है । समस्याग्रो के समाधान मे ग वेषण ।। खोज (Research) का दृष्टिकोण रखा जाता है जिससे समस्या के समा हेतु सभावित उन्नत क्रियाग्रो का प्रयोग कर उनकी प्रभावोत्पादकता सिद्ध की ो है ताकि शक्षिक विकास हेतु उन्हे विद्यालय की नियमित काय पद्धति के रूप मपनाया जा सके । समुन्नयन योजनाग्रो मे प्रायोजनाग्रो (Projects) ग्रौर गों (Experiments) का विशेष स्थान एव महत्त्व होता है । प्राथमिक एव र प्राथमिक विद्यालयो म शक्षिक ग्रनुसधान की सर्वेक्षण (Survey) तथा ग्रानुसधान (Action Research) की विधियाँ समस्याग्रा के समाधान हेतु उपयुक्त ी है जिनका उपयोग विद्यालय-समुन्नयन योजनाग्रो म किया जाना चाहिए ।

सहार–

विद्यालय–समुन्नयन–योजनाएँ इस नवीन धारणा पर ग्राधारित है कि विद्या य-सुधार का योजनाएँ ऊपर से शिक्षाधिकारियो द्वारा विद्यालय पर थोपी न कर उन योजनाग्रो से प्रभावित सम्बन्धित विद्यालय के व्यक्तियो द्वारा ही बना- र क्रियान्वित की जायें । इस प्रक्रिया द्वारा विद्यालयो की ग्रनुभूत ग्रावश्यकताग्रो ी पूर्ति एव समस्याग्रा का निराकरण सम्भव है तथा स्वय द्वारा निर्मित योजनाग्रो ी क्रियान्वयन म भी सम्बद्ध व्यक्तियो का लगन उत्साह एव ग्रपनत्व की भावना प्राप्त करना स्वाभाविक एव ग्रवश्यमभावी है । इन योजनाग्रो मे शक्षिक ग्रनु- धान की नवीन दृष्टि ग्रपनाई जाती है जो सामान्य परिनियमित काय (Routine) ी ग्रभिवृत्ति स भिन्न है । यही कारण है कि इन योजनाग्रो के प्रति कुछ लोगो दो शकाएँ होती हैं । ये शकाएँ है —1 योजनाग्रो से शिक्षा मे य त्रीकरण हो जायेगा, 2 योजनाएँ मात्र कागजी है, 3 वतमान गिरते हुए स्तर मे ये सम्भव नहीं, 4 समाज का वातावरण दूषित है जो इन योजनाग्रो के ग्रनुपयुक्त है, 5 शिक्षक विद्यार्थी व प्रशासक ग्रपने कत्तव्य के प्रति उदासीन है, 6 योजनाएँ शिक्षकों का काय भार बढायेंगी, 7 नियमित काय ही पर्याप्त है तो योजनाग्रो की ग्रावश्यकता नही है, तथा 8 योजनाग्रो को सही रूप से लोग ग्रनभिज्ञ है ।[4] शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित "विद्यालय योजना 3" पुस्तिका मे इन सभी शकाग्रो को निमू ल

---

4 विद्यालय-योजना–3 (शिक्षा विभाग, राजस्थान–पृ॰ 45–55)
5 उपरोक्त (पृ॰ 47)

बतलाते हुए विद्यालय-समु नयन-योजनाओं का समर्थन किया है-"मूल बात यह है कि योजना-निर्माण की प्रक्रिया का मूल आधार अनिवार्य समानीकरण नहीं है वह है अपनी समस्याओं एवं आवश्यकताओं को एक वैज्ञानिक, तर्कसंगत एवं पूर्व-निर्धारित निर्णयों के आधार पर हल करने की आदत डालना।"

□□□

मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer type Questions)

1 प्रभावी संस्थागत योजना बनाने के पांच सिद्धान्त लिखिये।

(बी एड 1985)

2 विद्यालय योजना (Institutional Planning) से आप क्या समझते हैं?

(बी एड 1983)

3 संस्थानिक योजना से आप क्या समझते हैं ?

(बी एड 1981, 1979)

4 विद्यालय योजना के प्रमुख आयाम कौन-कौन से हैं तथा किन शीर्षकों के अन्तर्गत इसे प्रस्तुत किया जा सकता है ?

(बी एड पत्राचार 1981)

5 विद्यालय योजना के सन्दर्भ में जे०पी० नायक ने एक बार कहा था "निम्न लक्ष्य नहीं, अपितु असफलता अपराध है।" इस पर टिप्पणी कीजिए।

(बी एड 1978)

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1 अच्छी समु नयन योजना की क्या विशेषताएँ होनी चाहिए ?

2 सफल संस्थागत नियोजन के लिए किन-किन तत्त्वों का होना आवश्यक है?

3 संस्थागत योजना से क्या अभिप्राय है ? संस्थागत योजना और शैक्षिक विकास कार्यक्रमों को किस प्रकार प्रभावित करती है ? संस्थागत योजना के लाभों का उल्लेख कीजिए।

4 संस्थागत योजना की असफलता के कौन कौन से कारक होते हैं ? एक उपयोगी संस्थागत योजना निर्माण के सोपानों का उल्लेख कीजिए तथा अपने सृजनात्मक सुझाव दीजिए।

अध्याय 21 | व्यक्तिगत एव विद्यालय स्वास्थ्य कार्यक्रम
(Personal & School health Prog)

रूपरेखा

[(अ) व्यक्तिगत स्वास्थ्य —विषय प्रवेश, व्यक्तिगत स्वास्थ्य का अथ एव महत्व व्यक्तिगत स्वास्थ्य हेतु, शाला के काय, वैयक्तिक स्वच्छता के प्रशिक्षण व उसके स्तर, व्यक्तिगत स्वास्थ्य व व्यक्तिगत स्वच्छता विद्यालय मे चिकित्सक परीक्षण निर तर देखभाल का काय, भोजन, बीमारियाँ व उनके लक्षण व बचने के उपाय ।

(ब) विद्यालय स्वास्थ्य कायक्रम — विषय प्रवेश स्वास्थ्य कायक्रम के अग, स्कूल स्वास्थ्य सेवा कायक्रम के उद्देश्य, स्वास्थ्य शिक्षा कायक्रम मे प्रधानाध्यापक व अध्यापक के कर्त्तव्य, सुधार हेतु सुझाव, उपसहार-मूल्यांकन ।]

विषय प्रवश — स्वास्थ्य विज्ञान का क्षत्र अत्यन्त ही विस्तृत है । इसके अतगत उन सभी विज्ञानो का समावेश हो जाता है जा बालअवस्था से वृद्ध अवस्था तक मनुष्य को स्वस्थ जीवन प्रदान करने म लाभकारी सिद्ध होता है जैसे शरीर क्रिया विज्ञान (फिजियोलोजी) शरीर रचनाशास्त्र (एनोटोमी), रोग के लक्षण (सिम्टमस) क्रमश हम स्वस्थ्य अवस्था म शरीर के विभि न अवयवो की काय प्रणाली, बालको के स्वास्थ्य विज्ञान का ज्ञान तथा स्कूल के बच्चो म साधारणत पाये जान वाले रोगो के लक्षणो से अवगत करवात है । इनके बिना प्रारम्भिक परख, कारण तथा उनका निदान मुश्किल हो सकता है। अत प्रो सी केलीफोड न—"स्वास्थ्य शिक्षा के अ तगत स्कूल और स्कूल के बाहरी अनुभव जा प्राप्त होत है जो व्यक्ति वग और समाज के स्वास्थ्य से सम्ब ध रखने वाली समस्त भावना, मनोवृत्तियो और ज्ञान को प्रभावित करत हैं ।" परन्तु इन सभी को परोक्ष एव अपरोक्ष रूप म विद्यालयी स्वास्थ्य कायक्रम को नही अपितु सामाजिक स्वास्थ्य शिक्षा तथा व्यक्तिगत स्वास्थ्य तक को प्रभावित किए बगैर नही रह सकती क्योकि इस शिक्षा म भी व्यक्ति प्रधान है अत व्यक्तिगत स्वास्थ्य शिक्षा के बारे म छात्रों का अभिभावको द्वारा शाला म प्रविष्ट होने स पूव स्वास्थ्य सम्बधित शिक्षा अनौपचारिकरूप से दी जाती है ।

श्रीमती रे "विद्यालय के आरोग्यपूण वातावरण के साथ व्यक्तिगत और सामाजिक स्वास्थ्य की आदतो के विकास करने की अनुशसा की है क्योकि व्यक्तिगत स्वास्थ्य आवश्यक है । स्वास्थ्य शिक्षा के मोटे तौर पर तीन उपभाग व्यक्तिगत

सामाजिक व विद्यालयी स्वास्थ्य शिक्षा है।" व्यक्तिगत स्वास्थ्य और स्वच्छता का ध्यान रखना केवल व्यक्तिगत हित का विषय नहीं अपितु प्रत्येक नागरिक का यह सामाजिक कर्त्तव्य है कि वह अपनी निजी और घर की तथा आस-पड़ोस की स्वच्छता में पूरा सहयोग दें। यदि सभी नागरिक व्यक्तिगत स्वास्थ्य और स्वच्छता का ध्यान रखेंगे तो सामाजिक स्वास्थ्य और स्वच्छता का उद्देश्य स्वतः ही पूरा हो जाएगा। विद्यालय का यह उत्तरदायित्व है कि वह छात्रों को स्वच्छता और स्वास्थ्य के सामान्य नियमों का ज्ञान कराए इनकी विधियों पर प्रकाश डाले तथा अस्वस्थ्य और अस्वच्छता को दूर करने के उपायों से परिचित कराए तथा छात्रों में अच्छी आदतों का निर्माण करवाने का सफल प्रयास करें।

व्यक्तिगत स्वास्थ्य का अर्थ एवं महत्त्व

व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए शरीर के सम्पूर्ण अवयवों की बनावट और उनके काम का ज्ञान, भोजन, जल और वायु का ज्ञान, मुँह, दाँत, बाल, त्वचा, आँख नाखून आदि की स्वच्छता, विभिन्न ऋतुओं में पहिने जाने वाले वस्त्रों का ज्ञान व उनकी स्वच्छता, व्यायाम, थकान निद्रा, विश्राम थकान को दूर करने के उपाय, सन्तुलित शरीर भार, आसन, विभिन्न प्रकार के संक्रामक रोग तथा उनकी रोकथाम आदि का ज्ञान आवश्यक है। जिससे हमारे शरीर को कोई रोग न लग और उसके विकास का क्रम ठीक चलता रहे तथा हम स्वस्थ्य रहें। इन्हीं जानकारी से ही बालक में अच्छी आदतों का निर्माण और स्वच्छता की वृत्ति उत्पन्न होती है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य शरीर के बाहरी अंगों की स्वच्छता तथा सुरक्षा से सम्बन्धित है जिसे भी उतना ही महत्व दें जितनी कि सामाजिक एवं सस्थान आरोग्य को दी जाती है। व्यक्तिगत आरोग्य का सम्बन्ध मुख्य रूप से बाल-जीवन की दो बुराईयों से जोड़ा जा सकता है—लापरवाही तथा अस्वच्छता। इन्हीं बुराइयों के फलस्वरूप बालक कई तरह के रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं।

बालकों के अनेकों रोगों एवं व्याधियों के लिए जहाँ तक उनकी अपनी लापरवाही तथा अस्वच्छ रहने की प्रकृति जिम्मेदार है वहाँ उनके अभिभावकों की अशिक्षा एवं अज्ञान कुछ कम जिम्मेदार नहीं है। असंख्य बालक विद्यालयों में प्रवेश करते समय अनेकों ऐसे रोगों एवं दोषों से पीड़ित होते हैं जिन्हें उनके माँ-बाप की तनिक-सी सावधानी से बचाया जा सकता था। अतः वैयक्तिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में शिक्षकों का यह भी धर्म हो जाता है कि वे बालकों में स्वास्थ्य के प्रति जागृति उत्पन्न करने के साथ-साथ उनके अशिक्षित अभिभावकों के प्रशिक्षण के प्रति भी रूचि प्रदर्शित करें।

भारत जैसे देश में जहाँ अधिकांश बालक निर्धन, अशिक्षित एवं गन्दी बस्तियों में रहने वाले परिवारों से सम्बन्धित हैं वे अपने परिवार तथा आस पास में प्रन

जाने ही अनेको अस्वस्थ्य आदतें सीख लेते है। ऐसी परिस्थितियो मे विशेष रूप से उन्हे स्वास्थ्यकारी आदतों का सिखाया जाना शिक्षको का पुनीत कर्त्तव्य है।

व्यक्तिगत स्वास्थ्य हेतु विद्यालय के कार्य

1 बालक म ऐसी आदते डाले जिससे वे प्राकृतिक आवश्यकताओ से निवृत होकर दैनिक काय म चुस्ती से लगे।
2 बालका के समक्ष अनुकरणीय आदश प्रस्तुत करें जिससे व्यसनो से बचा जाय।
3 त्वचा की सफाई की शिक्षा दी जाय।
4 बालको को स्नान और उसके लाभो से अवगत कराया जाय।
5 नेत्रों की सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाय।
6 नाखूना के अगले हिस्सो के नीचे मल जमी रहती है जिसस रोगिले कीटाणु पनत रहते हैं अत उन्हे उसकी सफाई के लिए सचेत करें।
7 बालो के कई प्रकार के रोगो से बचने हेतु उनकी सफाई की आवश्यकता पर प्रकाश डालें।
8 कान की सफाई की आवश्यकता का वणन किया जाय।
9 दाँत की सफाई न रखने पर रोग के कीटाणु पनप जाते है और भोजन के साथ शरीर के अन्दर जाकर नुकसान करते है अत इसकी सफाई के बारे म व्यापक ज्ञान प्रदान किया जाना वांछित है।
10 वस्त्रो की सफाई के बारे म छात्रो को सचेत किया जाय। वस्त्र हमारे शरीर को गर्मी सर्दी और तज वायु से रक्षा करता है। हल्के तथा कम वजनी वस्त्रो को पहनन हेतु उत्प्रेरित किए जाय।
11 विद्यालय-चिकित्सक द्वारा छात्रो का स्वास्थ्य परीक्षण होना चाहिए। छात्रो व अभिभावको को उनके दोष दूर करने के उपाय बताये जाएँ।
12 छात्रो की शारीरिक क्षमता व उम्र के अनुरूप व्यायाम करवाया जाय।
13 पौष्टिक-भोजन करने व उनके गुणो पर प्रकाश डाला जाय। स्वादिष्ट भोजन का पौष्टिक होना जरूरी नही होता।
14 छात्रो को निद्रा की उपयुक्त परिस्थितियो का ज्ञान कराया जाय।
15 विद्यालय का वातावरण स्वास्थ्यवद्धक हो।

वयक्तिक स्वच्छता के प्रशिक्षण व उनके स्तर

बालक की मनोवैज्ञानिक विकास की दृष्टि से उसके जीवनकाल को तीन पृथक स्तर (Stages) म विभाजित किया जा सकता है —

1 जब बालक मे तर्क शक्ति का अभाव होता है,
2 जब बालक सामाजिक मान्यता (Social approval) तथा प्रशंसा (Appreciation) का इच्छुक होता है, तथा
3 जब बालक म स्वाभिमान की भावना जागृत हो जाती है।

इन तीनों स्तरों के बीच कोई निश्चित सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती है। शिक्षक को अपने अनुभव के आधार पर यह ज्ञात करने योग्य होना चाहिए कि बालक किस समय किस स्तर पर है तभी वह स्वास्थ्य शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम की ठीक ढंग से योजना बना सके।

प्रथम स्तर पर अभ्यास एवं अनुकरण द्वारा ही स्वास्थ्य शिक्षा दी जानी चाहिए। रूमाल का प्रयोग दाँतों की सफाई समय पर सोना, उठना, शौच जाना तथा भोजन करना, यह सब बातें उसे निरन्तर अभ्यास द्वारा ही सिखाई जानी चाहिए। इस स्तर पर अभ्यास की प्रमुखता के कारण इसे ड्रिल और अभ्यास स्तर (Practice Stage) भी कहते हैं।

द्वितीय स्तर पर बालकों में स्वस्थ ढंग से रहने की आदत का विकास करने में स्कूल-भवन की स्वच्छता, नियमितता (Orderliness), व्यवस्था द्वारा अधिक महत्व रखते है। बालकों द्वारा की गई भूलों पर शर्मिन्दा नहीं करना चाहिए बल्कि सफलताओं पर प्रशंसा की जाय।

इस अवस्था के बाद बालक कुछ बड़ा हो जाता है। वह जान-बूझकर ऐसे कार्य करता है जो उसे दूसरों की दृष्टि में ऊँचा उठा सके तथा उसे सम्मान एवं मान्यता प्रदान करा सकें। विशेष रूप से वह अपने अभिभावकों व बड़े भाई बहनों तथा शिक्षकों द्वारा अपनी सफलता पर प्रशंसा की आशा रखता है। इस स्तर पर शिक्षक को बालकों के सामने अपना आदर्श उपस्थित करना चाहिए जिससे वे अनुकरण द्वारा अच्छी आदतें सीख सकें। छात्रों में स्पर्धा व चिन्ह जीतने के लिए उत्प्रेरित करना चाहिए और उत्साह बढ़ाने का सफल प्रयास भी।

तृतीय स्तर पर बालक की तार्किक बुद्धि का पूर्ण विकास हो जाता है। वह अध्ययन के आधार पर अपना एक आदर्श बना लेता है और उसी के अनुसार कार्य करने में आत्म सन्तोष का अनुभव करता है। इस समय उसे किसी की प्रशंसा एवं बुराई की कोई परवाह नहीं होती है। इस स्तर पर स्वास्थ्य शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो तर्क सगत हो जिससे बालक उसकी अच्छाई या बुराई को समझ कर उस पर अमल कर सके।

व्यक्तिगत स्वास्थ्य व व्यक्तिगत स्वच्छता

(Personal health & Personal Cleanliness)

हमारे विद्यालयों में अधिकांश बालक निर्धन, अशिक्षित एवं गन्दी बस्तियों में रहने वाले परिवारों से सम्बन्धित हैं वे अपने परिवार तथा पास पड़ोस में अनजाने ही अनेकों अस्वस्थ्य आदतें सीख लेते हैं। ऐसी परिस्थितियों में विशेष रूप से उन्हें स्वास्थ्यकारी आदतों का सिखाना अध्यापकों का परम कर्तव्य हो जाता है। यदि बालक घर से हाथ-मुँह धोकर, नहाकर तथा दाँत साफ करके स्कूल नहीं आते हैं तो उनसे यह सब स्कूल भवन में उपलब्ध सुविधाओं के

अध्याय 21 | व्यक्तिगत एवं विद्यालय स्वास्थ्य कार्यक्रम

(Personal & School health Prog)

रूपरेखा

[(अ) व्यक्तिगत स्वास्थ्य —विषय प्रवेश, व्यक्तिगत स्वास्थ्य का अर्थ एवं महत्व व्यक्तिगत स्वास्थ्य हेतु, शाला के कार्य, वैयक्तिक स्वच्छता के प्रशिक्षण व उसके स्तर, व्यक्तिगत स्वास्थ्य व व्यक्तिगत स्वच्छता विद्यालय में चिकित्सक परीक्षण निरंतर देखभाल का कार्य, भोजन, बीमारियां व उनके लक्षण व बचने के उपाय।

(ब) विद्यालय स्वास्थ्य कार्यक्रम — विषय प्रवेश स्वास्थ्य कार्यक्रम के अंग, स्कूल स्वास्थ्य सेवा कार्यक्रम के उद्देश्य, स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम में प्रधानाध्यापक व अध्यापक के कर्त्तव्य, सुधार हेतु सुझाव, उपसंहार-मूल्यांकन।]

विषय प्रवेश — स्वास्थ्य विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त ही विस्तृत है। इसके अन्तर्गत उन सभी विज्ञानों का समावेश हो जाता है जो बाल अवस्था से वृद्ध अवस्था तक मनुष्य को स्वस्थ जीवन प्रदान करने में लाभकारी सिद्ध होता है जैसे शरीर क्रिया विज्ञान (फिजियोलोजी) शरीर रचनाशास्त्र (एनोटोमी), रोग के लक्षण (सिम्टमस) क्रमश: हमें स्वस्थ्य अवस्था में शरीर के विभिन्न अवयवों की कार्य-प्रणाली, बालकों के स्वास्थ्य विज्ञान का ज्ञान तथा स्कूल के बच्चों में साधारणतः पाये जाने वाले रोगों के लक्षणों से अवगत करवाते हैं। इनके बिना प्रारम्भिक परख, कारण तथा उनका निदान मुश्किल हो सकता है। अतः प्रो सी केलीफोर्ड ने—'स्वास्थ्य शिक्षा के अन्तर्गत स्कूल और स्कूल के बाहरी अनुभव जो प्राप्त होते हैं जो व्यक्ति वर्ग और समाज के स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखने वाली समस्त आदतों, मनोवृत्तियों और ज्ञान को प्रभावित करते हैं।' परन्तु इन सभी को परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से विद्यालयी स्वास्थ्य कार्यक्रम को नहीं अपितु सामाजिक स्वास्थ्य शिक्षा तथा व्यक्तिगत स्वास्थ्य तक को प्रभावित किए बगैर नहीं रह सकती क्योंकि इस शिक्षा में भी व्यक्ति प्रधान है अतः व्यक्तिगत स्वास्थ्य शिक्षा के बारे में छात्रों का अभिभावकों द्वारा शाला में प्रविष्ट होने से पूर्व स्वास्थ्य सम्बन्धित शिक्षा अनौपचारिकरूप से दी जाती है।

श्रीमती रे "विद्यालय के आरोग्यपूर्ण वातावरण के साथ व्यक्तिगत और सामाजिक स्वास्थ्य की आदतों के विकास करने की अनुशंसा की है क्योंकि व्यक्ति एवं स्वास्थ्य आवश्यक है। स्वास्थ्य शिक्षा के मोटे तौर पर तीन उपभाग व्यक्तिगत

सामाजिक व विद्यालयी-स्वास्थ्य शिक्षा है ।" व्यक्तिगत स्वास्थ्य और स्वच्छता का ध्यान रखना केवल व्यक्तिगत हित का विषय नहीं अपितु प्रत्येक नागरिक का यह सामाजिक कर्त्तव्य है कि वह अपनी निजी और घर की तथा आस-पड़ोस की स्वच्छता में पूरा सहयोग दे । यदि सभी नागरिक व्यक्तिगत स्वास्थ्य और स्वच्छता का ध्यान रखेंगे तो सामाजिक स्वास्थ्य और स्वच्छता का उद्देश्य स्वतः ही पूरा हो जाएगा । विद्यालय का यह उत्तरदायित्व है कि वह छात्रों को स्वच्छता और स्वास्थ्य के सामान्य नियमों का ज्ञान कराए इनकी विधियों पर प्रकाश डाले तथा अस्वस्थ्य और अस्वच्छता को दूर करने के उपायों से परिचित कराए तथा छात्रों में अच्छी आदतों का निर्माण करवाने का सफल प्रयास करें ।

व्यक्तिगत स्वास्थ्य का अर्थ एवं महत्त्व

व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए शरीर के सम्पूर्ण अवयवों की बनावट और उनके कार्य का ज्ञान भोजन जल और वायु का ज्ञान मुँह, दाँत बाल त्वचा आँख नाखून आदि की स्वच्छता, विभिन्न ऋतुओं में पहिन जाने वाले वस्त्रों का ज्ञान व उनकी स्वच्छता, व्यायाम, थकान निद्रा विश्राम थकान को दूर करने के उपाय संतुलित शरीर भार, आसन, विभिन्न प्रकार के संक्रामक रोग तथा उनकी रोकथाम आदि का ज्ञान आवश्यक है । जिससे हमारे शरीर को कोई रोग न लग और उसके विकास का क्रम ठीक चलता रहे तथा हम स्वस्थ्य रहें । इन्हीं ज्ञानकारी से ही बालक में अच्छी आदतों का निर्माण और स्वच्छता की वृत्ति उत्पन्न होती है । व्यक्तिगत स्वास्थ्य शरीर के बाहरी अंगों की स्वच्छता तथा सुरक्षा से सम्बन्धित है जिसे भी उतना ही महत्व दें जितनी कि सामाजिक एवं संस्थान आरोग्य को दी जाती है । व्यक्तिगत आरोग्य का सम्बन्ध मुख्य रूप से बाल-जीवन की दो बुराइयों से जोड़ा जा सकता है—लापरवाही तथा अस्वच्छता । इन्हीं बुराइयों के फलस्वरूप बालक कई तरह के रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं ।

बालकों के अनेकों रोगों एवं व्याधियों के लिए जहाँ तक उनकी अपनी लापरवाही तथा अस्वच्छ रहने की प्रकृति जिम्मेदार है वहाँ उनके अभिभावकों की अशिक्षा एवं अज्ञान कुछ कम जिम्मेदार नहीं है । अस्तु बालक विद्यालयों में प्रवेश करते समय अनेकों ऐसे रोगों एवं दोषों से पीड़ित होते हैं जिन्हें उनके माँ-बाप की तनिक-सी सावधानी से बचाया जा सकता था । अतः वैयक्तिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में शिक्षकों का यह भी धर्म हो जाता है कि वे बालकों में स्वास्थ्य के प्रति जागृति उत्पन्न करने के साथ-साथ उनके अशिक्षित अभिभावकों के प्रशिक्षण के प्रति भी रूचि प्रदर्शित करें ।

भारत जैसे देश में जहाँ अधिकांश बालक निर्धन, अशिक्षित एवं गन्दी बस्तियों में रहने वाले परिवारों से सम्बन्धित हैं वे अपने परिवार तथा आस-पास में अन

जाने ही अनेकों अस्वस्थ्य आदतें सीख लेते है। ऐसी परिस्थितियों में विशेष रूप से उन्हें स्वास्थ्यकारी आदतों का सिखाया जाना शिक्षकों का पुनीत कर्त्तव्य है।

व्यक्तिगत स्वास्थ्य हेतु विद्यालय के कार्य

1 बालक में ऐसी आदतें डालें जिससे वे प्राकृतिक आवश्यकताओं से निवृत होकर दैनिक कार्य में चुस्ती से लगे।

2 बालकों के समक्ष अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करें जिससे व्यसनों से बचा जाय।

3 त्वचा की सफाई की शिक्षा दी जाय।

4 बालकों को स्नान और उसके लाभों से अवगत कराया जाय।

5 नेत्रों की सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाय।

6 नाखूनों के अगले हिस्सा के नीचे मैल जमी रहती है जिससे रोगिले कीटाणु पलते रहते हैं अतः उन्हें उसकी सफाई के लिए सचेत करें।

7 बालों के कई प्रकार के रोगों से बचने हेतु उनकी सफाई की आवश्यकता पर प्रकाश डालें।

8 कान की सफाई की आवश्यकता का वर्णन किया जाय।

9 दाँत की सफाई न रखने पर रोग के कीटाणु पनप जाते हैं और भोजन के साथ शरीर के अन्दर जाकर नुकसान करते हैं अतः इसकी सफाई के बारे में व्यापक ज्ञान प्रदान किया जाना वाँछित है।

10 वस्त्रों की सफाई के बारे में छात्रों को सचेत किया जाय। वस्त्र हमारे शरीर को गर्मी सर्दी और तेज वायु से रक्षा करता है। हल्के तथा कम वजनी वस्त्रों को पहनने हेतु उत्प्रेरित किए जाय।

11 विद्यालय-चिकित्सक द्वारा छात्रों का स्वास्थ्य परीक्षण होना चाहिए। छात्रों व अभिभावकों को उनके दोष दूर करने के उपाय बताये जाएँ।

12 छात्रों को शारीरिक क्षमता व उम्र के अनुरूप व्यायाम करवाया जाय।

13 पौष्टिक-भोजन करने व उनके गुणों पर प्रकाश डाला जाय। स्वादिष्ट भोजन का पौष्टिक होना जरूरी नहीं होता।

14 छात्रों को निद्रा की उपयुक्त परिस्थितियों का ज्ञान कराया जाय।

15 विद्यालय का वातावरण स्वास्थ्यवर्द्धक हो।

वैयक्तिक स्वच्छता के प्रशिक्षण व उनके स्तर

बालक की मनोवैज्ञानिक विकास की दृष्टि से उसके जीवनकाल को तीन पृथक स्तर (Stages) में विभाजित किया जा सकता है —

1 जब बालक में तर्क शक्ति का अभाव होता है,

2 जब बालक सामाजिक मान्यता (Social approval) तथा प्रशंसा (Appreciation) का इच्छुक होता है, तथा

3 जब बालक में स्वाभिमान की भावना जागृत हो जाती है।

इन तीनो स्तरो के बीच कोई निश्चित सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती है। शिक्षक को अपने अनुभव के आधार पर यह ज्ञात करने योग्य होना चाहिए कि बालक किस समय किस स्तर पर है तभी वह स्वास्थ्य शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम की ठीक ढग से योजना बना सके।

प्रथम स्तर पर अभ्यास एव अनुकरण द्वारा ही स्वास्थ्य शिक्षा दी जानी चाहिए। रूमाल का प्रयोग दांतों की सफाई, समय पर सोना, उठना, शौच जाना तथा भोजन करना, यह सब बाते उसे निरतर अभ्यास द्वारा ही सिखाई जानी चाहिए। इस स्तर पर अभ्यास की प्रमुखता के कारण इस ड्रिल और अभ्यास स्तर (Practice Stage) भी कहते है।

द्वितीय स्तर पर बालको म स्वस्थ ढग से रहने की आदत का विकास करने मे स्कूल-भवन की स्वच्छता, नियमितता (Orderliness) व्यवस्था द्वारा अधिक महत्व रखते है। बालको द्वारा की गई भूला पर शर्मिदा नही करना चाहिए बल्कि सफलताओ पर प्रशसा की जाय।

इस अवस्था के बाद बालक कुछ बडा हो जाता है। वह जान-बूझकर ऐसे कार्य करता है जो उसे दूसरो की दृष्टि म ऊँचा उठा सकें तथा उस सम्मान एव मान्यता प्रदान करा सकें। विशेष रूप से वह अपने अभिभावको व बडे भाई बहनो तथा शिक्षको द्वारा अपनी सफलता पर प्रशसा की आशा रखता है। इस स्तर पर शिक्षक को बालको के सामने अपना आदश उपस्थित करना चाहिए जिससे वे अनुकरण द्वारा अच्छी आदतें सीख सकें। छात्रो म स्पर्धा व चिह्न जीतने के लिए उत्प्रेरित करना चाहिए और उत्साह बढाने का सफल प्रयास भी।

तृतीय स्तर पर बालक की तार्किक बुद्धि का पूर्ण विकास हो जाता है। वह अध्ययन के आधार पर अपना एक आदश बना लेता है और उसी के अनुसार काय करने म आत्म सतोष का अनुभव करता है। इस समय उस किसी की प्रशसा एव बुराइ की कोई परवाह नही होती है। इस स्तर पर स्वास्थ्य शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो तक सगत हो जिसस बालक उसकी अच्छाई या बुराई को समझ कर उस पर अमल कर सक।

व्यक्तिगत स्वास्थ्य व व्यक्तिगत स्वच्छता

(Personal health & Personal Cleanliness)

हमारे विद्यालयो मे अधिकाश बालक निधन, अशिक्षित एव गदी बस्तियों मे रहने वाल परिवारो से सम्बधित है व अपने परिवार तथा पास पडोस म अनजानें ही अनेको अस्वस्थ्य आदते सीख लते है। ऐसी परिस्थितियो म विशेष रूप से उन्ह स्वास्थ्यकारी आदतो का सिखाना अध्यापको का परम कर्तव्य हो जाता है। यदि बालक घर स हाथ-मुँह धोकर नहाकर तथा दांत साफ करके स्कूल नही आते हैं तो उनस यह सब स्कूल भवन म उपलब्ध सुविधाओ के

म तगत शिक्षको को देख रख मे कराया जाना चाहिए । स्कूल कायक्रम म दनिक स्वच्छता निरीक्षण तथा छोटी कक्षाओ म स्वास्थ्यकारी कृत्यो जैसे दात साफ करना खाना खाने से पहिले हाथ–मुँह धोना तथा वाद म कुल्ला करना आदि की नियमित ड्रिल (अभ्यास) निश्चित रूप से बालको मे स्वस्थ आदतो के विकास म सहायक सिद्ध होते है ।

बालको के वतमान व भविष्य के जीवन को सुखी बनाने के लिए शरीर का स्वास्थ्य और शक्तिशाली होना भी अत्य त आवश्यक है उसके लिए अध्यापको का यह दायित्व है कि वे वालका मे स्वास्थ्य के प्रति जागृति उत्प न करने के साथ साथ उनके अशिक्षित अभिभावको को भी प्रशिक्षण के प्रति रुचि प्रदर्शित करें। व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए यक्तिगत स्वच्छता (Personal Cleanliness) आवश्यक है जिसका क्षेत्र है–1 सूय स्नान (Sun Bathing), 2 हाथ मुँह धोना (Washing), 3 त्वचा का स्वास्थ्य एव स्नान (Care of skin and Bathing), 4 बालो, उगलियो नाखुनो, दाँतो, नाक नेत्र तथा गल की सफाई, तथा 5 वस्त्रो एव जूतो की उपयुक्तता एव सफाई ।

विद्यालय मे चिकित्सक-परीक्षण

हमारे देश म शिक्षा सस्थाओ म इस पहलू की ओर भी कम ध्यान दिया गया है । हमारे विचार म एक प्रतिशत से अधिक ऐसे विद्यालय नही है जहाँ पर पूण रूप से चिकित्सक परीक्षण की व्यवस्था हो । प्राय, यह देखा गया है कि छात्रो की ऊँचाई, कद, वक्ष का फूलना, आदि नापकर स तुष्ट हो जाते है । इस प्रकार स इस बात का आडम्बर रचा जाता है कि विद्यार्थियो की स्वास्थ्य परीक्षा हुई है । वास्तव म डॉक्टरी परीक्षण होता ही नही । स्कूलो के प्रधान व अधिकारी इस विषय म अपनी जिम्मेदारी को नही समझते । सभी छात्र-छात्राएँ इस विषय स सम्बन्धी शुल्क देते हैं पर तु इस दिशा म उन्हे मिलता कुछ भी नही। डॉक्टरी परीक्षण बिल्कुल ही प्रभावहीन है । जबकि इसी के आधार पर बालको के विभिन्न अगो के बारे म पता चल जाता है कि वे ठीक ढग से विकसित हो रहे है या नहा । जहा प्रतिदिन डॉक्टर आने की व्यवस्था न हो सके तो दैनिक स्वास्थ्य निरीक्षण अध्यापक द्वारा सम्पन्न हो ।

चिकित्सक परीक्षण उद्देश्य

1 विद्यालय म प्रवश से पूव भिन्न रोगो के बारे म निदान उपचार दोनो करना ।

2 विकास होने म जो दोष हो उनका पता लगाना और उपचार करना।

3 मन्द बुद्धि के बालको का पता लगाना और अलग से कक्षा की व्यवस्था करना ।

4 डॉक्टरी जांच प्रतिवेदन अभिभावकों द्वारा अवलोकन करने से बालकों के स्वास्थ्य का मालूम पड जाता है।

5 बालको में छूत की बीमारी का मालूम होने से अन्य छात्रों से अलग रखने की व्यवस्था सम्भव।

6 डाक्टरी जांच से अप्रत्यक्ष रूप से स्वास्थ्य के महत्व को समझते है।

7 प्रत्येक बालक की ओर समुचित ध्यान दिया जा सकता है और सफल प्रयास किया जा सकता है कि प्रत्येक बालक का स्वास्थ्य ठीक रहे।

डॉक्टरी जॉच को प्रभावशाली बनाने हेतु सुझाव

1 डाक्टरी-परीक्षण सुयोग्य और प्रशिक्षित व्यक्ति के द्वारा हो।
2 विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की पूर्णरूपेण जांच हो।
3 बीमार छात्रों को विशेषज्ञ के पास भेजा जाय।
4 बीमार हुए छात्रों की वर्ष में तीन-चार बार परीक्षण हो।
5 परीक्षण के पश्चात् उसके परामर्श का मूल्यांकन हो।
6 संक्रामक रोग से पीडित छात्रों को तुरंत अस्पताल भेजा जाय।
7 जांच-प्रतिवेदन अभिभावकों को भेजा जाय।
8 छात्रावास में दवाखाना हो जहां डॉक्टर प्रतिदिन वहाँ सेवाएँ दे।
9 संक्रामक रोग फैलने की आशंका में टीका लगवा देना चाहिए।
10 स्वास्थ्य निर्देश समय समय पर प्रदान किए जाय।

निरन्तर देख-भाल का कार्य (Follow-up work)

स्कूलों में डाक्टरी परीक्षण के पश्चात निरंतर देखभाल का कार्य चलते रहना चाहिये। यदि इस प्रकार का कार्य स्कूल के स्थाई कार्यक्रम का भाग नहीं तो डाक्टरी परीक्षण बेकार होगा। विद्यालय अपने सर्वांगीण विकास के उद्देश्य में तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक बालकों के स्वास्थ्य की ओर सदैव जागरूक नहीं होगा। इसलिये प्रत्येक विद्यालय में स्वास्थ्य निरीक्षण के प्रबंध के साथ-साथ इस प्रकार का एक चिकित्सा कक्ष भी होना चाहिए जहाँ समय समय पर विद्यार्थी चिकित्सक से परामर्श ले सकें अथवा उनका निरीक्षण हो सके। शिक्षा विभाग द्वारा नियुक्त जिला स्वास्थ्य अधिकारी हो जो शिक्षण संस्थाओं के स्वास्थ्य के प्रति जिम्मेदार हो। सरकार को बजट में प्रावधान इसके खर्च हेतु करना चाहिए।

भोजन (Food)

शारीरिक विकास और स्वास्थता के लिये भोजन प्राप्त करना उतना ही आवश्यक है जितना कि मशीन को चलाने के लिये उसमें तेल और ग्रीस की जरूरत पडती है। बगैर भोजन हमारी शक्ति क्षीण हो जाती है और हम काम करने के योग्य नहीं रहते। भोजन से हमारे शरीर का ताप बना रहता है। नया रक्त

13 वष के बच्चा व 18 वष तक के किशोर-किशोरिया के लिये

कैलोरीज व पोषक तत्वा का विवरण (I C M R)

उम्र	कलोरीज	प्रोटीन gm	कलशियम gm	आइरन gm	विटामिन e रेटीनोल μg	विटामिन e βकैरोटीन μg	थायामिन mg	राइबोफ्लेविन mg	नियासीन mg	विटामीन सी' mg	फोलासिन μg	कोबलामिन μg	विटामिन'डी' IU
13 स 15 वष लडके	2500	55	0 6 से	25	750	3000	1 3	1 4	17	30 स	50 से	0 5 स	00
लडकियां	2200	50	0 7	35	"	"	1 1	1 2	14	50	100	10	"
16 से 18 वष लडके	3000	60	0 5 स	25	"	"	1 5	1 7	21	"	"	"	"
लडकियां	2200	50	0 6	35	"	"	1 1	1 2	14	"	"	"	,

संक्रात्मक रोग

बालकों को संक्रमण रोगों की छूत से बचाने के लिए शाला को उन परिस्थितियों का ज्ञान होना चाहिए जो संक्रामण रोगों के फैलाते है जैसे स्वच्छ वायु का अभाव, कमरों में सीलन, असन्तुलित भोजन, अधिक भीड व अनुपयुक्त शाला व्यवस्था, अधिककाम (Over work) आदि । छूत एक छात्र से दूसरे छात्र को वायु द्वारा, स्पर्श द्वारा, भोजन द्वारा, जीवधारियों द्वारा जीवाणुओं को रोगी व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति तक ले जाते है ।

रोगों से बचाने के सम्बन्ध में शिक्षक के कर्तव्य

संक्रामण रोगों द्वारा स्वस्थ्य बालकों को प्रभावित होने से बचाने के सम्बन्ध में रोगी बालकों के प्रति शिक्षकों को चाहिए कि वह-सूचना (Notification) बहिष्कार (Exclusion) प्रथक्करण (Isolation), संगरोधन (Quarantine), निसक्रमण (Disinfection) प्रतिरक्षण (Immunisation) जैसे कार्यों को प्रभावशाली ढंग से सम्पन्न करे ।

बालकों मे होने वाले सामान्य जीवाणु-जन्य रोग

शारीरिक अवरोध (Resistance of the body) व्यक्ति की आयु से साथ साथ बढ़ता है बालकों में बडो की अपेक्षा कम शारीरिक अवरोध होता है । अत उनके सम्बन्ध में रोगों से रक्षा के विषय मे अधिक सावधानी रखने की आवश्यकता होती है । पराश्रमी जीवों (Parasites) द्वारा बालकों मे होने वाले रोगों को निम्नलिखित वर्गों में बाटा जा सकता है –

(1) तीव्र संक्रमण-ज्वर (Acute Ininfectious Fever) खसरा जर्मन खसरा, लाल ज्वर, डिप्थीरिया चेचक, कण फेर, कुकर खाँसी पचिस, हैजा तथा मलेरिया आदि ।

(2) दीर्घकालीन संक्रामण रोग (Chronic Germ Diseases) — क्षय (Tuberculosis) तथा गठिया (Rheumatism) आते हैं ।

(3) छोटे मोटे श्वसन सम्बन्धी रोग (Minor Respiratory Diseases) टॉंसिल एडीनाइडज, ब्रोंकाइटिस, गला खराब होना, इन्फ्लूऐंजा, निमोनिया तथा श्वासनली की सूजन इस वर्ग के प्रमुख रोग है ।

(4) संसर्गज रोग (Conlagious Diseases) — ये रोग प्राय रोगी को स्पर्श किए जाने से लग जाते हैं । रोगी के स्पर्श के कारण संक्रमण लगने के कारण ही इन्हें स्पर्शाक्रामक अथवा संसर्गज रोगों को संज्ञा दी गई है । इस वर्ग में दाद, खाज इम्पेटिगा तथा त्वचा सम्बन्धी अन्य रोग सम्मिलित किए जा सकते है ।

विज्ञान तथा मानव शरीर नामक विषय हाई स्कूल तक अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाता था । इसके तात्पर्य को विस्तार से समझने के लिए शारीरिक क्रियाएँ, खेल-कूद पी टी आदि का सम्मिलित किया है।

स्कूल स्वास्थ्य-सेवा कार्यक्रम के उद्देश्य -

विद्यालय के सम्पूर्ण शैक्षिक कायक्रम के अ तगत तथा विद्यार्थी सेवा कार्य-क्रम के रूप म स्वास्थ्य कायक्रम के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार है —

(1) शिक्षको को बालको की सामा य डाक्टरी जाँच के लिये प्रशिक्षित करना ।

(2) निधन और जरूरतम द बालका के लिए पौष्टिक भाजन की व्यवस्था करना जिससे शिक्षा का पूर्ण लाभ उठा सके ।

(3) बालको को रोगो के कारण लक्षण तथा रोकथाम के लिए सावधा-नियो की शिक्षा देना जिससे व रोगा से बच सके ।

(4) बालको को व्यक्तिगत स्वास्थ्य के नियमो का ज्ञान देना तथा उनके द्वारा पालन किए जाने पर बल देना ।

(5) बालको के स्वास्थ्य की असामा य जाच की व्यवस्था करना ।

(6) बालको के रोगो व दोषो को यथा साध्य चिकित्सा करना अथवा उनके अभिभावका को उचित सम्बधित सलाह देना जिससे बालक शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो सकें ।

(6) बालको की सामथ्य के अनुसार शैक्षिक कायक्रमो मे हेर फेर की सलाह देना ।

(8) शिक्षका के लिए स्वास्थ्य शिक्षा एव शरीर विज्ञान सम्ब धी प्रशिक्षण की व्यवस्था करना ।

(9) स्कूल की सफाई एव व्यवस्था के सम्ब ध म बालका के स्वास्थ्य के दृष्टिकोण रा सलाह देना ।

(10) समाज स्वास्थ्य सेवा का आयोजन करना ।

(11) छात्रा की सम्पूर्ण स्वास्थ्य सम्ब धी सम्भाव्य क्षमता का मूल्यांकन करने के साधन उपलब्ध कराना ।

(12) अभिभावका, शिक्षका तथा प्रशासका को छात्र-स्वास्थ्य म आवश्यक मागदशन एव निर्देशन उपलब्ध कराना जिससे स्वास्थ्य सम्बन्धी अपेक्षित कार्य-वाही की जा सके तथा कायक्रम का उचित समन्जन सम्भव हो ।

स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम मे प्रधानाध्यापक का उत्तरदायित्व - (Duties of Headmaster)

(1) नागरिक शिक्षा अध्यापक विद्यालय डाक्टर एव नर्स, मानसिक स्वास्थ्य यगानिक म मम वय स्थापित करे ।

(2) अध्यापकों को उपयुक्त सामग्री प्रदान करने की व्यवस्था करें ।

(3) सामयिक स्वास्थ्य पर्यवेक्षण करायें तथा संक्रामण रोगों को विद्यालय में फैलने न दें ।

(4) अभिभावकों व समाज को विश्वास में लेकर उनसे सहयोग प्राप्त करें।

(5) सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग व समाज के विभिन्न साधनों का उपयोग करें ।

(6) सुस्त व बीमार छात्रों की जाँच करवाकर उपचार की व्यवस्था करें।

(7) घर के भोजन तथा स्कूल के दोपहरी भोजन को सन्तुलित बनाने की व्यवस्था करें ।

शिक्षकों के कर्त्तव्य (Duties of Teachers) —

1 छात्रों के सम्मुख व्यक्तिगत स्वास्थ्य तथा स्वस्थ्य ढंग से रहने का सजीव आदर्श उपस्थित करना ।

2 दैनिक निरीक्षण करना तथा संशयात्मक छात्रों को चिकित्सक के पास भेजना तथा उसे स्कूल से छुट्टी देना ।

3 व्यक्तिगत स्वच्छता का अवलोकन करना ।

4 दोपहर के भोजन के समय स्वस्थ्य–आदतों का निरीक्षण करना ।

5 स्कूल–सफाई एवं अन्य स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं पर नजर रखना।

6 स्कूल चिकित्सक की नियमित (routine) स्वास्थ्य परीक्षण के समय सहायता करना ।

7 अपने से सम्बन्धित छात्रों के अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित करना तथा उन्हें घरों की सफाई आदि के बारे में सुझाव देना । सद्भावना के आधार पर पारिवारिक स्वास्थ्य की समस्याओं का हल निकालने का प्रयत्न करना।

हमारे विद्यालय तथा स्वास्थ्य कार्यक्रम की क्रियान्विति

अब उपर्युक्त बिन्दुओं की क्रियान्विति हेतु हम वर्तमान में विद्यालयों में स्वास्थ्य के क्षेत्र में किये जा रहे क्रियाकलापों का आकलन करना अनुचित न होगा । खेद है हमारे देश में स्वास्थ्य सेवा अभी भी उपेक्षित है । बहुत सी शालाओं में इनके लिए कोई स्थान नहीं है । डाक्टरी जाँच के नाम पर छात्रों की ऊँचाई, वजन, वक्षस्थल माप, आदि औपचारिक रूप से, सत्र में प्रायः एक बार सम्पन्न होता है । राजस्थान माध्यमिक शिक्षा–बोर्ड द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य की दिशा में सीमित, परन्तु व्यवस्थित प्रयास किया गया परन्तु यह भी सब विद्यालयों द्वारा भावना के अनुरूप क्रियान्विति नहीं किया जा रहा है । हमारे शहरी व ग्रामीण, बालक व बालिकाओं को विद्यालयों द्वारा स्वास्थ्य कार्यक्रम के महत्व को समझाते हुए प्रभावशाली क्रियान्वित करने का सफल प्रयास वांछित है ।

स्वास्थ्य एव शारीरिक क्रियाओ व कार्यक्रमो की व्यवस्था हेतु ध्यान देने योग्य बातें –

इन क्रियाओ व कार्यक्रमो के उपयुक्त चुनाव के साथ-साथ उनकी प्रभावी व्यवस्था एव सगठन भी आवश्यक है । इस दृष्टि से निम्नाकित बिन्दुओ पर ध्यान दिया जाना चाहिए–

(1) समयावधि—विभिन्न क्रियाओ एव छात्रो की क्षमता के अनुरूप इनकी समयावधि निर्धारित की जानी चाहिये ।

(2) समय विभाग चक्र—विद्यालय के सभी छात्रो का इन क्रियाओ मे उनकी रुचि के अनुकूल सहभागित्व (Participation) हो तथा व नियमित एव व्यवस्थित हो, इसके लिए उपयुक्त समय-विभाग-चक्र बनाया चाहिये ।

(3) उपलब्ध भौतिक ससाधन—खेल क मदान या स्थान विभिन्न उपकरण तथा साज सज्जा की वस्तुएँ जो विद्यालय म उपलब्ध हो, उन्हें दृष्टिगत रखते हुए इनका आयोजन किया जाना चाहिए ।

(4) प्रभारी अध्यापक—विभिन्न कार्यक्रमो एव क्रियाओ म दक्ष अध्यापक ही छात्रो के मार्गदर्शन एव प्रशिक्षण हेतु प्रभारी बनाये जाने चाहिए ।

(5) परिवीक्षण एव मूल्याकन—इन क्रियाओ के नियमित व्यवस्थित एव प्रभावी रूप से सचालन हेतु प्रधानाध्यापक या अन्य वरिष्ठ अध्यापक अथवा शारीरिक शिक्षा अध्यापक द्वारा परिवीक्षण (Supervision) तथा मूल्याकन (Evaluation) भी किया जाना चाहिए जिसस इनम सुधार व परिष्कार लाया जा सके और उन्हें छात्रो के लिये उपयोगी बनाया जा सक ।

स्कूल स्वास्थ्य कार्यक्रम मे सुधार हेतु सुझाव –

(Suggations for Inprovment-School health Programme)

1 स्वास्थ्य-परीक्षण के पश्चात् रोगो के उपचार पर जोर द ।
2 बालक के स्वास्थ्य सम्बधी इतिहास, शिक्षक प्रतिवेदन को परीक्षण के अवसर पर दृष्टि म रक्खा जाव ।
3 डाक्टरी परीक्षण पूर्णरूप से हो ।
4 स्वास्थ्य सलाहकार सेवा की समुचित व्यवस्था हो ।
5 डाक्टरो के सुझावो को क्रियान्वित रूप देने के लिए अभिभावको स मिलकर व्यवस्था करने का सफल प्रयास कर ।
6 स्वास्थ्य सेवा क निर्धारित उद्देश्यो के आधार पर ही मूल्याकन हो ।
7 कम से कम एक अध्यापक स्वास्थ्य शिक्षा म प्रशिक्षित हो ।
8 स्वास्थ्य-समस्या व उनके समाधान हेतु स्वास्थ्य समिति का गठन हो ।
9 शाला म स्वास्थ्य कार्यक्रम को प्रभावशाली ढग स क्रियान्वित करने हेतु

सफाई समिति, मध्यकालीन भोजन समिति, सुरक्षा समिति मनोरंजन-समिति तथा खेल कूद समिति का गठन किया जाय।

10 शाला योजना में इस कार्यक्रम का समावेश अवश्य हो।

उपसंहार-

व्यक्तिगत स्वास्थ्य का प्रभाव परोक्ष व अपरोक्ष रूप से समाज पर पड़ता ही है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य हेतु शाला के द्वारा कार्यक्रम का नियोजन करना चाहिए। उन्हें स्वच्छता हेतु भिन्न-भिन्न उम्र पर प्रशिक्षण दिया जाय। छात्रों के लिए चिकित्सक द्वारा पूर्ण रूप से परीक्षण व उपचार कार्य अभिभावकों के सहयोग से सम्पन्न करना चाहिए। बालकों को सन्तुलित भोजन के बारे में अध्यापकों को सचेत रहने की आवश्यकता है। कोठारी शिक्षा आयोग (1964 66) के प्रतिवेदन में भी विद्यालय स्वास्थ्य सेवाओं से सम्बन्धित प्रकाश डाला है। आयोग ने श्रीमती रेनुका रे की अध्यक्षता में गठित विद्यालय स्वास्थ्य समिति की अनुशंसाओं को स्वीकारा है। शिक्षा विभाग ने भी समय समय पर दोपहरी भोजन कार्यक्रम पेय जल, विद्यालय सजावट आदि पर प्रभावशाली ढंग से कार्य करने हेतु निर्देश प्रसारित किये है। विभाग ने विद्यालय में कार्यरत प्रधान व अध्यापकों का ध्यान इस ओर आकर्षित कर स्पष्ट किया है कि विद्यालयों में स्वास्थ्य सेवा कार्यक्रम का क्रियान्वयन करवाना उनका नैतिक व धार्मिक उत्तरदायित्व है। अन्य शिक्षणेतर उत्तरदायित्वों के दबाव के रहने पर भी इनके लिए विद्यालय स्वास्थ्य कार्यक्रम का विस्तृत करके फेंक देना ध्यान नहीं देना न्याय संगत नहीं है अतः इस ओर गम्भीरता से ध्यान दिया जाना चाहिए।

□□□

मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer type Questions)

1 व्यक्तिगत सफाई के निरीक्षण में किन बातों पर ध्यान देना चाहिये। (बी एड 1983)

2 विद्यालय स्वास्थ्य सेवा से क्या-क्या उद्देश्य होते हैं? (बी एड 1982)

3 स्वयं विद्यार्थियों द्वारा विद्यालय की सफाई बनाए रखने के लिए क्या किया जा सकता है? (बी एड पत्राचार 1982)

4 एक अध्यापक के नाते आप ऐसे विद्यार्थी को जिसकी डाक्टरी रिपोर्ट निकट दृष्टि बतलाई है किस प्रकार सहायता देंगे। (बी एड 1978)

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1 व्यक्तिगत तथा विद्यालय स्वास्थ्य कार्यक्रम पर टिप्पणी कीजिये। (बी एड पत्राचार 1985)

2 बी०ड पाठ्यक्रम मे स्वास्थ्य शिक्षा के समावेश के औचित्य की आलोचना त्मक समीक्षा कीजिये । (बी एड 1983)

3 उन सक्रामक बीमारियो का उल्लेख कीजिये जो सामान्यत स्कूली बच्चों म देखने को मिलती है । इनमे से किन्ही दो के लक्षणों को बताइये तथा यह भी बताइये कि स्कूल उनके रोकथाम के लिये कौन से पूर्वोपाय कर सकता है। (बी एड 1983)

4 मध्य अवकाश भोजन, कैंटीन सेवायें तथा टिफिन सेवायें एक दूसरे से किस प्रकार भिन्न है ? किन परिस्थितियो म एक की अपेक्षा दूसरे को वरीयता देनी चाहिए ? (बी एड 1983)

5 व्यक्तिगत तथा विद्यालय सफाई का निरीक्षण क्यो आवश्यक है ? इस प्रकार के निरीक्षण म किन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए । (बी एड 1982)

6 विद्यालय स्वास्थ्य पर्यवेक्षण तथा सेवा कार्यक्रम म किन क्रियाओं का समावेश होना चाहिए ? इनका किस प्रकार सगठित किया जाना चाहिए। (बी एड 1981)

7 आपके विद्यालय मे बच्चों के स्वास्थ्य परीक्षण का क्या प्रबन्ध है ? उसके वास्तविक प्रभावी सुधार के लिए आप क्या सुझाव देना चाहेंगे । (बी एड 1979)

अध्याय 22 जनसख्या-शिक्षा

(Population Education)

[विषय प्रवेश, जनसख्या शिक्षा का अर्थ, जनसख्या शिक्षा के उद्देश्य जनसख्या शिक्षा की आवश्यकता एव महत्व, भारत मे जनसख्या शिक्षा सम्बधी धारणा शिक्षण हेतु, जनसख्या शिक्षा का पाठ्यक्रम व क्रियान्वियन, जनसख्या शिक्षा की प्रगति हेतु व्यवहारिक कारक शाला अध्यापक व छात्र, उपसहार मूल्याकन]

जनसख्या विस्फोट आज विश्व की सबसे ज्वलन्त समस्या है। हमारी अनेकानेक समस्याएँ जनसख्या वृद्धि के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है। जनसख्या को नियन्त्रित करने हेतु परिवार कल्याण कार्यक्रम तथा व्यस्को के लिए अन्य कार्यक्रमो का अपेक्षित सफलता नही मिल सकी है। इसी कारण यह आवश्यक हो गया है कि छात्र जनसख्या के प्रति सही दृष्टिकोण अपनाते हुए व्यस्क होने पर जनसख्या सम्बन्धी सही निर्णय लेकर देश की जनसख्या नीति के अनुसार कर्तव्य पालन कर सकें। इस बात को ध्यान म रखते हुए एशिया के अधिकाश देश जैसे थाईलैंड, फिलिपाइन्स, इण्डोनेशिया, मलेशिया, कोरिया थाईलैण्ड आदि ने राष्ट्रीय जनसख्या शिक्षा प्रायोजनाएँ प्रारम्भ की है। इसी परिपेक्ष्य मे भारत ने भी 1979 से राष्ट्रीय जनसख्या शिक्षा प्रायोजना को प्रारम्भ किया है क्योकि निम्नाकित तथ्य देश की बढ़ती हुई जनसख्या के दुष्परिणाम प्रकट करते है —

1 भारत म प्रत्येक डेढ सैकण्ड म एक बच्चे का जन्म होता है।

2 विश्व म प्रत्येक सातवा व्यक्ति भारतीय है।

3 भारतवर्ष की आबादी म प्रतिवर्ष 1 करोड 10 लाख लोगो की वृद्धि हो रही है अथवा एक आस्ट्रेलिया जुड रहा है।

4 वर्तमान वृद्धि दर लगभग 2 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष के हिसाब से 30 वर्ष म जनसख्या दुगुनी हो जावगी।

5 स्वाधीनता के पश्चात् स 1981 तक भारत मे साक्षर जनसख्या का प्रतिशत दुगुना हो गया है यद्यपि उस समय तक निरीक्षरों की कुल सख्या भी बढ़कर लगभग 30 करोड स 38 60 करोड हो गई।

6 भारतीय जनसख्या का मध्यमान आयु (Mean age)–49 वर्ष है।

7 भारत मे जन्मदर प्रतिहजार व्यक्ति के पीछे 38 8 है, जबकि इग्लैण्ड म 16, फ्रांस म 18 तथा जर्मनी म 17 है।

8 भारत म प्रति व्यक्ति की वार्षिक आय 89 डालर है जबकि अमेरिका म 2697 डालर है।

9 विश्व की 2.4% भूमि भारत में जबकि विश्व की जनसंख्या का 14% है।

10 भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में शोषण को बढ़ावा व सामाजिक प्रभाव बढ़ रहा है।

उपरोक्त तथ्यों का अवलोकन करने पर यह अनुभव कर सकते हैं कि जनसंख्या वृद्धि हमारे देश की राष्ट्रीय समस्या है और आज इसने एक गम्भीर रूप धारण कर लिया है। जन संख्या का बढ़ता हुआ रूप आज राष्ट्रीय जीवन के हर पहलू पर गहरा प्रभाव डाल रहा है। इससे राष्ट्र की प्रति व्यक्ति आय, जीवन-स्तर संतुलित आहार मानसिक विकास आदि सभी प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो रही है। इस प्रकार प्रतिवर्ष वृद्धि के लिए भारत को 1 लाख 12 हजार विद्यालय 3 लाख 30 हजार अध्यापक 22 लाख मकान 1[illegible] लाख मीटर कपड़ा 1 करोड़ 11 लाख टन अनाज और 40 हजार नौकरियों की आवश्यकता पड़ेगी।

देश की बढ़ती हुई जनसंख्या की विस्फोटक स्थिति के कारण अर्थशास्त्री, शिक्षाविद् एवं योजनाकार बड़े चिन्तित हैं। जनसंख्या की बढ़ती हुई स्थिति पर नियन्त्रण करने के लिए आज जनसंख्या आधारित शिक्षण की अत्यधिक आवश्यकता है क्योंकि माल्थस के विचारधारा के अनुसार यह जनसंख्या को अवरुद्ध किये बिना यह ज्योमिति प्रक्रिया से बढ़ती है जैसे धन चक्रवती ब्याज के समान जबकि आवश्यक आवश्यकताओं की वस्तुएँ अंकगणित के अनुपात में ही। ऐसी स्थिति में हम चाहे जितनी प्रगति शिक्षा, तकनीकी, उद्योग में क्यों न करलें उस अनुपात में लाभ नहीं मिल पायेगा जिस अनुपात में हम चाहते हैं। सारांश में कह सकते हैं कि जनसंख्या विस्फोटक हमारे देश के लिए अभिशाप हो गया है जिसने निर्माण सम्बन्धी सभी योजनाओं को विफल कर दिया है। क्योंकि निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या, गुणात्मक उन्नति की समस्त योजनाओं को जड़ खाती हुई जान पड़ती है। अतः देश के सभी क्षेत्रों के विशिष्ट वर्ग इसी दृष्टि से अगस्त 1969 को शिक्षा मन्त्रियों, शिक्षा-सचिवों, समाज कल्याण एवं स्वास्थ्य और परिवार कल्याण के प्रतिनिधियों की बम्बई में राष्ट्रीय परिचर्चा आयोजित हुई। इस परिचर्चा में जनसंख्या शिक्षा को विद्यालयों एवं शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों तक पहुँचाने की दृष्टि से यौन रहित जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रम लागू किया जाय निम्न दो निर्णय लिये गए —

(i) सभी स्तर की शिक्षा में जनसंख्या को समन्वित (Integral) रूप दिया जावें।

(ii) जन संख्या शिक्षा से बालक यह समझ सकें कि परिवार के आकार को नियन्त्रित रखा जा सकता है और जनसंख्या को सीमित करने पर राष्ट्रीय जीवन को अधिक उन्नत व सम्पन्न किया जा सकता है। छोटा परिवार भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में ज्यादा सहायक हो सकता है।

जनसंख्या शिक्षा का अभिप्राय बढ़ती हुई जनसंख्या के प्रति जागरूकता पैदा करते हुए विवेक युक्त व्यवहारों का विकास करना है जिससे व्यक्ति, परिवार,

समुदाय, राष्ट्र और विश्व के परिवेश म सोचता हुआ उ नत जीवन की प्राप्ति कर सके।

जनसख्या शिक्षा का अर्थ

यद्यपि जनसंख्या शिक्षा की धारणा अभी अविकसित अवस्था में ही है। कुछ वर्षो पूव इस धारणा को व्यक्त करने के लिए 'यौन शिक्षा", "पारिवारिक जीवन की शिक्षा" आदि शब्दो का प्रयोग किया जाता था। 1962 म जनसख्या शिक्षा' शब्द का सृजन हुआ और अय शब्दो की अपेक्षा उसे उपयुक्त बताया गया। कुछ विद्वान जनसख्या शिक्षा के स्थान पर 'जनसख्या जागृति" शब्द के प्रयोग को भी अधिक मानते है। सक्षेप म कहा जा सकता है कि जनसख्या शिक्षा एक यौन शिक्षा रहित शैक्षणिक कायक्रम है, जिसम परिवार, समाज, राष्ट्र एव विश्व की जनसख्या की स्थिति का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन का उद्देश्य छात्रा म इस स्थिति के प्रति विवेकपूर्ण उत्तरदायित्व पूर्ण दृष्टिकोण एव व्यवहार का विकास करना है।

जनसख्या की तीव्र गति से वृद्धि के परिणाम स्वरूप मानव-जीवन के सामाजिक आर्थिक राजनतिक तथा सास्कृतिक पक्षों पर पडने वाले कुप्रभावो के प्रति जागरूक एव सम्बद्ध समाधानो के विषय म वैचारिक क्रांति की शैक्षिक व्यवस्था ही जनसख्या शिक्षा है।

यूनस्को के बैंकाक (थाईलैण्ड) स्थित क्षत्रिय कार्यालय के तत्वाधान म आयोजित सितम्बर 1970 म जनसख्या तथा पारिवारिक जीवन-शिक्षा पर एशिया क्षेत्र की सगोष्ठी म जनसख्या शिक्षा की निम्न परिभाषा की है—

"छात्रो म जनसख्या के प्रति उचित दृष्टिकोण उत्तरदायित्व अभिवृत्ति तथा व्यवहारो का विकास करन की दृष्टि से एक शक्षिक कायक्रम ही जनसख्या शिक्षा है जो परिवार, समुदाय राष्ट्र तथा विश्व की जनसख्या की स्थिति का ज्ञान कराते है।"

'जनसख्या शिक्षा एक शक्षिक कायक्रम है जो कि परिवार समुदाय राष्ट्र तथा विश्व की जनसख्या स्थिति के प्रति तक सम्मत एव उत्तरदायित्व पूर्ण अभिवृत्तिया का विकास करना है।'[1]

विश्व जनसख्या स दभ ब्यूरो (World Populati n Reference Bureau) ने भी जनसख्या शिक्षा के स दभ म कहा है जनसख्या शिक्षा परिवार समुदाय राष्ट्र तथा विश्व की जनसख्या म होन वाले परिवतनो परिणाम तथा उनके सुधार हेतु गहन सावभौमिक तथा क्रियात्मक शिक्षा वह शैक्षिक कायक्रम है जिसके द्वारा, जनसख्या विस्फोट के व्यक्तिगत पारिवारिक सामाजिक तथा वातावरण ज न्म

1 UNESCO work shop on Population & Family Planning (P/34)

प्रभावा का अध्ययन किया जाता है, जनसख्या म होने वाले परिवतनो, स्थानान्तरणो, केन्द्रीकरण तथा वितरण का अध्ययन किया जाता है, जनसख्या वृद्धि स सम्बन्धित समस्याओ तथा उनके निराकरणार्थ उपायो से अवगत कराया जाता है, तथा आगामी एक या दो शतक म बनने वाले माता पिताओ को माता-पिता के रूप म सफलतापूर्वक एव समुचित उत्तरदायित्व निभाने का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।"

इसी सकल्पना को उद्देश्यो की दृष्टि से परिभाषित करते हुए 1960 म बम्बई म आयोजित जनसख्या शिक्षा की राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी (National Seminar) के प्रतिवेदन मे कहा गया है कि "जनसख्या शिक्षा विद्यार्थियो को यह समझने योग्य बनाती है कि परिवार के आकार पर नियत्रण किया जा सकता है कि राष्ट्र म जीवन स्तर को उच्च बनाने म जनसख्या परिसीमन से सहायता मिलती है और यह कि व्यक्तिगत परिवार के जीवन स्तर के भौतिक दृष्टि से उन्नयन म परिवार के छोटे आकार का योगदान रहता है। जनसख्या-शिक्षा विद्यार्थियो को यह समझने मे भी सहायक होती है कि परिवार के सदस्यो के स्वास्थ्य एव कल्याण की सुरक्षा, परिवार के आर्थिक स्वामित्व तथा बच्चो के अच्छे भविष्य के निर्माण हेतु भारत म वतमान तथा भविष्य म दो या तीन बच्चा के छोटे व सुगठित परिवार होने चाहिए।"2 इस सम्प्रत्य के बारे म देश विदशो के विद्वानो ने परिभाषित किया है—

बर्लेसन के अनुसार — "जनसख्या समस्या से सम्बन्धित ज्ञान के प्रति चेतना है।"

स्टनगर — जनसख्या व पर्यावरण की शिक्षा है क्योकि जनसख्या व पयावरण को किसी प्रकार अलग नही किया जा सकता।"

हेराल्ड — 'यह केवल जनसख्या की गतिशीलता की शिक्षा है जिसम सब गात्मकता स प्रभावित क्षेत्र, जस काम सन्तानोत्पत्ति पर नियत्रण एव परिवार नियोजन को पृथक रखा जाता है।"

मसियालस :— 'मानक जनसख्या की प्रकृति के बारे म तथा जनसख्या परिवतन के स्वाभाविक एव मानवीय परिणामो के बारे म विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त करना।

प्रो० वी के आर वी राव — "जनसख्या शिक्षा का प्रयोजन केवल जनसख्या घटाना नहीं बल्कि जनसख्या का गुणात्मक दृष्टि स बेहतर बनाना है। इस प्रकार यह कायक्रम मानवीय स्रोतो के विकास का कायक्रम है। यह अपेक्षित मूल्यो व अभिवृत्तियो के विकास पर बल देता है।'

2 T S Mehta National Seminar on Population Education (NCERT P/9)

चाल्स – "जनसख्या शिक्षा कायक्रम म छात्र की सस्कृति, उसके समाज की जनसख्या की स्थिति, स्थिति के प्रति उनके अपने विचार जनसख्या परिस्थिति पर उनके तार्किक तथा सुमम्बद्ध विचार तथा इसके प्रभाव सम्मिलित होने चाहिए।"

फेयुस – 'जनसख्या शिक्षा एक ऐसा शक्षिक कायक्रम है जिसका प्राथमिक उद्देश्य अनियन्त्रित जन्म की समस्या के प्रति सृजनात्मक उपागम विकसित करना है।"

सियस – 'जनसख्या शिक्षा का उद्देश्य परिवार नियोजन के कायक्रमो की जानकारी के साथ ही अभिवृत्ति, व्यवहार एव मूल्यो म अपेक्षित परिवतन करना है।"

टेलर – "जनसख्या शिक्षा एक ओर तो परिवार को नियोजित करने की प्रेरणा प्रदान करती है, दूसरी ओर जनसख्या की समस्या, उनके सम्भावित परिणाम तथा सम्भावित विकल्पो की जानकारी देती है।'

प्रो० स्लान और वेलड – 'सज्ञा चाहे जो हो हमारा सम्बन्ध औपचारिक शिक्षा के अन्तगत निर्देश नीति, परिवार तथा राष्ट्र परिवार नियोजन की वाछनीयता आदि को सम्मिलित किया जाए। साथ ही जनसख्या का आर्थिक सामाजिक विकास परिवार के आकार तथा व्यक्तिगत परिवार के गुणो की गतिशीलता का भी अध्ययन किया जाना चाहिए।"

एवरी एव कार्कण्डल – "जनसख्या शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास, गृह-प्रबन्ध म कुशलता, विवाह तथा माता पिता के उत्तरदायित्व की तैयारी बालक की देखभाल एव विकास तथा यौन शिक्षा की जानकारी।"

एस चन्द्रशेखर – जनसख्या शिक्षा न तो यौन शिक्षा है और न विभिन्न परिवार नियोजन की विधियो की शिक्षा। जनसख्या शिक्षा जनसख्या की वद्धि इसके वितरण एव जीवन स्तर स इसके सम्बन्ध तथा इसके आर्थिक एव सामाजिक परिणामो का अथशास्त्र व समाज शास्त्र है।"

प्रो० पोह्लिमन-(Pohlman Edword w) के अनुसार जनसख्या-शिक्षा शिक्षण सस्थाओ से सम्बन्धित कायक्रम है जिसके अन्तगत अध्यापन करवाया जाता है–

1. द्रुतगति स जनसख्या की वृद्धि उससे उत्पन्न होने वाले नुकसान, जो राष्ट्र के लिए समस्या पैदा करती है
2. छोटे परिवारो को व्यक्तिगत लाभ,
3. विलम्ब से शादि व बच्चो के जन्म
4. अतिरिक्त अन्य सम्बन्धित विषयवस्तु लेकिन यौन (Sex) के सम्बन्धित नही होनी चाहिए।

इन परिभाषा के बाद मे इस दृष्टि से परिवतन किये गये कि जनसख्या शिक्षा को परिवार नियोजन कायक्रम से न मिलाया जाये। रा०शै०अ०प्र० परिषद्

(NCERT) की जनसंख्या प्रसार इकाई के प्रभारी प्रवक्ता रमेशचन्द्र ने जनसंख्या शिक्षा की संकल्पना को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट करते हुए कहा है कि "जन साधारण की भाषा में जनसंख्या शिक्षा वह कार्यक्रम है जो विद्यार्थियों में जनसंख्या की गतिशीलता (Dynamics) के प्रति जागरूकता विकसित करे। उन्हें यह समझने में सहायता दे कि यदि जनसंख्या वृद्धि के कारणों का समाधान न किया जाये और इसे बढ़ते रहने दिया जाय तो व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में अनेक असुविधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसके द्वारा विद्यार्थियों में यह धारणा विकसित करनी है कि वे छोटे परिवार के प्रतिमानों (Norms) की श्लाघा कर सकें तथा वह उन्हें ऐसे भावी दायित्वपूर्ण जनक बना सके जो अपने तथा देश के कल्याण हेतु उपलब्ध संसाधनों के अनुकूल अपने परिवार का नियोजन कर सकें। यह मुख्य तथ्य इस कार्यक्रम के दो आयामों में अन्तर स्पष्ट करता है—प्रतिसूक्ष्म या व्यष्टि (Micro) तथा सूक्ष्म या समष्टि (Macro)। प्रति सूक्ष्म या व्यष्टि स्तर पर यह कार्यक्रम भावी जनक बनाने वाले विद्यार्थियों के जीवन स्तर में सुधार से सम्बन्धित है तथा सूक्ष्म या समष्टि स्तर पर यह विद्यार्थियों को राष्ट्रीय विकास में सहभागी बनाने का प्रयास करता है।"[1] इस प्रकार इस परिभाषा में जनसंख्या शिक्षा की सन्तुलित संकल्पना व्यक्त की गई है जिसे क्रियान्वित किया जाना आवश्यक है।

सारांश रूप में कह सकते हैं कि जनसंख्या पर नियन्त्रण की जाने वाली समस्या के रूप पर नहीं, वरन् उसकी व्याख्या की जाने वाली सामाजिक एवं जैविकीय-घटना के रूप पर विचार करना है।

जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Population Education)

जनसंख्या शिक्षा का उद्देश्य जनसंख्या वृद्धि एवं राष्ट्रीय विकास के अन्तः सम्बन्धों की समझ विकसित करना है। समाज के एक सदस्य के कार्य का पूरे समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है यह समझाना इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य है। सूचना देने एवं अभिवृत्ति निर्माण करने के अतिरिक्त यह इस शिक्षा का नैतिक उद्देश्य भी है।

जनसंख्या शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य[2]।

(1) बालकों में सीखने की वह प्रक्रिया विकसित करना जिससे जनसंख्या से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का अवलोकन करते हुए तथ्यों का संकलन कर विश्लेषण संश्लेषण करने की क्षमताओं का विकास कर सकें जो सामाजिक दृष्टि से

1 Ramesh Chandra Implementation of the Population Education Programme (नयाशिक्षक जनवरी–मार्च-1975 (p/68)

2 NCERT Readibg in Population Education (P/77)

उपयुक्त हो (इसके साथ ही जनसख्या शिक्षा का यह दृष्टिकोण नही है कि बालक पर तैयार की हुई पाठ्य सामग्री लाद दी जावे बालक म ऐसी क्षमताओ का विकास होना चाहिए जिससे जनसख्या की समस्या के सदभ म छोटे परिवार से गुणात्मक जीवन के महत्व को स्वीकार कर सकें)।

(2) जनसख्या शिक्षा के अन्तगत द्रुतगति से जनसख्या म वृद्धि इसके मुख्य कारण इसके मुख्य कारक जो सतुलित करने म सहायक सिद्ध हो सके।

(3) सामाजिक सास्कृतिक, आर्थिक व राजनैतिक को जनसख्या वृद्धि राष्ट्रीय जीवन-स्तर को बढाने के कायक्रम कैसे प्रभावित करती है।

(4) दुर्भिक्ष, बीमारियाँ जिसस मत्यु अधिक होती थी उसे विज्ञान के विकास द्वारा नियत्रित किया गया है इस बात को मान्यता देना है कि विज्ञान ने अनियोजित जन्म का नियन्त्रित किया है। यह ज्ञान करवाते हुए दृष्टिकोण का विकास किया जाकर सजनात्मक स्थाईत्व लाना हेतु।

(5) जनसख्या म वृद्धि होने स व्यक्तिगत तथा परिवारिक जीवन की जिम्मेदारियो के प्रति अभिरुचियो तथा सहयोग व्यक्तिगत रूप स तथा परिवारिक जीवन के प्रति जिम्मेदारियो।

(6) माता के अच्छे स्वास्थ्य बच्चे के हित परिवार की आर्थिक सुदृढता, आनेवाली पिढी की उन्नति हेतु जनसख्या शिक्षा की प्रशसा की जाने तथा जो वतमान के भारतीय परिवार छोटे हो जिनम दो या तीन बच्च स अधिक न हो सके।

(7) छात्रा को जनसख्या वृद्धि के कुप्रभावो स परिचित करवाना।

छात्रा को मुख्य रूप म व्यक्तिगत जीवन मे परिवार, सामाजिक व्यवस्था तथा राष्ट्रीय जीवन के प्रसग म मूल्या (Values) का ज्ञान प्रदान करवाना चाहिए। सामाजिक आर्थिक विकास तथा जनसख्या वृद्धि का किस प्रकार सहसम्ब ध है इसे हृदयगम करवाया जाय। अच्छे जीवन-स्तर व मानव अधिकार कसे जनसख्या वृद्धि स प्रभावित हाते है।

जनसख्या शिक्षा को अध्यापन के दृष्टि से विस्तत रूप दिया जाय या सक्षिप्त ज्ञान तक ही सीमित रक्खा जाय, यह तो बदलते हुए मूल्यो को दृष्टि म रखते हुए शिक्षाविदो पर ही निभर करता है। परिवार यवस्था, परिवार के काय, परिवार के लोगो म परस्पर सम्ब ध मानव द्वारा अपने जस जीवो को जन्म देने का ज्ञान यौन व उसके काय आदि के बारे म ज्ञान छात्रो को दिये जाने की वतमान समय की आवश्यक माग है इन्हे प्रभावित करने वाले मुख्य कारको के बारे म विश्वसत् व आवश्यक ज्ञान दिया जाना वाछित है।

पाश्चात् देशो की शहरी शिक्षण सस्थाओ म इस विषय की आवश्यकता

समभत हुए 'मौन-शिक्षा' या "परिवार जीवन की शिक्षा" के रूप म प्रारम्भ किया गया है लेकिन भारत म 'जनसंख्या शिक्षा" को शिक्षा कार्यक्रमो म उल्लेखनीय काय नही हो पाया है। भारतीय संस्कृति, मूल्य, परम्परा व विभिन्न रीतिरिवाज व विभिन्न क्षेत्रो म रहने वाली जनता के अपने विभिन्न दृष्टिकोण व जीवन पद्धतिया है। अत भारतीय परिवारो के जीवन मूल्यो व सामाजिक परम्पराओं आदि का शोध के आधार पर अध्ययन वांछित है। जनसंख्या-शिक्षा' को यौन शिक्षा' का पर्यायवाची मानने की भ्रान्ति को स्पष्ट करने की आवश्यकता है। आज जनसंख्या के सम्प्रत्य के बारे म सचेत करने तथा पाठ्यक्रम म ज्ञान प्रदान करने की व्यवस्था करना एक आवश्यक आवश्यकता है। ताकि छात्रो म इसके बारे म सही दृष्टिकोण का विकास हो सके और इससे उत्पन्न होने वाली विभिन्न राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ का गम्भीरता से समय रहते हुए समाधान करने की स्थिति म हो सके। इस प्रसग म रमाशकर शुक्ल ने भी लिखा है- 'यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश ने कृषि तथा उद्योगिक क्षेत्रो म काफी प्रगति की है तथापि सीमित साधनो को देखते हुए हम देश की बढती हुई जनसंख्या पर नियन्त्रण रखना आवश्यक हो गया है। यदि इस बढती हुई आबादी को हम न रोक सके तो परिणाम भयकर हो सकते है। यही कारण है हम पाठ्यक्रम म जनसंख्या-शिक्षा सम्बन्धी शिक्षा को स्थान देना उपयुक्त समझते है।'[1]

इडोनेशिया के जनसंख्या विशेषज्ञ ने जनसंख्या शिक्षा के विशिष्ट उद्देश्यो को इस प्रकार व्यक्त किया है —

1 जनसांख्यिकी के आधार भूत सिद्धातो को समझाना।
2 जनसंख्या की तीव्र वृद्धि बढने के कारणो को जानना।
3 जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के परिणामो को समझना।
4 जनकल्याण और सामाजिक आर्थिक विकास के घनिष्ट सम्बन्धो का समझना।
5 पर्यावरण सम्बन्धी एक रूपता के अर्थ एव महत्व को समझना।
6 भाग्यवादी बनने के बजाय परिवार के आकार को नियन्त्रित किए जाने योग्य समझना।
7 छोटे परिवार के मानक के महत्व को समझकर जीवन स्तर की गुणात्मकता से सम्बन्ध स्थापित करना।
8 व्यक्ति के 'स्व तथा पर्यावरण पर जनसंख्या घनत्व तथा जनसंख्या वृद्धि के परिणामो का समझना।

---

1 रमाशकर शुक्ल, जनसंख्या शिक्षा तथा पाठ्यक्रम' (साहित्य परिचय पाठ्य क्रम विशेषाक 1973) पृ0 205-206

9 सामाजिक सरचना तथा सामाजिक परिवतनो के मानव व्यवहार के प्रत्पक्ष प्रभाव का अनुभव करना ।

10 राष्ट्र तथा विश्व कल्याण के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना।

जनसख्या शिक्षा की आवश्यकता व महत्व

(Need & Importance of Population Education)

जनसख्या–शिक्षा एक अपरिहाय आवश्यकता बन गई है जिसे शीघ्रातिशीघ्र भावी जनको (Futureparents) अर्थात् विद्यार्थियो की तत्सम्ब धी अभिवृति के विकास हेतु विद्यालयो म अपनाया जाना वाछनीय है ।

शोध एव सर्वेक्षण द्वारा भी जनसख्या—शिक्षा की आवश्यकता एव महत्व स्वीकार किया गया है । 1969 मे पोहलमन (Pohelman and Reo) के सर्वेक्षण द्वारा यह तथ्य प्रकट हुआ है कि दिल्ली के 90% अध्यापको ने छोटे परिवार की आवश्यकता तथा भारत म अत्यधिक जनसख्या के नियत्रण सम्ब धी शिक्षा को पाठ्य क्रम मे सम्मिलित करना उपयोगी माना है तथा 80% अध्यापको ने इस कॉलिजो की शिक्षा के पूव ही देना अच्छा समझा है । क्योकि "स्कूल शिक्षा समाप्त करने से पूव अल्पआयु मे शादी हो जाती है । इसी प्रकार लडकियो की किशोर अवस्था पूण करने से पूव ही शादी करदी जाती है । राष्ट्रीय औसत शादी की उम्र लडकियो की 14 5 वष है।"[1] जो जनसख्या वृद्धि म सहयोगी बन जाते है अत उन्हे सही दृष्टिकोण का विकास वाछित है स्कूल अध्ययन–काल म ही । विदेशो म यह धारणा भी निमूल सिद्ध हो चुकी है कि यौन शिक्षा के बिना जनसख्या शिक्षा प्रसार नही किया जा सकता । टीचस कालज कोलम्बिया (अमेरिका) विश्व विद्यालय न इस प्रकार का पाठ्य क्रम बनाकर उसका प्रयोग किया है जो उक्त तथ्य को सत्यापित करता है ।

जो लोग यह कहते है कि जनसख्या शिक्षा का विद्यालय शिक्षा स कोई सम्ब ध नही होना चाहिए यह धारणा अनुचित है । जनसख्या म असाधारण वृद्धि जसी भयकर समस्या का सामना करने के लिये समाज द्वारा अपनी महत्वपूण सस्था 'विद्यालय' का उपयोग करने की बात सोचना स्वाभाविक है । डा० वी के आर वी राव न "राष्ट्र के आर्थिक एव सामाजिक विकास के लिये जनसख्या की शिक्षा को आवश्यक बताया है ।' इससे समाज की समस्याओ के समाधान म तो योगदान होगा ही विद्यालयो की स्थिति म भी सुधार होगा । जनसख्या म वृद्धि के कारण शिक्षा की गुणवत्ता एव विद्यालयो के भौतिक विकास म सीमित आर्थिक साधनो मे गति लाना सम्भव नही हो पाता । ऐसी स्थिति मे विद्यालय जनसख्या

1 Ministry of Health & Family Planning— Facts about Population & Planning in India" Govt of India 1967

वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं के समाधान में योग देकर परोक्ष रूप में अपनी ही समस्या हल करेंगे। एम फिलिप हॉजर ने भी समर्थन करते हुए कहा है कि—"अब समय आ गया है कि बीसवीं सदी के स्कूलों के पाठ्यक्रम में बीसवीं सदी की जनसंख्या की प्रवृत्ति तथा परिणामों का अध्ययन कराया जाय।" अतः जनसंख्या-शिक्षा विद्यालय की प्रगति में भी सहायक होता है।

जनसंख्या नियंत्रण एवं छोटे परिवार के औचित्य के प्रति विद्यार्थियों में प्रारम्भ से ही अभिवृत्तियों का विकास करना वांछनीय है। इर्विन एल स्लेमनिक का मत है—'बचपन में विकसित अभिवृत्तियां ही बहुधा प्रौढ़ावस्था के व्यवहार को निर्देशित करती है। यदि समाज अपनी जनसंख्या के आकार को नियंत्रित करना चाहते हैं तो उसे नवयुवकों को इस प्रकार प्रभावित करना चाहिये कि उनमें जनसंख्या की अतिवृद्धि के परिणामों के प्रति जागरूकता उत्पन्न हो, वे छोटे छोटे परिवार के प्रतिमान के गुणों को पहिचान सकें तथा उनमें यह अवबोध विकसित होना चाहिये कि वह जनसंख्या के उचित आकार के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रौढ़ की स्थिति में व्यक्तिगत रूप में क्या करना चाहिये।'[1] संक्षिप्त रूप में कह सकते हैं कि इसकी आवश्यकता निम्न प्रकार हैं—(i) छोटा परिवार सदैव सुखी परिवार होता है। (ii) यदि पाठ्यक्रम में जीव विज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता मान कर सम्मिलित किया गया है तो मानव जनसंख्या के अध्ययन को उससे अधिक आवश्यक मानना ही चाहिये। (iii) भारत के युवकों युवतियों को विवाह से पूर्व जनसंख्या वृद्धि की समस्याओं से अवगत कराया जाय। (iv) राज्य एवं समाज का उत्तरदायित्व है कि वह जनसंख्या वृद्धि के कुप्रभावों से नागरिकों को अवगत करवा दें। (v) द्रुतगति से जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप देश की आर्थिक सामाजिक एवं व्यक्तिगत उन्नति अवरुद्ध सी हो रही है।

भारत में जनसंख्या-शिक्षा सम्बन्धी धारणा

कोठारी शिक्षा आयोग ने जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी धारणा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि देश के विकास हेतु औद्योगीकरण तथा साधनों के अधिकतम उपयोग तथा भौतिक प्रगति के द्वारा जीवन स्तर में सुधार का लक्ष्य शिक्षा को इन सबके माध्यम के रूप में स्वीकार करने पर सम्भव हो सकेगा। जनसंख्या शिक्षा इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति का साधन है। आने वाली जीवन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए जनसंख्या शिक्षा की व्यवस्था सभी प्रकार के अभिकरणों (Agnecies) के सहयोग से की जानी चाहिए।

जहां एक मत विद्यालय स्तर पर जनसंख्या शिक्षा को प्रदान किया जाना

1 Irwin L. Slesmic, 'Population Education—A response to a social Problem (The Science Teacher"—Feb 1971—P/22)

आवश्यक माना है तो दूसरा पक्ष इस शिक्षा को नही देने हेतु तर्क प्रस्तुत करता है किन्तु जनसंख्या शिक्षा का समर्थन मे प्रस्तुत तर्क अधिक मान्य हैं ।

विद्यालय स्तर पर जनसख्या शिक्षा देने के पक्ष मे तर्क

1 यदि माध्यमिक व उच्च मा० स्तर पर एकदम दी जाती है तो बालकों का ध्यान आकर्षित होकर काम चेतना बढने की सम्भावना हो सकती है जो हानिकारक है।

2 प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थी-संख्या सबसे अधिक होती है ।

3 बालको मे मस्तिष्क नवीन अभिवृत्तिया का शीघ्रता स विकसित करते हैं।

4 शहरो म अधिक जनसंख्या के कुप्रभावो से प्राय सभी परिचित होते जा रहे हैं । अभी जनसख्या जागरूकता ग्रामीणो, आदिवासियो तथा पिछडे वर्गो मे इसका पहुचना बहुत जरूरी है और वहा अधिकाश स्थानो पर प्राथमिक स्कूल ही है ।

5 भावी समाज का भविष्य सुरक्षित करने के लिए।

6 मनोवैज्ञानिक रूप स विद्यार्थी–जनसख्या नियन्त्रण सीखने म रुचि लेते है जबकि प्रौढो पर कम प्रभाव पडता है।

7 सहगामी क्रियाओ द्वारा अच्छा सामाजिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

8 बच्चो के मस्तिष्क अधिक निष्पक्ष एव सही चिन्तन युक्त होते है।

जनसख्या शिक्षा का पाठ्यक्रम

जनसंख्या शिक्षा का विद्यालयो स्तर पर प्रसार करने के लिए पाठ्यक्रम मे भी कुछ परिवर्तन व परिवर्धन आवश्यक है । कुछ विषयो के साथ पाठ्यक्रम म जनसख्या शिक्षा का समायोजन करना वांछनीय होगा जसे सामान्य विज्ञान, सामाजिक ज्ञान, हिन्दी व स्वास्थ्य शिक्षा । बैंककाक सेमीनार मे जनसख्या के निर्धारक "जनांकिकी तथा परिणाम" की जनसख्या शिक्षा को विषय वस्तु का आधार माना गया तथा अनेक देशो मे इसके अनुरूप शैक्षिक योजनाएं बनाई गई।

राष्टीय शक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् ने यूनस्को द्वारा सौंपे गये प्रोजक्ट के अन्तगत वतमान म देश म पढाई जाने वाली विभिन्न विषयो की विद्यालय स्तरीय पाठ्य पुस्तको को आधार बनाते हुए उन अशो को खोज निकाला जिनका सम्बन्ध जनसख्या शिक्षा से है । यह एक 'आधार भूत सर्वेक्षण' (Bas Line Survey) था। इससे यह बात ज्ञात हो सकी कि प्रचलित पाठ्यक्रम म किस सीमा तक जनसख्या शिक्षा विषयक सामग्री उपलब्ध है और राजस्थान राज्य म भी राज्य शक्षिक अनुसधान एव प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर के माध्यम से भी यह सर्वेक्षण सम्पन्न किया गया । इस सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो गया कि विभिन्न विषयो म कितने प्रतिशत विषय सामग्री जनसख्या शिक्षा स सम्बन्धित उपलब्ध है।

जनसख्या-शिक्षा शिक्षण हेतु कार्यक्रम

(Teaching Programme for Population Education)

जब जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित हो गये है तो स्वाभाविक है, उसकी पूर्ति हेतु शिक्षण कार्यक्रम बनाना सम्भव है । सर्वप्रथम इस कार्यक्रम बनाना सम्भव है । सर्वप्रथम इस कार्यक्रम म संलग्न किए जाने वाले सभी अध्यापको को प्रशिक्षण प्रदान किए जाने की आवश्यकता है । इसके साथ ही साथ इस प्रशिक्षण हेतु उपयुक्त श्रव दृश्य सामग्री को भी तैयार किया जाय । शालाओं मे क्रियान्वित करने हेतु इस प्रसंग का उपयुक्त साहित्य तथा श्रव दृश्य सामग्री भी तैयार की जानी चाहिये । यह छात्रो की उम्र व स्तर के अनुरूप होने चाहिये । प्रारम्भिक कक्षाओ के छात्रो और किशोर अवस्था के छात्र, व छात्राओ के लिए अलग अलग विषय वस्तु व सहायक सामग्री होगी । छात्र के लिए अध्ययन हेतु विषय वस्तु ऐसी हो जिसे छात्र स्वय की रुचि से पढकर खुश हो । स्वाध्याय के लिए उपलब्ध करवाया जाने वाला साहित्य ऐसा हो जिसम मूल्यवान बातें जनसंख्या शिक्षा से सम्बंधित हो ।

यह ध्यान रखने की आवश्यकता है जनसंख्या शिक्षा एक लचीले प्रकार का विषय है जिसे शाला पाठ्यक्रम म स्थान प्रदान किया जाय या इतिहास, भूगोल, सामाजिक ज्ञान, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, गृह विज्ञान, प्रकृति के बारे म ज्ञान, नागरिक शास्त्र आदि विषयो को पढाते वक्त बहुत से बिंदु जो जनसंख्या शिक्षा से सम्बंधित है समावेश वांछित है ।

यह अभी तक विवाद का विषय है कि क्या विषय वस्तु के लिए अलग से पाठ्य पुस्तकें तैयार की जाय या विषयो के साथ ही पढाया जाय । यह 'परिवार कल्याण' तथा शिक्षा विदो' के परस्पर विचार-विमर्श तथा सहयोग के उपरान्त ही निर्णय लेना वांछनीय होगा ।

विभिन्न राज्य जनसंख्या-शिक्षा की उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए इसको विद्यालय पाठ्यक्रम म उचित स्थान देने हेतु प्रयत्नशील है ।

राजस्थान राज्य के शिक्षा विभाग ने कक्षा 8 तक की सामाजिक अध्ययन सम्बन्धी राष्ट्रीयकृत पाठ्य पुस्तको मे जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी कुछ पाठो का समावेश किया है । माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान ने भी इस दिशा म माध्यमिक स्तर पर कुछ प्रयास किया है ।

जनसख्या-शिक्षा का पाठ्यक्रम

(Curriculum of Population Education)

जनसंख्या शिक्षा एक अभिनव शैक्षिक प्रवृत्ति है । अत इसके पाठ्यक्रम का निर्माण व क्रियान्वयन उचित संशोधन, परिवर्तन व अनुभव के आधार पर

सावधानी से किये जाने चाहिए। सभी स्तरो के बालको को जनसख्या शिक्षा प्रदान करने मे शिक्षण सस्थाओ की महम भूमिका है। वे छात्र व अध्यापको को जनसख्या की वृद्धि व उसके सामाजिक, आर्थिक व व राजनैतिक प्रभावों के बारे मे सचेत करने हेतु प्रभावशाली एजेसी के रूप म काय करती है। अन्य महत्वपूण काय उद्देश्यो की क्रियान्विति हेतु ज्ञान प्रदान कर उनकी अभिरुचियो को विकास करने म सफल हो सक, एस पाठयक्रम का निर्माण किया जाय।

लेकिन खेद है कि 'जनसख्या-शिक्षा' एक गम्भीर समस्या विश्व व्यापी होने के बावजूद भी उसके पाठयक्रम के लिए उपयुक्त साहित्य भी अपर्याप्त है। डा0 स्लोन वे लेंड (Dr Sloan way Land) ने तो यहा तक कहा है कि विश्व म एक भी देश ऐसा नही है जिसने इस प्रसग मे सवमा य प्रतिरूप (Model) तयार किया हो।[1] फिर भी हम यूनेस्को की बगकॉक विचार गोष्ठी म जनसख्या-शिक्षा के पाठयक्रम म निम्नाकित पक्ष सम्मिलित किये जाने का निणय लिया गया।"[2]

(1) जनसख्या वृद्धि के निर्धारित तत्व (Determinats of Population Growth) — जनसख्या वृद्धि के निर्धारक तत्वो से अवगत होने से विद्यार्थी परिवतनशील समाज के सदभ म जनसख्या वृद्धि के आधार भूत कारणो को समझते हैं यद्यपि प्रत्यक समाज म सास्कृतिक प्रतिमान भिन्न-भिन्न होते है। इन निर्धारक तत्वो को समझकर वे इस समस्या के विभिन्न पक्षो का अध्ययन कर सकत है।

(2) जनसख्या वृद्धि के परिणाम (Consequences of Population Growth) — को पाठ्यक्रम म इसलिये सम्मिलित किया गया है कि विद्यार्थी व्यष्टि एव समष्टि स्तरो मे (Micro and Macro Levels) पर जनसख्या वृद्धि क दुष्परिणामो को आर्थिक एव सामाजिक दृष्टि से अनक क्षेत्रो खाद्य पदार्थ, आवास, शिक्षा स्वास्थ्य, पोषण, रोजगार आदि क्षेत्रो म देख सकेंगे। ये दुष्परिणाम पर्यावरण प्रदूषण के रूप म भी देखे जा सकते है।

(3) जनाकिकी (Demography) — जनाकिकी अर्थात समाज की स्थितियों को बतलाने वाले महत्वपूण आंकडो को पाठयक्रम म इसलिये सम्मिलित किया गया है कि विद्यार्थिया उवरता (Fertility), मृत्यु दर (Mortality) तथा प्रव्रजन (Migration) के कारण जनसख्या सरचना मे परिवतनो को समझ सकें। विद्यार्थियो को जनसख्या सम्बन्धी आकडा के विश्लेषण करन तथा उनके आधार पर जीवन-स्तर से सम्बद्ध सम्भावित निष्कर्ष निकालने का प्रशिक्षण भी

1 NCERT, Readings in Popultion Education (P/57)
2 UNESCO, Population and Family Planning (P/34)

जनांकिकी द्वारा मिलता है तथा वे वर्तमान एवं भूतकालीन प्रवृत्तियों (Trands) के आधार पर भविष्य में जनसंख्या वृद्धि का आकलन कर सकते हैं।

उपरोक्त तीन पक्षों के अतिरिक्त निम्नांकित दो पक्ष जनसंख्या-शिक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाने वांछनीय हैं[1] —

(4) मानव प्रजनन (Human Reproduction) — इस दृष्टि से पाठ्यक्रम में वांछनीय है कि जिससे विद्यार्थी यह समझ सके कि शिशु का जन्म कोई आकस्मिक घटना या दैवी कृपा का फल नहीं है बल्कि विद्यार्थियों में यह जागरूकता उत्पन्न हो सके कि जब वे वैवाहिक-जीवन में प्रवेश करें तो वे अपने परिवार के आकार के विषय में व्यायसंगत निर्णय ले सकें। प्रजनन की शिक्षा देने में आपत्ति करना निरर्थक है क्योंकि उच्च प्राथमिक कक्षाओं के सामान्य विज्ञान के पाठ्यक्रम में प्रकरण पहले से ही पढ़ाये जा रहे हैं।

(5) जनसंख्या सम्बन्धी नीतियाँ एवं कार्यक्रम — जो सरकार द्वारा अपनाये और क्रियान्वित किये जा रहे हैं उन्हें पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए क्योंकि विद्यार्थी प्रतिदिन प्रचार साहित्य एवं कार्यक्रमों के माध्यम से इन प्रवृत्तियों से अपने पर्यावरण से परिचित हो रहे हैं तथा उनकी स्वाभाविक जिज्ञासा उन्हें समझने की होती है। अतः उन्हें देश व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर क्रियान्वित किये जा रहे, ऐसे कार्यक्रमों एवं नीतियों से अवगत कराना चाहिए ताकि वे इनमें सहयोग देने की अभिवृत्ति विकसित कर सकें।

जनसंख्या शिक्षा के उपरोक्त पाठ्यक्रम किस प्रकार से शाला पाठ्यक्रम में समाविष्ट किया जाये और उसे क्रियान्वित रूप दिया जाये यह समस्या विचारणीय है।

राष्ट्रीय जनसंख्या शिक्षा प्राजेक्ट व पाठ्यक्रम —

जनसंख्या शिक्षा के पाठ्यक्रम में उसकी अवधारणा, जनसंख्या वृद्धि तथा आर्थिक आर्थिक सामाजिक विकास, जनसंख्या वृद्धि एवं परिवार कल्याण, स्वास्थ्य सरकार की जनसंख्या सम्बन्धी नीति तथा भारत एवं विश्व में जनसंख्या की स्थिति। यद्यपि जितना इस समस्या के समाधान हेतु युद्ध स्तर पर समाधान करने का सफल प्रयास किया जाना चाहिये था उतना तो नहीं हो पाया फिर भी 1980 में शुरू किये गये राष्ट्रीय जनसंख्या शिक्षा प्रोजेक्ट' के तत्वाधान में देश के सोलह राज्यों ने प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तरों के लिये और चौदह राज्यों ने माध्यमिक स्तर के लिये पाठ्यक्रम तैयार कर लिया है। यह प्रोजेक्ट स्वास्थ्य मन्त्रालय के सहयोग से चलाया जा रहा है तथा

1 Ramesh Chandra Implementation of the Population Education pragramme (नया-शिक्षक जनवरी-मार्च 1975 P/69)

छात्रों का स्तर / पाठ्यक्रम के अवयव	प्राथमिक स्तर V–VII (उम्र 10+)	माध्यमिक व उच्च मा0स्तर (कक्षा 8 से 11 उम्र 14+)
1 उद्देश्य 2 विषय वस्तु (Goal)	1 सूचना सामान्य ज्ञान 2 जनसंख्या वृद्धि तथा उसका हमारे जीवन पर प्रभाव	1 सूचनाएँ एवं अभिवृद्धि 2 जनसंख्या वृद्धि तथा उसके कारण उसके प्रभाव का विश्लेषण करना व समाधान
3 अध्यापन विधि (Method)	3 विभिन्न विषयों में को मिलाकर पढ़ाना जो पाठ्यक्रम में है।	3 विभिन्न विषयों जो पाठ्यक्रम में है उन्हें पढ़ाना तथा जनसंख्या की गतिशीलता पर विशिष्ट लोगों का भाषण।
4 विषय वस्तु (Material)	4 विवहरणात्मक उसी पाठ्यपुस्तक को काम में लेना जो पढ़ाई जाती है।	4 (i) विवहरणात्मक व विश्लेषणात्मक पाठ्यपुस्तक और अतिरिक्त अध्ययन (ii) सामग्री के बारे में ज्ञान
5 अध्यापक (Staff)	5 शाला का वे ही अध्यापक जो अध्यापन करते है	5 (i) वही शाला अध्यापक (ii) विषय के विद्वान जो विशिष्ट योग्यता करने सदभ व्यक्ति के रूप में
6 विषय (Subjects)	6 अलग से विषय वस्तु नहीं हो,	6 जनसंख्या शिक्षा से सम्बिधित उन्हीं की पाठ्य वस्तु में में ज्ञान प्रदान करना।
7 प्रसंग (Context)	7 व्यक्तिगत व परिवार	7 परिवार तथा समाज
8 उपागम (Approch)	8 पूर्ण रूप से अप्रत्यक्ष तथा परिवार की स्थिति।	8 अप्रत्यक्ष लेकिन समाजिक अरिवक्ष से सम्बन्ध स्थापित कर सके।
9 अध्यापक शिक्षा (Teacher Education)	9 (i) जनसंख्या वृद्धि की समस्या का अन्य विषयों के अध्यापन में विधियों का सम्बन्ध। (ii) ग्राम, कस्बा व जिला राज्य एव देश की जनसंख्या के बारे में ज्ञान प्रदान करना।	9 (i) विषयों के सहसम्बन्ध स्थापितकर जनसंख्या वृद्धि के बारे में अधिगम करवाना। (ii) जनसंख्या की गतिशीलता, जनांकिकी के बारे में ज्ञान प्रदान करना। (iii) पाठ्यक्रम में मुख्य विषय वस्तु के बारे में पूर्व ज्ञान के आधार पर जनसंख्या शिक्षा का सम्बन्ध स्थापित करने का समावेश करना।

1 Model Prepared by the Centre of Population Education, Baroda

इस पर लगभग 5 करोड 20 लाख रुपये व्यय किये जायेंगे । इस प्रोजेक्ट में 21 राज्य और 6 केन्द्र शासित प्रदेश भाग ले रहे है ।"[1]

जनसंख्या–शिक्षा का कार्यान्वियन — जनसंख्या–शिक्षा के पाठ्यक्रम का विद्यालय स्तर पर कार्यान्वयन हेतु उसे पहले से स्वीकृत पाठ्यक्रम में किस प्रकार समाविष्ट किया जाय इस सम्बन्ध में निम्नांकित दो मत मुख्य है —

(1) प्रथक विषय के रूप मे — जनसंख्या–शिक्षा को विद्यालय में स्थान दिया जाना चाहिए क्योकि इस विषय की उपरिहार्यता आज के सन्दर्भ में सर्वोपरि है । ऐसी मान्यता कुछ लोग व्यक्त करते है । इस मत के विपक्ष मे यह तर्क दिया जाता है कि विद्यालय पाठ्यक्रम पहले से अनेक विषयो के भार से बोझिल हो रहा है अत एक नये विषय का अध्ययन करना अल्पायु के विद्यार्थियो के साथ न्याय नही होगा किन्तु यह आपत्ति निराधार प्रतीत होती है क्योकि यह कहना विषयो की संख्या जो आज पाठ्यक्रम मे है वह अपने चरम बिन्दु पर पहुँच चुकी है, इसका कोई वैज्ञानिक आधार नही है इसके अतिरिक्त विषय भार को घटाने के लिये वर्तमान विषयो के अनावश्यक एवं अनुपयोगी अंश हटाये जा सकते है तथा जनसंख्या–शिक्षा को पाठ्यक्रम मे बिना किसी अतिरिक्त भार के सम्मिलित किया जा सकता है । इस सम्भावना को क्रियान्वित किया जा सकता है

(2) विद्यमान विषयो के पाठ्यक्रम मे समाविष्ट कर — जन संख्या शिक्षा के पाठ्यक्रम को विद्यालय–अवधि के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम मे फलाकर अध्ययन कराया जाना कुछ लोगो के मत मे अधिक उपयोगी रहेगा क्योकि आयु–वर्ग के अनुकूल विभिन्न कक्षाओ के विद्यार्थियो की क्षमता एव योग्यता के आधार पर वांछित अभिवृत्तियो का विकास किया जाना उचित है । अधिकाश राज्यो मे 1980 मे शुरू किये गये 'राष्ट्रीय जनसंख्या–शिक्षा प्रोजेक्ट' के तत्वाधान मे प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तरो के लिए सोलह राज्यो ने पाठ्यक्रम तैयार किया है, राजस्थान भी उन मसे एक है । इस प्रोजेक्ट पर राजस्थान मे राज्य शैक्षिक अनुसधान एव प्रशिक्षण संस्थान उदयपुर द्वारा क्रियान्वित रूप दिया गया है जो राज्य मे पूर्व से प्रचलित कक्षा 3 से 8 तक की पाठ्य पुस्तको (गणित, सामाजिकज्ञान, सामान्यविज्ञान) मे विद्यमान जनसंख्या शिक्षा–अंश को खोजकर उसमे जोडी जाने वाली अतिरिक्त सामग्री का निर्धारण किया है तथा जनसंख्या शिक्षा पाठ्यक्रम को विषयवार एव कक्षा वार विभाजित कर शिक्षण हेतु शिक्षण अधिगम क्रियाओ तथा उपेक्षित परिवर्तन किये गये है ।'[2] अत प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर पर यही पद्धति व्यावहारिक है । इस पद्धति के

1 The Hindustan Times', 12 March 1983

2 Population Education Publication Series p–384 (SIERT, Udipur)

विरोध मे यह तर्क दिया जाता है कि अन्य समस्यायें भी अनिवार्य विषयो म उनका स्थान सुरक्षित करना चाहिए, जसे 'अल्प बचत,' यातायात नियम, 'स्काउटिंग' रेड-क्रास', नतिक शिक्षा', नागरिक सुरक्षा' आदि कार्यक्रम । यदि इन सभी कार्यक्रमो को पाठ्यक्रम मे स्थान दिया गया तो वह और भी बोझिल हो जायेगा।

पाठ्यक्रम सम्बन्धी दूसरी समस्या यह है कि जनसंख्या पाठ्यक्रम को किस प्रकार विद्यालय स्तर की कक्षाओ मे विभक्त किया जाये तथा किस विषय के पाठ्यक्रम म, इसे समाविष्ट किया जाये ताकि मनोवज्ञानिक एव शक्षिक दृष्टि स जनसंख्या का पाठ्यक्रम उपयुक्त लगे न कि एक फटे कपडे म पैबन्द' की भांति बन जाये । ये कुछ समस्यायें निरन्तर प्रयोग एव अनुभव के आधार पर हल की जानी हैं ताकि जनसंख्या-शिक्षा जसी अपरिहार्य अभिनव शक्षिक प्रवृत्ति का पाठ्यक्रम म उचित स्थान मिल सके ।

जनसख्या शिक्षा की प्रगति हेतु कारक
(Factors Promoting Pupulation Education)

जनसख्या शिक्षा को व्यवहारिक रूप देकर उसका क्रियान्वयन द्रुतगति से देश मे एक अभियान क रूप मे किया जाये । इसके लिए इस विषय को पाठ्यक्रम म मान्यता देनी होगी जनसंख्या शिक्षा क अर्थ को जनसाधारण तक पहुचाना होगा, भारत व विश्व मे इस विषय स सम्बन्धित साहित्य को उपलब्ध करवाना, इस शिक्षा के अभाव म होन वाली सम्भावित कष्टो पर प्रकाश डालना होगा, विषय की पाठ्य पुस्तके व सहायक सामग्री को तयार करना अध्यापको को प्रशिक्षित करें ताकि वह कक्षा म पर्यावरण बनाने हतु उत्प्रेरित कर सके, राज्य व केन्द्र सरकार को राष्ट्रीय समस्या के रूप म गम्भीरता से हाथ मे लेकर क्रियान्वित रूप देने, तथा पूर्व मे प्रस्तावित कार्यक्रम म आवश्यकता व परिस्थितियो के अनुकूल सशोधन किया जाकर और आज के जनसचार साधनो-रेडियो, टेलीविजन, आदि का भी समुचित प्रयोग किया जाये ।

इन सब के उपरात शिक्षण के मुख्य कारक शाला, अध्यापक व छात्र हैं । अत इनमे मनोवज्ञानिक ढग से एक दूसरे के परस्पर सम्बन्ध व दृष्टिकोण म समानता वांछित है । इस सम्बन्ध म अगले पृष्ठ पर प्रदर्शित चार्ट से स्पष्ट होता है —

जनसख्या-शिक्षा कायक्रम को सफल करने वालो मे सहसम्बन्ध —[1]

प्रपरोक्ष रूप से		परोक्ष रूप से
शिक्षा विभाग	विद्यालय	1 शाला प्रब धकारिणी 2 सभापति 3 प्रधानाध्यापन
शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय	प्रध्यापक	1, प्रध्यापक सामग्री 2 पाठय पुस्तकें 3 सहायक सामग्री
अभिभावक समाज	छात्र	1 प्रधिगम के स्रोत 2 पाठयक्रम 3 सहगामी प्रवृत्तियाँ

जनसख्या शिक्षा की प्रगति पथ पर ले जाने के लिए (1) विद्यालय व पर्यावरण (2) प्रध्यापको को पुन तयार करना तथा छात्रो को उत्प्रेरित व प्रोत्साहित करना व्यवहारिक दृष्टि से प्रावश्यक है, तभी इस समस्या का सही व स्थाई हल की प्राशा की जा सकती हैं। हम यहा सक्षिप्त म तीनो महत्वपूर्ण प्रवयवो के बारे म विवेचन करेगे ताकि उन्हे इस राष्ट्रीय समस्या के समाधान मे कमे प्रभावी बनाकर उद्देश्यो की सम्पूर्ति की जा सके।

[1] शाला पर्यावरण नवीन ढग से सृजन (Creation of School Climate) —भारत की परिवर्तित परिस्थिति म शाला का उत्तरदायित्व है कि वह छात्रो को व्यवहारिक जीवन मे माने वाली समस्याग्रो का समाधान करने की क्षमताग्रो का विकास करना। राज्य की विद्यालयो म नवीन ढग से जो समय की माग के अनुरूप हो, का पर्यावरण निर्माण हेतु राज्य का शिक्षा-विभाग महत्व पूर्ण भूमिका निभा सकता है। अनुदान प्राप्त सस्याग्रो की प्रब धकारिणी परोक्ष रूप से तथा शिक्षा विभाग अपरोक्ष रूप स प्रभावित करता है। यदि इन दोनो को ठीक ढग म इस नये विचार क बारे म ज्ञान दे दिया जाता है तो उनके दृष्टि कोण म परिवतन प्रायेगा प्रोर व अपनी शालाग्रो म इसे क्रियान्वित रूप देगे। निम्न उपाय भी प्रावश्यक है —

1 शिक्षा निदेशक को इस काय मे सलग्न होकर जनसख्या शिक्षा की प्राव श्यकता के बारे म बालको को समझाने हेतु कायक्रम बनावे।

2 विभिन्न जिलो के जिला शिक्षा प्रधिकारियो को चाहिए कि वे जनसख्या शिक्षा के सम्प्रत्य को क्रियान्वित रूप तथा उसके लिए प्रोत्साहन दे।

3 यदि अनुदान प्राप्त निजी सस्या (Grant in aid) है तो व्यवस्थापिका

ो जनसंख्या शिक्षा पर प्रकाशित साहित्य, परिपत्र आदि शिक्षा विभाग द्वारा प्रदान कर पूर्ण रूप से सूचित करते रहना।

4 शाला प्रधान जनसंख्या शिक्षा' की कार्य गोष्ठी सेमिनार प्रशिक्षण द्वारा पूर्ण ज्ञान रखना चाहिये ताकि अध्यापक साथियों को पथ प्रदर्शन करने में सक्षम रहें।

[2] अध्यापकों के नवीन ढंग से पथ प्रदर्शन (Reorientation of Teachers)—अध्यापक ही छात्रों को ज्ञान व नये विचारों के बारे में ज्ञान प्रदान करता है। अतः अध्यापकों को इन नये विचार के बारे में नवीन ढंग से पथ प्रदर्शन व अध्यापन विषय वस्तु शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालयों के विस्तार सेवा' के माध्यम से प्रदान की जाय। प्रशिक्षण महाविद्यालय वर्तमान 'मूल्यों' व आवश्यकता के अनुरूप अध्यापकों में नये दृष्टिकोण व अभिवृत्तियों का विकास कर सकते हैं, तभी विद्यालय में प्रभावशाली क्रियान्विति सम्भव हो सकेगी। सहायक सामग्री व विषय वस्तु के न होने की स्थिति में भी क्रियान्विति मुश्किल प्रतीत होती है। अतः अध्यापक को जनसंख्या शिक्षा के बारे में नवीन ढंग से पथ प्रदर्शन किया जाय। बड़ौदा सेन्टर ऑन पापुलेशन एजुकेशन' ने विस्तार भाषण (Extension Lectures) निम्न क्षेत्रों में प्रदान कर 'अभिनवन कार्यक्रम' बनाया है —[1]

1 जनसंख्या शिक्षा के बारे में परिचय करवाना (Introduction to Population Edu)

2 जनसंख्या वृद्धि तथा शिक्षा (Population Growth & Education)

3 जनसंख्या शिक्षा हेतु विधि एवं उपागम (Methods & Approaches of Populatiou Education)

4 जनसंख्या शिक्षा का शालाओं हेतु पाठ्यक्रम (Curriculum for Population Edu)

5 जनसंख्या शिक्षा के लिए अध्यापक की तैयारी व उत्तरदायित्व (Teacher's Role & Preparation for Population Edu)

6 जनसंख्या शिक्षा का मूल्यांकन (Evaluation in Population Edu)

7 जनसंख्या शिक्षा बाबत विवाद (Controversis & Issues)

8 प्रायोगिक कार्य (Practical Work)

अध्यापकों को रिओरियेंटेशन प्रोग्राम हेतु निम्न कार्य किए जायें —

1 बी एड उपाधि से पूर्व सभी अध्यापकों को जनसंख्या शिक्षा पर विस्तार भाषण के माध्यम से या नियमित बी एड प्रशिक्षण में तैयार किया जाय।

---

1 Population Education Centre Orientation coures in population Edu for Experimental Try out in B Ed and M Ed Classes 1979 (Mimeographed), Baroda

2 उन्हें कुछ अभ्यास पाठ जनसंख्या शिक्षा पर देने चाहिए जिसमें जनांकिकी (Demography) के तथ्यों का समावेश हो।

3 इन्हें फील्ड वर्क तथा शोध कार्य करना चाहिए कि जनसंख्या वृद्धि से स्वास्थ्य, कल्याण व शिक्षा कार्यक्रम पर व्यक्तिगत रूप से तथा समाज पर क्या क्या प्रभाव पड़ता है।

4 शिक्षण महाविद्यालयों को 'जनसंख्या शिक्षा' की मूल्यांकन के अवसर पर प्रश्न पूछे जाय।

5 पाठ्य पुस्तकों में जनसंख्या शिक्षा से सम्बन्धित प्रकरण, नियमित पाठ्य पुस्तकों में ही समावेश किया जाय।

6 भारत व विश्व में जनसंख्या की गत्यात्मक वृद्धि के बारे में ज्ञान देने वाले चार्ट, ग्राफ पिक्चर आदि सहायक सामग्री के रूप में उपलब्ध करवाये जाय।

7 प्रत्येक स्कूल की शाला-पुस्तकालय में 'विशिष्ट कॉर्नर' जनसंख्या-शिक्षा के सदर्भ में बनाया जाय जहाँ अनुरूप विषयवस्तु (Reference materials) उपलब्ध हो सकें।

8 प्रत्येक शाला में श्रव्य-दृश्य सामग्री व 'फिल्म पुस्तकालय,' की व्यवस्था की जाय। प्रत्येक राज्य में स्थित 'श्रव्य दृश्य विभाग' से इस प्रसंग में वांछित सहयोग प्राप्त किया जाय।

(3) छात्रों का उत्प्रेरित करना (Motivation to Pupils) —

छात्रों की भूमिका 'जनसंख्या शिक्षा' की सफलता में अत्यधिक हो सकती है। अतः उन्हें जनसंख्या से उत्पन्न होने वाली समस्याएँ जो व्यक्तिगत जीवन, समाज व राष्ट्र पर किस प्रकार प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और अन्य समस्याएँ कैसे पैदा होती है इस बात का हृदयगम करवाना। पढ़े लिखे अभिभावक अधिक जनसंख्या से रोजमर्रा की आवश्यक वस्तुओं की समस्या के बारे में ज्ञान देते है। लेकिन भारत में अधिकांश अभिभावक पढ़े-लिखे नहीं है वे इसे अनुचित समझते हैं।[1] एम जे पाठक ने संक्षिप्त शोध हेतु लिए गये साक्षात्कार में अभिभावकों के दृष्टिकोण निम्नलिखित है—

(अ) यह परिवार नियोजन का दूसरा नाम है (आ) यह यौन-शिक्षा से सम्बन्धित है, (इ) जनांकिकी (Demography) गत्यात्मकता (Dynamics) जैसे मुश्किल सम्प्रत्यय छोटे बालकों के लिए मुश्किल प्रतीत होते है (ई) यह विदेशों से आयात किया गया विचार है जो भारत में लागू किया जा रहा है।

'जनसंख्या शिक्षा' पर बड़ौदा केन्द्र ने 25 प्रश्न उत्तर, की एक बुकलेट तैयार की है जो अभिभावकों को सकल्पना तथा शालाओं में इसके अध्यापन के उपादेय का ज्ञान प्रदान किया है।[2]

---

1 Pathak M J 'A Study of Population Awareness Among Father of X class Students at Varnama Village' (M Ed Student, 1970-71) Baroda

2 Population Education Centre Know About Population Education' 1970, Baroda Faculty of Edu

मूल्यांकन (Evaluation)

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer type Questions)

1 जनसंख्या शिक्षा के पाच मुख्य उद्देश्य क्या है ? (बी एड 1984)

2 जनसख्या शिक्षा के लक्ष्यो की प्राप्ति म बाधक तत्वो को बताइये । (1983)

3 'वास्तविक समस्या जनसख्या वृद्धि नही, अपितु उत्पादको का विषम विवरण है ।" इस कथन की परीक्षा कीजिए । (राज बी एड 1982)

4 "समस्या जनसख्या वृद्धि की नही, राजनतिक कुप्रब ध की है ।' डा० के० श्रीनिवासन । विवेचना कीजिए—इस कथन के पक्ष मे तीन तथा विपक्ष म दो तक दीजिए । (बी एड राज 1981)

5 जनसख्या शिक्षा की आवश्यकता पर टिप्पणी लिखिए । (राज बी एड पत्राचार 1981)

(ब) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1 'जनसख्या शिक्षा' तथा यौन शिक्षा' म भेद स्पष्ट कीजिय । माध्यमिक विद्यालयीय स्तर पर इनकी शिक्षा आरम्भ करने के बारे म टिप्पणी कीजिये और बतलाइये कि ऐसा करने का सर्वोत्तम तरीका क्या है । (बी एड पत्राचार 1985)

2 जनसख्या शिक्षा को परिभाषित कीजिये । इस परिभाषा स मुख्य बि दु निकालिये । शिक्षको का जनसख्या शिक्षा म काय और कत्तव्य भी लिखिये । (बी एड 1984)

3 शिक्षा, जनसख्या निय त्रण म किस प्रकार सहायक हो सकती है तथा इसके विपरीत जनसख्या निय त्रण शिक्षा मे किस प्रकार सहायक हो सकता है ? (बी एड पत्राचार 1984)

4 जनसख्या शिक्षा की विद्यालयी शिक्षा म भूमिका स्पष्ट कीजिए तथा इसके प्रभावी क्रिया वयन हुतु सृजनात्मक मौलिक सुझाव द ।

5 जनसख्या शिक्षा का अथ, उद्देश्य, आवश्यकता स्पष्ट कीजिए । इस शिक्षा की प्रगति हेतु विद्यालय वातावरण, शिक्षक व छात्र किस प्रकार उद्देश्य पूर्ति म सहायक हो सकते हैं ?

अध्याय 23 यौन-शिक्षा
(Sex Education)

[प्रस्तावना–यौन–शिक्षा का अर्थ भारतीय एवं पाश्चात्य मत–आवश्यकता–उद्देश्य–सिद्धान्त–विभिन्न स्तरों पर यौन शिक्षा–विद्यालय व यौन शिक्षा–पाठ्यक्रम अधिगमविधियाँ–उपसंहार–मूल्यांकन]

विषय प्रवेश — यौन–शिक्षा को माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शालाओं में प्रदान करने के प्रसंग में शिक्षा प्रशासकों व नियोजकों ने विभिन्न प्रकार से अधिगम करवाने की व्यवस्था हेतु सुझाव प्रदान किया है क्योंकि यह एक विश्व व्यापी समस्या होने के फलस्वरूप अत्यधिक चिन्ता करते हुए ध्यान आकर्षित किया गया है। पूर्व में 'यौन–शिक्षा' के प्रसंग में एक धारणा बनाई गई थी कि पाठ्यक्रम में जीव–विज्ञान की विषय-वस्तु में समावेश कर दिया जाय प्रजनन उत्पादन शक्ति, तथा प्रजनन इन्द्रियों के सामान्य रोगों के बारे में स्वास्थ्य–शिक्षा प्रदान करते वक्त विचार विमर्श कर लिया जाय। आज छात्र छात्राओं सहविचरण प्रवत्ति को भी कहीं पाठ्यक्रम में विचार विमर्श हेतु निर्धारित करने मात्र से यौन के बारे में सामान्य ज्ञान छात्रों को स्वतः ही प्राप्त हो जायेगा। लेकिन हम देखते हैं कि आज यौन शिक्षा वास्तव में माध्यमिक शिक्षा में अत्यधिक गम्भीर व चिन्ताजनक समस्या के रूप में खड़ी है।

आज यौन शिक्षा के प्रसंग में नवीन दृष्टिकोण गम्भीरता से लिया जा रहा है उसके प्रमुख दो कारण है प्रथम पूर्व विवाहित संभोग (Premarital Coitus) बगैर विवाहित किशोरियों का माँ बन जाने की घटनाएँ निरन्तर बढ़ रही है, अवैधानिक किशोरियों द्वारा गर्भपात, प्रजनन इन्द्रियों के सम्बन्धी सामान्य रोग जैसे सुजाक (Gonorrhoea) आतिशक (Syphilis) प्रदर (Leucorrhoea) आदि, हस्त मैथुन (Masturbation), वेश्यावृति समलिंगता तथा प्रतिजातीय वस्त्रधारण करना आदि प्रमुख है। यह सामाजिक समस्याएं यद्यपि कुछ उदाहरण स्वरूप ही है जिसका कारण अपरिपक्वता तथा गलत लोगों गलत ढंग से यौन शिक्षा प्रदान करना है। नैतिक व सामाजिक स्वास्थ्य परिषद् ने निष्कर्ष निकाला है कि लगभग दस से पन्द्रह प्रतिशत इन्द्रिया के सम्बन्धी रोगों से पीड़ित होते ही है।[1] और लगभग आठ प्रतिशत 13 से 19 वर्ष तक की उमर के बालक इन

1 Memorandum on Sex Edu to the Edu Commission of the India by Association for Moral & Social Hygience in India (P/4)

रोगो के फलस्वरूप मौत के घाट उतर जाते है। इस उम्र के बच्चे सामान्यत माध्यमिक उच्च माध्यमिक शालाओं में अध्ययन रत होते हैं। द्वितीय प्रभाव सकारात्मक मानवता के प्रति सही दृष्टिकोण का अभियान, कोमल हृदयता, ज्ञान, मानवीय सहसम्बन्धो का विकास शिक्षा के द्वारा, और शिक्षा उद्देश्य, यौन के बारे मे ज्ञान प्रदान की जिम्मेदारी हैं। द्वितीय दृष्टिकोण अस्वीकार है क्योंकि यौन अत्यधिक क्षमता बुराई है। वैज्ञानिक विकास ने यौन के बारे में नये विकास ज्ञान कार्य सम्पन्न किए हैं। इस समस्या के समाधान हेतु विश्व व्यापी प्रयत्न हो रहे है परन्तु तीन-चार गम्भीर का प्रश्न है कि यह उस नाजुक व उलझे हुए विषय का कैसे पढाया जाय कौन-कौनसी विषय वस्तु का समावेश किया जाय, कब पढाया जाय, कौन पढाये। आदि प्रश्नो के प्रतिउत्तर नही है।

सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि यौन शिक्षा कौन पढाये? उपयुक्त, सयमशील निरापद तथा किशोर बालक व बालिकाओं के साथ रहने में तथा उक्त शिक्षा प्रदान करने में आनंद महसूस करे तथा जिसकी शिक्षा जगत में प्रतिष्ठा हो ऐसे शिक्षा विद् को अध्यापन हेतु उपयुक्त कह सकते है। ऐसा अध्यापक जो छात्र और छात्राओं से पूछी गई सूचनाएँ स्पष्ट व सत्य से ओत-प्रोत हो प्रदान करने मे सफल रहे। असभ्यशील व गन्दे दिमाग के अध्यापक लाभ की बजाय हानिप्रद सिद्ध हो सकते हैं।" किस प्रकार यौन शिक्षा दी जाय? यह प्रश्न ऐसा है जिसे आकस्मिक उपागम द्वारा दी जाय और इसे छात्र छात्राओं को अल्प समय में दी जाय और इसके दूरगामी परिणामो के बारे में सचेत कर दिया जाय। यौन-शिक्षा में विषय वस्तु क्या हो? अध्यापक को जीवन के विज्ञान मनोविज्ञान मनुष्य जाति का विज्ञान, समाज शास्त्र तथा अन्य उपयुक्त विषय वस्तु को इन प्रकरणों में समावेश करते हुए एकीकरण रूप में रखना जाना चाहिए है। जहाँ तक इस विषय को कब पढाया जाये। इस प्रसग में हम पूर्व प्राथमिक कक्षा में हिन्दी सामाजिक ज्ञान के सामान्य विज्ञान, गणित आदि विषयो से सहसम्बन्ध स्थापित करते हुए उन्हे पढाना उचित है परन्तु बारह वय की अवस्था में गम्भीरता से लेते हुए विषय के बारे में सही सूचनाएँ प्रदत्त की जानी चाहिए है।[2]

यौन शिक्षा का अर्थ

यौन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालकों व बालिकाओं का क्रमश आदमी व औरत के रूप में विकास के स्तर के अनुकूल परिवर्तन होने का क्रमबद्ध ज्ञान प्रदान करना। यौन शिक्षा का परोक्ष व अपरोक्ष रूप से सारी शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करता है और मानसिक असतुलन से सुरक्षा, यौन रोगो के प्रसार तथा

2 Alexander, william M (Ed) The Changing Sec School Curriculum Reading N Y

त्व का सहज ही विकास प्रशिक्षण प्राप्त कर व्यवहारिक जीवन म समायोजन म सहायक सिद्ध होने मे सक्षम हो सकें। यह जीवन की परिपक्वता, को जो शरीर सवेगा, दिल व दिमाग पर प्रभाव डालता है। अत,

(1) यौन शिक्षा को परिपक्वता जीवन की शिप्सा से किसी भी स्थिति म अलग नही की जा सकती।

(2) यौन शिक्षा भविष्य के जीवन के उत्तरदायित्व से सम्बन्धित होनी चाहिए क्योकि म किशोर ही कालान्तर म व्यवहारिक गृहस्थ जीवन व सामाजिक जीवन म अपने उत्तरदायित्वो को निभाना है।

(3) यौन शिक्षा सामाजिक व नैतिक-मूल्या से एकीकृत की जानी चाहिए।

यौन शिक्षा मर्द' व जनाना' के बारे में ज्ञान प्रदान करती है। स्त्री व मर्द के जीव की बनावट मे जो विभिन्नता है उसके बारे में ज्ञान प्रदान करता है। यौन सम्बन्धी बिमारिया, उसके प्रति सचेत रहना व उपाय आदि के बारे में युवक व युवतियो को वांछित ज्ञान प्रदान किया जाना। काम शिक्षा का क्षेत्र अन्तर व्यक्तिगत सम्बन्धो पर है और सम्पूर्ण जीवन क विकास में कामेच्छा की भूमिका पर भी बल देना है। काम शिक्षा को क्रमबद्ध व व्यवस्थित रूप से प्रदान करने से चरित्र निमाण में सहायक सिद्ध हो सकती है। इसमें भौतिक, मानसिक, सवगात्मक सामाजिक, आर्थिक एव मनोवैज्ञानिक मानव सम्बधों में प्रभावित होते है। इस शिक्षा में यह निहित है कि मानव की कामुकता उसके सम्पूर्ण जीवन से एक स्वास्थ्य की इकाई के रूप में और एक सजनात्मक शक्ति के रूप में समन्वित है।

प्राचीन भारत व यौन शिक्षा (Ancient India & Sex Education)

प्राचीन भारत म यौन शिक्षा को बच्चे पैदा करने के साधन के रूप म नहीं लिया गया था बल्कि स्वस्थ्य आमोद प्रमोद के साधन के रूप म लिया जाता था। प्राचीन ऋषि मुनियो ने जीवन के सारे ज्ञान को चार भागो म विभक्त किया है धम (Duty) अथ (Money), काम (Enjoyment) व मोक्ष (Liberation) प्राचीन ऋषियो न काम को उतना ही महत्व दिया है जितना धम अथ या मोक्ष को ग्रहस्था श्रम म काम का बहुत महत्व है। ऋग्वेद म लिखा है—

यमस्या मा यम्य काम आगन मामने यौनो सहशेय्याय।

जायेव पत्ये तन्व रिरिच्या कि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा॥ (10 10 7)

अर्थात् मुक्त ब्रह्मचारिणी का कामना है कि मैं अपने समान ब्रह्मचारी को वरू और उसक साथ शयन करू, उसे पति मानकर उसकी पत्नि बनकर रहूँ। अपना शरीर उसके अपण कर दूँ। हम दोनो, रथ के दो पहियों के समान गृहस्थी रूपी रथ को चलाएँ। इस प्रकार काम अपने म पवित्र है और ग्रहस्था-

थम के सम्पूण सुख के लिए काम शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है । इसीलिए सृष्टि के प्रारम्भ म भगवान प्रजापति ने धम और अथ के साथ 'काम' पर भी उपदेश दिए और उ ही के आधार पर भगवान् महादेव के अनुचर 'न दी' ने काम सूत्र की रचना की । वात्स्यायन ने काम-सूत्र की रचना की जिसम यौन सम्ब धी नियमो तथा यौन-क्रिया पर प्रकाश डाला है । व काम को धम और अथ के समान श्रेष्ठ मानत थ । ज्योति ऋषि द्वारा पचसायक' जयदेव द्वारा रतिमजरी, भानुदत्त द्वारा 'रसमजरी' आदि ग्र थो की रचना की गई है । कोका नामक लखक ने 'कोकशास्त्र की रचना की जिसम स्त्रियो के भेद और रति क्रिया पर प्रकाश डाला गया है । इन काम शास्त्र में मनुष्य को सामाजिक-सीमाओ में ही यौन-आन द का लाभ लेने के साथ ही इद्रियो पर निय त्रण पर जोर दिया गया है।

भारतीय सस्कृति म शिव व शक्ति को ससार का प्रतीक माना है 'गृहस्थ-आश्रम' और उसके कर्तव्यो पर बल देने का कारण ही स्त्री और पुरुष को समानाधिकार प्रदान करने से था । लेकिन वतमान म आज औरत की सत्ता को व्यवहारिक रूप म कम करने हेतु समाज पुन असफल प्रयत्न कर रहा है ।

प्राचीन भारत की कला और यौन शिक्षा – नत्य म नारी का लकर कला प्रदशन किया जाता रहा है । एलोरा व एलीफेंटा की गुफाओ हि दू म दिर जग पुरी कोनाक खजुराहु आदि में मैथुन व घोर, यौन-सम्ब धो के चित्रण किया गया है । मध्यकाल में इस कला माना है और स्वत त्र रूप स विचार-विमर्श होते थे । आधुनिक काल म यह सब लुप्त हो रहा है । जिस समाज म स्त्री को यौन-तृप्ति साधन के दृष्टि से देखा जाता है वह समाज पतन की ओर चला जाता है । यदि मनुष्य आज के भौतिकवाद मे अथ का प्रतीक है तो नारी आध्यात्मिक क्षेत्र का प्रतीक है । इन दोनो के पवित्र सम वय में ही मानव मदिर का वैभव छीपा हुआ है । अत भारत में तो यौन-शिक्षा धार्मिक सामाजिक व सास्कृतिक पहलू पर ही आधारित है ।

यौन शिक्षा का महत्व एव आवश्यकता —
(Importance and Need of Sex Education)

काम प्रवृत्ति एक ज मजात प्रवति है जो प्रत्येक प्राणी मात्र में पाई जाती है । सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड के अनुसार यह प्रवति शशव-काल से ही व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करने लगती है । आगे एक जगह तो लिखा है-ससार की समस्त क्रियाओ का आधार यौन ही है ।' भारतीय सस्कृति में शिव व शक्ति को ससार का प्रतीक माना है । आज असमाजिक तत्व व समाज विरोधी वाय-हत्या, तलाक आदि यौन-भ्रम यानि यौन-शिक्षा से अनभिज्ञता ही है अत इस

सभोग के फलस्वरूप स्त्री का गर्भवती होने का जबरदस्त भय व्याप्त है। यौन शिक्षा अप्राकृतिक उपायो से जन्म निरोध का शिक्षण देता है। जिससे नवयुग विवाहपूर्ण सभोग करने म रूचिकर हो सके। यद्यपि भारतीय मूल्यो के यह प्रतिकूल है। भारतीय लडकियो की विवाहित होने की औसत उम्र 14½ वर्ष है लेकिन ग्रामीण बालिकाओ का तो बहुत छोटी उम्र म भी शादि हो जाती है यहा तक की 10 वर्ष या उससे पूर्व के उदाहरण भी बहुतायत से मिलते है लेकिन उन्ह यौन के बारे म कोई ज्ञान नही होता जो अधिक हानिप्रद सिद्ध होती है पारिवारिक जीवन तथा व्यक्तिगत स्वास्थ्य के दृष्टिकोण स भी।

भारतीय ग्रामीण गाय, भस बकरी आदि जानवरो के माध्यम स ही यौन क्रियाओ के बारे म ऊपरी ज्ञान प्राप्त करत है। व यौन के बारे म क्या सोचते है वही ज्ञान उन्ह रहता है क्योकि यौन के बारे म विधिवत् परिवार के लोगो द्वारा ज्ञान प्रदान करने की परम्परा नही है। बाहर के लोगो स यह ज्ञान प्राप्त करते है अध्यापक इन्द्रियो के द्वारा उपलब्ध ज्ञान को हृदयगम करवान का कार्य कर सकते है।

यद्यपि बहुत स भारतीय ग्रामीण अभिभावको को चाहिए कि व यौन शिक्षा उनके बालक व बालिकाओ को प्रदान की जाय। सामाजिक पर्यावरण व पाश्चात्य सभ्यता के निरतर पडत हुए प्रभाव के फलस्वरूप वाछित है कि छात्र व छात्राओ को इस बारे म ज्ञान प्रदान किया जाय ताकि विभिन्न प्रकार की असमाजिक कुरथा स समाज को बचाया जा सकता है और शुद्ध अभिरूचियो का विकास होने की अधिक सम्भावनाएँ बन सके। क्योकि इसका उद्देश्य व्यक्ति को कौटुबिक परिस्थिति म अपना उत्तरदायित्व सम्पन्न हेतु सहायता देना है।

अमेरिका की यौन सूचना एव शिक्षा परिषद् ने यौन-शिक्षा कार्यक्रम को शिक्षा का अभिन्न भाग बनाय जाने के प्रसग म निम्न-उद्देश्य बतलाये है[1] -

(1) स्वय क शारीरिक मानसिक एव भावात्मक परिपक्वता की कार्य करने की रीति व्यक्तिगत रूप स ज्ञान प्रदान करना जो यौन से सहसम्बधित है।

(2) व्यक्तिगत यौन विकास स चिता व आकुलता की स्थिति को दिमाग से निष्कासित करते हुए सही समायोजन करने हेतु उत्प्रेरित करना।

(3) छात्रो म यौन शिक्षा के उद्देश्यो व अपक्षित अवबोधन के उपरात अभिवृत्तियो का विकास करना व्यक्तिगत व सामुहिक रूप से यौन क बारे में बहुत से अस्पष्टता को स्पष्ट करना।

1 Lester A Kirkendall, Sex Education Siecub Discussion Guide No 1 Sex information & Education council of the U S, 1985 Bradway N Y

(4) व्यक्तिश म तद्दृष्टि यौन के बारे मे पैदा करना ।

(5) यौन के बारे म सूक्ष्म भेदों को समझने की शक्ति पदा करना क्योकि व्यक्तिगत रूप से व परिवार से किसी न किसी रूप म सम्बंधित है ।

(6) छात्रो के नतिक मूल्यो के विकास की आवश्यकता के बारे मे अवबोध करवाना ।

(7) छात्रा को व्यक्तिगत रूप से इस विषय का पर्याप्त ज्ञान करवाना ताकि यौन के बारे मे गलत धारणा न बना सके और शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को खराब करने से बचाया जा सके ।

(8) वश्यागमन, अवैध शिशुओ का जन्म, प्राचीन यौन कानून, जर्वेजना, प्रमानुषिक सभोग, जैसी असमाजिक बुराईयो को जडो से समाप्त करने हेतु क्रिया शील बनाने हेतु उत्प्रेरित करना ।

(9) व्यक्तिश यौन के जाति भेद को समझते हुए प्रभावशाली उपयोग करना तथा साथ ही पति अथवा पत्नि, अभिभाव समाज के सदस्य व नागरिक के रूप म विभिन्न सृजनात्मक उत्तरदायित्वो का निर्वाह करना ।

उच्च प्राथमिक शाला मे यौन शिक्षा के उद्देश्य :— स्ट्रेन एफ बी (Strain F B) के अनुसार "पूर्व किशोरावस्था मे बालक मनबहलाव व प्रयोग हेतु यौन क्रियाएँ करता है-एक किशोर या प्रौढ की भाति उसका उद्देश्य नही होता है ।" अत उच्च प्राथमिक शालाओ म पढने वाले विद्यार्थियो को यौन शिक्षा दी जानी चाहिए, जिसके निम्न उद्देश्य है —

(1) यौन के बारे म परिपक्व दृष्टिकोण का विकास करना ।

(2) बालक का पैदा होना तथा उसके विकास के बारे मे वैज्ञानिक ढग से ज्ञान देकर उनका डर और चिन्ताओ को दूर करना जैसे स्वप्न-दोष, मासिक-धर्म आदि के बारे मे गलत धारणाओ को स्पष्ट करना, इन्हे सेफ्टी वाल' की सज्ञा देकर भ्रम को दूर करना ।

(3) विद्यार्थियो को स्वतन्त्र रूप से 'यौन' पर वार्तालाप करने हेतु प्रोत्साहित करना ।

(4) विद्यार्थियो को जीवन के उच्च नियमो और परिवार के उच्च आदर्शों का आदर करने हेतु प्रोत्साहित करना ।

(5) अपने बदलते हुए बचपन से पारिवारिक जीवन को अच्छे ढग से व्यतीत करने के बारे म ज्ञान देना ।

(6) सफल शादी के विभिन्न तत्वो के बारे म ज्ञान देना ।

(7) यौन से सम्बंधित बिमारियो के बारे म ज्ञान, उनसे बचने के उपाय बतलाना ।

(8) यौन-स्वास्थ्य की जानकारी प्रदान करना ।

(9) सह शिक्षा के प्रचार को ध्यान म रखते हुए छात्र-छात्राओ का सही अभिवृत्तिया व दृष्टिकोण का विकास करना ।

माध्यमिक, उच्च माध्यमिक स्तर पर यौन शिक्षा के उद्देश्य –

(1) समाज म परिवार के उत्तरदायित्व को समझाना ।

(2) आधुनिक रहन-सहन का परिवार पर पड़ने वाले प्रभाव को समझाना।

(3) परिवार म प्रत्येक व्यक्ति का स्थान व अ य सदस्यो की रुचि, योग्यताएँ, आदि का अहसास करना ।

(4) दूसरे लिंग के लोगो से बातचीत करना, मिलना-जुलना आदि के तौर तरीकों को समझाना व स्वस्थ्य दृष्टिकोण का विकास करना ।

(5) एक साथी के क्या अच्छे गुण होने चाहिए । "भावात्मक-परिपक्वता" का महत्व समझाना, तथा समाज की व्यवस्था व मूल्यो के बारे मे समझाना।

(6) बच्चे के ज म से जो डर व्याप्त है उसे दूर करना, गर्भ सम्ब धी जानकारी प्रदान करना ।

(7) गर्भाधान के बारे म अ ध विश्वास को दूर करना व गर्भाधान की प्रक्रिया को समझाना ।

(8) शादी की जिम्मेदारिया, पवित्रता और पारिवारिक सुविधाओं व उनके मान द को समझाना ।

(9) टूट हुए परिवारो के कारण और प्रभाव को समझाना और इस सम्ब ध मे निर्देशन प्राप्त करने के स्रोतो की जानकारी प्रदान करना ।

(10) अभिभावको मे उत्तरदायित्व को समझाना और बच्चो के द्वारा यौन सम्ब धी प्रश्न के स्पष्ट जवाब देने की क्षमता पैदा करना व यौन के बारे म सही दृष्टिकोण अपनाने हेतु तैयार करना ।

यौन शिक्षा कौन प्रदान करें ? (Who should Teach Sex Education)

अभिभावक Parents) —

छात्र व अभिभावको के प्रारम्भ से घनिष्ठ सम्ब ध रहते है । उन्हे यौन शिक्षा को अनौपचारिक रूप म प्रदान करने के बहुत से अवसर मिलते है । जितने अन्य किसी को भी नही । व उनसे जीवन, प्यार देख-रेख रखरखाव तथा उपहार प्राप्त करते है, तब स्वभाविक है कि उन पर सबसे ज्यादा विश्वास करते है । अत अभिभावको का प्रमुख उत्तरदायित्व है कि वे यौन शिक्षा प्रदान करें लेकिन दुर्भाग्य है कि बहुत ही कम ऐसे अभिभावक होगे जो इस कर्तव्य का निर्वाह करते होगे। लेकिन जब बालक अभिभावको से दूर अन्यत्र अध्ययन हेतु जाते हैं तो वे यौन सम्ब धी वार्तालाप व सूचनाएँ मित्रो से होने वाली वार्तालाप से, सिनेमा से तथा पत्र-पत्रिकाओ से प्राप्त करते है । अपने स्वय के अभिभावकों से इस

सम्बध म कोई ज्ञान प्राप्त नही करते । यह दुख की बात है कि अभिभावक छात्र–छात्राओ की किशोर–अवस्था और उसम होने वाली मानसिक परिवतन के बारे में गहराई व गम्भीरता से नही सोचते। ऐसी स्थिति म असमायोजित हो जाते है या ,यौन सम्बधी असमाजिक व्यवहार करने लगत है । अभिभावको द्वारा इस प्रसग मे अपने कतव्य निर्वाह करने म सचेत न होने से किशोरो में व्यग्रता असम जस तथा गलत धारणा बन जाती है और उनमे शरीर के किसी भी अग में कमजोरी उत्पन्न हो सकती है, भावात्मक रूप से उतपीडन महसूस करने लगते हैं और वे मृत्यु को आमन्त्रित करने लगते है ।

अशिक्षा रूढिवादिता तथा शिक्षा प्रदान करने की सही विधि मालूम न होने की स्थिति म भारतीय अभिभावक मानते है कि वे यौन शिक्षा सम्बधी उत्तर-दायित्व निभाने में असफल रहे है। वास्तव म वे अपने कतव्य का निर्वाह करना चाहते है तो अपने परिवार के डाक्टर व परामशदाता से इस सम्ब ध मे ज्ञान प्राप्त कर सकते है जो उपादेय सिद्ध होगा लेकिन अधिकतम अभिभावक बिल्कुल इस ज्ञान को अपने बच्चो को देने के लिए इच्छुक ही नही है । जब कभी भी आकस्मिक अवसर पर कोई बात आ भी जाती है तो वे उसे अनदेखी कर देते हैं ।

विद्यालय का दायित्व

जी पी शैरी का मत है– बालको को यौन–शिक्षा का व्यवस्थित एव वैज्ञानिक ज्ञान देने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व विद्यालय का होना चाहिए। भारत जैसे देश मे जहा अधिकाश छात्रो के माता पिता व अभिभावक अशिक्षित एव यौन–शिक्षा से अनभिज्ञ है, इस उत्तरदायित्व की गम्भीरता का भार विद्यालय पर और भी अधिक बढ जाता है । पाठयक्रम के अन्य विषयो के समान यौन सम्बधी शिक्षा विद्यालय म दी जाय । परन्तु इस विषय का अध्ययन बडे ही कुशल, बुद्धिमान एव अनुभवी शिक्षक के द्वारा दिया जाना चाहिए। शिक्षक ऐसा हो, जिसे बालको का विश्वास एव सम्मान प्राप्त हो तथा बालक निसकोचभाव से अपनी यौन सम्बन्धी समस्याओ तथा भावनाओ को व्यक्त कर सके । शिक्षक म यौन–सम्बधी समस्याओ को समझने और उनका निराकरण करने की सहज क्षमता हो ।"[1]

यौन शिक्षा के सिद्धांत (Principles of Sex Education)

यौन शिक्षा के सिद्धात निम्नाकित है —

(1) यौन शिक्षा एक अलग से पढ़ाये जाने वाले विषय के रूप म प्रारम्भ न किया जाकर अन्य अध्यापन विषयो से सहसम्ब ध स्थापित करके ही ज्ञान प्रदान

1 शरी, जी पी 'स्वास्थ्य शिक्षा" पृ0 308

दिया जाय तथा शाला के सामान्य पाठ्यक्रम से हटकर विशिष्ट व्यवस्था इसके लिए नहीं हो ।

(2) शाला के स्त्री व पुरुष दोनों प्रकार के अध्यापक इस विषय को पढ़ाने हेतु प्रशिक्षित किये जाय । इस विषय को पढ़ाने के लिए शाला अध्यापकों के अलावा बाहर के व्यक्ति को जहाँ तक सम्भव हो नहीं बुलाया जाय ।

(3) अध्यापक यौन शिक्षा को नैतिकता से जोड़ने का प्रयास करे । सूचनाओं को स्पष्ट रूप से दे न कि भावुकता म ।

(4) यौन शिक्षा किशोर-अवस्था मे ही नहीं बल्कि बाल्यकाल से ही किसी न किसी रूप मे प्रारम्भ कर दी जाय ।

(5) यौन शिक्षा व्यक्तिगत विभिन्नताओं व आवश्यकताओं को दृष्टि म रख कर दी जाय ।

(6) बालक की वतमान व भविष्य की आवश्यकताओं व विकास को दृष्टि में रखकर यौन शिक्षा दी जाय ।

(7) यौन शिक्षा म यौन विशिष्टता को विशिष्ट रूप से नहीं बताकर केवल सदैव विशिष्ट बिन्दुओं को ही प्रकाश मे लाया जाय ।

(8) शाला म यौन शिक्षा कार्यक्रम को क्रियान्विति रूप देने मे अभिभावकों का सहयोग प्राप्त करने का सफल प्रयास वांछित है ।

यौन शिक्षा कैसे प्रदान की जाय ?

(How Should Sex Education be imparted ?)

यौन शिक्षा छात्रों को शाला शिक्षण विषय के रूप मे प्रदान की जाय अथवा अन्य विषयों के अधिगम के अवसर पर प्रसंगवश विषय अध्यापक के द्वारा ही परिकल्पना को स्पष्ट किया जाय । बहुत से अभिभावक इस ज्ञान को प्रदान करवाने के पक्षधारी है तो इसके विपरीत बहुत से अभिभावक इसे पढ़ाने के विरोधी है । पश्चिमी देशो में किसी न किसी रूप में यह ज्ञान प्रदान किया जाता है । जापान में इसे शाला का विषय के रूप में पढ़ाने हेतु पाठ्यक्रम में व्यवस्था की है । श्री फ्रेड वी हैव ने यौन-शिक्षा के सन्दर्भ में कतिपय सर्वेक्षणों का सार देकर इस बात की पुष्टि की है इसी प्रकार बहुत से समाज शास्त्री व शिक्षा विद् इस शिक्षा को प्रदान किए जाने के पक्ष म है । प्रो हैवी के सर्वेक्षण के अनुसार हर चार में तीन विद्यार्थी यौन शिक्षा दिये जाने के पक्ष में है ।

भारत में भी समय समय पर सर्वेक्षण चर्चाएँ, परिचचाएँ, गोष्ठीयों का आयोजन सम्पन्न होते रहते है उनमें भी दबी आवाज में इसको शाला द्वारा प्रदान की जाने की वकालात की जाती है । 1978 म श्री रामकुमार वर्मा ने कॉलेज में पढ़ने वाले छात्र छात्राओं से साक्षात्कार लेकर 'नवभारत टाईम्स" में प्रकाशित किया गया ।

उनम भी विरोधाभास विचार प्राप्त हुए है । लेकिन प्रत्येक चार म तीन छात्र यौन शिक्षा शिक्षण सस्थाम्रो द्वारा प्रदान करने के पक्ष म है । डा० लेंग के विचार इस सम्ब ध मे स्पष्ट है–'यौन शिक्षा के क्रम मे स्वतन्त्र चर्चा क कारण पदा होने वाल समस्त खतरो को बर्दास्त करना चाहूगा, बनस्पित उस महान् खतरे को जो इस सम्ब ध म चुप रहने का षडय त्र करके उठा रहे है ।'' ग्राज देश के छात्र व छात्राएँ अपने सामाजिक मूल्यो, देश की सस्कृति, परम्पराम्रो व बदलत हुए राष्ट्रीय दायित्वों स विमुख होत दृष्टिगोचर हो रहे है । अत भारतीय छात्रो को यौन शिक्षा प्रदान कर हम काम विकृतिया (Perversion) को व्यवहार निमाण उदात्तीकरण (Sublimation) करने म सफल सिद्ध हो सकते है । भारतीय छात्रो को यौन शिक्षा देन क पक्ष म निम्नकारण है —

(1) युवक व युवतियां को विचारो की स्वत त्रता, सह शिक्षा की व्यवस्था ववाहिक निर्णयो के अधिकार विलम्ब से विवाह करने की परम्परा ।

(2) यौन सम्ब धी फिल्मो या फिल्मो मे यौन के बारे मे बजारू विज्ञा पन आदि । पर-लिंगीय वस्त्रधारण आसक्ति (Transvestism) ।

(3) छात्र-छात्राम्रो को साहित्य पठन की स्वत त्रता ।

(4) देश विदेशाम प्रकाशित निम्नस्तर के साहित्य पढ़ने के लिए उपलब्ध होना ।

(5) बाजार म यौन–प्रदशन के पोस्टरो का प्रदशन ।

(6) हालींग वथ (Holling worth's), मागरेट मे ड (Margaret Mend) द्वारा प्रतिपादित सिद्धात–'किशोरावस्था यकायक व तीव्र गति से नही, यह तो एक निर तर शारीरिक परिवतन की प्रक्रिया है ।''

(7) छात्रो को समस्या के बार म बाल केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था म वनानिक दृष्टिकोण के विकास म सहयाग हेतु ।

(8) थोडे व हल्के ज्ञान से काम–प्रवृति के विकृत स्वरूप होन की सम्भा वनाएँ बढ़ेंगी । जिससे असमाजिक कृत्यो मे छात्र सलग्न हो जाने से राष्ट्र की छवि विकृत होगी ।

(9) यौन सम्ब धी अज्ञानता के फलस्वरूप उनके मानसिक विकास मे बाधा उत्प न होने की सम्भावनाएँ बढ जाती है ।

(10) यौन शिक्षा के अभाव म विद्यार्थियो म अनेक दुर्भावनाएँ जो स्थाई रूप से ग्रथि (Complex) बनकर आदत बन जाती है जो कालान्तर म मस्तिष्क म भ्रमजाल की बढ़ोतरी मिलती है ।

(11) देश म 'नीमहकीम' के चक्कर म फसकर जीवन का स्थाई नुक- सान (जिस पूरा नही किया जा सकता) हो जाता है ।

(12) बालको का वीय पात और बालिकाम्रो का मासिक–धम उनके मस्तिष्क म चिंता व घबराहट पदा कर देती है ।

(13) बालक व बालिकाएँ देश के शुष्क जलवायु के कारण जल्द ही किशोर अवस्था मे प्रविष्ट करते है व्यवस्थित ज्ञान न होने से यौन सम्बन्धी बुरी आदतें जीवन-पर्यन्त दुःख का कारण बन जाता है ।

(14) देश वातावरण, वैभव, भौतिकवाद की ओर झुकाव, विवाह को महत्वपूर्ण संस्था का विश्वास खण्डित होते जा रहे है, नैतिकता का पतन हो रहा है अर्थात् पाश्चात्य प्रभाव बढ रहा है अत यौन शिक्षा प्रदान करना वांछित है ।

(15) भारत मे भी लैंगिक विकृतियो का क्षेत्र बहुत व्यापक होता जा रहा है । लैंगिकता का जब समुचित विकास नही हो पाता है तो बालक का लैंगिक समायोजन अस्त-व्यस्त हो जाता है और किशोरावस्था एव युवावस्था मे अनेक विकृतियां भी प्रदर्शित होती है । लैंगिक विघटन से व्यवहारिक एव मानसिक विघटन भी होता है ।

(16) छात्र छात्राओं का छात्रावास अनाथालयों में रहने में समलैंगिकता पनपती है ।

(17) नैतिक मूल्यो में कमी आ रही है—पडोसी गन्दे आचरण के फलस्वरूप या लडके व लडकियां घर से दूर रहकर शहरीय वातावरण के मध्य ही अध्ययन करते है जिससे वेश्यावृत्ति में पड़ने का भय रहता है । गुरुकुल व्यवस्था ढीली पडती जा रही है ।

(18) भारतीय परम्परानुसार किशोर अवस्था में भाई बहन पिता पुत्र माता-पुत्र का सहवास वर्जित था लेकिन आज इस तरह का सहवास फैशन सा हो गया है । जब भाई-बहन किशोरावस्था में एक बिस्तर पर लेटते है तो लैंगिक कामना पनपती है और निषिद्ध सम्भोग (Incest) की सम्भावनाएँ बढ़ जाती है ।

(19) आज लडके व लडकियां ऐसे वस्त्र पहनती है जिससे विषम लिंगक की उत्तेजना बढती है । विषम लिंगी के बाल, हाथ, नीचे पहनने वाले कपडे, जूते, सुगंधित तेल, मेकप आदि लैंगिक उत्तेजना का कारण बन जाते है ।

आज देश में लैंगिक व्यवहार के महत्व को स्वीकार करते है परन्तु इसके सम्बन्ध मे उचित शिक्षा व्यवस्था का देश मे कोई प्रबन्ध नही है । छात्र अभिभावक व शिक्षक ये तीनो भुजाएँ एक दूसरे से अलग-अलग सोचते हैं और यौन शिक्षा के प्रति सचेत नही है । अभिभावक अशिक्षित है, अध्यापक इसके लिए उत्तरदायित्व ही नही समझता ऐसी स्थिति में छात्रो में गलत सूचनाओं के आधार पर अपराध की भावनाएँ जाग्रत होती है । अत आज समय की मांग है कि छात्र व छात्राओं को यौन सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएँ व ज्ञान प्रदान किया जाय ताकि उनमे काम विकृतियां (Perversion) न होकर उन्हें कला, विज्ञान सामाजिक दृष्टि से रचनात्मक कार्य आदि कार्यों मे संलग्न कर व्यवहार-निर्माण उदात्तीकरण

(Sublimation) किया जा सकता है और चारित्रिक दोषों (Character defects) से बचाकर राष्ट्र के लिए उपादेय नागरिक के रूप में तैयार करने का सफल प्रयास किया जा सकता है। अतः छात्र व छात्राओं को सही ढंग से सही समय पर सही एजेंसी (स्कूल) द्वारा यौन शिक्षा के बारे में वैज्ञानिक ढंग से यौन शिक्षा अन्य विषयों से सम्मिलित रूप में बिना हिचकिचाहट, रहस्य अथवा छिपाव के प्रदान करने की परिस्थितियाँ पैदा करने का सफल प्रयास वांछित है।

यौन शिक्षा कार्यक्रम में बाधाएँ व उनके समाधान

(Difficulties in the way of Sex Education & their remedies)

निम्नांकित हैं —

(1) अभिभावक, शिक्षक, छात्र, धार्मिक संस्थाएँ तथा साधारण जनता यौन कार्यक्रम के विरोधी हैं।

कार्यक्रम की आवश्यकता महत्व उद्देश्य, विषय वस्तु तथा सहायक सामग्री आदि के बारे में समाज को स्पष्ट किया जाय। अभिभावकों से व्यक्तिगत रूप से इसके बारे में बातचीत कर विश्वास पैदा किया जाय। धार्मिक संस्थाओं व विभिन्न धर्म, हिन्दू मुस्लिम, इसाई धर्म में इसके बारे में आवश्यकता हेतु प्रदत्त विवहरण के उद्धरण को लेकर विषय वस्तु तैयार कर धार्मिक संस्थाओं व जनसाधारण तक प्रचार प्रसार किया जाय। क्योंकि युनान ग्रीक, इसाई धर्म हिन्दू धर्म में विभिन्न रूप में प्रदर्शित भी किया गया है।

(2) शिक्षकों में इस विषय के प्रति रुचि का न होना।

अध्यापकों को शिक्षण हेतु प्रशिक्षित किया जाय। यौन शिक्षा प्रदान करना नैतिक दायित्व है। ऐसे अभिभावक जो अपने पुत्र व पुत्रियों को यौन शिक्षा सामाजिक समायोजन हेतु पढ़ाना आवश्यक समझते हैं वे सक्षम अध्यापक को महत्वपूर्ण कारक समझते हैं अतः अध्यापक सन्तुलित व्यक्तित्व वाला होना चाहिए। असक्षम व अयोग्य अध्यापकों द्वारा ऐसे विषय को पढ़ाने से लाभ की बजाय स्थाई हानि हो सकती है।

(3) अभिभावक अशिक्षित व रूढ़िवादी हैं।

अपने बालक के सम्मुख यौन के बारे में वार्तालाप असामाजिक कृत्य समझते हैं। वे इसे व्यक्तिगत मामला समझ कर इस पर परिवार में चर्चा तक करना नहीं चाहते जबकि अधिक समय बालक अभिभावकों के पास ही रहते हैं। अभिभावकों को अध्यापक-अभिभावक मंच की बैठक में सही दृष्टिकोण का विकास कर, इसके लिए समाज शास्त्री, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक उपदेशकों के द्वारा विभिन्न विषयों का यौन से सम्बन्ध व आवश्यकता के बारे में प्रकाश डालते हुए उन्हें राजी किया जाय।

(4) 'यौन शिक्षा' शीर्षक से घबराहट है ।

यौन प्रवृत्ति के प्रति प्राय लोगो म अभिवृत्ति के प्रति अस्वस्थ होने से इस शीर्षक की आलोचना करते है । यौन शिक्षा का उद्देश्य कौटुम्बिक जीवन के लिए तयारी है, अत इसे कौटुम्बिक जीवन की शिक्षा या अ य नाम दिया जा सकता है ।

(5) सामाजिक सस्थाएँ, अभिभावक अपने उत्तरदायित्व के प्रति सचेत नहीं है ।

यह परिवार म समायोजन सुख को पदा करन हेतु है अत अभिभावको को सही दृष्टिकोण का विकास किया जाय । स्त्री व पुरुष का सच्चा प्यार जीवन को कस प्रफुल्लित करते हुए क्षमताओ मे बढोतरी करते, यह बाते अभिभावक समझें । भारतीय नतिक व सामाजिक स्वास्थ्य परिषद् का विचार है कि यौन-नतिकता ही यौन शिक्षा का उद्देश्य है अत विस्तत व सही सूचनाओ से यौन-शिक्षा के प्रति सही अभिवृत्तियो का विकास हो सके ।'[1] सामाजिक सस्थाओ को इस ओर काय करने हेतु अभियान प्रारम्भ करने हेतु उत्प्रेरित किया जाना चाहिए।

यौन शिक्षा प्रदान करने मे अध्यापक का उत्तरदायित्व
(Role of teachers)

शाला मे यौन-शिक्षा प्रदान करने की सफलता बहुत कुछ अध्यापक पर ही निभर करती है । अध्यापक बुद्धि सम्प न, विवेकी, लौकिक ज्ञान सम्प न, नतिक रूप से प्रतिष्ठित हो जो किशोर बालक व बालिकाओ के समक्ष ज्ञान प्रदान करने म प्रभावशाली सिद्ध हो सके और उ ह यौन को बहुमूल्य तथा गौरवशील बताते हुए हृदयगम करवाने का सफल प्रयास करें । एव अभिभावक जो अपने बालक व बालिकाओ को सामाजिक जीवन म यौन समायोजन का ज्ञान प्रदान करवाना चाहते है यह बहुत कुछ उस अध्यापक की क्षमता व दक्षता पर ही निभर करेगा जो उन बालक व बालिकाओ को यौन-शिक्षा प्रदान कर रहे है । अविवेकी अध्यापक किशोरो के लिए असशोधनीय नुकसानदायक सिद्ध हो सकते है । इसी कारण समाज के बहुत से लोग यौन-शिक्षा शालाओ में पढाने क विरोधी है क्योंकि दक्ष अध्यापको की अत्यधिक कमी है । लेकिन अभिभावक भी अपने बालक व बालिकाओं के समक्ष विचार विमर्श करने मे कतराते है ।

छात्र-अध्यापक व यौन शिक्षा (Training teachers)

देश म बहुत स विवेकशील व मनोविज्ञान के जानने वाले अध्यापक शालाओ म उपलब्ध है खासतौर स 'शाला परामशदाता' । उ ह यौन-शिक्षा प्रदान करने हेतु विशिष्ट प्रशिक्षण प्रदान कर इस महान् काय हेतु उत्प्रेरित करने की अत्य त

1 Memorandum on Sex Education P/7

ग्रावश्यकता है । उन्हें यौन रचना विज्ञान व शरीर विज्ञान का सामान्य ज्ञान हो । वे व्यक्तिगत भावात्मक एव सामाजिक दृष्टिकोण के बारे में जानने वाले हों । किशोर-अवस्था के समाजशास्त्रीय व मनोविज्ञान का ज्ञान होना वाछित है ।

शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में यौन-शिक्षा व किशोर के विकास के बारे मे समावेश किया जा रहा है उक्त विषय में विवाह एक पवित्र सस्था के रूप में तथा पारिवारिक सम्बन्ध परिवार की जीवन प्रक्रिया आदि जो यौन से सम्बन्धित हो का ज्ञान प्रदान किया जाय । शिक्षक प्रशिक्षण सस्थाएँ महान् उपयोगी तब ही हो सकेगी जब इस विषय के विकास व विस्तार हेतु एक विशिष्ट अध्ययन विषय के रूप में प्रारम्भ किया जाय ताकि वे भावी अध्यापक व्यवहारिक रूप से अध्यापन-व्यवसाय में सलग्न होकर अभिभावको के दृष्टिकोण में परिवर्तन हेतु अभियान प्रारम्भ कर सकते हैं तो दूसरी तरफ बालक व बालिकाओं को सही उम्र में सही ढग से व्यवस्थित अधिगम करवाने में भी सफल हो सकेंगे ।

यौन शिक्षा-पाठ्यक्रम

यौन शिक्षा का सुझाव के रूप में पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया जा रहा है जो समय काल परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है ।

उच्च प्राथमिक शालाएँ — शारीरिक परिवर्तन जो किशोर अवस्था के प्रारम्भ में आते हैं सामान्यत विशेष रूप से जैसे (अ) वजन, ऊँचाई में परिवर्तन (ब) देह के अनुपात में परिवर्तन जैसे कमर माथे, टाग (स) परिवर्तन लडकियों की छाती जागे कुल्हे यौन स्वच्छता (Sex Hygiene) ।

लडको के लिए — (अ) बालों का चेहरे बगल लिंग पर पैदा होना (ब) आवाज में परिवर्तन, (स) श्वत ग्रन्थियों की क्रियाशीलन (द) यौन की ग्रन्थियां हारमोन का उत्पन्न होना जिससे कि लिंग का विकास होना, जनन व उत्पादन करना ।

लडकियों के लिए — (1) बालों का बगल व योनी के स्थान पर उगना, (2) बदन के अन्दर परिवर्तन जैसे छाती का विकास होना कुल्हो का विकास होना (4) श्वेत ग्रन्थियों का क्रियाशील होना (4) पीयू ग्रन्थियां ओवरिज (5) मासिक-धर्म के दिन-मासिक-धर्म के बारे में ध्यान देने योग्य बातें-(अ) मासिक धर्म के पाच दिन तक आराम करना, (ब) मासिक धर्म के चौहदे दिन, (स) अगलेमासिक धर्म के पाच दिन, (द) यदि अण्डा निषचन नहीं हुआ है तो मासिक धर्म प्रारम्भ हो जाता है । (य) मासिक धर्म के समय रख-रखाव कलेण्डर रखना बैल्ट व पैड का प्रयोग करना । (6) पुनरावृत्ति (अ) प्रजनन-प्रक्रिया (ब) गर्भ के बारे में ज्ञान, (स) वश परम्परागत प्रभाव (7) असमलिंग से व्यवहार, (8) अपने परिवार से व्यवहार—

(अ) माता-पिता के दृष्टिकोण को समझना, (ब) किशोर की अपने परिवार के प्रति जिम्मेदारी (स) परिवार म जनत त्र ।

माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालयो मे — माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शालाओ के छात्र व छात्राओ के लिए अलग-अलग पाठ्यक्रम न होकर निम्नांकित एक समान ही वांछित है —

(1) किशोरावस्था के सामा य विशेषताएँ—

(अ) शारीरिक परिवतन (ब) भावात्मक विकास—यौन सम्ब धी, काम वासनाओ पर निय त्रण (स) मानसिक विकास।

(2) वश परम्परा का महत्व-(अ) सिद्धात, (ब) अ ध विश्वास ।

(3) पुनरुत्पत्ति (अ) प्रजनन प्रक्रिया (ब) जिम, (स) शादी के बाद गभ के बारे म ज्ञान, (द) बच्चा पैदा होने से पूव देख-रेख, (य) बच्चे का पैदा होना, (र) परिवार कल्याण ।

(4) परिवार का महत्व-(अ) परिवार म मनमुटाव, (ब) परिवार के सम्ब धो को सौहाद बनाना ।

(5) यौन को सही ढग से समझाना-(अ) यौन की सामा य रुचि (ब) यौन की इच्छा लडके व लडकियो मे, (स) स्वय पर आत्मनियत्रण करना (द) समलिंग व हस्तमैथुन की समस्याएँ ।

(6) आधुनिक विश्व में यौन-(अ) दुपयोग, (ब) यौन-नियत्रण से लाभ (द) उच्च स्तर का बर्ताव ।

(7) यौन के प्रसग में छात्र-छात्राओ द्वारा पूछे गये प्रश्नो का समाधान सही व स्पष्ट देना ।

यौन-शिक्षा की अध्यापन विधियाँ
(Methods of teaching-Sex Education)

यौन शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम के चयन में सावधानी का रखना आवश्यक है ठीक इसी प्रकार उपयुक्त विधियो के चयन म अति सावधानियाँ रखना आवश्यक है । पाठ्यक्रम में विभि न विषय-वस्तु के लिए भिन्न-भिन्न उपयुक्त विधियाँ वांछित है । इस सम्ब ध में कुछ अध्यापन विधिया सुझाव के रूप में प्रस्तुत की जा रही है —

(1) परिकल्पनात्मक विधि —इस विधि द्वारा विद्यार्थियो को ज्ञान दिया जाता है जिससे वे यौन के बारे में सही सकल्पना ग्रहण कर सकें ।

(2) भाषण विधि — केवल सूचना देने योग्य विषय वस्तु जैसे जनसख्या शिक्षा, समाज की आवश्यकताएँ, आर्थिक विषमताएँ, यौन सम्ब धी रोग उनके लक्षण व उपचार आदि ।

(3) पाठ्यपुस्तक विधि — परिवार म रहन सहन, यौन सम्बन्धी विमारियाँ–निदान उपचार के बारे में जानकारी।

(4) मौखिक प्रस्तुतीकरण — पत्र–वाचन से सामाजिक, धार्मिक, तथा साथियो से यौन सम्बन्धी वार्तालाप।

(5) वार्तालाप विधि — परिवार से सम्बन्धित अनुभव से सम्बन्धित वार्तालाप से विचारो का आदान–प्रदान।

(6) प्रश्नोतर विधि — किसी भी विवादास्पद बिन्दु पर विचार–विमर्श को उत्तेजित करने के लिए होता है। प्रश्न सक्षिप्त, निश्चित व विचार–उत्तेजक हो। वशानुक्रम के आधार व यौन के बारे में।

(7) समस्या समाधान विधि — यौन स्वास्थ्य के लिए भोजन निद्रा, व्यायाम आदि वस्तुनिष्ठ डेटा सग्रहित करके समस्या का समाधान ढुढते है।

(8) सामाजिक नाटक — इस विधि से परिवार की परिस्थितियो को नाटकीय ढग से प्रस्तुत किया जा सकता है। पति–पत्नि के सम्बध, 'टुटे हुए परिवार' की समस्याएँ, परिवार कल्याण आदि को प्रस्तुत किया जा सकता है।

(9) प्रायोगिक पद्धति — वैज्ञानिक ढग से विद्यार्थी–विश्लषण व निष्कर्ष निकालते है।

(10) प्रायोजना विधि — व्यक्तिगत या सामुहिक प्रोजेक्ट लेकर डटा सग्रह करते हुए नतीजे पर पहुँच सकते हैं। भिन्न–भिन्न प्रकार के यौन सम्बधी व्यवहार क अध्ययन करते हुए समस्या का समाधान सम्भव हो सकता है।

(11) व्यक्तिगत स्वास्थ्य समस्याएँ — परिवार की यौन सम्बन्धी समस्या का अध्यापक स विचार विमर्श करने का अवसर प्राप्त कर अधिक जानकारी मिलती है।

यौन शिक्षा के अधिगम हेतु सहायक सामग्री – (Material Aids)

(अ) सहायक सामग्री —

(1) चार्टस, रेखाचित्र चित्र, पोस्टस, य बनी बनाई मिल सकती है और बनाई भी जा सकती है।

(2) श्रव्य दृश्य सामग्री ,— सामान्य प्रकृति की यौन शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम सम्मलित करने से सभी विद्यार्थी लाभान्वित हो सकेंगे।

(3) टेप रिकार्डस — इस विषय की विशिष्ट योग्यता रखने वाले विद्वान् का यौन सम्बन्धी भाषण सुनाये जा सकते हैं।

(ब) सहायक सामग्री प्राप्ति के साधन — सहायक सामग्री निम्नलिखित स्थानो से प्राप्त की जा सकती है–(1) सावजनिक पुस्तकालय (2) चार्ट भर बचन वाली कम्पनीयो से (3) श्रव्य–दृश्य अधिकारी अवसर (4) योजना–

यूनिवर्सिटी ग्राकीम, (5) फिल्म कम्पनी, (6) निदेशक, सूचना-प्रसार नई दिल्ली, (7) नेशनल एडयूकेजल, नई दिल्ली, (8) स्वास्थ्य विभाग, (9) परिवार कल्याणविभाग, (10) एन सी ई ग्रार टी, नई दिल्ली ।

सहगामी प्रवृत्तियाँ – किशोरों के लिए स्कूलों में पर्याप्त मात्रा में क्रियाएँ हों जिनमें भाग लेकर उनकी ग्रतिशय शक्ति को उपयुक्त मार्ग मिल सके और उनकी यौन शिक्षा सम्बन्धी नैसर्गिक शक्ति (Sex Instinct) का उचित रूप से व्यवहार निर्माण उदात्तीकरण (Sublimation) हो सके । इस दृष्टि से स्कूल में स्काउटिंग गर्लगाईड एन सी सी साहित्यगोष्ठीयाँ नाटकीय अभिनय, खेलकूद आदि पाठ्यक्रम सहगामी प्रवृत्तियों का प्रजातान्त्रिक ढंग से संगठित व संचालित की जाय, जिसमें अध्यापक निर्देशन-कार्य करें । प्रवृत्तियों में भाग लेने वाले छात्रों की निद्रा भोजन व विश्राम का ध्यान रखा जाय । भोजन सात्विक ही हो ।

यौन शिक्षा व मूल्यांकन - (1) विचार विमर्श द्वारा प्रश्न पूछे जा सकते हैं जैसे (म) मासिक धर्म क्या है ? (ब) कितने समय में मासिक धर्म होता है ? (स) मासिक धर्म होते हुए नहाना क्या आवश्यक है ?(द) कौन-कौन सी ग्लैं डस कहा है ? (य) गर्भाधान क्या है ? (र) योनी कहा है क्या स्थिति है ? (ल) अण्डा किस प्रकार से जीव का रूप लेता है ?, (व) दूसरे के अधिकार व विचारों का आदर क्या करते है ? (स) माता पिता की कौन कौन सी अच्छाई की प्रशंसा करते है ?

(2) प्रोजेक्ट — विद्यार्थियों को स्थानीय परिपेक्ष में प्रोजेक्ट दिए जाते है जैसे विभिन्न स्तरों पर स्थानीय परिस्थितियों में सस्ती खुराक छोटे बच्चों के लिए संतुलित भोजन, गर्भाधान, औरत के लिए संतुलित भोजन ।

(3) वस्तुनिष्ठ व निबन्धात्मक प्रश्न विद्यार्थियों के ज्ञान का उपयोजन व अवबोधन आदि की जाँच की जा सकती है ।

यौन-स्वच्छता (Sex Hygiene)

बालकों के अभिभावकों की यह जिम्मेदारी है कि वे अपने बच्चों के स्वास्थ्य की पूर्ण रूप से रक्षा करें । जहां तक काम सम्बन्धी स्वास्थ्य (Sex Hygiene) का सम्बन्ध है उन्हें चाहिए—[a] बच्चों की प्रजनन इन्द्रियों को साफ रखें, [b] प्रजनन इन्द्रियों को ढकी रखें [c] दाइयों व नौकरों के जिम्मे न छोड़ें [d] लड़के व लड़कियों को एक बिस्तर पर न सुलायें, [e] प्रजनन रोग की शंका में डाक्टरी सहायता लें [f] लड़कियों के प्रथम रजस्वला के मौके पर उचित बातें बतला दें, [g] अभिभावक वैज्ञानिक ढंग को अपनाएँ और छात्र छात्राओं को वैज्ञानिक जानकारी प्रदान करें ।

प्रजनन इन्द्रियो सम्बन्धी सामान्य रोग—प्रजनन इन्द्रियो से सम्बन्धित छूत के रोग मे दो बहुत ही प्रमुख एव भयकर है—1 सुजाक (Gonorrhoea) तथा 2 प्रतिशक (Syphilis) ये छूत सम्भोग से होती है। इन रोगो से पीडित प्राणी समाज व व्यक्ति दोनो के लिए हानिकारक है। इन रोगो के निराकरण के उपाय व सावधानियो वाछित है।

स्त्रियो मे प्रजनन इन्द्रिया से सम्बन्धित रोगो मे उपरोक्त दो रोगो के अतिरिक्त प्रदर [Leucorrhoea] अनियम रजस्राव [Profuse Menstruation], रजस्वला का न होना, [Amenorrhoea] गर्भाशय की सूजन [Swelling of uterus], बाँझपन [Sterility], इन रोगो की कालान्तर मे जटीलता बढ सकती है अत डॉक्टर से परामर्श लेना उपादेय रहेगा।

उपसहार—यौन की इच्छा विभिन्न ढग से विभिन्न स्तरो पर प्रकट होती है। माता पिता व अध्यापक को समझना चाहिए कि वे इन विभिन्न आयु स्तरो से साधारणतया गुजरते है, उन्हे धमकी, आलोचना और इच्छाओ के विपरीत यौन सम्बन्धी विचारों को थोपने आदि से दूर रखे। अभिभावक व अध्यापक को मित्र सहयोगी का बर्ताव रखना चाहिए और विद्यार्थी जसे बडे होते जाय उन्हे सही ढग से जीवन मार्ग की ओर अग्रसर हेतु निर्देशन दे। विद्यार्थियो द्वारा समय समय पर पूछे गय प्रश्नो को दृष्टि मे रखकर पाठ्यक्रम मे सशोधन किया जाय। सभी अध्यापक अपने विषय को पढाते वक्त यौन–शिक्षा सम्बन्धी बातें स्पष्ट करें। 'ओल्ड बॉयज एसोसियशन" द्वारा छात्रो को विश्वास मे लेकर विषय वस्तु पर प्रकाश डालने का सफल प्रयास करें। प्रजनन इन्द्रियो से सम्बन्धित रोग व बचन के उपायो के बारे मे सूचना दे। छात्रो को काम शिक्षा अन्य विषयो को पढाते वक्त देने के पक्ष मे है लेकिन कुछ अभिभावक जापान' की तरह यौन को पाठ्यक्रम के विषय के रूप मे पढाने के पक्ष मे है। प्रसग मे पाठ्यक्रम [सुझाव के रूप मे], अध्यापन विधियाँ, सहायक सामग्री, सहगामी क्रियाए व मूल्याकन की रूप रेखा की क्रियान्विति से मानसिक, एव सवेगात्मक विकास की दृष्टि से उपादेय होगी तथा विद्यालय उत्तरदायित्व निभायगा।

मूल्याकन (Evaluation)

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer type Questions)

[1] सहशैक्षिक विद्यालयो मे यौन शिक्षा प्रदान करते समय काम मे लाई जाने वाली पांच सावधानियाँ लिखिये। [बी एड 1985]

[2] यौन शिक्षा का विद्यालय मे महत्व बतलाइयें। [बी एड 1984]

[3] सह शैक्षिक विद्यालयों में यौन शिक्षा प्रदान करते समय बरती जाने वाली चार सावधानियाँ गिनाइये। [बी एड पत्राचार 1984]

[4] क्या यौन-शिक्षा केवल किशोरावस्था के छात्रों को ही देनी चाहिये ? अपने उत्तर का कारण बताइये। [बी एड 1983]

[5] आप अपने विद्यार्थियों को प्रजनन-क्रिया पढ़ाने में किस विधि का प्रयोग करेंगे ? [बी एड पत्राचार 1981]

[6] क्या आपके विचार में किशोरावस्था के बालकों को ही यौन शिक्षा दी जानी चाहिए ? यदि नहीं तो विवेचन कीजिए। [बी एड 1979]

(ब) निबंधात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

[1] 'जनसंख्या शिक्षा' तथा 'यौन शिक्षा' में भेद स्पष्ट कीजिये। माध्यमिक विद्यालयीय स्तर पर इनकी शिक्षा प्रारम्भ करने के बारे में टिप्पणी कीजिये और बताइये कि ऐसा करने का सर्वोत्तम तरीका क्या है।

[बी एड पत्राचार 1985]

[2] भारत जैसे विकासशील देश के लिए यौन शिक्षा की क्या आवश्यकता है ? हमारे विद्यालयों में इसे किन विधियों से सफलतापूर्वक प्रेषित किया जा सकता है ? [बी एड 1982]

[3] आधुनिक युग में यौन शिक्षा के महत्व को समझाइये तथा बतलाइये कि हमारे विद्यालयों में यह किस प्रकार दी जाए ? [बी एड 1978]

अध्याय 24 निर्देशन सेवाएँ (Guidance Services)

[विषय प्रवेश—शिक्षा व निर्देशन—निर्देशन का अभिप्राय—निर्देशन के उद्देश्य निर्देशन सेवा क्या है ? निर्देशन सेवा का स्वरूप शैक्षिक निर्देशन—व्यावसायिक निर्देशन—व्यक्तिगत निर्देशन—निर्देशन कैसे दें ?—निर्देशन हेतु उपकरण—विभिन्न स्तरों पर निर्देशन सेवाएँ—वर्तमान में विद्यालयों में निर्देशन सेवा—स्वरूप तथा विधियाँ निर्देशन सेवा तथा प्रधानाध्यापक परामर्शदाता व अध्यापक के दायित्व—निर्देशन सेवाओं को प्रभावशाली बनाने हेतु सुझाव—उपसंहार—मूल्यांकन]

शिक्षा व निर्देशन

शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। निर्देशन सेवा भी इसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील रहती है। शिक्षा द्वारा आत्मसंतुष्टीपूर्ण एवं सामाजिक रूप से प्रभावपूर्ण जीवन व्यतीत करने के योग्य व्यक्ति को बनाया जाता है। शिक्षा व्यक्ति में निहित सामर्थ्यों की सीमा में उसका सर्वांगीण विकास करना है तो निर्देशन भी इसी लक्ष्य को लेकर चलता है। अतः निर्देशन सेवा शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु साधन व माध्यम है तथा ये एक दूसरे के पूरक हैं। वर्तमान परिस्थिति में निर्देशन शिक्षा में जोड़ी गई कोई प्रवृत्ति नहीं है वरन् उसका अभिन्न अंग है। चाहे शिक्षा का कोई भी अर्थ लिया जाय हम निर्देशन को शिक्षा से अलग नहीं कर सकते। शैक्षिक निर्देशन छात्रों की शैक्षिक कठिनाइयों एवं समस्याओं से है। यदि बालक की कठिनाइयों एवं समस्याओं को सुलझाने व सही समय पर उसकी योग्यताओं का पता लगाने हेतु सहयोग नहीं देंगे तो उसे आगे वाले कल की तैयारी करते हुए सामना करने में सफलता मिलने की कम सम्भावनाएँ रहेंगी और विफलताएँ हाथ लगेंगी। ऐसी स्थिति में उसको जीवन में समायोजित करने, तथा व्यवहारिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में प्रगति करने हेतु निर्देशन परम आवश्यक है।

निर्देशन का अभिप्राय — विभिन्न मनोवैज्ञानिकों एवं विद्वानों ने अपने ढंग से निर्देशन का अर्थ बतलाते हुए परिभाषित किया है जो इस प्रकार है —

जोन्स महोदय के अनुसार — निर्देशन का अर्थ है सुझाव देना इंगित करना सूचित करना तथा पथप्रदर्शन करना इस अर्थ में निर्देशन सहायता देने से कहीं अधिक है।'

मोरिस महोदय के अनुसार — "निर्देशन व्यक्तियों को सहायता प्राप्त

करने की उस प्रक्रिया को कहते हैं जिनके द्वारा व अपने प्रयत्नों से अपनी उन क्षमताओं का पता लगाने में तथा उन्हें विकसित करने में समर्थ हो जाते हैं जो उनके व्यक्तिगत जीवन को सुखी तथा सामाजिक जीवन को उपयोगी बना सकती है।

क्रो तथा क्रो के अनुसार :— निर्देशन के द्वारा भावी जीवन के सम्बन्ध में योजनाएँ बनाते हैं।

"निर्देशन प्रदर्शन नहीं उसका अर्थ अपनी विचार धाराओं को दूसरे पर लादना नहीं है, यह उन निर्णयों का, जिन्हें एक व्यक्ति को अपने लिए निश्चित करना चाहिये निश्चित करना नहीं है यह दूसरों के दायित्व को अपने ऊपर लेना नहीं है बल्कि निर्देशन तो वह सहायता है जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को प्रदान करता है इस सहायता से वह व्यक्ति अपने जीवन का पथ स्वयं ही प्रशस्त करता है, अपनी विचारधारा का स्वयं ही विकास करता है अपने निर्णय निश्चित करता है तथा अपना दायित्व निभाता है।'

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने निर्देशन को भावी जीवन के सम्बन्ध में योजना बनाने में उपयोगी बताया है।

निर्देशन एक ऐसा कठिन कार्य है जिसके आधार पर बालक बालिकाएँ बुद्धिमत्तापूर्ण अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में योजनाएँ बनाते हैं। अपने भविष्य सम्बन्धी योजनाएँ बनाते समय वे संसार के उन सभी तत्वों को ध्यान में रख लेते हैं जिनके बीच में रहकर उन्हें कार्य करना होगा।'

निर्देशन द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के अवसर प्रदान किये जाते हैं। उसके मानसिक विकास भावात्मक परिपक्वता सौन्दर्य के प्रति प्रशंसात्मक दृष्टिकोण सामाजिक सम्बन्ध भौतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के बारे में सहायता देता है।

निर्देशन के उद्देश्य

निर्देशन की प्रक्रिया का एक निश्चित उद्देश्य है अर्थात् व्यक्ति को जीवन की कठिन परिस्थितियों में बुद्धिमत्तापूर्ण करने तथा समायोजन में सहायता करना।

1 छात्र तथा छात्राओं को अपनी योग्यता व क्षमता की जानकारी कराना, निर्देशन की क्रिया से छात्र को अपने विषय में पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

2 निर्देशन की सहायता से छात्र-छात्राओं की रुचियों योग्यताओं तथा क्षमताओं का पूरा पूरा विकास होता है और उनमें परिपक्वता आती है।

3 निर्देशन का उद्देश्य है छात्र छात्राओं को इस योग्य बनाना कि वे अपना दायित्व स्वयं अपने ऊपर लेने में समर्थ हो जाए।

4 छात्र छात्राओं का वातावरण के साथ अपना समुचित समायोजन कर सकने में सहायता करना भी निर्देशन का मुख्य उद्देश्य है।

5 निर्देशन का उद्देश्य छात्र-छात्राओं को उन अवसरों की जानकारी कराना है जिनके योग्य वे हैं।

6 व्यक्ति का बहुमुखी विकास करना निर्देशन का सबसे प्रमुख उद्देश्य है। निर्देशन की सहायता से व्यक्ति अपनी निहित योग्यताओं, क्षमताओं तथा शक्तियों की जानकारी प्राप्त करता है उनका सदुपयोग करके अपने भविष्य का निर्माण करता है। इससे उसमें आत्मशक्ति भी विकसित होती है और उसे अपने व्यक्तित्व के बारे में पता चलता है।

7 निर्देशन की सहायता से मनुष्य इस योग्य बनता है कि वह जीवन सम्बन्धी विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं का सफलतापूर्वक समाधान कर सके और स्वयं समाज का अधिकाधिक भला कर सके।

निर्देशन सेवा क्या है ?

निर्देशन किसी व्यक्ति का उसकी समस्याओं के हल हेतु उसको उसकी क्षमताओं को ज्ञान करा कर उन समस्याओं के हल हेतु समाधान ढूँढने में सहायता है जो व्यक्ति को उसकी समस्याओं के समाधान हेतु की जाती है। वर्तमान विज्ञान व तकनीकी युग में शिक्षा में निर्देशन आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य सा हो गया है। क्योंकि विज्ञान व तकनीकी प्रगति के साथ व्यावसायिक क्षेत्र में इतनी शाखाएँ खुल रही है जिनके लिये विशेष योग्यता, रुचि व अभिरुचि की आवश्यकता है। जिसका ज्ञान कराने के लिए निर्देशन अत्यावश्यक है। द्वितीय सामाजिक विषमताओं के कारण भी बालक व बालिकाओं का निर्देशन आवश्यक है जिससे कि वे राह न भटके। तृतीय मनोविज्ञान की प्रगति से बालक व बालिकायें स्वयं की योग्यता क्षमता, रुचि अभिरुचि को जान सकते है। अतः विद्यालयों में निर्देशन सेवाओं का महत्व आज बहुत बढ़ गया है। क्योंकि विद्यालयों में विभिन्न प्रकार के विद्यार्थी अध्ययन हेतु आते है। ये विद्यार्थी आयु मानसिक योग्यता, आर्थिक सामाजिक स्थिति आदि में विभिन्नताएं लिए रहते है। इनके आचरण व्यवहार आदि भी विभिन्न होते हैं। शिक्षक व मनोवैज्ञानिकों ने भी इन व्यक्तिक विशेषताओं वाले समूह में विद्यार्थी के समायोजन में बहुधा, एक या दूसरे कारणवश असमायोजन वाली स्थिति आ जाती है तथा इसका असर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उसकी शैक्षिक निष्पत्ति पर पड़ता है।

निर्देशन सेवा विद्यार्थियों को उनकी विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए उनकी विभिन्न योग्यताओं के आधार पर विद्यार्थियों को समस्याओं के समाधान हेतु उनका मार्गदर्शन एवं सहायता, मनोवैज्ञानिक व वैज्ञानिक तरीकों पर आधारित विधियों द्वारा परामर्श देकर करती है, तथा उनकी शैक्षिक निष्पत्ति को उनकी मानसिक योग्यतानुसार प्राप्त करने में सहायता देती है।

दूसरे आज का विद्यार्थी कल किसी न किसी व्यवसाय में जावेगा। कल के लिए उसे आज ही आवश्यक तैयारी करनी होगी अन्यथा सम्भवतः उसे

ताओ का सामना करना पड सकता है जो कि उसम हीन भावना का विकास करेगी। ऐसी अनिश्चित परिस्थिति से छात्र को बचाने के लिए तथा कल के समा याजन हेतु आज ही प्रयत्न करने होंगे । इस गतिविधि को व्यापक रूप से चलाना वतमान युग की आवश्यकता है जिससे कि आगे मूँदी नही जा सकती । इसको व्यापक रूप से चलाने के लिये विद्यालय के एक-एक अध्यापक, प्रधानाध्यापक, जिला शिक्षा अधिकारी उप जिला शिक्षा अधिकारी उप निदेशक सयुक्त निदेशक व समस्त शिक्षा विभाग को रूचि लेकर काय करना होगा । केवल निर्देशन केन्द्र परामशक व कैरियर मास्टर इस काय को नही कर सकते । क्योंकि उन्हें बालक के विषय सम्बन्ध म सूचना तो अध्यापक ही देंगे । जब तक प्रत्येक अध्यापक बालक की प्रगति म रूचि न लेगा इस काय का लाभ नही होगा ।

निर्देशन सेवा का स्वरूप

विद्यालय मे निर्देशन सेवा निम्न प्रकार से प्रदान की जा सकती है ।

(1) शैक्षिक निर्देशन — छात्र की शैक्षिक समस्याओं तथा पाठ्यक्रम अध्ययन आदतो, विषय-चयन आदि से सम्बन्धित ।

(2) व्यावसायिक निर्देशन —

(अ) विद्यालय छोडकर जाने वाले उन छात्रो को जो कि आगे उच्च अध्ययन हेतु न जाकर किसी व्यावसाय म जाना चाहते हो व्यावसाय सम्बन्धी सूचनाए तथा प्रशिक्षण सम्बन्धी जानकारी जिनके लिए उनमे वांछित शैक्षिक योग्यता एव अभियोग्यता है ।

(आ) कक्षा 9वी म प्रवेश लेने वाले छात्रो को विषय समूहो के चयन सम्बन्धी माग दशन ।

(3) व्यक्तिगत निर्देशन — छात्रो को उनकी व्यक्तिगत समस्याओ जिनके कारण उनका समायोजन प्रभावित होता हो तथा शैक्षिक निष्पत्ति पर असर पडता हो व वे मानसिक पीडा व अन्तद्वन्द की स्थिति मे रहते हो, के समाधान म सहायता ।

निर्देशन केन्द्र परामशक व करियर मास्टर केवल निम्नलिखित काय कर सकते है —

1 कायक्रम निर्धारित करना ।
2 अध्यापको को प्रशिक्षित करना ।
3 माग दशन करना ।
4 व्यवसाय सम्बन्धित अधिक से अधिक सूचनाए देना ।
5 साहित्य उपलब्ध करना ।

शैक्षिक, व्यावसायिक, एव व्यक्तिगत निर्देशन कैसे दें

1 शैक्षिक एव व्यावसायिक निर्देशन सामूहिक, व्यक्तिगत एव पत्राचार द्वारा प्रदान किया जा सकता है। यदि केवल सूचनाएं ही चाही गई है, वे पत्राचार द्वारा तथा यदि योग्यताओ आदि के अध्ययन के पश्चात् मार्ग दर्शन के इच्छुक छात्रो का समुचित मनोवैज्ञानिक जाच एव साक्षात्कार के पश्चात ये निर्देशन प्रदान किया जाता है।

2 व्यक्तिगत समस्याओ के समाधान हेतु छात्र का पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक आधार पर सभी दृष्टिकोण से अध्ययन करके उस साक्षात्कारोपरान्त परामर्श दिया जाता है।

निर्देशन हेतु उपकरण

1 मानसिक योग्यता परीक्षाएं (शाब्दिक अशाब्दिक व क्रियात्मक परीक्षाएं) 2 अभि-योग्यता परीक्षाएं, 3 समायोजन परीक्षा 4 व्यक्तित्व परीक्षा 5 समाजमिति, 6 शैक्षिक निष्पत्ति 7 सूचना प्रपत्र —

(अ) विद्यार्थी सूचना-प्रपत्र (ब) अभिभावक सूचना प्रपत्र (स) अध्यापक सूचना-प्रपत्र।

अन्य विधियां

1 साक्षात्कार—

[अ] विद्यार्थी का स्वय का [ब] अभिभावक [स] अध्यापक [द] विद्यार्थी के मित्र [य] परिवार के सदस्यो का

निर्देशन विभिन्न स्तरो पर

यो तो निर्देशन सेवा का कार्य उसी दिन से प्रारम्भ हो जाता है जिस दिन बालक या बालिका प्रथम बार विद्यालय में प्राथमिक स्तर पर प्रवेश लेते है परन्तु इस सेवा के विस्तार एव पूर्ण रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियो की सख्या को ध्यान में रखते हुए यह सेवा वर्तमान में कक्षा 8वी से प्रारम्भ होती है।

कक्षा 8वी में उन छात्रो को जो आगे अध्ययन करना चाहते है, कक्षा 9वी में किस विषय समूह में प्रवेश लें, हेतु मनोवैज्ञानिक आधार पर उनकी योग्यताओ, शैक्षिक निष्पत्ति, परिवार की आर्थिक स्थिति को दृष्टि में रखते हुए सामूहिक एव व्यक्तिगत, दोनो विधियो द्वारा निर्देशन दिया जाता है।

कक्षा 9वी व 10वी में छात्रो का वर्गीकरण कर उनकी शैक्षिक निष्पत्ति को उनकी मानसिक योग्यतानुरूप लाने हेतु निदानात्मक परीक्षण तथा उपचारात्मक उपायो की सहायता से निर्देशन दिया जाता है।

कक्षा 10वी के उन छात्रो को जो उक्त कक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात किसी

व्यवसाय प्रशिक्षण म जाना चाह कक्षा 8वी के छात्रा की तरह ही व्यावसायिक निर्देशन दिया जाता है।

कक्षा 11वी क छात्रो को शक्षिक एव व्यावसायिक निर्देशन देने की वही विधि प्रयोग म लाई जाती है जो कि कक्षा 10वी में ली जाती है।

उपरोक्त काय के अतिरिक्त उन सभी अ य विद्यार्थिया/व्यक्तिया का भी मार्गदर्शन किया जाता है जो कि इसके इच्छुक हो।

व्यक्तिगत अध्ययन व निर्देशन

के द्र द्वारा उन सभी छात्र–छात्राओ का व्यक्तिगत अध्ययन कर निर्देशन दिया जाता है जिनकी समस्यायें व्यक्तिगत होती हैं। इस हतु किसी भी कक्षा, आयु के बालक/बालिका का अध्ययन सम्भव है। यदि व अपनी समस्याओ के समाधान एव मार्गदर्शन हतु के द्र की सेवा प्राप्त करना चाहे।

व्यक्तिगत अध्ययन हेतु अभिभावक, अध्यापक या विद्यार्थी स्वय परामर्शक को अपनी समस्या बताकर अध्ययन करवा सकता है।

वर्तमान मे विद्यालयो मे निर्देशन सेवा स्वरूप विधि

(1) परिचयात्मक सेवा।

(i) विद्यालय म नय प्रवश लेन वाल विद्यार्थिया व उनके अभिभावकों को विद्यालय परिचय–परिचयात्मक वार्ताओ द्वारा सत्र के प्रारम्भ म।

(ii) कक्षा 8 के छात्रा को नगर के माध्यमिक/उच्च माध्यमिक विद्यालयो के सम्ब ध म सूचना-सत्र के अ त म।

(iii) कक्षा 8, 10 व 11 क छात्रा को विभिन्न व्यवसाया का परिचय देने हेतु अभिस्थापन वार्ताएँ।

(iv) शैक्षिक वार्ताएँ

(अ) विभिन्न विषयो में सुचारू अध्ययन सम्ब धी वार्ताएँ।

(ब) परीक्षा मे उत्तर कस लिखे ? साक्षात्कार मे कैस उत्तर दे ? आदि पर भी वाताएँ।

(2) सामूहिक निर्देशन —

कक्षा 9वी म विषय–चयन हेतु कक्षा 8वी के छात्रा को उनकी मानसिक योग्यता, शक्षिक निष्पति रूचि अभि योग्यता, अभिभावक की आर्थिक स्थिति एव उनकी रूचि के आधार पर निर्देशन। यह गतिविधि शैक्षिक निर्देशन के अ तर्गत आती है।

(3) व्यवसाय सम्बन्धी सूचनाएँ

कक्षा 8वी 10वी व 11वी के उन छात्रा को जो कि उक्त कक्षा उर्तीण करने के पश्चात किसी व्यवसाय अथवा व्यवसाय से सम्बन्धित प्रशिक्षण म प्रवेश

लेना चाहते हो, उन्हे उनकी मानसिक योग्यता, रूचि अभियोग्यताएं, शक्षिक निष्पति आदि के आधार पर व्यवसाय चयन म सहायता।

यह सहायता व्यवसाय वार्ताओ, व्यवसाय से सम्बधित व्यक्तियो व्यवसाय परिचयात्मक वार्ताओ, व्यवसास का भ्रमण व्यवसाय से सम्ब धपरिचय साहित्य आदि के माध्यम स दी जाती है। इस काय हेतु मनोवैज्ञानिक जाच को भी आधार बनाया जाता है।

4 छात्र का वर्गीकरण

छात्रो व उनकी मानसिक योग्यता एव शक्षिक निष्पति के आधार पर वर्गीकरण कर उन विषयो म, जिनम उनकी निष्पति उनकी मानसिक योग्यता से कम है, निदानात्मक परीक्षण क आधार पर कमजोर स्थलो का पता कर उपचारात्मक उपायो द्वारा सहायता करना ताकि उनकी निष्पति उनकी योग्यता के अनुरूप आ जाए।

5 व्यक्तिगत निर्देशन

छात्रो की व्यक्तिगत समस्याओ के समाधान म उन्हे मनोवैज्ञानिक जाच, साक्षात्कार आदि उपायो से सहायता करना। यदि समस्या सामूहिक प्रकृति की है, तो समूह म, अ यथा व्यक्तिगत रूप से निर्देशन एव सहायता करना। उक्त कार्यों के अतिरिक्त छात्रो को विभिन्न पाठ्यक्रमो, शिक्षण प्रशिक्षण सस्थाओ के बारे म, जो कि व्यक्तिगत, सामूहिक एव डाक द्वारा दी जाती है, जिस रूप म भी जानकारी चाही गई है, जानकारी देना।

निर्देशन सेवा मे प्रधानाध्यापक का दायित्व

1 सहयोगी अध्यापको एव कमचारियो के निर्देशन सम्बधी कार्यों मे दिशा निर्देश करना चाहिए। अध्यापक वग एव मुख्याध्यापक म सम्ब ध जितने सौहाद्र पूण होग निर्देशन सेवाओ की उतनी ही अच्छी व्यवस्था विद्यालय म की जा सकेगी।

2 मुख्याध्यापक निर्देशन कायक्रम को नेतत्व तभी प्रदान कर सकता है जब वह निर्देशन सम्ब धी साहित्य अथवा व्यावहारिक काय से परिचय रखता है। इसलिए मुख्याध्यापक को अपनी निर्देशन सम्ब धी दक्षता बढाने के लिए साहित्य का अध्ययन करे तथा विशेषज्ञो से विचार-विमश करता रहे।

3 मुख्याध्यापक अभिभावको एव छात्रो की बठक बुलाकर छात्रो की समस्याओ पर विचार-विमश कर सकता है और निर्देशन कायक्रम को परिवतन एव सशोधित कर सकता है।

4 सहयोगी अध्यापक अपने निर्देशन उत्तरदायित्वो को सुविधापूवक पूरा कर सके उसम रुचि ले सके मुख्याध्यापक उनके अध्यापन कायभार म आवश्यक कमी करें ऐसी व्यवस्था हो।

5 मुख्याध्यापक को निर्देशन सेवाओ का पुनमू ल्याकन एव पुनर्निर्माण करने के लिए एक निर्देशन समिति' का गठन करना चाहिए। निर्देशन समिति तो सिफारिशें कायक्रम म सुधार लाने के लिए है उनका क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व मुख्याध्यापक पर हो।

परामर्शदाता का दायित्व

1 परामर्शदाता निर्देशन कायक्रम म केन्द्र की भूमिका निभाता है। वह

पकों के काय म छात्रा की कठिनाइयो एव समस्याओं के समाधान के सम्बन्ध म परामर्श प्रदान कर, सहायता करता है।

2 कमचारियो के प्रयोग के लिए परामर्शदाता आकडे एकत्रित करता है तथा निर्देशन सम्बन्धी तकनीकी काय करता है।

3 जिन समस्याओ म निर्देशन प्रदान करने म कक्षाध्यापक कठिनाई का अनुभव करते है उनके समाधान म परामर्शदाता सहयोग प्रदान करता है।

4 परामर्शदाता अध्यापको एव अभिभावको को सम्पक म लाने मे सहायक होता है।

5 परामर्शदाता कमचारियो को प्राप्त सामुदायिक सुविधाओं स परिचित कराने एव उनका उपयोग करने म सहायता प्रदान करता है।

6 परामर्शदाता छात्रो की निर्देशन आवश्यकताओ के अनुरूप अध्यापन काय को विकसित करने मे अध्यापक की सहायता करता है।

7 कमचारियो द्वारा अध्यापको को आवश्यक शक्षिक एव व्यावसायिक सूचनाओ को एकत्रित करने एव उनके प्रयोग में सहायता प्रदान करता है।

8 निर्देशन सम्बन्धी शोध काय का मूल्याकन सम्बन्धी अध्ययन म कमचारियो की मदद करता है।

अध्यापक के दायित्व

उपरोक्त चर्चा न अध्यापक के अनेक दायित्वो की ओर प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से कुछ सकेत हो चुके है। विशिष्ट रूप से उनके दायित्वो को सक्षेप म निम्नलिखित बिन्दुओ क अन्तगत किया जा सकता है —

1 प्रत्येक अध्यापक को घरेलू सम्पक द्वारा बालक की कौटुम्बिक पृष्ठभूमि तथा उसकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध म विस्तत सूचनाएँ एकत्र करनी चाहिए। साथ ही छात्रो के मानसिक शारीरिक विकास तथा स्वास्थ्य को ध्यान मे रखते हुए निर्देशन देना चाहिए।

2 विद्यार्थिया की विषयो मे प्रगति का लेखा-जोखा रखना तथा समय-समय पर उनका मूल्याकन करना।

3 छात्रावास एव भोजन व्यवस्था की आवश्यकता पर ध्यान देना अध्यापक का परम कतव्य है जिस पर अधिकाश अध्यापक ध्यान नही देते है। इसके अभाव म कई छात्रा की प्रगति रुक जाती है।

4 अपनी कक्षा क बालको क व्यवहार सम्बन्धी कुछ विशिष्ट बातें यदि दिखाइ दे तो निर्देशन कायकर्ता अध्यापक का ध्यान उसकी ओर आकर्षित करना चाहिए।

5 पर्यावरणीय सूचनाओ का सग्रह एव प्रसारण म निर्देशन कायकर्ता को यथा सम्भव सहायता करनी चाहिए।

6 कक्षा म व कक्षा के बाहर बालको की अनुभूत समस्याओ के प्रति सजग एव सवदनशील होना चाहिए।

7 भविष्य में उचित व्यवसाय के चयन म उनकी योग्यता, रुचि तथा देश-सेवा के अनुसार अपक्षित निर्देशन देना।

निर्देशन सेवाओं को प्रभावशाली बनाने हेतु सुझाव —

निर्देशन सेवाओं को प्रभावशाली बनाने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये जा रहे हैं —

1 परामर्शकों व कैरियर मास्टरों के निरीक्षण कार्य के समय प्रधानाध्यापकों द्वारा ऐसा बतलाया गया है कि वे लोग कोई विशेष कार्य नहीं कर रहे हैं। सत्र के आरम्भ में समस्त विद्यालय परामर्शकों को पूरे सत्र का माहवार कार्यक्रम भेज दिया जाता है। अब ये प्रधानाध्यापकों का कर्तव्य है कि वे देखें कि परामर्शक व कैरियर मास्टर उस कार्यक्रम का अनुसरण कर रहे हैं या नहीं। क्योंकि वे ही उनके नित्य-प्रति के कार्य का परिवीक्षण कर सकते हैं। उनको चाहिए कि वे उनसे कार्य लें। जिला शिक्षा अधिकारी, उप निदेशक, संयुक्त निदेशक भी जब विद्यालय का निरीक्षण करें तो निर्देशन कार्य का भी निरीक्षण उनके द्वारा किया जाना चाहिए व उसका उल्लेख उनके निरीक्षण प्रतिवेदन में कर एक प्रति एस आई ई आर राजस्थान उदयपुर को भी भेज दी जावे।

2 जिला शिक्षा अधिकारी, मण्डल उप निदेशक संयुक्त निदेशक कम से कम साल में चार बैठक विद्यालयों के परामर्शकों व कैरियर मास्टरों की करें। जिसमें कि उनसे गत तीन माह के कार्य का विवरण प्राप्त करें, निर्देशन सेवाओं को फलदायक बनाने के लिए विचार विमर्श करें।

3 करियर मास्टर व शाला परामर्शकों को सुविधाएँ दी जावें।

4 विद्यालयों में कैरियर मास्टर्स को प्रतिदिन के लिए कम से कम एक कालांश निर्देशन हेतु समय-विभाग-चक्र में निर्धारित किया जावे।

5 प्रत्येक विद्यालय के छात्र-कोष से निर्देशन कार्य हेतु समस्त कोष की ५० धनराशि प्रति वर्ष दिये जाने का प्रावधान किया जावे व जिला शिक्षा अधिकारी अपने निरीक्षण के समय इस बात को ध्यान से देखें कि इतनी निर्देशन कार्य हेतु व्यय की गई है या नहीं इस धन राशि को निम्नलिखित कार्य हेतु व्यय किया जावे —

(अ) निर्देशन साहित्य के क्रय व प्रकाशन हेतु।
(ब) छात्रों की बुद्धि रुचि व अभिरुचि परीक्षण सामग्री हेतु।
(स) शैक्षिक व व्यावसायिक वार्ताओं हेतु।
(द) छात्रों के भ्रमण हेतु।

6 एस आई आर ई उदयपुर द्वारा प्रतिमाह राजस्थान गाइडेन्स न्यूजलेटर प्रकाशित किया जाता है तथा इसे राजस्थान के सभी माध्यमिक-उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों को प्रेषित किया जाता है। अतः शिक्षा विभाग के निरीक्षण-अधिकारी निरीक्षण के समय देखें कि न्यूजलेटर का विद्यालयों में किस प्रकार उपयोग किया जाता है।

7 निर्देशन केन्द्र की सेवाओं को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने हेतु शिक्षा सम्मेलन में उपस्थित अधिकारियों के सुझाव आमन्त्रित किये जावें।

शाला निर्देशन कार्यक्रम आयोजित करने की कुछ पूर्व आवश्यकताएँ —

निर्देशन में सैद्धान्तिक आस्था मात्र इस कार्य को प्रारम्भ करने व सफलतापूर्वक संचालित करने हेतु पर्याप्त नहीं है। यदि केवल आस्था की ही ब...

न करके वास्तव म छात्रो को निर्देशन देना है तो शाला सगठन म इस कायक्रम के लिए आवश्यक समय तथा सुविधाएँ देनी होगी । शाला की अन्य पाठ्यसहगामी क्रियाओ के समान ही इसका आयोजन करना होगा । साथ ही इसके लिए आवश्यक स्थान, बजट आदि का भी प्रब ध करना होगा यह काय मुख्य रूप से प्रधानाध्यापक का ही हैं ।

चू कि निर्देशन का काय एक विशिष्ट काय है इसलिये इस काय के लिए विशिष्ट रूप मे उत्तरदायी व्यक्तियो का विशिष्ट प्रशिक्षण उसी प्रकार आवश्यक है जैसा कि शारीरिक शिक्षा के अध्यापक का, साथ ही शाला के समस्त अध्यापकगण एव अ य कमचारीगण को भी निर्देशन के उद्देश्यो, महत्व एव आवश्यकता से सामा य परिचय होना चाहिए । इसके अभाव म व प्रशिक्षित निर्देशन कायकर्त्ता को अपना अपेक्षित योगदान नही दे सकेंगे और निर्देशन कायक्रम असफल होने की सम्भावना है । बिना इसके वे प्रशिक्षित कार्मिको को अपना अपेक्षित योगदान निर्देशन कायक्रम के सचालन म नही द सकेंगे ।

उपसहार –

इस प्रकार यदि उप युक्त रूप से निर्देशन सेवा राज्य के सभी विद्यालयो म प्रारम्भ की जा सके तो निश्चय ही हम न केवल छात्रो की शैक्षिक निष्पति को उनकी मानसिक योग्यता स्तरानुकूल लाने म सफल होगे अपितु उनके स्वय तथा वातावरण के साथ समायोजन में सहायक होकर उन्ह सम्भावित हीन भावना से बचा न तथा वतमान में विद्यालयो में होने वाले अवरोध व अप व्यय को भी अधिकतम सीमा तक रोकने म सफल होगे तथा हम आने वाले कल के लिए राष्ट्र को सुसमायोजित प्रशिक्षित एव हीन भावना रहित सुयोग्य नागरिक उपलब्ध करा सकेंगे । ▭▭▭

मूल्याकन (Evaluation)

(अ) लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer type Questions)

1 विद्यालय म निर्देशन सेवाएँ ' पर टिप्पणी लिखिये । (बी एड पत्राचार 1985)

2 विद्यालयो म प्रभावी निर्देशन सेवाएँ आयोजित करन की पाच सावधानियां लिखिये । (बी एड 1985)

3 विद्यालयी शिक्षा के भिन्न–भिन्न स्तरो पर शक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन उपलब्ध करना अधिक सगत होता है व क्यो ? (बी एड पत्राचार 1984)

4 अध्य पक निर्देशन म किस प्रकार सहायक हो सकता है ? (शिक्षा शास्त्री 1984)

5 शक्षिक यावसायिक तथा व्यक्तिगत निर्देशन म अ तर बत इये । (बी एड 1983)

6 विद्यालय स मम्बन्धित निर्देशन के क्या उद्देश्य हैं ? (बी एड 1982)

(ब) निब धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1 निर्देशन का परिभाषित कीजिये । उच्च माध्यमिक विद्यालय म निर्देशन सेवाओ क सगठन के लिये एक योजना बनाइये । (बी एड माडल पेपर 1984, व बी एड 1983)

2 निर्देशन सेवाओ का क्या उद्देश्य ह ? विद्यालय म निर्देशन सेवाओ को गठित करते म प्रधान ध्यापक किन तत्वो को ध्यान म रखग ? (बी एड पत्राचार 1983)

3 निर्देशन कायक्रम म सलाहकार की क्या भूमिका है ? विविध परिस्थितियो क सदभ म इसको स्पष्ट कीजिये । (बी एड 1982)

4 शिक्षा और निर्देशन एक ही सिक्के के दो पहलू है ।" इस कथन की विवेचना कीजिये तथा दोनो की समानता तथा भिन्नता स्पष्ट कीजिये । (बी एड पत्राचार 1982)

अध्याय 25

प्रायोगिक कार्य
(Practicums)

1 निम्नांकित में से किसी एक का निर्माण—
   (a) वार्षिक विद्यालय योजना ।
   (b) वार्षिक शिक्षण-योजना ।
   (c) सत्र वार दत्त कार्य योजना ।

2 विद्यार्थी अनुशासन/असंतोष को प्रभावित करने वाले घटकों को खोजने हेतु समुदाय का सर्वेक्षण ।

3, विद्यालय के भौतिक संसाधनों के अधिकतम उपयोग हेतु एक योजना का विकास ।

4 सीमित उपलब्ध संसाधनों के अन्तर्गत शारीरिक शिक्षा व खेल-कूद कार्यक्रमों में पुनर्नियोजन की सम्भावनाओं का पता लगाना ।

5 विद्यालय में निर्देशन केन्द्र की स्थापना करना ।

6 निम्नांकित के अभिलेखों का संधारण—
   (a) सह-पाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप,
   (b) संचयी मूल्यांकन अभिलेख,
   (c) विद्यार्थियों के लिये उपयोगी व्यवसायों सम्बन्धी सूचना ।

1 Preparation of (any one)—
   (a) Annual Institutional Plan
   (b) Yearly Teaching Plan
   (c) Term wise Assignment Plan

2 Survey of Community with a view to locate factors influencing Discipline of Students/Student unrest

3 Developing a plan for maximum utilisation of school physical resoruces

4 Exploring possibilities of revising Physical training, games and sports under limited resources available

5 Establishing Guidance center in the school

6 Maintaining records of—
   (a) Co curricular activities,
   (b) Cumulative assessment record,
   (c) Occupational Information needed by Students

प्रायोगिक कार्य (Practicum)-1

1 (A) वार्षिक विद्यालय योजना (Annual Institutional Plan)

विद्यालय योजना का सम्प्रत्यय तथा उसकी प्रमुख विशेषताएँ एवं इसके पक्ष अध्याय–20 में स्पष्ट किये जा चुके है। विद्यालय योजना मे सम्मिलित प्रत्येक समुन्नयन कार्य बिन्दु का प्रारूप भी बतलाया जा चुका है। यहाँ वार्षिक विद्यालय योजना का प्रारूप दिया जा रहा है जो शिक्षा विभाग, राजस्थान द्वारा प्रकाशित पुस्तिका 'विद्यालय योजना 3" के अन्तर्गत दिया हुआ है :

वार्षिक विद्यालय योजना का प्रारूप (Proforma)

(1) विद्यालय का सामान्य परिचय, स्थिति, पहुँच, के साधन आदि।

(2) विद्यालय का इतिहास अति सक्षेप मे।

(3) विद्यालय के अपने मुख्य उद्देश्य यदि कोई स्पष्ट हो तो।

(4) विद्यालय की छात्र सख्या, कक्षा एवं वर्गवार।

कक्षा तथा वर्ग	छात्र सख्या	बालक	बालिका
1	2	3	4

(5) विद्यालय परिवार

(अ) अध्यापक वर्ग

प्रधानाध्यापक/प्राचार्य

सहायक प्रधानाध्यापक

अध्यापक गण

प्र० श्रेणी	द्वि० श्रेणी	तृ० श्रेणी	अन्य (पी०टी०आई०, टक्नीकल, एन०डी०एस०आई० आदि)	योग

योग्यतावार	कला वर्ग	विज्ञान वर्ग	कृषि वर्ग	वर्ग
	ट्रे ड/अनट्रे ड	ट्रे ड/अनट्रे ड	ट्रे ड/अनट्रे ड	ट्रे ड/अनट्रे ड
पास्टग्रेजुएट				
ग्रेजुएट				

ण्ड्री/हायर सकण्ड्री
नीकल
य

योग

ायवार

	उच्च माध्यमिक/माध्यमिक स्तर		उच्च प्राथमिक स्तर
वषय	अध्यापकों की संख्या	विषय	अध्यापकों की संख्या

(ब) अ य परिवार

लेखक वग	वरिष्ठ	वरिष्ठ	योग
पुस्तकालाध्यक्ष	—	—	
प्रयोगशाला सहायक	—	—	
चतुथ श्रेणी कमचारी	—	—	
सब व्योरा	—	—	

(6) विषय जो पढ़ाये जाते हो

	उच्च मा०/माध्यमिक स्तर		उ०प्रा० स्तर
विषय	छात्र संख्या	विषय	छात्र संख्या
अनिवार			
वकल्पिक			
[illegible]			

(7) [illegible] आदि

[illegible]	आकार	[illegible]	[illegible]
[illegible]			
[illegible]			
[illegible]			
[illegible]			
[illegible]			
[illegible]			
[illegible]			

वैकल्पिक विषयों के कक्ष

हॉल

अन्य कक्ष

प्रकार	साइज	संख्या	विशेष
प्रयोगशालाएँ, फ्रॉपरी, वाटर रूम, स्टोर रूम, मूत्रालय, शौचालय आदि			

(8) खेल के मैदान

खेल	संख्या	स्थिति (प्रांगण मे/कि०मी० म दूरी)	स्तर

(9) पुस्तकालय

विषय	पुस्तकों की संख्या (सत्र के अंत तक)
योग	

(10) वाचनालय

पत्र पत्रिकाएँ	योग	हिन्दी	अंग्रेजी	छात्रोपयोगी	अध्यापकोपयोगी
दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्ध वार्षिक प्रत्येक पृथक् पृथक्					

विषयवार	संख्या
विषय	

(11) परीक्षा परिणाम सत्र

(अ) माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की परीक्षायें–

कक्षा	वर्ग	बैठे	उत्तीर्ण	प्रतिशत	I	II	III	पूरक परीक्षा में उत्तीर्ण
कला								
11								
10								
विज्ञान								
11								
10								
कृषि								
11								
10								
गृह विज्ञान								
11								
10								
ललित कला								
11								
10								
योग								

विद्यालय की आन्तरिक परीक्षाएं (उपरोक्तानुसार)

(ब) सत्र में उपलब्ध कार्य दिवसों की संख्या

दिन/महीने–	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	ज०	फ०	मा०	अ०	म०
योग											

(12) आर्थिक साधन

राजकीय सत्र ( )		छात्र कोष सत्र ( )	
मद	राशि मद	गत सत्र तक शेष–नया	योग
योग		योग	

(V)

समुन्नयन काय-बिन्दु (Improvement Item Plan)

गत सत्र ( ) मे लिये गये	इस सत्र ( ) म प्रस्तावित

(य) शैक्षिक–
(ब) सहशैक्षिक–
(स) भौतिक–
(द) अध्यापक स नयन–
(ई) विभाग द्वारा प्रस्तावित–
(फ) अ य–

प्रत्येक समुन्नयन काय बिन्दु की योजना के शीर्षक

(1) समु नयन काय का नाम
(2) प्रभारी शिक्षक/समिति "
(3) समिति का सयोजक (यदि हो) "
(4) मानक अपेक्षाएँ "
(5) वतमान स्थिति का विश्लेषण "
(6) काय के लक्ष्य एव समय सीमा "
(7) क्रियान्विति सम्ब धी क्रिया पद्–समय सीमा साधन सुविधाएँ
(8) मूल्यांकन विधि

वार्षिक विद्यालय योजना के उपरोक्त प्रारूप म राजस्थान के समस्त राजकीय एव मा यता प्राप्त निजी विद्यालयो को निर्धारित समय सारणी के अनुसार उच्च शिक्षाधिकारियो को अवगत कराते हुए इस योजना की क्रियान्विति करना होता है। विद्यालय योजना का एक नमूना अध्याय–20 म दिया गया है।

1 (B) वार्षिक शिक्षण योजना (Yearly Teaching Plan)

वार्षिक शिक्षण योजना प्रत्येक शिक्षक को अपनी अध्यापक–दैनंदिनी (Teaching Diary) म उसे आवंटित कक्षा एव विषय की पृथक पृथक निम्नांकित प्रारूप (Proforma) म बनानी चाहिए—

कक्षा एव वग विषय

क्रमाक	अध्यापक इकाई (Teaching Unit)	अपेक्षित अध्यापन कालांश	माह	उद्देश्य	प्रधानाध्यापक द्वारा टिप्पणी

1 (C) सत्रवार दत्त-कार्य योजना
(Term wise Assignment Plan)

दत्त-कार्य अथवा गृह कार्य के उद्देश्य एवं उसको प्रभावी बनाने हेतु ध्यान में रखने के सिद्धान्त इस पुस्तक के अध्याय 9 में देखिये। यहाँ माध्यमिक कक्षाओं में दत्त कार्य की सत्रवार योजना का प्रारूप दिया जा रहा है—

सत्र	अनिवार्य विषय					ऐच्छिक विषय		
	अंग्रेजी	हिन्दी	गणित	सा० अध्ययन	सा० विज्ञान	I	II	III
प्रथम सत्र (1 जुलाई से 31 अक्टूबर)								
द्वितीय सत्र (1 नवम्बर से 31 दिसम्बर)								
तृतीय सत्र (1 मार्च से 16 मई)								

उपरोक्त प्रारूप में प्रत्येक सत्र में लगभग 200 शिक्षण दिवसों को तीन सत्रों में (बोर्ड की परीक्षा वाली कक्षाओं हेतु दो सत्रों में) अवधि के अनुसार दत्त कार्य के लिए विषयवार घण्टे निश्चित किये जायें तथा उसके आधार पर दत्त कार्य का साप्ताहिक समय-विभाग-चक्र निम्नांकित प्रकार से बनाया जाए ताकि प्रत्येक छात्र को प्रतिदिन दो घण्टे से अधिक कार्य न हो —

विषय / दिवस	अनिवार्य विषय					ऐच्छिक विषय			योग घण्टा में
	अंग्रेजी	हिंदी	गणित	सा० अध्ययन	सा० विज्ञान	I	II	III	
सोमवार	½	½	×	×	×	½	×	½	2
मंगलवार	½	×	½	½	×	×	½	×	2
बुधवार	½	×	½	×	½	×	×	½	2
गुरुवार	×	½	½	×	×	½	½	×	2
शुक्रवार	×	×	×	½	½	×	½	½	2
शनिवार	×	½	×	½	½	½	×	×	2

प्रायोगिक कार्य (Practicum)—2

विद्यार्थी अनुशासन/छात्र असन्तोष को प्रभावित करने वाले घटका का पता लगाने हेतु समुदाय का सर्वेक्षण

सर्वेक्षण विधि (Survey Method)—अनुसधान की विवरणात्मक विधि (Descriptive method of Research) का महत्वपूर्ण अग सर्वेक्षण विधि मानी जाती है। सर्वेक्षण का अथ आलोचनात्मक एव अनुसधानात्मक निरीक्षण करना है तथा इसका उद्देश्य किसी एक क्षेत्र या समस्या की वतमान स्थिति सम्बधी सूचनात्मक तथ्य एकत्रित कर उनक विश्लेषण व व्याख्या के आधार पर उस समस्या का समाधान खोजना है। सर्वेक्षण का क्षेत्र सकुचित एव व्यापक दानो हो सकता है। विद्यालय एव शिक्षा क्षेत्र की अनेक ऐसी समस्याये है जिनका सर्वेक्षण अनुसधान-विधि से समाधान खोजा जा सकता है। विद्यार्थी अनुशासन अथवा छात्र-असतोष की गम्भीर समस्या को प्रभावित करने वाले घटको (Factors) का पता लगाने हेतु निम्नाकित सोपानो (Steps) मे योजना बनाई जानी चाहिये —

(1) समस्या की पहिचान तथा परिभाषीकरण (Identification of the Problem and its Definition)—छात्र असतोष व अनुशासनहीनता के विद्यार्थियो के व्यवहार के आधार पर इस समस्या को परिभाषित किया जाय।

(2) समस्या के उद्देश्यो का निर्धारण (Framing the Objectives of the Problem)—छात्रो के व्यवहार म अपेक्षित परिवतनो के रूप म उद्देश्य निर्धारित किय जायें।

(3) सर्वेक्षण की योजना बनाना (Survey Plan)—इस समस्या के सर्वेक्षण हेतु उपयुक्त उपकरणो (Tools) एव प्रतिदश (Sample) का निर्धारण तथा उपकरणो की रचना की जानी चाहिए। छात्र असतोष के घटको का पता लगाने हेतु विद्यालय के अनुशासनहीन छात्रो का एक प्रतिनिधि प्रतिदश निश्चित कर उनके अभिभावको से पूछने हेतु एक उपकरण "साक्षात्कार अनुसूची" (Interview Schedule) बनाई जाये। इसका प्रारूप आगे दिया जा रहा है।

(4) दत्त सकलन (Data Collection)—समस्या से सम्बधित दत्तो का सकलन 'साक्षात्कार अनुसूची' तथा क्षेत्र-अध्ययन (Field Study) के आधार पर किया जाना चाहिये। अभिभावको तथा छात्रो से प्राप्त अनुशासन म सहायक घटको के अध्ययन से तथ्यो को वर्गीकृत रूप मे प्रदर्शित किया जाये।

(5) दत्त विश्लेषण (Data Analysis)—प्राप्त तथ्यो के विश्लेषण द्वारा अनुशासनहीनता म सहायक घटको की भूमिका स्पष्ट की जाय।

(6) सर्वेक्षण प्रतिवेदन (Survey Report)—अन्त मे अनुशासनहीनता म सहायक घटको क प्रभाव निष्कर्षो के रूप म तथा उनक निराकरण के उपाय प्रतिवेदन म स्पष्ट किये जाने चाहिए।

अभिभावको हेतु साक्षात्कार अनुसूची (Interview Schedule) (का प्रारूप

(1) सर्वेक्षण का नाम, (2) सर्वेक्षण का दिनांक, वर्ष एवं अवधि, (3) सर्वेक्षण करने वाले का नाम, (4) विद्यालय का नाम, (5) विद्यालय का प्रबंध (राजकीय/निजी), (6) विद्यालय का स्तर (प्राथ०/उ०प्रा०/माध्यमिक/उ० मा०), (7) प्रधानाध्यापक/प्राचार्य का नाम, (8) विद्यालय मे छात्र संख्या (कक्षावार), (9) छात्र का नाम व कक्षा, (10) अभिभावक का नाम व पता, (11) अभिभावक से साक्षात्कार के समय पूछे जाने वाले प्रश्नो के क्षेत्र—

[क] छात्र असन्तोष के विद्यालयीय अथवा शैक्षिक घटक—

(1) क्या छात्र विद्यालय मे दिये गये गृह–कार्य को नियमित रूप से घर पर करता है ?

(2) उसे किन विषयो मे कठिनाई आती है और क्यो ?

(3) क्या वह विद्यालय म साधन–सुविधाओ के अभाव की कोई शिकायत करता है तथा किस सम्बंध मे ?

(4) क्या उसे विद्यालय मे किसी छात्रा अथवा शिक्षक स कोई शिकायत है तथा किस प्रकार की ?

[ख] छात्र असन्तोष के घर या परिवार सम्बन्धी घटक—

(1) क्या आप छात्र को घर पर अध्ययन सम्बंधी साधन सुविधायें देते है ? यदि नही तो क्या कारण ह ।

(2) क्या छात्र को घर या परिवार से कोई शिकायत है ? यदि है तो किस प्रकार की ?

[ग] छात्र असन्तोष के सामाजिक घटक—

(1) विद्यालय समय के अतिरिक्त छात्र अपने अवकाश के समय का उपयोग कौन स कार्यों मे करता है ?

(2) छात्र के व्यवहार पर उसके मित्रो अथवा समुदाय के अन्य व्यक्तियो का क्या कोई विपरीत प्रभाव आप देखत है ? स्पष्ट करें ।

(3) स्थानीय समुदाय मे कौन से एसे मनोरंजन के साधन, संस्थाए अथवा समूह है जिन्ह आप छात्र की अनुशासनहीनता के लिये उत्तरदायी मानते है ?

[घ] छात्र अनुशासनहीनता के राजनैतिक घटक —

(1) स्थानीय समुदाय मे कौन से ऐसे राजनतिक संगठन हैं जिनके सम्पर्क द्वारा छात्र के व्यवहार पर विपरीत प्रभाव पडता है ?

(2) छात्र–आंदोलन के समय कौन से राजनतिक तत्त्व उसे प्रभावित करते हुए प्रतीत होते है ?

[ङ] छात्र अनुशासनहीनता के अन्य घटक —

(1) आपके परिवार की मासिक आय, व्यवसाय तथा सदस्य सख्या क्या हैं ?

(2) क्या छात्र को घरेलू कार्यो अथवा आपकी आजीविका के कार्यों मे समय देना पडता है तथा कितना समय व क्यो ?

(3) क्या छात्र की समस्याओ के समाधान हेतु विद्यालय से सम्पर्क रखते हैं ? यदि नही तो क्यो ?

उपरोक्त साक्षात्कार अनुसूची के प्रश्नो द्वारा प्रतिदर्श के लिये चुने हुए छात्रो के अभिभावको से ऐसे घटको का पता चल सकता है जिनका प्रभाव छात्र अनुशासनहीनता या असतोष पर पडता है । इस दत्त सकलन का सत्यापन (Verification) छात्रो के घरो, स्थानीय सस्थाओ, मनोरजन-केन्द्र तथा राजनतिक पार्टियो की गतिविधियो के निरीक्षण द्वारा किया जा सकता है ।

प्रायोगिक कार्य (Practicum)-3

विद्यालयो के भौतिक ससाधनो के अधिकतम उपयोग हेतु योजना का विकास (Developing a plan for maximum utilization of school physical resources)

विद्यालय के भौतिक ससाधनो मे निम्नाकित वस्तुएँ प्रमुख हैं—

(1) विद्यालय भवन, (2) फर्नीचर, (3) शिक्षण सहायक उपकरण, (4) कक्षा कक्ष, (5) विषय विशेष के कक्ष, (6) पुस्तकालय व वाचनालय, (7) प्रयोगशाला, (8) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओ सम्बन्धी उपकरण व स्थान (9) खेल के मदान व उपकरण, (10) राजकीय एव छात्र कोष म वित्तीय साधनो की स्थिति, (11) विद्यालय कार्यालय तथा (12) विद्यालय सेवाएँ ।

भौतिक ससाधनो की दृष्टि से वतमान अधिकाश विद्यालय शोचनीय स्थिति मे हैं । छात्र सख्या को देखते हुए भवन, खेल के मदान फर्नीचर, उपकरण आदि न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति भी नहीं कर पाते । माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक विद्यालयो मे बोर्ड द्वारा मान्यता हेतु निर्धारित शर्ते बहुत कम विद्यालयो मे ही पूरी होती देखी जाती है । इसके अनेक कारण है जसे शिक्षा विभाग अथवा निजी प्रबन्धक-मण्डल के पास वित्तीय साधनो की कमी, राजनतिक प्रभाव के कारण खोले गये स्कूल, जन-सहयोग की कमी आदि । भौतिक ससाधनो की कमी के फलस्वरूप छात्रो के शिक्षण एव अध्ययन पर विपरीत प्रभाव पडता है तथा शिक्षा का स्तर गिरता है ।

शिक्षा के तीव्र विस्तार के कारण तथा छात्र-सख्या म वृद्धि होने से विद्यालयो की सख्या मे भी अभूतपूर्व वृद्धि हो रही है । ऐसी स्थिति म विद्यालयो म भौतिक ससाधनो की कमी होना स्वाभाविक है । इन अपरिहार्य परिस्थितियो म केवल प्रधानाध्यापक की सूझ बूझ से ही उपलब्ध ससाधनो के अधिकतम उपयोग

द्वारा स्थिति पर नियंत्रण किया जा सकता है। इस हेतु प्रधानाध्यापक को शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों के सहयोग से विद्यालय में उपलब्ध भौतिक संसाधनों की योजना निम्नांकित बिंदुओं को दृष्टिगत रखते हुए बनानी चाहिए।

भौतिक संसाधनों के अधिकतम उपयोग की योजना बनाते समय ध्यातव्य बिन्दु

[1] विद्यालय भवन, कक्षा कक्षों तथा खेल के मैदान सम्बंधी कमी की पूर्ति जन सहयोग द्वारा की जानी चाहिए। उपलब्ध भवन व कक्षों में अधिकतम उपयोग हेतु विद्यालय को दो पारी (Shifts) में चलाकर अथवा कक्षा कक्षों में पार्टीशन (Partition) द्वारा उन्हें, दो कक्षाओं के उपयोग में लाया जा सकता है। मूत्रालय-शौचालय, जल गृह आदि के लिए उपलब्ध भूमि में स्थानीय साधनों (छप्पर व मिट्टी की दीवारें बनाकर) तथा श्रमदान द्वारा बनवाया जा सकता है। खेल के मैदानों की कमी की पूर्ति उपयुक्त खेल-कूद का समय विभाग चक्र बनाकर अथवा शाला संगम (School Complax) के माध्यम से अन्य स्थानीय विद्यालयों के खेल के मैदानों का उपयोग किया जा सकता है।

[2] शिक्षण सहायक उपकरणों की कमी आशु उपकरण (Improvised apparatus or Teaching aids) तयार करा कर पूरी की जा सकती है। शाला-संगम के माध्यम से भी विद्यालय परस्पर इन उपकरणों का विनिमय कर इनका अधिकतम उपयोग कर सकते हैं।

[3] पुस्तकालय व वाचनालय के अधिकतम उपयोग हेतु समय विभाग चक्र में एक पुस्तकालय कालांश रखकर अथवा विद्यालय समय के अतिरिक्त समय में कुछ अवधि के लिए पुस्तकालय व वाचनालय विद्यार्थियों के लिए खुला रखकर किया जा सकता है।

[4] पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के लिए उपकरणों एवं स्थान की कमी की पूर्ति ऐसी क्रियाओं के आयोजन के समय विभाग चक्र में परिवर्तन कर की जा सकती है जिससे उपलब्ध उपकरण एवं स्थान का अधिकतम उपयोग हो सके अथवा ऐसे क्रिया कलापों जिनमें इनकी कम आवश्यकता हो जैसे देशी खेलों (खो खो, कबड्डी, योगासन आदि) का आयोजन कर की जा सकती है।

[5] कार्यालय विषय विशेष के कक्ष, इनके उपकरणों आदि के अधिकतम उपयोग की योजना कक्षा व उपकरणों के एक से अधिक कार्यों के लिए उपयोग कर बनाई जा सकती है।

[6] उपलब्ध वित्तीय साधनों का सदुपयोग वस्तुओं के क्रय करते समय तथा उनके रख-रखाव में कुछ सावधानियाँ बरतने से किया जा सकता है।

उपरोक्त बिंदुओं के आधार पर भौतिक संसाधनों का सर्वेक्षण कर उनके अधिकतम उपयोग की योजना विधिवत बनाई तथा क्रियान्वित की जानी चाहिए।

प्रायोगिक कार्य (Practicum)-4

शारीरिक प्रशिक्षण व खेल कूद की उपलब्ध सीमित साधना के अन्तर्गत योजना बनाना

प्रायोगिक काय–3 के अ तगत इस बि दु पर चर्चा की जा चुकी है। यहां यह कहना पर्याप्त होगा कि सीमित साधनो के अ तगत शारीरिक प्रशिक्षण व खेल कूद की योजना बनाते समय निम्नाकित बातें ध्यान म रखनी चाहिए।

(1) स्थानीय विद्यालयों का सहयोग—शाला सगम द्वारा विद्यालयो के उपलब्ध ससाधना का परस्पर विनिमय कर उनका अधिकतम उपयोग किया जा सकता हैं। जो सामग्री या स्थान कुछ अवधि के लिए दूसरे साधनहीन विद्यालयो क उपयोग हेतु दिया जा सके, वह दिया जाना चाहिए तथा अ य विद्यालयो की इन वस्तुओ का उपयोग अपने विद्यालय म किया जा सकता है।

(2) जन सहयोग—खेल कूद का सामान अथवा खेल के मदानो की कमी की पूर्ति स्थानीय स्वायत्तशासी सस्थाओ (जसे–ग्राम पचायत, पचायत समिति, नगर पालिका आदि) तथा परोपकारी सस्थाओ व समृद्ध व्यक्तियो के सहयोग से की जानी चाहिए। यह सहयोग प्रधानाध्यापक तथा शिक्षको के स्थानीय समुदाय क साथ सम्पक एव सद्भावना के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

(3) समय विभाग चक्र मे वाछित परिवर्तन कर अधिकतम छात्रो के लिए इन क्रियाओ म भाग लेने का अवसर दिया जा सकता हैं।

(4) देशी खेलो व व्यायाम जैसे खो-खो कबड्डी, कुश्ती योगासन आदि की व्यवस्था कर सभी छात्रो के शारीरिक विकास की व्यवस्था की जा सकती है।

(5) छात्रों को अपने घर अथवा मोहल्लों म उपलब्ध स्थान पर खलने हेतु सामान देकर जिसकी व्यवस्था प्रभारी छात्र एव अध्यापक क परिवीक्षण मे की जाय, स्थान की कमी का निराकरण किया जा सकता है।

उपरोक्त बि दुओ को दष्टिगत रखते हुए विद्यालय क छात्रा के अधिकतम लाभ हेतु एक सुनियाजित कायक्रम बनाया जा सकता है।

प्रायोगिक कार्य (Practicum)—5

विद्यालय मे निर्देशन के द्र की स्थापना

(Eetablishing Guidance Centre in the School)

एक माध्यमिक विद्यालय म निर्देशन क द्र की स्थापना हेतु निम्नांकित बि दुओं को दृष्टिगत रखा जाना चाहिए (निर्देशन क उद्देश्य, प्रकार तथा सगठन के विषय म इस पुस्तक क अध्याय-24 म देखिय।) —

(1) राज्य शक्षिक एव व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरा (State Bureau of Education and Vocational Guidance Bureau)—राजस्थान म

राज्य शक्षिक अनुसधान एव प्रशिक्षण सस्थान (S I E R T) उदयपुर म स्थित है। विद्यालय मे निर्देशन–के द्र की स्थापना से पूव इस ब्यूरो से सम्पक कर आवश्यक जानकारी प्राप्त की जानी चाहिए।

(2) क्षेत्रीय परामशदाता (Counsellor) के मागदशन म निर्देशन के द्र की स्थापना की जानी चाहिए। शिक्षा विभाग ने राज्य के विभि न क्षेत्रो हेतु पृथक क्षेत्रीय परामशदाता नियुक्त किये है जिनका मागदशन विद्यालयो को प्राप्त करना चाहिए।

(3) कैरियर मास्टर (Career Master) के प्रशिक्षण हेतु विद्यालय के किसी उपयुक्त अध्यापक का चुनाव कर उसे राज्य के ब्यूरो द्वारा प्रशिक्षित कराना चाहिये ताकि वह निर्देशन–के द्र का प्रभारी बनाया जा सके। करियर मास्टर द्वारा शाला के सभी शिक्षको का निर्देशन हेतु अभिनवन (Orientation) किया जाना चाहिये।

(4) निर्देशन–के द्र हेतु विद्यालय मे उचित स्थान (कोई कक्षा या निर्देशन प्रकोष्ठ–Corner) का निर्धारण किया जाना चाहिए जो छात्रो का ध्यान आकर्षित करें।

(5) निर्देशन–केन्द्र द्वारा आयोजित क्रियाकलाप (Activities to be Organised by the Guidance Center) निम्नांकित होने चाहिए —

(क) सूची सेवा (Inventory Services)—छात्रा के सचयी काड (Cumulative Record Cards) का सधारण तथा परीक्षण व परीक्षण रहित प्रविधियो (Testing and Non testing Devices) द्वारा छात्रो के व्यक्तित्व के सभी पक्षो के सम्ब ध म सूचना एकत्रित करने का काय करना।

(ख) सूचना सेवा (Information Services) — छात्रो के व्याव सायिक निर्देशन हेतु स्थानीय सेवा नियोजन कार्यालयो (Employment Exchanges) तथा क्षेत्रीय उद्योग सस्थानो स सम्पक कर रोजगार या स्व रोजगार (Selfemployment) के अवसरो स छात्रो को अवगत कराना चाहिए। विद्यालय मे छात्रा को अपनी रुचि क व्यवसायो के अध्ययन करने एव प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु उत्प्रेरित करना चाहिए।

(ग) परामश सेवा (Counselling Services) —छात्रो को उनकी व्यक्ति गत व सामाजिक समस्याओ के समाधान हेतु परामश दिया जाना चाहिए।

(घ) अन्य गतिविधिया (Other Activities व्यावसायिक निर्देशन हेतु विद्यार्थियो द्वारा औद्योगिक सस्थानो के परिदशन (Visits) विभि न व्यवसायो की जानकारी देने हेतु पोस्टस, चाट, पम्फलेटस आदि का बुलटिन बोड पर प्रदशन, औद्योगिक क्षेत्र के प्रब धको व कमचारियो से भेंट, वार्ता, भाषण आदि, टी वी,

रेडियो, फिल्म स्ट्रिप्स आदि से सम्बन्धित कार्यक्रमों व प्रदर्शन की व्यवस्था, व्यावसायिक स्थानीय सर्वेक्षण (Surveys) विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों का अनुवर्ती अध्ययन (Follow up Studies) आदि क्रियाकलाप निर्देशन-केन्द्र द्वारा किये जाने चाहिए।

(ड) शिक्षक अभिनवन (Teacher Orientation)–कोठारी शिक्षा आयोग ने कहा है—"निर्देशन शिक्षा का अभिन्न अंग समझा जाना चाहिए न कि उसे एक मनोवैज्ञानिक या सामाजिक सेवा माना जाये जो शैक्षिक उद्देश्यों से भिन्न हो।" (Guidance therefore should be regarded as an integral part of Education and not a special Psychological or social service which is peripheral to educational purposes) अतः निर्देशन केन्द्र द्वारा राज्य निर्देशन ब्यूरो अथवा शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में स्थित प्रसार सेवा विभाग (Extension Services Department) के निर्देशन में सभी शिक्षकों को निर्देशन हेतु प्रशिक्षित कराना चाहिए।

प्रायोगिक कार्य (Practicum)-6

अभिलेख-संधारण (Maintaining Records)

(a) तथा (c) सह-पाठ्यक्रमीय क्रियाओं एवं व्यावसायिक सूचना के अभिलेखों का विवेचन इस पुस्तक अध्याय 12 तथा 24 में किया जा चुका है।

(b) संचयी मूल्यांकन अभिलेख
(Cumulative Assessment Records)

मुदालियर माध्यमिक शिक्षा आयोग ने कहा है—"न तो बाह्य परीक्षा और न आन्तरिक पृथक रूप से अथवा सम्मिलित रूप से बालक की सर्वांगीण प्रगति के विषय में सही व सम्पूर्ण चित्रण कर सकती है। यद्यपि हमारे लिए इस प्रगति को जानना अत्यन्त आवश्यक है तथापि व्यावसायिक एवं शैक्षिक निर्देशन हेतु आवश्यक है कि बालक के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित जानकारी का अभिलेख रखा जाये।" संचयी अभिलेख इसलिये महत्त्वपूर्ण होता है। वह छात्रों की व्यक्तिगत दुर्बलताओं एवं गुणों को ज्ञात उनके आधार पर उन्हें निर्देशन (Guidance) देने तथा उनकी व्यक्तिगत समस्याओं को समझकर उनका समाधान खोजने के लिए वाञ्छनीय होता है। कोठारी शिक्षा आयोग ने इस तथ्य को इस प्रकार व्यक्त किया है—"संचित अभिलेख प्रत्येक कक्षा सम्बन्धी छात्र विकास, उसकी शैक्षिक एवं संवेगात्मक समस्या उसकी समंजन सम्बन्धी समस्याओं एवं कठिनाइयों को सुलझाने के लिए उपचारात्मक कार्यवाही को दिशा प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।"

सचित अभिलेख प्रपत्र (Cumulative Record Proforma)

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर द्वारा समस्त माध्यमिक एव उ० मा० विद्यालयो म सधारण हेतु निम्नांकित सचित अभिलेख प्रपत्र निर्धारित किया है—

सामान्य तथ्य (General Data)

1 छात्र या छात्रा का नाम

2 ज म–तिथि

3 पिता का नाम

4 अभिभावक का पता

5 माता पिता या अभिभावक का व्यवसाय

6 माता पिता की शिक्षा

7 विद्यालय इतिहास

विद्यालय का नाम	वष	परिवतन के कारण
[i]		
[ii]		
[iii]		

8 पारिवारिक इतिहास

[i] परिवार म बालक की स्थिति

[ii] पारिवारिक अनुशासन

[iii] पारिवारिक स्थिति (आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक आदि)

[iv] व्यवसाय के सम्ब ध म माता पिता के विचार

9 छात्र/छात्रा की आकाक्षाएँ

10 माता पिता की आकाक्षाएँ

शैक्षिक उपलब्धियाँ (Scholastic Attainments)

क्र०सं० (S N)	पाठ्य विषय (Subjects)	वि दुमान (Grade)	1984 विवरण	वि दुमान (Grade)	1985 विवरण	वि दुमान (Grade)	1986 विवरण
1	प्रथम भाषा						
2	द्वितीय भाषा						
3	अंग्रेजी						
4	गणित						
5	विज्ञान						
6	सामाजिक अध्ययन						
	वैकल्पिक						
	[i]						
	[ii]						
	[iii]						

व्यावहारिक क्रियाएँ

पाठ्य विषय	बि दुमान	1983 विवरण	बि दुमान	19 विवरण
1 उद्योग (Craft)				
[प्र] काय पूर्ति (Turnover)				
[ब] काय कौशल (Craftsmanship)				
[स] उपयोग (Application)				
बि दुमानो का योग (Total Grading)				
2 सामाजिक एव नागरिकक्रियाएँ (Social and Citizenship activities)				
[प्र] सग्रह (Collections)				
[ब] प्रभिव्यक्ति				
[स] सेवा				
[द] दक्षता				
[य] टीम भावना (Team Spirit)				
बि दुमानो का योग				
3 शारीरिक शिक्षा (Physical Education)				
[प्र] शारीरिक स्फूर्ति				
[ब] खेल कूद म भाग				
बि दुमानो का योग				
4 चित्रकला (Drawing & Painting)				
[प्र] प्रविधि				
[ब] प्रभिव्यक्ति				
[स] मौलिकता				
5 सगीत				
6 नृत्य				
बि दुमानो का योग				

स्वास्थ्य विवरण (Health Reports)

	1982	1983	1964	1985	1986
[i] ऊँचाई	—	—	—	—	
]ii] भार	—	—	—	—	—
[iii] वक्ष (सामा य व प्रसारित)	—	—	—	—	—
[iv] दृष्टि	—	—	—	—	—
[v] श्रवणेन्द्रिय आदि	—	—	—	—	—
चिकित्सक की सम्मति	—	—	—	—	—

व्यक्तित्व के लक्षण (Personality Traits)

लक्षण (Traits)	बि दुमान (Grade)
[i] पहल (Initiative)	
[ii] चारित्रिक दृढ़ता	
[iii] अध्यवसाय (Perseverance)	
[iv] नेतृत्व (Leadership)	
[v] आत्म विश्वास (Self confidence)	
[vi] संवेगात्मक स्थि रता (Emotional Stabil..,	
[vii] सामाजिक अभिवृत्ति (Social Attitude)	
[viii] अ य	

सामा य टिप्पणी (General Remarks)

[i] उत्तरदायित्व ग्रहण करने की बालक की योग्यता

[ii] विशेष विवरण

[iii] कक्षाध्यापक के हस्ताक्षर

[iv] प्रधानाध्यापक/प्राचार्य के हस्ताक्षर

बोर्ड ने इस मूल्यांकन विधि को "व्यापक आ तरिक मूल्यांकन योजना" (Comprehensive Internal Assessment Scheme) का नाम दिया है। विभि न प्रवृत्तियों का पंच-बि दु-मापनी (Five point Scale) के आधार पर मूल्यांकन कर तथा घटनावृत्त अपत्रों (Anecdotal Records) में दी गई टिप्पणियां क आधार पर संचयी अभिलेख म प्रविष्ठियाँ करनी चाहिए।

☐